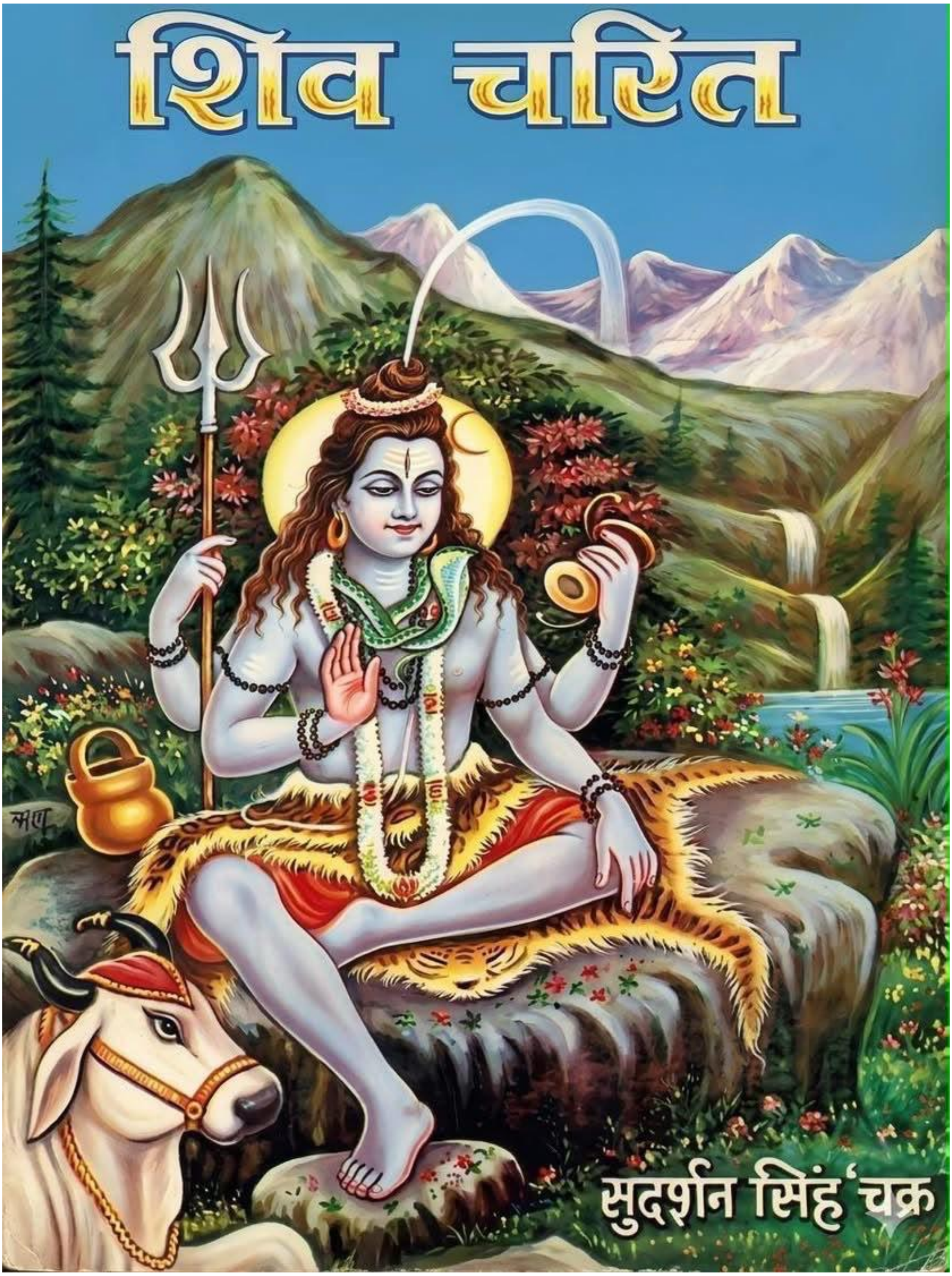

*The above cover image is AI Generated similar to the original one but the colour of shiv ji's body has changed in comparison to original cover.

शिव-चरित

★

लेखक :

श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

★

इस पुस्तकको सम्पूर्ण अथवा इसके किसी अंशको भी प्रकाशित करने,
उद्धृत करने या किसी भी भाषामें अनूदित करनेका
अधिकार सबको है ।

अनुक्रमणिका

१. शिव स्मरण १
२. अपनी बात २
३. उपक्रम ६
४. शिवका प्रथम साक्षात्कार १३
५. महारुद्रोत्पत्ति १७
६. लिंगोद्भव २४
७. एकादश रुद्र ३६
८. सती—महाशक्तिका अवतरण ३९
९. सती-विवाह ४५
१०. सती-प्रिय ४९
११. दक्षका दौरात्म्य ५१
१२. सती-त्याग ५५
१३. दक्ष-यज्ञ-ध्वंस ६२
१४. शक्तिपीठ ७२
१५. पार्वतीका प्रादुर्भाव ७८
१६. मदन-दहन ८३
१७. पार्वतीकी तपस्या ९२
१८. पार्वती-परिणय १०६
१९. कुमारका प्रादुर्भाव १२३
२०. यक्षराज कुबेरसे मैत्री १३०
२१. शिवधाम १३४
२२. काशीका प्रादुर्भाव १३७
२३. गणेश-उत्पत्ति १३९
२४. अक्ष-क्रीड़ा १४८
२५. गणेश-कार्तिक विवाद १५६
२६. कल्पवृक्ष-वन १६१
२७. काली-गौरी १६६
२८. नर्मदेश्वर शिवलिंग १७०
२९. कपाल मोचन १७२
३०. दण्डपाणि भैरव १७८
३१. हरि-हर १८१
३२. चक्रदान १८२
३३. त्रिदेवोंका एकात्मत्व १८४
३४. अतर्क्य अवधूत १८५
३५. अरुणाचलेश्वर १८७
३६. परमशैव महर्षि दधीचि १९१
३७. दधीचि-तनय पिप्पलाद १९६
३८. नन्दीश्वर १९८
३९. गोकर्ण—शिवका मृगावतार २०२
४०. लोकपाल वैश्वानर २०६
४१. महर्षि दुर्वासा २०९
४२. शुक्राचार्यको संजीवनी-विद्या २१४
४३. महर्षि लोमश २१६
४४. व्याघ्रपाद २१८
४५. उपमन्यु २२१
४६. मृत्युञ्जय २२४
४७. गङ्गावतरण २२८
४८. नर्मदाका अवतरण २३१
४९. सत्यवत्सल २३४
५०. त्रिपुरारि—त्रिपुर-संहार २३६

५१. जलन्धर-वध २४५
५२. शङ्ख-चूड-शमन २५०
५३. अन्धकोद्धार २५७
५४. गजासुर-वध २६५
५५. रुरू-वध २६७
५६. पराशरकी भक्ति २६९
५७. काल भीतिपर अनुग्रह २७१
५८. महामुनि श्वेतकी रक्षा २७४
५९. भस्मासुर-भस्म २७९
६०. नागोद्धार २८३
६१. वाराणसीसे निर्वासन २८४
६२. दुन्दुभि-निर्ह्राद-वध २९०
६३. मुनि जैगीषव्यपर अनुग्रह २९२
६४. द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग २९३
६५. शरभावतार ३२०
६६. शिवके विशिष्ट अवतार ३२२
६७. भैरवको शाप ३३१
६८. विष-पान ३३२
६९. चन्द्रमौलि ३३५
७०. मोहिनीका सम्मोह ३३७
७१. शास्ता—हरिहर-पुत्र ३४१
७२. महायक्ष ३४२
७३. चक्रकी पुनः प्राप्ति ३४५
७४. रावणकी शिव-भक्ति ३४७
७५. श्रीराम-सभाके कथावाचक ३४९
७६. श्रीकृष्णकी शिवाराधना ३५१
७७. गोपेश्वर ३५३
७८. शिव और विष्णुका सौहार्द ३५४
७९. वाणासुरपर वात्सल्य ३५७
८०. कपाली ३६०
८१. हालाहल-वध ३६२
८२. महिम्नस्तोत्र ३६३
८३. कणप्प भील ३६४
८४. इन्द्रेश्वर ३६८
८५. परिशिष्ट—
क–शिव तत्त्व ३७०
ख–शिवकी विभिन्न मूर्तियाँ ३७२
ग–प्रलयङ्कर-शिव-आशुतोष ३७७
घ–पञ्चमुख ३७९
ङ–गुरु तत्त्व—दक्षिणामूर्ति ३८०
च–आद्याचार्य ३८१
छ–रुद्राक्षकी उत्पत्ति और उसके भेद ३८४
ज–उपलिङ्ग ३८६
झ–नर्मदेश्वर लिङ्ग ३८७
ञ–पार्थिव पूजन ३८८
ट–विभिन्न पदार्थोंके बने-शिवलिङ्ग ३९१
ठ–शिव-पूजाकी मुख्य बातें ३९२
ड–भस्मत्रिपुण्ड ३९४
ढ–पञ्चाक्षर-जप माहात्म्य ३९४
ण–पञ्चाक्षर-जप ३९६
त–महामृत्युञ्जय ३९६
थ–सोमवार और प्रदोष-व्रत ३९७
द–शिव-तीर्थ ३९८
ध–शिव-निर्माल्य ४००
न–काशी-मरणसे मुक्ति ४०२

शिव-स्मरण

हर हर हर शिव, हर हर हर।

गंगाधर चन्द्रभाल नीलकण्ठ, मुण्डमाल,
धूर्जटि, मृड, स्थाणु रुद्र आशुतोष प्रलयंकर।

अहिभूषण भूतिभूषण, भूतनाथ, विश्वनाथ,
त्रिनयन, त्रिपुरारि शम्भु डमरू-त्रिशूलकर।

गजचर्माम्बर व्याघ्राम्बर दिगम्बर, कृत्तिवास
भवभीतिहारी भव शर्व शिव शंकर।

कामारि उमाकान्त आदि गुरु परम शान्त
नीललोहित चन्द्रोज्वल वृषभध्वज तापहर।

महादेव वृषभासन ब्रह्म-दक्ष-यज्ञ-शासन
श्मशानी मृत्युञ्जय वरदानी अभयङ्कर।

औघड़ अवधूत अर्धनारीश्वर काशीपति
चारु चरित अपने देव अन्तरमें द्योतित कर।

इतना और वरदान—कृष्ण-प्रीति पगें प्राण—
साम्बशिव ! सानुकूल अभयपाणि सिरपर धर॥

हर हर हर शिव, हर हर हर॥

—

अपनी बात

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबन्धु दिन दानी।
(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, १४।३)

मैं पहली बार मेरठ पहुँचा, तब 'संकीर्तन' के सम्पादन-क्रममें सामग्रीका पता लगाते हुए यह ज्ञात हुआ कि हिन्दीमें कोई अच्छा हनुमच्चरित और शिवचरित नहीं है। बात आश्चर्यकी थी और दुःखकी भी। जहाँ तक मेरा प्रश्न था, उस समय ऐसा कुछ करना दुस्साहस था, पर वह मैंने किया। दुस्साहस इसलिए कि यह बात सन् १९३७ ई० की है। उस समय मेरी अवस्था २६ वर्षकी थी और अध्ययनके नामपर मैंने मिडिलकी परीक्षा दी थी। संस्कृत, अंग्रेजी कुछ जानता नहीं था, सो अब भी नहीं जानता। पुस्तकें पढ़ी थीं, खूब पढ़ी थीं, लेकिन उनमें उपन्यास, राजनैतिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ ही बहुत थीं। गीता, योगदर्शन और महाभारत—प्राचीन साहित्यके नामपर इतनेका ही नाम ले सकता हूँ। अब शिवचरित किस बलपर लिखा जाय? एक भरोसा था। मैंने कलम मांगी थी अपने कन्हाईसे और उसकी दी हुई लेखनीमें निर्बलता होगी, यह माननेका कारण नहीं है। आज मैं इस स्थितिमें हूँ कि पूरी दृढ़तासे कह सकूँ—'यह लेखनी मेरी नहीं है'—क्योंकि जब कभी भी धार्मिक साहित्यको छोड़कर कुछ लिखा, वह पूरी पुस्तक खो गयी और जो खो गयी, मैंने उनको दुबारा लिखनेका प्रयत्न नहीं किया; क्योंकि यह संकेत ही था कि मेरी लेखनी देनेवाला नहीं चाहता कि मैं उसके सम्बन्धको छोड़कर और कुछ लिखूँ। नाम लेनेके लिए इन खोयी पुस्तकोंमें तीन ऐसी थीं कि उनकी चर्चापर भी लोग अब तक उनको आवश्यक मानते हैं। पहली थी राजनैतिक लेखोंका संग्रह 'अग्निकण', दूसरी 'भारतका भविष्य'। यह तब लिखी गयी थी जब क्रिप्स मिशन भारत आया था, देशके नेता बहुत बल देकर भारतका विभाजन अस्वीकार कर रहे थे, लेकिन इस पुस्तकमें राजनैतिक अनुमानोंके आधारपर सन् १९६० ई० तकका भारतका भविष्य था। भारत-विभाजनको सुनिश्चित बताया गया था। पुस्तककी लगभग ८० प्रतिशत भविष्य-वाणियाँ सच हुई हैं। तीसरी पुस्तक थी

'एक छत्र धरती'। यह आजकी समस्याओंका एक काल्पनिक समाधान देने वाला उपन्यास था। सम्पूर्ण विश्व एक राष्ट्र बने तो कैसे बनेगा, क्या विधान होगा, प्रशासनिक प्रदेश कैसे होंगे आदि समाधान इस उपन्यासमें दिये गये थे। लेकिन मैं इस दिशामें लिखूँ, यह उसे स्वीकार नहीं है जिसने मुझे लेखनी दे रखी है। तब मैं ऐसा प्रयत्न क्यों करूँ ?

उस समय अपने इस कन्हाईके भरोसे मैंने 'आञ्जनेय' प्रारम्भ किया। वह इसी नामसे मेरठसे छपा। दूसरा संस्करण मानस संघ, रामवन (सतना) से 'श्रीहनुमन-चरित' के नामसे हुआ। अब वह भी अप्राप्य हो गया है। सोचता था, उसे भी फिरसे लिखा जाना चाहिए। 'कल्याण' का हनुमान अंक निकलनेके पश्चात् मैंने उसे फिरसे 'आञ्जनेयकी' आत्मकथा नामसे पूरा ही लिखा। 'आञ्जनेय'के पश्चात् ही 'शिवचरित' लिखा गया और बहुत दिनों तक मेरे पास ही पड़ा रहा। फिर मैंने उसे 'मानसमणि' में देना शुरू किया। कलकत्तासे निकलने वाला परमपूज्य श्री श्रीठाकुर स्वामी सीतारामदास ओंकारनाथका पत्र 'परमानन्द' 'मानसमणि'में छपा अंश क्रमशः उद्धृत करता रहा। इस प्रकार यह पूरा चरित इन दोनों पत्रोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ। 'परमार्थ' (शाहजहाँपुर) ने अपने १५ जनवरी १९६८ ई० का विशेषांक 'शिव-चरितांक' के रूपमें इस पूरे चरितको ही प्रकाशित किया। इस प्रकार मेरठमें सन् १९३७ में लिखा हुआ शिव-चरित तीन पत्रोंमें पूरा-पूरा छपा और यह भी इसकी एक विशेषता ही है कि एक पत्रमें छपा हुआ इतना बड़ा चरित दो और पत्रोंने उद्धृत किया जबकि किसी भी मासिक-पत्रके लिए अन्यत्र छपी हुई सामग्री रुचिकर नहीं होती।

पाठकों-सम्पादकोंने इस पिछले शिव-चरितको पसन्द किया। इसमें मुख्य कारण मुझे यही लगता है कि हिन्दीमें धार्मिक दृष्टिसे लिखा हुआ दूसरा कोई शिव-चरित था ही नहीं। लेकिन जहाँ तक मेरी बात है, मुझे इससे संतोष नहीं हुआ था और आज जब नवीन शिव-चरित लिखने बैठा हूँ, मैं इसको उस पिछले शिव-चरितका संस्करण—परिवर्द्धित-परिशोधित संस्करण भी—कहनेको प्रस्तुत नहीं हूँ क्योंकि यह आमूलचूल मौलिक है, नवीन है और उस पिछले चरितसे सर्वथा भिन्न है।

हुआ तो यह था कि मैं अपना विशाल चार भागोंमें लिखा जाने वाला 'श्रीकृष्ण चरित'—जो अब 'श्रीकृष्ण-सन्देश' (श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा) में जुलाई १९७५ से ४८ पृष्ठ प्रति अंकके क्रमसे क्रमशः प्रकाशित

होने लगा है—सन् १९७४ में लिखकर जब पूरा कर चुका था, तब संकल्प ही नहीं था कि और भी कुछ लिखू , लेकिन उस 'श्रीकृष्ण-चरित' ने भाई जयदयाल डालमियाको इतना प्रभावित किया कि वे उसके प्रकाशनके लिए सचमुच जी-जानसे प्रस्तुत हो गये और यह उनके ही प्रयत्नसे प्रकाशित भी हो रहा है।

'श्रीकृष्ण-चरित' के प्रकाशनके क्रममें यह बात भी आयी कि मुझे और भी कुछ लिखना चाहिए। हाथमें कम्पनके कारण लिखना तो कठिन हो गया है, लेकिन प्रियवर विष्णुहरि डालमिया इसे कोई बाधा माननेको प्रस्तुत नहीं हैं। 'श्रीकृष्ण-चरित' के प्रकाशनकी व्यवस्था भी वही कर रहे हैं और यह व्यवस्था भी उन्होंने ही की है कि मैं बोलूँ और लिखा जाय। भाई सूर्यवंशी मुरलीधर इस लेखनका भार लेकर आ बैठे हैं, इसलिए अब यह शिव-चरित लिखवा देना सम्भव हुआ है।

मैंने इस 'शिव-चरित' के लिए शिवपुराण, लिंगपुराण, स्कन्दपुराण, वाराहपुराण, कर्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण, महाभारत, श्री मद्भागवतका आधार लिया है। इसके अतिरिक्त भी बहुत अधिक कथाएँ तंत्रग्रन्थों एवं अन्य उपपुराणों, औपपुराणोंमें होंगी, लेकिन उन सबको जुटाने-पढ़नेका न साधन है, न सुयोग ही। इसलिए यह जो कुछ हुआ है, इतनेमें ही मुझे संतोष है।

जहाँ तक एक चरितकी बात है, व्यक्तिका चरित लिखना सरल होता है, क्योंकि वह कभी, किसी वर्ष, किसी तिथिको उत्पन्न होता है और कभी-किसी तिथिको मर जाता है। इन दोनों तिथियोंके बीचकी घटनाएँ ही उसका चरित हैं। इस दृष्टिसे अवतार-चरित लिखना भी सरल है क्योंकि अवतारका एक आविर्भाव-काल और एक तिरोभाव-काल होता है। इन दोनों कालोंके मध्यकी घटनाओंकी सीमा होती है, लेकिन भगवान् शंकर न व्यक्ति हैं, न अवतार हैं। इनके चरितको न देशकी सीमामें बांधा जा सकता है, न कालकी। अब लेखक कहाँसे प्रारम्भ करे और कहाँ समाप्त करे, इसका कोई सुनिश्चित क्रम बनता नहीं है। एक कठिनाई और भी है। भगवान् शंकरके चरित, जो पुराणोंमें उपलब्ध हैं, अनेक कल्पोंके हैं। एक ही कथा कई-कई रूपोंमें मिलती है। उसमें-से जो कथाओंके मुख्य भेद हैं वे मैंने ले लिये हैं, लेकिन मैं यह करनेमें सफल नहीं हो सका हूँ कि चरितोंको और कथाओंको कालक्रमसे क्रम दिया जा सके। यह निर्णय करना सरल नहीं है कि पिछले सहस्रों-लाखों कल्पोंमें-से कौन-सी घटना किस कल्पकी है और ठीक-ठीक किस घटनाके आगे या पीछे होनी चाहिए। अतः मैंने

घटनाओंको काल क्रमसे देनेका प्रयत्न छोड़ ही दिया है। शिव-पुराणमें एक क्रम है। उसमें पहली संहितामें सती और पार्वतीके चरित्र दिये गये हैं। सब असुर-संहारकी घटनाएँ एक संहितामें एकत्र कर दी गयी हैं। भगवान् शिवके भक्तोंके चरित्र एक साथ एकत्र कर दिये गये हैं, यद्यपि यह क्रम बहुत अटपटा है। जैसे सतीके शरीर-त्यागसे पूर्व दक्षको दधीचिके श्रापका वर्णन करना, लेकिन दधीचिका चरित्र बहुत पीछे भक्तोंके चरित्रके साथ दिया गया है। यही बात नन्दी और भैरवकी उत्पत्ति-कथामें भी है जबकि वर्णनोंसे स्पष्ट है कि नन्दी और भैरव सतीके देह-त्यागसे बहुत पूर्वसे भगवान् शंकरके पार्षद हैं। लेकिन कथाओंको इस प्रकार शिव-पुराणने एक क्रम दे दिया और मैं भी यही क्रम दे रहा हूँ।

इस शिव-चरितके लिखने-लिखानेका उद्देश्य ही है, भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरित मनमें आवें, शिवका स्मरण हो ; क्योंकि ये पशुपति पशु-भूत जीवोंके पाशच्छेत्ता परम कृपालु औढरदानी हैं। इनका स्मरण ही प्राणियोंको पुनीत करता है। चरित क्रममें सर्वथा ठीक नहीं है, हो भी नहीं सकते थे, किन्तु इससे हमारे-आपके शिव-स्मरणमें कोई बाधा नहीं पड़ती है।

जहाँ तक शिव-तत्व, शिवार्चन आदिकी बात है, मैंने इस पूरे प्रकरणको पुस्तकके अन्तिम भागमें लिया है, और पर्याप्त संक्षिप्त करके लिया है क्योंकि मैं चरित भागको ही प्रधानता देकर बैठा हूँ। भगवान् शंकरके भक्तोंके लिए अपने आराध्यका चिन्तन और स्मरण सुगम हो सके तो यह प्रयत्न सफल हो। पूजन अर्चन और तत्व-विवेचन सम्बन्धी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, इसके उत्सुक जिज्ञासु उन्हें बाजारमें प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् शिवसे मेरा अपना एक मानसिक सम्बन्ध है। वाराणसी क्षेत्रके आसपास ही जन्म होनेके कारण मैं अपनेको उमा-महेश्वरका पुत्र ही मानता हूँ, इसलिए अपने वास्तविक माता-पिताके चरित-चिन्तनमें मुझे स्वयं जो सुख, शान्ति, आह्लाद प्राप्त होता है, मेरे लिये यह पर्याप्त पुरस्कार है। आप इस चरितको साहित्य, इतिहास या कथा मानकर पढ़ेंगे तो सम्भव है, आपको कुछ न मिले, किन्तु यदि आप पहलेसे भगवान् भवानीनाथके चरणोंमें श्रद्धा रखते हैं तो यह उनका स्मरण करावेगा आपको—इतना मुझे विश्वास है।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, —सुदर्शन सिंह
मथुरा २८१००१
दिनांक ७ अगस्त, १९७५ ई०

—

उपक्रम

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शंकराय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च ।

(यजुर्वेद १०.४१)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्धया शुभया संयुनक्ति ।

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ४.४)

सृष्टिमें यदि दो तत्व हों तो किसीका भी सर्वव्यापक होना सम्भव नहीं है, क्योंकि लोटेके पानीमें यदि एक कण भी रेतका है तो जितनी दूरीमें वह कण है, उतनी दूरीमें पानी व्यापक नहीं है। लोटेमें पानी तभी व्यापक है जब केवल पानी हो या उसमें बर्फके टुकड़े हों। ऐसा नहीं है कि दार्शनिक दो या तीन तत्व न मानते हों, लेकिन बहुत विवेचन करनेपर भी वैज्ञानिक और दार्शनिकोंका एक बड़ा सम्प्रदाय 'सृष्टिमें एक ही तत्व है' इस पक्षमें प्राचीन कालसे रहा है और अब तक है।

सृष्टिका एक तत्व जड़ है या चेतन—इस मान्यतापर ही सम्पूर्ण विद्याओंकी दो धाराएँ हो जाती हैं। यदि सृष्टिका मूल तत्व जड़ है तो सृष्टिमें विकास हो रहा है और होता रहेगा, हमसे जितने प्राचीन वे उतने अल्पविकसित, उतने अज्ञानी, उतने पशुताके समीप—पाश्चात्य विकासवादी और उनके अनुयायी इसी मान्यताको स्वीकार करते हैं।

सृष्टिका मूल तत्व जड़ है, इसमें सबसे बड़ी बाधा यह है कि जड़से चेतनकी उत्पत्ति जड़की किसी भी प्रक्रियामें सम्भव नहीं है। जब दो तत्व सर्वथा विरोधी हों तब उनका संयोग सम्भव नहीं हुआ करता और जड़ तत्वमें चेतनकी भ्रान्तिसे भी प्रतीति नहीं हो सकती क्योंकि भ्रान्ति चेतनमें ही सम्भव हो सकती है—जहाँ ज्ञान होगा वहीं अपूर्ण या पूर्ण ज्ञान होगा। जड़में ज्ञान ही नहीं है तो भ्रान्ति कैसे सम्भव है ?

यहाँ एक बात बहुत स्पष्ट समझ लेनी चाहिए। जड़ और चेतनकी हमारी (भारतीय) और पश्चिमकी परिभाषामें बहुत अन्तर है। पाश्चात्य

वैज्ञानिक सेन्द्रियतत्वको चेतनतत्व मानते हैं, किन्तु हम चेतनको निर्विकार मानते हैं। सेन्द्रियतत्वकी इन्द्रियगत चेतना—यह जड़का (क्षेत्रका) ही धर्म है।

इच्छा द्वेषः सुखं दुखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

(गीता १३.६)

सृष्टिका मूल तत्व चेतन है—यह माने बिना धर्म, आस्तिकता और सदाचारकी भी कोई भित्ति, कोई नींव नहीं है। भारतका इतिहास इसका पोषक है कि हमारे पूर्वज हमसे उत्तरोत्तर अधिक बुद्धिमान रहे हैं, अधिक शक्तिशाली रहे हैं, अधिक संयमी रहे हैं और इतने अधिक विचारशील रहे हैं जिसकी आज कल्पना भी सम्भव नहीं है। जहाँ तक भाषाशास्त्रकी बात है, यह निर्विवाद स्वीकृत है कि विकसिततम लोगोंकी भाषामें जटिल उच्चारण, अधिक अक्षर और अधिक स्वर होते हैं। सब जानते हैं, वेदोंकी भाषाकी तुलनामें संसारकी सभी भाषाओंमें कम अक्षर हैं, सरल उच्चारण हैं और तीसरा प्लुत स्वर तो कहीं है ही नहीं। इसका अर्थ है कि वैदिक भाषा विकसिततम अत्यन्त बुद्धिमान लोगोंकी भाषा थी। सृष्टिका मूल चेतन है तथा जो उससे जितना पास है उसमें उतनी अधिक चेतना प्रतिफलित होगी, और जैसे-जैसे उससे दूर होता जायगा, चेतनाक विकास कम होता जायगा—विकृति आती जायगी। हम भारतीय परम्परासे इस सत्यको स्वीकार करते हैं।

सृष्टिका मूल तत्व चेतन है, एक है और अनन्त है। तब अनन्तका ही दोष कहिये या दुर्बलता, वह अपनेको ही सम्पूर्ण रूपसे देख नहीं सकता ; और चेतन है, इसलिए उसमें देखनेकी—प्रकाशित करनेकी ऐसी स्वाभाविक शक्ति है जो निरुद्ध नहीं होती। इसीसे उसमें भ्रान्तिका उत्थान होता है, अनित्य दर्शन होता है। जैसे हम अब देखे बिना रह नहीं सकते और अनन्त आकाशका अनन्त देख नहीं सकते, फलतः आकाशमें नीलिमाकी भ्रान्तिको देखना स्वाभाविक हो जाता है। यह जो चेतनकी स्वभावगत अपूर्णता और भ्रान्ति देखनेकी वृत्ति है, इसीका नाम प्रकृति है। आश्चर्यकी बात है, जड़वादियोंने भी जड़ तत्वका नाम प्रकृति रखा है। इस तत्वके वाचक जितने शब्द हैं किसी भी भाषामें, सब प्रकृति, स्वभावके

पर्यायवाची हैं। यह सोचा ही नहीं गया है कि प्रकृति किसीकी होती है, स्वयंमें प्रकृति कोई तत्व नहीं हो सकता।

सृष्टिमें सर्वत्र देखा यही जाता है कि शरीर बनते हैं और उनमें चेतना व्यक्त हो जाती है। हिन्दू धर्मके आधिदैवत-बादको इस दृष्टिसे कम समझा गया है। एक-एक ईंट जोड़ करके हम मकान बनाते हैं और मकान बन जाता है, तब हिन्दू उस मकानमें गृह-देवताकी पूजा करता है। आपने कभी सोचा है, यह ठीक वही बात है, जैसे माताके पेटमें आपका शरीर माँसके एक-एक कणोंसे बने और वह कण भी ईंटोंके समान ही भौतिक था, लेकिन शरीर बना तो उसमें आपकी चेतना प्रकट हो गयी। ऐसे ही गृहमें गृहदेवता आगये। हिन्दू प्रत्येक वस्तुका अधिदेवता मानता है, जब कि वस्तुएँ हमारे सामने, हमारे द्वारा बनती, बदलती, टूटती रहती हैं। देवता मरता है, ऐसा हम नहीं मानते, जैसे जोव मरता है, यह हम नहीं मानते। वस्तुओंके समान ही शरीर बनता है, बदलता है, मरता है। आपने अपने शैशवसे अब तकके कालमें कभी अनुभव किया है कि आपके 'मैं' में कोई परिवर्तन हुआ है, जितने परिवर्तन हैं सब शरीरमें, अधिकसे अधिक बुद्धिमें होते हैं, आपके 'मैं' में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह 'मैं' अपरिवर्तनीय निर्विकार चेतन है। इतना तो आपका अपना अनुभव ही है।

कठिनाई यह है कि सृष्टिका जो मूल तत्व है वह अवाङ् मनसगोचर है। मन-वाणी-बुद्धिमें वह आता नहीं है। आप अपने 'मैं' का अनुभव करते हो, उसे अस्वीकार नहीं कर सकते हो, लेकिन न तो वह किसी इन्द्रियसे अनुभव किया जायगा, न मनका विषय बनेगा, और न बुद्धिका। इसी प्रकार जिसे आप प्रकृति कहते हो, दर्शनकी भाषामें जिसे माया कहा जाता है, वह भी अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह न सत् है न असत्; जैसे वृक्षकी छायाको स्वतन्त्र सत् नहीं कह सकते, इसलिए कि उस छायाका न कोई वजन है, न अलग सत्ता है, लेकिन छायाको असत् भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उससे ताप-निवारण, प्रकाश अवरोध आदि कई काम होते हैं।

जब चेतन और माया दोनों ही अनिर्वचनीय हैं, तब बहुत सारे दार्शनिक मतोंका क्या अर्थ है। बात यह है कि मनुष्यको बुद्धिमान प्राणी होनेके अपनी यह दुर्बलता कि उसे दुःख, असफलता बार-बार

रौंदती है, अखरती है और वह इससे छुटकारा चाहता है। छुटकारा पाया जा सकता है। भगवान् बुद्धका यही आर्य सत्य है—१- दुःख दुःख अर्थात् दुःख है। २- इस दुखसे छुटकारा पाया जा सकता है। श्रीकृष्णने गीतामें कहा—'दुःखके संयोगके वियोगका नाम योग है।'

तं विद्यात् दुःख संयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

(गीता ६.२३)

इसलिए जितने भी धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक अन्वेषण हुए, वे परिस्थितिकी इस विवशतासे परित्राण पानेका मार्ग ढूढ़ते हैं।

मार्ग एक नहीं हुआ करता, क्योंकि मार्ग चलने वालोंके लिए होता है। लक्ष्य भले ही एक हो, जो जहाँ अवस्थित है, वहाँसे उसका मार्ग चलता है। मैं कहने यह जा रहा हूँ कि जितने दर्शन हैं वे सब स्वीकार करते है, तत्व मन-वाणीमें नहीं आता, फिर भी वे तत्वका प्रदिपादन करते है। यह प्रतिपादन केवल इसलिए है कि उसको अवलम्ब बनाकर तत्वकी उपलब्धि की जा सकती है। यह प्रतिपादन एक साधन देनेके लिए है। उदाहरणके लिए, किन्हींको आकाशमें द्वितीयाका चन्द्रमा दिखलाना है। जो जहाँ खड़ा है, उसकी स्थितिके अनुसार कहना पड़ेगा वृक्षकी अमुक शाखासे इतनी दूरीपर चन्द्रमा है। ये शाखाएँ भिन्न-भिन्न होंगी, दूरी भिन्न-भिन्न होगी क्योंकि देखने वाले भिन्न हैं, भिन्न-भिन्न स्थानोंपर हैं, पर सब दूरियाँ चन्द्रमाको दिखलाना चाहती हैं और उनके अनुसार देखनेपर चन्द्रमा दीख जाता है। इसी प्रकार सब वर्णन दार्शनिकोंके, धार्मिकोंके उस मूल तत्वको उपलब्ध करानेके लिए हैं। सीधा कहें तो हमारी विवशताको, हमारे बन्धनोंको, दुःखको, हमारे पराभवको मिटा देनेके लिए हैं और इसमें सब सफल होते हैं यदि उनका ईमानदारीसे अवलम्बन किया जाय।

दुःख या बन्धन क्या है ? आप पुस्तकोंकी परिभाषाओंमें न जाएँ। अपनेसे एक बार पूछें—'क्या कोई ऐसा समाचार, ऐसा शब्द है जो आपको मिले तो आप जहाँ हों वहाँ चाहे जितनी एकाग्रतासे, प्रेमसे बैठे हों, वहाँसे आपको उठनेको विवश करे।' यदि ऐसा कोई समाचार है तो क्या आप नहीं देखते कि यह रस्सी है जो आपको बाँधकर घसीट ले सकती है, घसीटती है। यह रस्सी है राग और द्वेष, स्नेह और स्पर्धा। जब तक

यह रस्सी आपके हृदयमें है, कोई कल्पित स्थिति आपको मुक्त नहीं करती। मुक्त होनेका—मोक्ष होनेका—अर्थ ही है बन्धनका कट जाना और बन्धन हैं राग और द्वेष। किसी समाधिसे, किसी रूप या ज्योतिके दर्शनसे, किसी शब्दके श्रवणसे अथवा दूसरे किसी भी चमत्कारसे यदि आपका राग और द्वेष मिट जाता है, मिट गया है तो आप मुक्त हैं और यदि यह नहीं मिटा है तो चाहे जितना बड़ा चमत्कार हुआ हो, चाहे जितनी समाधि आपने प्राप्त की हो, वह केवल एक मानसिक स्थिति थी और आप एक सामान्य प्राणीके समान ही बद्ध हैं। यदि इस सत्यको आप स्वीकार नहीं करते हैं तो साधनके मार्गमें आपके भटक जाने, धोखा खा जानेका भय सदा बना रहेगा।

जगतका परम सत्य एक है, चेतन है, निर्विकार है, लेकिन उस निर्विकार, निर्गुण, निर्विशेषका न चिन्तन हो सकता है, न ध्यान हो सकता है, न वह वृत्तिमें आ सकता है। भूलना नहीं चाहिए कि वस्तुतः किसी भी व्यक्तिको ब्रह्मज्ञान हुआ नहीं करता, ब्रह्मको कोई अन्तःकरण अपनी वृत्तिका विषय नहीं बना सकता। जिसे ब्रह्मज्ञान या आत्म-साक्षात्कार कहते हैं वह ब्रह्माकार वृत्ति भी कल्पित वृत्ति ही है—यह बात अद्वैत वेदान्तके मनीषियोंको निर्भ्रान्त रूपसे स्वीकृत है।

व्यक्तिकी एक स्वाभाविक दुर्बलता है। उसका अहंकार। इस अहंकारके कारण वह अपनेको, अपने धर्मको, अपने समाजको, अपने प्रान्तको, अपनी भाषाको, अपने वेश-आहारको, अपने देशको, अपनी संतानको और अपने इष्टको सर्वश्रेष्ठ मानता आया है, मानता रहेगा। इसी स्वाभाविक दौर्बल्यके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिका, दूसरेके धर्मका खण्डन करता है और उसे कम महत्वका बतलाना चाहता है।

तथ्य यह है कि चित्तमें जब कल्पित वृत्ति ही आती है और वही मोक्षका हेतु है, तब उसका नाम ब्रह्म ही हो, इस आग्रहका कोई कारण नहीं है। वृत्तिमें क्या आता है, बात यह महत्वकी नहीं है, आपकी वृत्तिमें आपकी निष्ठा, परम्परा, साधनके अनुसार कुछ भी आता हो, उसमें आपकी बुद्धि क्या है, उस आये हुए कल्पितको आप क्या मानते हो, महत्ता इस बातकी है। यदि आप उसे सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, निर्विकार, सच्चिदानन्द मानते हो तो आपकी साधना ठीक है और आपका अन्तःकरण सच्चि-

दानन्दाकार होकर दुःख और आवेगके अंधड़ोंसे ऊपर उठ जायगा, राग और द्वेषकी रस्सी कट जाएगी। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा कि आप मनकी एक वृत्तिको, मनकी स्थितिको ब्रह्माकार कहते हो या भगवदाकार कहते हो। यदि कभी किसी सम्प्रदायमें किसी तृणको, गधेको, सुअरको भगवान माना जाने लगे और वह आकार सर्वव्यापक सच्चिदानन्द सर्वेश्वरके रूपसे चित्तमें आवे तो निश्चय उसके कारणसे ही वैसा ही मोक्ष प्राप्त होगा, राग-द्वेषकी निवृत्ति होगी जैसा ब्रह्माकार वृत्ति होनेसे होती है क्योंकि वृत्तियाँ तो दोनों ही कल्पित हैं। काँटेसे काँटा निकालनेकी बात है और दोनों काँटे राग-द्वेषके काँटेको निकाल देनेमें समर्थ हैं।

स्पष्ट ही इस विवेचनसे ध्येय, ज्ञेय, आराध्य तत्वके दो रूप स्पष्ट होते हैं, निर्विकार, निर्विशेष, निर्गुण और सविशेष सगुण, जो साकार-निराकार रूप हो सकता है। हम-आप जन्म भर सगुण, साकार सविशेष वस्तुओंसे व्यवहार करते आये हैं। हमारे मनमें इन्हीं वस्तुओंका चिन्तन-स्मरण चलता रहता है, इसलिए हमारे-आपके लिए किसी सगुण-साकार-सविशेषका चिन्तन सरल है अपेक्षाकृत निर्गुण-निर्विशेषके चिन्तनके। तत्व एक ही है, तब वह निर्गुण-निर्विशेष ही है अथवा सगुण-सविशेष ही है, यह कहा नहीं जा सकता। उसे अनिर्वचनीय कहकर भी 'ऐसा ही है'—यह दुराग्रह बुद्धिमानी तो नहीं होगी।

वैदिक धर्ममें, शास्त्रोंमें परमात्माके दो रूप स्वीकृत हैं—निर्गुण निर्विशेष और सगुण-सविशेष। ये दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। इनमें भेदका चिन्तन और भेदके सम्बन्ध बनाना सम्भव नहीं है। जो निर्गुण-निर्विशेष परम तत्व है वह एक ही है और उसमें भेदकी कल्पनाको भी स्थान नहीं है। जो सगुण-सविशेष रूप है, वह अनन्त रूप है क्योंकि व्यक्तियोंकी भावना अनन्त हैं और परम तत्वका सगुण रूप तो भावनाके अनुसार होता है। जो जिस भावनासे उस अनन्त करुणावरुणालयका स्मरण करता है उसे वह उसी रूपमें प्राप्त होता है, लेकिन उसका वह रूप क्षणिक-काल्पनिक नहीं होता ; वह रूप भी नित्य और शाश्वत होता है। इसका अर्थ है कि सगुण-सविशेषके जितने नित्य-शाश्वत रूप हैं, मनुष्यके भावस्तर केवल उतने ही हैं। हमारे मनमें परम तत्वके सम्बन्धमें कोई ऐसी अकल्पित 'न भूतो न भविष्यति' कल्पना आ नहीं सकती।

परम तत्वके ये जो सगुण, सविशेष, साकार रूप हैं, इनमें परस्पर छोटा-बड़ा, कम या अधिक महत्वका, एक शरीरमें भी सिर और पैर जैसी परस्पर तारतम्यता बतानेकी स्थिति नहीं है। वे सब परस्पर समान महत्वके अभिन्न और वस्तुतः मन-बुद्धि-वाणीसे परे दिव्य हैं। शिव-भक्त उन्हें शिव कहते हैं, विष्णु-भक्त नारायण, राम-भक्त राम, कृष्ण-भक्त कृष्ण, शक्तिके आराधक महाशक्ति आदि। इस परम तत्वके पाँच कृत्य हैं, इसीको शिवका पञ्चकृत्य कहा जाता है—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह।

ब्रह्माण्डोंकी कोई संख्या नहीं है। एक सौरमण्डलको एक ब्रह्माण्ड कहा जाता है और अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि नीहारिका मण्डलोंकी ही संख्या अनन्त है जबकि एक-एक नीहारिका-मण्डलमें अरबों सूर्य हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें उस ब्रह्माण्डकी सृष्टिके लिए, स्थितिके लिए, प्रलयके लिए, ये परम तत्व तीन रूपोंमें आविर्भूत होते हैं—सृष्टिके लिए ब्रह्मा, स्थितिके लिए विष्णु और प्रलयके लिए रुद्र। स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी नैष्ठिक आराधकके आराध्य ये एक ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु या रुद्र नहीं हुआ करते। आराधक शिवका हो, शक्तिका हो, नारायणका हो, राम या कृष्णका हो, वह उस एक अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकका ही आराधक होता है और उस आराध्यसे ये अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त ब्रह्मा-विष्णु, रुद्र उत्पन्न होते हैं और उसीमें लय होते रहते हैं।

जहाँ तक शिव-चरितकी बात है, यह चरित दो-का सम्मिलित चरित्र है – अनन्त ब्रह्माण्ड-नायक भगवान महेश्वर, जो परात्पर परम तत्व हैं, और उनसे सर्वथा अभिन्न इस ब्रह्माण्डके रुद्र। इनको भी प्रायः शिव ही कहा गया है और अधिकांश चरित इन्हींके हैं, लेकिन परमशिवसे अभिन्न होनेके कारण इन दोनोंका माहात्म्य समान बतलाया गया है।

यदि आप दोंनोका भेद ही समझना चाहते हों तो इतना ध्यान रखें कि परमशिव कर्पूरगौर, पञ्चमुख, दशभुज, पञ्चदशनेत्र हैं जिनके मुखमें तीन नेत्र हैं और इस ब्रह्माण्डके रुद्र एकमुख, त्रिनेत्र, चतुर्बाहु हैं। इनके भी अनन्त रूप हैं, किन्तु उसमें दो मुख्य हैं—कर्पूरगौर और नील-लोहित। अधिकांश स्थलोंमें कर्पूरगौर रूपका ही प्रतिपादन होता है। अब हम इन आशुतोष, औढ़रदानी, भूत-पिशाच जैसे अनाधिकारियोंको भी अपना पार्षद बनाये रखने वाले परमोदारके पावन चरितोंका स्मरण करें क्योंकि अन्तरमें आये हुए परमात्म तत्वके सम्बन्धमें वृत्ति जीवके राग-द्वेषके बन्धनको छिन्न करके उसे मायाके पयोधिसे पृथक् कर देती है।

— —

शिवका प्रथम साक्षात्कार

अनादि अनन्त सृष्टिमें प्रथम नामकी कोई वस्तु नहीं होती, किन्तु कल्पके प्रारम्भमें जो कुछ होता है, उसीको प्रथम कहा जाता है। प्रलयके समय सम्पूर्ण व्यक्त सृष्टि अपने स्रष्टामें लीन हो जाती है। स्रष्टा भी भगवान् नारायणमें लीन हो जाते हैं और नारायण अपने ही शरीरसे निकले हुए जलके अनन्त सागरमें शेष-शय्यापर शयन करते हैं। प्रलय काल व्यतीत होनेपर उन अनन्तशायीकी नाभिसे एक पद्म प्रकट होता है और उस पद्मसे ब्रह्मा प्रकट होते है।

एक कल्पकी बात है, कमलसे उतरकर ब्रह्माने उस एकार्णव समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ देखा—शेष-शय्यापर भगवान् नारायण शयन कर रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ। अब तक ब्रह्मा समझते थे, केवल जल है, एक कमल है। शतयोजन विस्तीर्ण तरुणादित्य संकाश ज्योतिर्मय दिव्यज्योति-र्मण्डित, जिसकी कर्णिकासे ब्रह्मा अभी उतरे थे और उनके अतिरिक्त कहीं कोई प्राणी-पदार्थकी सत्ता नहीं है, नारायणको देखकर चकित हुए। समीप गये, लेकिन शेषशायी योगनिद्राका आश्रय लेकर निद्रित थे। ब्रह्माने अपने हाथसे उनको हिलाकर जगाया और पूछा—'इस एकार्णवमें एकाकी शयन करने वाले तुम कौन हो?'

हँसकर नारायणने उत्तर दिया—'लोकोंका उत्पत्ति और लय-स्थान मैं पुरुषोत्तम हूँ। समस्त लोकोंको आप मेरे भीतर देख सकते हैं।' (जान-बूझकर भी पूछा) 'आप कौन हैं?'

'लोकोंका धाता-त्राता और विधाता-निर्माता मैं ब्रह्मा हूँ। विश्व मुझमें स्थित है।'

'विश्व आपमें स्थिर है?' अत्यन्त आश्चर्यसे नारायणने कहा—'मैं उनको देख सकता हूँ?' ब्रह्माके स्वीकार करनेपर अत्यन्त सूक्ष्म आकारमें वे ब्रह्माकी नासिकाके मार्गसे उनके उदरमें प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने सदेवासुर मानुष सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखा। फिर मुखके मार्गसे

बाहर निकल आये। बोले—'आप भी मेरे भीतर सम्पूर्ण जगत देख सकते हैं।'

ब्रह्मा श्रीहरिके मुखमें प्रविष्ट हुए। उनके उदरमें पद्मसम्भवने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड देखे, फिर भी नारायणके उदरका अन्त नहीं मिला। अन्तमें जब बाहर निकलनेकी इच्छा की, यह ज्ञात हुआ कि श्रीहरिने अपने सभी द्वार अवरुद्ध कर दिये हैं। अब ब्रह्माको केवल नाभिद्वार मिला। वहाँसे वे कमलनालमें प्रविष्ट होकर फिर अपने उत्पत्ति स्थान कमलपर पहुँचे और तब लौटकर जलमें नारायणके पास आये। नारायणसे रुष्ट होकर उन्होंने कहा—'आप क्या समझते हैं कि आप ही अकेले हैं और सबसे प्रबल हैं? अपनी महत्ता सिद्ध करनेके लिए आपने मुझे अपने उदरमें रोकना चाहा था। ऐसा आपने क्यों किया?'

नारायण—'मैंने केवल कौतूहल ऐसा किया था। आपको रोकना मैं नहीं चाहता था, इसलिए क्षमा करें। इससे आपको ज्ञात हो गया कि आपकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है। अतः अब आप मेरे पुत्र हैं। आपका नाम अबसे पद्मयोनि हो। मुझसे आप सर्वथा अभिन्न हैं।'

ब्रह्मा—'आप सर्वात्मा हैं, अनन्त हैं, सर्वभूतान्तरात्मा हैं, सबके परमेश्वर हैं, परब्रह्म हैं। आपकी एक ही मूर्ति द्विधा हो गयी है—इस नारायण रूपमें और मुझ लोकस्रष्टाके रूपमें।'

नारायण—'आपकी यह धारणा भ्रान्त एवं विनाशका हेतु है। क्या आप योग-दृष्टिसे सबके अधिपति, अव्यय, परमेश्वर ईशानको नहीं देखते हो? वे ही अनादि, अनन्त, अन्तिम अविनाशी ब्रह्म हैं, उनकी शरण ग्रहण करो।'

ब्रह्मा (क्रोधपूर्वक)—'मैं अपने आत्मस्वरूपको जानता हूँ। वह अक्षर है। मैं जगतका स्रष्टा ही अद्वितीय आत्मा परमपद हूँ। आप मुझसे अभिन्न हैं। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका कोई परमेश्वर नहीं है। आप बहुत देर तक सोये रहे थे, अतः अभी तन्द्रामें हो। इस निद्राको त्यागकर अपने स्वरूपको देखो।'

नारायण—'ऐसा मत कहो। मुझे कुछ अविदित नहीं है। मैं अन्यथा नहीं कहता। लगता है, परमेश्वरी महामाया तुम्हें मोहित कर रही हैं।'

नारायण इतना कहकर चुप हो गये। तभी ब्रह्मापर कृपा करनेके लिए भगवान् हर वहाँ प्रकट हुए। जटामुकुटी, त्रिशूलपाणि, तेजकी परम निधि, ग्रह, चन्द्र, तारकोंसे ग्रथित पादावलम्बिनी माला धारण किये हुए उन्हें देखकर ब्रह्माने नारायणसे पूछा—'ये नीलवर्ण, शूलपाणि, त्रिलोचन, तेजोराशि, अप्रमेयात्मा पुरुष कौन आ रहे हैं ?'

ब्रह्मा तो समझते थे कि सृष्टिमें मुझे और नारायणको छोड़कर अब और कोई नहीं है। रुद्रको देखकर, उनकी असीम प्रभासे वे कुछ भीत भी हुए थे। चकित तो थे ही। नारायणने कहा—'स्वयं प्रकाश, सनातन ज्योति, अनादि, अनन्त, अचिन्त्य लोगोंके परम परमेश्वर यही देवदेव महादेव हैं। यही सबके उत्पत्तिकर्ता, प्रलयंकर और स्वामी हैं। ये नित्य हैं, निष्कल हैं। पहले इन्होंने ही तुमको उत्पन्न किया था और वेदोंका ज्ञान प्रदान किया था। वही सदाशिव पधार रहे हैं, इन्हींकी दूसरी मूर्ति मुझ वासुदेवको समझो। क्या तुम इन योगेश्वर, सर्व स्वरूप अव्ययको देख नहीं पाते हो ? तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो, जिससे इन परमतत्वका साक्षात्कार कर सको।'

नारायणकी कृपासे दिव्य दृष्टि प्राप्त होनेपर ब्रह्माने सम्मुख स्थित चिदानन्द विग्रह शिवको जाना। उन्हें परमतत्वका ज्ञान हुआ। प्रणिपात करके अथर्वशिरस्के मन्त्रोंसे उन्होंने उन प्रत्यक्ष प्रकट महेश्वरकी स्तुति की।

संतुष्ट सदा शिव बोले—'वत्स। निस्संदेह तुम मेरे समान हो। लोक-सृष्टिके लिए मैंने तुम्हें पहले उत्पन्न किया। मेरे शरीरसे उत्पन्न तुम मेरी आत्मा ही हो। विश्वात्मा ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वरदान माँगो।'

ब्रह्माने एक बार विष्णुकी ओर देखा। हाथ जोड़कर भगवान् शंकरको प्रणाम किया —'प्रभो ! मैं आपकी मायासे मोहित आपके परम-तत्वको यथार्थतः नहीं जानता। आपकी ही प्रेरणासे सृजनकी इच्छा मेरे अन्तरमें उदित हुई है। आपके समान मैं आपके ही पुत्र रूपमें चाहता हूँ। आप तो भक्तोंके माता-पिता, भाई-सुहृद् सब हैं, मुझपर प्रसन्न हों, मैं आपके चरणोंमें प्रणत हूँ।'

शिव—'वत्स ! तुम्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हो। तुम्हारी यह इच्छा भी पूर्ण होगी। ये नारायण मेरे प्रथम विग्रह हैं। ये तुम्हारे योग-क्षेमका वहन करेंगे।'—ऐसा कहकर सदाशिवने ब्रह्माके सिरपर अपने कर-कमल फेरे और नारायणसे बोले—'आप मेरे परमभक्त, मेरे हृदय तथा मेरे स्वरूप हैं। आपसे मैं सन्तुष्ट हूँ। आप भी वर माँगो।'

प्रसन्न होकर नारायणने कहा—मेरे लिए यही अत्यन्त श्लाध्य वरदान है कि आप परमेश्वरका मैं दर्शन कर रहा हूँ। आपमें मेरी भक्ति हो।'

'एवमस्तु।'—शंकरने कहा—तुम सर्वरूप सबके कर्ता मुझसे अभिन्न हो। तुम्हारा आश्रय लेकरके ही योगी मुझे प्राप्त होंगे। इस सम्पूर्ण जगत्का पालन करो।' ऐसा कहकर वे अचिन्त्य परमेश्वर तिरोहित हो गये।

(कूर्म पुराण)

———

महारुद्रोत्पत्ति

प्रलयके पश्चात् सृष्टि और सृष्टिके पश्चात् प्रलय—यह दिन-रातके समान अनादि क्रम है, इसलिए यह प्रश्न कि सृष्टि कब हुई और क्यों हुई, सर्वथा ही असङ्गत है। सृष्टि अनादि है, क्रमका प्रवाह अनादि है। जब भी सृष्टिकी बातकी जाती है, तब किसी एक सृष्टिकी बातकी जाती है। उसके पहले प्रलय और उससे पहिले भी सृष्टि थी—इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए।

इस वर्तमान सृष्टिका सप्तम कल्प था वाराहकल्प। सम्पूर्ण स्थान एक समुद्रमें डूबा हुआ था और उसमें अनन्तशायी भगवान् नारायण शयन कर रहे थे। उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ। उस कमलपर ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। मैं कहा हूँ, यह देखनेके लिए चारों ओर देखते हुए ब्रह्माके चार मुख हो गये। एक मुख पहलेसे ही था। इस प्रकार उस आरम्भ कालमें ब्रह्मा पञ्चमुख हुए,

सृष्टिके इस आरम्भ कालका वर्णन पौराणिक है और समझने योग्य है। परमपुरुष नारायण सच्चिदानन्दघन हैं और वे ही रसस्वरूप हैं। जब सृष्टि नहीं है, तब वे अकेले हैं और रसस्वरूप होनेके कारण उनका आनन्द ही आनन्द है। इस आनन्दको जब देखनेकी, प्रकाशित करनेकी कामना व्यक्त हुई, तब कमलका आविर्भाव हुआ और उस हृदय कमलमें अन्तःकरणकी सृष्टि हुई—यह ब्रह्मा—हिरण्यगर्भ—की उत्पत्ति है।

परमपुरुष सच्चिदान्दघन हैं। प्रकृतिमें प्रतिफलित होकर उनका सत् तमम् बनता है, चित् रजस् बनता है और आनन्द सत्व बनता है। प्रकृति स्वयं कोई तत्व नहीं है। प्रकृति अर्थात् परम पुरुषका स्वभाव—यह उन सच्चिदानन्दघनका स्वभाव ही है कि सृष्टि-काल उपस्थित होनेपर उनके सत्, चित्, आनन्द तम, रज और सत्के रूपमें व्यक्त होकर त्रिगुणमयी प्रकृति प्रतीत होने लगते हैं।

यह वर्णन भी बहुत दूरका और बहुत सांकेतिक है। विवशता यह है कि जहाँ मन और वाणीका प्रवेश नही है, उसको किसी प्रकार व्यक्त

करना है। पुराणोंकी भाषा इसीलिए बहुत दुरूह है कि उसे इस तत्वको हमें–आपको समझाना है। यह ऐसी स्थिति है जैसे जन्मान्धोंको रङ्ग समझानेकी परिस्थिति आ जाय और जो कुछ भी कहा जाय वह सङ्गत न होता हो। इसी प्रकारका यह आगेका समस्त वर्णन है। परमात्म तत्वका जिन्होंने साक्षात्कार किया है उनके लिए तो सहज सुबोध है, लेकिन सर्व-सामान्यके लिए श्रद्धैकगम्य है। इसमें तर्क करके कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। सृष्टिके उस आदि कालमें एकार्णवके मध्य नारायणकी नाभिसे उठे महाकमलकी कर्णिकापर बैठे—(उस अनन्त प्रकाशमान कमलके ही प्रकाशमें)—सृष्टिकर्त्ता बहुत दिनों तक तपोनिरत रहे, चिन्तन करते रहे। सृष्टि करनी ही है—यह उनका जन्मजात संस्कार है, लेकिन उनके पास कोई साधन नहीं था। कैसे क्या किया जाय, कुछ करना है, कुछ उत्पन्न करना है, लेकिन क्या और कैसे—यह ब्रह्मा समझ नहीं पाते थे। ऐसी ही स्थिति थी जैसी किसी बहुत महत्वपूर्ण गम्भीर निर्माणसे पूर्व आपके अन्तःकरणकी स्थिति होती है।

तपस्याके कारण एकाग्र निर्मल ब्रह्माके हृदयमें भगवान् नारायण प्रकट हुए। उन आदिपुरुषने एक साथ ब्रह्माको वेदोंका शब्दात्मक और अर्थात्मक ज्ञान प्रदान किया, क्योंकि मूल शब्द नये नहीं बनाये जा सकते, जब भी आप नये शब्द बनाओगे, दूसरेको समझानेके लिए उसका पर्याय-वाची शब्द—एक या अधिक—दूसरेको ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा आपका बनाया हुआ शब्द निरर्थक हो जायगा। यह प्रक्रिया स्वयं सिद्ध करती है कि शब्द-ज्ञान आनुपूर्वी ही प्राप्त होता है। एकसे दूसरेकी परम्परामें आये बिना शब्द-ज्ञानका कोई मार्ग नहीं है और जो शब्द और शब्दार्थका ज्ञान दे, वह निर्गुण-निर्विशेष तो नहीं हो सकता। सृष्टिके आदिमें ब्रह्माको इस प्रकार भगवान् नारायणसे वेदका वाङ्मयरूप तथा उसका अर्थ प्राप्त हुआ।

सनातनधर्मी हिन्दू इसीलिए वेदोंको अनादि मानते हैं। ईश्वर भी वेदका निर्माण नहीं करता, वेद ईश्वरका ज्ञान है और ईश्वर कभी अज्ञानी नहीं था, इसीलिए ईश्वर और वेद अभिन्न हैं। यह जो हम परमात्माको सच्चिदानन्द कहते हैं, इसमें चित्का अर्थ है ज्ञान और यह ज्ञान ही वेद है।

ब्रह्माको वेद-प्राप्तिके साथ यह तो ज्ञान हो गया कि पूर्व सृष्टि कैसी थी, उसमें क्या था, कैसे बनाना है। अब उन्होंने सङ्कल्पसे अपने समान

सृष्टि की, अर्थात् जैसे वे मानवाकार थे, वैसे ही उनके सङ्कल्पसे उत्पन्न पहले चार कुमार हुए—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। ब्रह्माने दीर्घ काल तक तप किया था, भगवान् नारायणका साक्षात्कार किया था, उनका अन्तःकरण उस समय अत्यन्त शुद्ध सात्विक भगवच्चिन्तनमय था, इसलिए ऐसे अन्तःकरणके संकल्पसे उत्पन्न ये चारों कुमार सहज स्वभावसे परमार्थ तत्वके चिन्तक, व्यवहारसे परम वीतराग और स्वच्छन्द-निर्बन्ध प्रकृतिके हुए।

मानसी सृष्टि आप भी करते हैं। स्वप्नमें और जागते हुए भी जब मनमें कल्पनाएँ करने लगते हैं, आपका मन भी आकार बनाता है, पदार्थ बनाता है, मूर्तियाँ बनाता है, चलता-फिरता प्राणी और मनुष्य बनाता है, लेकिन आपके संकल्पमें बल न होनेके कारण यह संकल्प उस प्राणी-पदार्थको बाहर मूर्तिमान नहीं कर पाता। वस्तुतः यह हमारा सम्पूर्ण जगत ब्रह्माके मनमें है, उनका स्वप्न है—इसे यदि आप हृदयंगम कर लें तो ब्रह्माकी मानसी सृष्टि समझना कठिन नहीं होगा।

सृष्टिकर्ताने तो सृजनका संकल्प ही इसलिए किया था कि सृष्टि हो, इसलिए उन्होंने अपने इन चारों पुत्रोंको आज्ञा दी—'वत्स !' सृष्टिकरो। —संतानवर्धन करो।'

चारों कुमार इस आज्ञाको स्वीकार न कर सके। उन्होंने कह दिया—'इस रजोमुखी प्रवृत्तिका प्रयोजन ? यह प्रवृत्ति तो भगवद्विमुख करती है, आनन्दघनसे अथवा अपने आत्मस्वरूपसे मुख दूसरी ओर करनेकी प्रवृत्तिमें लगनेका अर्थ है स्वयं आनन्दसे वंचित होना और ऐसी सृष्टि करना जो दुःखी रहेगी ; बहुत कठिनाईसे ज्ञान प्राप्त करके फिर अपने स्वरूपको पा सकेगी, ऐसा कार्य किसी भी प्रकार उचित नहीं होगा।'

सृष्टिके लिए ब्रह्माजीने दीर्घकाल तक तप किया था। बड़ा चिन्तन किया था और बड़े उत्साहसे, बड़ी एकाग्रतासे कुमारोंको उत्पन्न किया। अब उन्होंने ही पहली ही आज्ञा अस्वीकार कर दी, इसलिए ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध आया। स्वाभाविक है, कामना जितनी प्रबल होगी, उसमें बाधा देनेपर उतना ही क्लेश होगा और क्रोध आवेगा। लेकिन उपाय तो कुछ नहीं था। यदि शाप देते हैं तो अपने ही इन ज्येष्ठ पुत्रोंका अमंगल होता है। वेदगर्भ स्रष्टाने अपने क्रोधको नियन्त्रित किया, लेकिन जो सत्य-

संकल्प है उसकी कोई वृत्ति व्यर्थ नहीं होती । ब्रह्माका वह क्रोध ही उनके भ्रूमध्यसे एक नीललोहित शिशुके रूपमें प्रकट हो गया । यह शिशु त्रिनेत्र था । प्रकट होते ही यह रोने लगा और रोते-रोते इसने कहा—'जगत्स्रष्टा । मेरा नामकरण करो, मुझे रहनेका स्थान बतलाओ ।' ब्रह्माने आश्वासन देते हुए उस शिशुसे कहा—'तुम उत्पन्न होते ही बहुत उद्वेग-पूर्वक रोने लगे हो, इसलिए तुम्हारा नाम रुद्र होगा । हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तपस्या—ये तुम्हारे स्थान हैं । इनमें तुम मन्यु, मनु, महिनस् महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत—इन नामोंसे निवास करो । धी, वृत्ति, उष्णा, उमा, नियुति, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा—ये तुम्हारी पत्नियां हों ।' यह शिवका योगावतार हुआ ।

परमशिव, परात्पर, परब्रह्म, परमपुरुष ही तमोगुणका आश्रय लेकर जगतकी प्रलय व्यवस्थाके लिए इस रूपमें सृष्टिकर्त्ताको निमित्त बनाकर आविर्भूत हुए, क्योंकि सृष्टिका काम सृजन और विनाश—इन दोनोंको मिलाये बिना नहीं चल सकता । हमारे-आपके शरीरके भीतर और बाहर भी प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक कण प्रति क्षण बन रहा है और मर रहा है । यह निर्माण-विनाशकी क्रिया निरन्तर चल रही है । आपको पता नहीं लगता है, पर इस क्षण आपके शरीरमें जो कुछ भी है, उसका कोई एक भी कण साढ़े तीन वर्ष बाद शरीरमें नहीं रहेगा और आज जो कुछ नहीं है, वह इस तरह शरीरमें बन जायगा, जो बना है आज आप उसकी कल्पना नहीं कर पाते । वह कब बना है और बनता है—यह आप देख नहीं पाते । सम्पूर्ण सृष्टिमें यह निर्माण और विनाश—ब्रह्मा और रुद्रके करोंकी क्रिया सतत चलती रहती है । इस क्रियाके मध्यमें स्थिति काल है, पोषणका काम है क्योंकि पोषणके बिना तो सृजन व्यर्थ है और विनाश होगा ही किसका ? यह पोषक शक्ति भगवान् विष्णु हैं । यह जो सृष्टिमें उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकी क्रिया है, इन तीनोंकी आधिदैविक शक्तिका नाम है क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश, और ये तीनों सर्वव्यापक हैं, सर्वत्र क्रियाशील हैं—यह बात आपकी समझमें आनी चाहिए ।

भगवान् ब्रह्माने रुद्रको आज्ञा दी—'वत्स ! सृष्टि करो ।' रुद्रने अस्वीकार नहीं किया । उन्होंने सृजन प्रारम्भ कर दिया । जो क्रोधसे—उनकी झुंझलाहटसे उत्पन्न हुए हैं, तमोगुणको स्वीकार करके व्यक्त हुए

हैं, प्रलयके लिए प्रकट हुए हैं, उन विनाशके अधिदेवताका स्वभाव कैसा होगा, आप अनुमान कर सकते हैं। उसने जब सृष्टि प्रारम्भकी, उसके अनुरूप ही उसकी सृष्टि थी। भूत,प्रेत, पिशाच, रोग, दुर्घटनाएँ, महामारी—इन सबके अधिदेवता उसने बनाने आरम्भ कर दिये और इनके लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि श्रेणियाँ उसने व्यक्त कर दीं। यह देखकर भगवान् ब्रह्मा घबरा गए। उन्होंने कहा—'बस, बस। अब और सृष्टि मत करो। तुम्हारी यह सृष्टि तो दिशाएँ और स्वयं मुझे भी मानो जला देंगी, ये इतनी उग्र और तापदातिनी है।'

'तब !' रुद्रने पूछा।

ब्रह्माने कहा—'तप करो। भगवान् नारायणका ध्यान करो, उनकी आराधना करो और उसके द्वारा सात्विकता, शान्ति एकाग्रता प्राप्त करो। इससे तुम्हें उचित सृष्टिकी सामर्थ्य प्राप्त होगी।'

'जो आज्ञा।' रुद्रने हँसकर स्वीकार किया क्योंकि सहज वीतराग सहज आत्मारामके लिए तप स्वयं प्रिय था। भगवान् नारायण तो उनकी अपनी आत्मा, उनके स्मरण-चिन्तनमें लीन रहनेका अर्थ था आत्मलीन रहना और रुद्रने यह वृत्ति ऐसे स्वीकार कर ली कि उनको प्रायः बाह्य स्मरण ही नहीं रहता। कोई प्रार्थना करे, उपासना करे, पुकारे तो उसको जो कहे 'तथास्तु' कर दें, बिना यह सोचे कि वह क्या मांग रहा है, इस मांगसे उसका या जगतका क्या हित है—इतना सोचनेके लिए बहिर्मुख कौन हो ? यह भगवान् रुद्रके स्वभावमें नहीं है। वे अपने तपसे, आत्म-लीनतासे कठिनाईसे बाहर आते हैं। दया परवश आते हैं, किन्तु शीघ्र इससे पुनः पृथक् हो जाना चाहते हैं।

रुद्रने कोई आश्रम नहीं बनाया, निर्वाहके लिए कोई स्थान नहीं निश्चित किया। ब्रह्माने उन्हें जो स्थान दिये थे वे सर्वत्र हैं, अतः रुद्र भी सर्वत्र हैं। अपने साकार श्रीविग्रहसे वे साधकोंको, मुमुक्षुओंको मार्ग दर्शनके लिए प्रकट होते हैं क्योंकि आत्यन्तिक प्रलय कैसे प्राप्त हो, इसका मार्ग प्रलयके अधिदेवताके अतिरिक्त दूसरा कौन बतलावेगा ? आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष—प्राणीके जन्म-मरणकी अनादि अनन्त सृष्टिका सदाके लिए प्रलय। इसका मार्ग तो प्रलयके अधिदेवताको ही बतलाना है। इसलिए रुद्रने परम वैराग्य स्वीकार किया।

जन्म और मरणका राग-द्वेष है और राग-द्वेषका मूलाधार है शरीर आसक्ति। परिच्छिन्न देहको देहके नामको अपना मानकर इससे और इससे सम्बन्धितोंसे राग होता है, उनके प्रतिकूलसे द्वेष होता है। भगवान् शिव वैराग्यकी साक्षात् मूर्ति हैं। उनका ध्यान व्यक्तिको इस राग-द्वेषसे ऊपर उठा देता है।

कोई वस्त्र नहीं, कोई स्थान नहीं, दिगम्बर शिव चाहे जहाँ बैठ जाते थे और बैठ गये तो उनकी समाधि कब भग्न होगी, समझनेका कोई उपाय नहीं था। शिवके लिए बैठनेको पृथ्वी भी अपेक्षित नहीं थी। प्रारम्भमें तो पृथ्वी थी ही नहीं। ब्रह्माजीने जब सृष्टिका क्रम बढ़ाया और भगवान् वाराहने अवतार लेकर भूमिका उद्धार किया, रुद्रको भारत भूमिका उत्तरी क्षेत्र—विशेषत: कैलाश परमप्रिय हो गया क्योंकि यह प्रत्येक सृष्टिका उनका अपना धाम है। वे वहाँ किसी भी शिखरपर आसन लगाकर बैठ जाते और ध्यानस्थ हो जाते।

(शिव पुराण)

सृष्टिको प्रारम्भ करते हुए ब्रह्माने सनकादि कुमार चतुष्टय उत्पन्न किये, किन्तु वे जन्मसे ही परमात्म ज्ञानसे सम्पन्न थे, इसलिए निरपेक्ष थे। यह देखकर स्रष्टा बहुत दु:खी हुए। उस समय भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'क्या आप भूल गये? आपने शूलपाणि सनातन पुरुष भगवान् शंकरसे वरदान माँगा है कि आप मेरे पुत्र बनें और उन्होंने यह स्वीकार किया है। अत: आप तपस्या करके उनको अवतीर्ण करनेका प्रयास करें।

ब्रह्माने दीर्घ काल तक तप किया, किन्तु उस तपका कोई परिणाम होता न देखकर उनको दु:ख हुआ। इस दु:खसे बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधके कारण उनके नेत्रोंसे अश्रुबिन्द गिरे। उन अश्रु-बिन्दुओंसे भूत और प्रेत प्रकट हुए। उन भूत-प्रेतोंको देखकर क्रोधावेशके कारण ब्रह्माने शरीर छोड़ दिया। उस शरीरके जो प्राणमय अधिष्ठाता थे वे स्वयं तो रुद्र थे। वे सहस्र सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित प्रकट हुए और घोर स्वरमें रोने लगे। इस रुदनके कारण ही ब्रह्माने (अपने नवीन शरीरमें स्थित) उनका नाम रुद्र रखा। उनको आठ नाम और आठ स्थान दिये। नाम—रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव तथा इनके स्थान सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, ब्रह्म और चन्द्रमा

हैं। इनको आठ पत्नियाँ भी सृष्टिकर्ताने दीं—सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी। आगे चलकर इस कल्पमें इनके पुत्र हुए—शनिश्चर, शुक्र, लोहितांग (गणेश), मनोज (काम), स्कन्द और बुध।

प्रकट होनेके बाद ब्रह्माने हाथ जोड़कर भगवान रुद्रका स्तवन किया। शिवने प्रसन्न होकर ब्रह्माको तत्वज्ञान प्रदान किया। अपने करोंसे उनका स्पर्श करके बोले—'लोकस्रष्टा, तुम मुझे एक पुत्रके रूपमें पाना चाहते थे, इसलिए मैं तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ हूँ। वैसे मैं निष्कल और सबका आदि कारण हूँ। स्वयं ही अपनेको इन तीन रूपोंमें विभक्त कर दिया है। ये रूप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिए हैं। मेरे दक्षिणांगसे तुम और वामांगसे पुरुषोत्तम नारायण उत्पन्न हुए हैं और हृदयसे रुद्रस्वरूप मैं उत्पन्न हुआ हूँ। इसी प्रकार जितने भी रूप हैं और आगे होंगे वे मैंने ही अपनी मायासे प्रकट किये हैं।

(कूर्म पुराण)

लिंगोद्भव

अव्यक्त लिंगमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम्
अनाद्यनन्तं विश्वस्य यदुपादानकारणम् ।
तदेवमूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका
तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।।

(वायुसंहिता, उत्तर भाग, २४.७–८)

यतो न तदनाज्ञातं कार्यायप्रभवेत्स्वतः ।
ततो जातस्य विश्वस्य तत्रैव विलयोयतः
अनेन लिंगतां तस्य भवेन्नान्येन केनचित्
लिंगं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम् ।।

(वायुसंहिता, उत्तर भाग, २४.११–१२)

सा भगाख्या जगद्धात्री लिंगमूर्तेस्त्रिवेदिका
लिंगस्तु भगवान् द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः ।
लिंगमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरिस्थितः ।
लिंगवेदि समयोगादर्धनारीश्वरोभवत् ।।

(लिंगपुराण, द्वितीय खण्ड, ६६.६–८)

त्रिगुणकी जो अव्यक्तावस्था है, जिससे त्रिगुण उत्पन्न हुआ है उसीमें लीन हो जाता है, विश्वके उस उपादान कारणको, जो अनादि और अनन्त है, लिंग कहते हैं । उसी गगनात्मिका मौलिक प्रकृतिका नाम माया है । उसीसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत उत्पन्न होता है ।

जिसको जाना नहीं जाता, जो स्वयं ही कार्यके रूपमें व्यक्त हुआ है, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है और जिसमें लीन हो जायगा, उसे लिंग कहते हैं । विश्वकी उत्पत्ति और लयका हेतु होनेसे ही उस परमपुरुषकी लिंगता है । उसकी लिंगताका और कोई कारण नहीं है । लिंग शिवका शरीर है क्योंकि वह इस रूपमें अधिष्ठित है ।

द्विजश्रेष्ठ ! लिंगके आधार रूपमें जो तीन मेखलायुक्त वेदिका है वह भग रूपमें कही जाने वाली जगद्धात्री महाशक्ति हैं। इस प्रकार आधार सहित लिंग जगत कारण है, उमा–महेश्वर स्वरूप है।

भगवान् शिव स्वयं ज्योतिलिंग स्वरूप तमस्से परे स्थित हैं। लिंग और वेदीके समायोगसे वे अर्धनारीश्वर होते हैं।

पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिंगे पूर्णोर्चनं भवेत्।

(अग्निपुराण, अध्याय ५४,)

बहुत भ्रम होता है इस लिंग शब्दको लेकर। संस्कृतमें लिंगका अर्थ है चिह्न, और इसी अर्थमें यह शिवलिंगके लिए प्रयुक्त होता है। शिवलिंगका अर्थ है शिवका, परमपुरुषका, प्रकृतिके साथ समन्वित चिह्न।

देवताओंकी पूजा बेरके (शरीरके) रूपमें होती है, लेकिन परमपुरुष अशरीर नहीं हैं, इसलिए परमपुरुषकी पूजा दोनों प्रकारसे होती है। शरीरके रूपमें और वह शरीर आराधककी भावनाके अनुसार होता है। साथ ही प्रतीकके रूपमें और यह प्रतीक जब अनन्तका होता है तब गोलाकार-अण्डाकार बनेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आपको अनन्तका या ज्योतिका स्वरूप बनानेको कहा जाय तो आप क्या बनाओगे? यह जब प्रकृति समन्वित होता है तब प्रकृतिको अभिव्यक्त करनेके लिए तीन मेखलावाली (क्योंकि प्रकृति त्रिगुणात्मिका है) वेदी बनानी पड़ती है। इसीको भग कहते हैं, लेकिन यहाँ भगका अर्थ स्त्री-जननेन्द्रिय नहीं है। 'भगवान्' में जो 'भग' है जिसका अर्थ है छः ऐश्वर्य (ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य) सम्पूर्ण रूपसे एकीभूत। इस अर्थमें वह वेदिका निखलैश्वर्यमयी महाशक्तिका प्रतीक है।

परमपुरुषकी हिन्दू पौराणिक मतमें पाँच रूपोंसे उपासना करनेकी परम्परा है। इसे पञ्चदेवोपासना कहते हैं। शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—इन पाँचोंका ही गोल प्रतीक आपने देखा है। शिव लिंगकी चर्चा हम कर ही रहे हैं। विष्णुके प्रतीक भगवान् शालिग्रामको आपने सभी वैष्णव मन्दिरोंमें देखा है। विष्णुके जितने अवतार हैं, लक्षण—भेदसे शालिग्राम शिला सबकी प्रतीक होती है और शालिग्राम शिलाके साथ भी गोमती चक्र रखना पड़ता है। यह महाप्रकृतिका, ऐश्वर्यमय भगका स्वरूप

है जो शिवलिंगार्चनमें वेदिकाके रूपमें है। शक्तिकी गोल पिण्डियाँ देशमें बहुत अधिक स्थानोंपर हैं—ग्रामीण क्षेत्रोंमें तो काली पीठपर केवल यह पिण्डियाँ ही होती हैं। गणेशकी स्थापना प्रायः प्रत्येक पूजनके आरम्भमें सुपारी अथवा गोबरकी गोल पिण्डियोंपर ब्राह्मणोंको कराते आपने देखा है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष प्रतीक आकाशका सूर्य-मण्डल कैसा है, आप जानते हैं और जहाँ भी ग्रहोंके चक्र बनाये जाते हैं, सूर्य-मण्डलको गोलाकार ही बनाना पड़ता है। इस प्रकार इन पञ्चदेवोंकी लिंग बनाकर अर्थात् चिह्न बनाकर उपासना होती है।

वैसे शिवके साकार विग्रहकी भी पूजा होती है। अनेक मन्दिरोंमें शिव-पार्वतीकी साकार मूर्तियाँ भी हैं, किन्तु उन मन्दिरोंमें भी लिंगकी स्थापना है और उसे साकार विग्रहकी अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त है। ठीक ऐसे ही भगवान् नारायणके अथवा उनके किसी भी अवतारके मन्दिरोंमें शालिग्राम शिलाको प्रमुख महत्ता देकर रखा जाता है, उसकी पूजाकी जाती है।

शिवलिंग पुरुषके उपस्थके रूपमें नहीं है, ऐसा हम नहीं कह रहे हैं। ऐसा भी है, लेकिन यह बात बहुत पीछेकी है। देशमें और वृहत्तर भारतके (जावा, सुमात्रा, कम्बोदिया आदिके) मन्दिरोंमें कुछ ऐसे भी मन्दिर हैं जिनमें शिवलिंगको ठीक शिश्नाकार बनाया गया है। तंत्रकी परम्परामें वीराचार, वामाचार आदि शिवपूजक सम्प्रदाय हैं, इसलिए इन सम्प्रदायोंको लिंगोद्भवकी वह कथा प्रिय है और लिंगका वही कारण भी, जो इसी अध्यायकी दूसरी कथाके रूपमें दी जा रही है। लेकिन जहाँ शिवलिंगका स्वरूप ठीक अण्डाकार है या उससे मिलता-जुलता है, वह सम्पूर्ण रूपसे परमपुरुषका प्रतीक है, अङ्गविशेष नहीं।

जहाँ अंगविशेषकी बात है,वहाँ भी यह ध्यान रखना है कि जैसे हमारे अपने शरीरमें शरीर और जीवात्मा अलग-अलग हैं, इसलिए शरीरके अंग श्रेष्ठ और कनिष्ठ हैं, ऐसा भेद भगवान्के किसी भी रूपके श्रीविग्रहमें किया नहीं जा सकता। यदि एक मूर्ति सोनेसे या चीनीसे बनायी जाय तो उसके पैरोंकी अंगुलियों और नेत्र अंगमें क्या श्रेष्ठता-कनिष्ठता कल्पित की जा सकेगी ? भगवान्का सगुण-साकार विग्रह भी सम्पूर्ण सच्चिदानन्दघन है, इसलिए आराधकके भावकी सविधि पूर्ति सम्पन्न करनेके लिए उसमें अंग विशेषकी प्रतीति होती है, अन्यथा उसमें पैरका नख भी वैसा ही सच्चि-

दानन्दघन स्वरूप स्वयं प्रकाश सर्वज्ञ सर्वसमर्थ है जैसा नेत्र, हृदय या अन्य कोई अंग। उनमें श्रेष्ठता-कनिष्ठताकी कल्पना दोष है। अत: जब लिंगको भगवान् शिवका उपस्थ मानते हैं उस रूपमें भी—जहाँ शिवलिंग शिश्नाकार स्थापित है वहाँ भी—अंगविशेष हो करके भी वहाँ सम्पूर्ण रूपसे सम्यक् शिव हैं और सच्चिदानन्दघनके स्वरूप हैं, व्यक्तिके अंगके समान उसमें एक अंगकी सीमा और अल्पशक्तित्व सम्भव नहीं है।

प्रथम कथा —

पाद्मकल्पके प्रारम्भमें भगवान् ब्रह्मा जब देवताओं आदिकी सृष्टि कर चुके, एक दिन स्वेच्छासे घूमते हुए क्षीरसागर पहुँचे। उन्होंने देखा, वहाँ भगवान् नारायण शुभ्र श्वेत सहस्रफणमौलि शेषकी शैय्यापर शान्त अधलेटेसे अवस्थित हैं। क्षीरसागरकी तरंगे इस प्रकार उठ रही हैं कि उन्होंने वहाँ विशाल भवन-निर्माण कर रखा है। दुग्धकी तरंगे ही वहाँ स्तम्भ बनी हैं, भूमि बनी हैं, ऊपरकी छत बनी हैं। तरंगोंके क्षीर उठता-परिवर्तित होता रहता है, किन्तु भवन स्थिर अपरिवर्तनीय एकरस बना है। उज्वल नीलकान्त भगवान् शेषशायीके श्रीअंगकी किरणोंसे सतत चन्द्रोज्वल ज्योत्स्ना सम्पूर्ण क्षीरोदधिके अन्त:कक्षको प्रकाशित कर रही है। सहस्रफणा शेष अत्यन्त निष्काम्य, शान्त, अर्धोन्मीलित लोचन अवस्थित हैं। उनकी कुण्डलीपर शेषशायीके श्रीचरणोंको अपने अंकमें लिए ऐश्वर्य, सौन्दर्य, सौकुमार्य शोभाकी अधिष्ठात्री अपने अतिशय कोमल कर चरण-सेवाके लिए उठाती हैं और संकुचित हो रही हैं जैसे हिचक रही हैं कि 'मेरे कर-स्पर्शसे भी इन चरणोंको कष्ट न हो।' पद्माके करोंकी अरुणाभ किरणें ही उन चरणोंका संलालन कर रही हैं। गरुड़, नन्द, सुनन्द आदि पार्षद कर-वद्ध विनम्र खड़े हैं। यह देखकर ब्रह्माको बहुत आश्चर्य हुआ।

सृष्टिकर्त्ताने प्रारम्भमें तप किया था। अन्त:करणमें नारायणका साक्षात्कार भी किया था, किन्तु सृष्टिकी व्यस्ततामें वे भूल ही गये कि जो अन्तर्यामी है वही बाह्य विराट्का भी अधिष्ठाता है। ब्रह्माजी रजोगुणके अधिष्ठाता है और रजोगुणमें विस्मृति, क्षोभ तथा क्षोभमें विकार न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अब तक ब्रह्मा समझ रहे थे—'सृष्टिके ही वही मूल कारण हैं, वही सबके स्वामी और पितामह हैं' इसलिए विष्णुको इस प्रकार अविचल शयन करते देखकर उन्हें क्रोध आया। उन्होंने समीप जाकर

कहा—'मुझे देखकर भी अभिमानीके समान सोनेवाले तुम कौन हो ? वत्स ! उठो, देखो, मैं तुम्हारा स्वामी आया हूँ ।' *

शेषशायीने केवल दृष्टि उठायी। मुखपर मन्दस्मित आया। बोले—'वत्स ! तुम्हारा मंगल हो। आओ इस आसनपर बैठो। तुम्हारा मुख व्यग्र क्यों हो रहा है ? तुम्हारे नेत्र कुटिल क्यों हैं ?'

अब ब्रह्माको और भी क्रोध आया। वे झल्लाकर बोले—'कालके प्रभावसे तुमको अभिमान हो गया है। मैं तुम्हारा रक्षक और जगतका पितामह हूँ। तुम्हें मेरा सम्मान करना चाहिए।'

'जगत मुझमें स्थित है। तुम चोरकी भाँति उसे अपना क्यों कहते हो ?' भगवान् विष्णुने सीधे बैठते हुए ब्रह्माको डाँटा—'तुम मेरे नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे पुत्र हो। पुत्र पिताका सम्मानन करे तो इससे पिताकी कोई हानि नहीं होती, केवल पुत्र कुपुत्र सिद्ध होता है।'

'मैं स्रष्टा, मैं स्वामी'—यह दोनोंमें विवाद होने लगा। ब्रह्माने विष्णुके सिरपर हाथसे प्रहार किया और फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। दोनोंने अपने वाहनोंका स्मरण किया। ब्रह्मा हंसपर बैठे और विष्णु गरुड़पर। दोनोंके वाहन भी परस्पर युद्ध करने लगे। देवता क्या करें। वे विमानोंपर बैठकर वहाँ आये, किन्तु इन बड़ोंके बीचमें बोलनेका साहस कोई कैसे कर सकता था। जब कोई समर्थ क्रोधावेशमें हो, छोटेका बोलनेमें अकल्याण ही है। ब्रह्मा और विष्णुके युद्धमें सामान्य अस्त्र तो छुए ही नहीं गये। युद्ध ही दिव्यास्त्रोंसे प्रारम्भ हुआ और शीघ्र ही दोनोंमें-से विष्णुने माहेश्वर और ब्रह्माने पाशुपत अस्त्र उठा लिया। इन परम अमोघ अस्त्रोंको देखकर देवता भयसे व्याकुल होकर भाग गये ; क्योंकि प्रयोगसे पहले ही इन अस्त्रोंके तेजसे दिशाएँ जैसे जलने लगी थीं—सृष्टिके पूर्ण होनेसे पहले ही प्रलयकी सम्भावना उपस्थित हो गयी थी।

---

*ध्यान रखना चाहिए कि इस चरित्रमें परात्पर परमब्रह्म सदाशिव हैं। ब्रह्मा और विष्णु एक ब्रह्माण्डके स्रष्टा एवं पालक हैं। अतः इनमें रजोगुण विशिष्ट होनेके कारण अहंकार तथा इसके विकार कभी-कभी आते हैं। प्रायः तब जब महेश्वर अपनी कोई दिव्य लीला प्रकट करनेके लिए ब्रह्मा या विष्णुको माध्यम बनाना चाहते हैं।

देवताओंके लिए अब एक ही आश्रय थे भगवान विश्वनाथ। वे भागे हुए कैलाश पहुँचे। यह प्रणवाकार शिवधाम है। यहाँ रत्नमण्डपमें मणियोंके आसनपर उमा-महेश्वर विराजमान थे। वाम उरुपर दक्षिण चरण रखे कर्पूरगौर भगवान् शिवकी देवताओंने स्तुति की।

'तुम्हारा मंगल हो। ब्रह्मा और विष्णुके युद्धको मैं जानता हूँ।' भगवान् शंकरने आश्वासन दिया—'मैं उसे शान्त करूँगा।' अपने एक सौ गण शंकरने उस युद्धस्थलमें भेज दिये यह आदेश देकर कि 'दिव्यास्त्रोंके प्रभावको उस क्षेत्रमें ही सीमित रखना।'

प्रणवाकार पञ्चमण्डलमण्डित भद्र रथमें भगवान् भवानीनाथ विराजमान हुए। कुमार कार्तिक, गणेश तथा गण भी साथ हुए। देवता पीछे-पीछे चलने लगे। युद्धस्थलमें पहुँचकर अदृश्य रहते हुए शिवने एक बार उस अकल्पनीय संग्रामको देखा। दिव्यास्त्रोंकी ज्वालासे मानो त्रिलोकी भस्म ही हो जायगी, ऐसा क्षण उपस्थित हो गया। सहसा भगवान् शंकर दोनोंके मध्यमें अनादि-अनन्त ज्योतिर्मय स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए। इस ज्योतिर्लिंगके प्रकट होते ही माहेश्वर एवं पाशुपत दोनों अस्त्र शान्त होकर उसी ज्योतिमें लीन हो गये। ब्रह्मा और विष्णु दोनों चौंके।

'यह क्या है? हम दोनोंके मध्य यह क्या आ गया? कहाँसे प्रकट हुआ?' विष्णुने उस प्रकाशलिंगको ध्यानसे देखना प्रारम्भ किया।

'मैं सृष्टिका पितामह। मैं भी नहीं जानता कि यह क्या है। तुम भी नहीं जानते, तब हम दोनोंसे भिन्न यह तीसरा तत्व कहाँसे प्रकट हुआ? इसका आदि-अन्त कहाँ है—यह देखने जाना चाहिए।'

'ठीक है, इसका पता लगाया ही जाना चाहिए। मैं इसका आदि देखने जाता हूँ।' विष्णुने कहा। जो सबके आदि हैं, उपादान हैं, उनकी रुचि आदिको—कारणको जाननेकी हो, यह स्वाभाविक था। उन्होंने वाराह रूप धारण किया और उस लिंगके नीचेकी ओर तीव्र गतिसे—गरुड़से भी, मनसे भी तीव्र गतिसे—चल पड़े।

'मैं इसका अन्त देखना चाहता हूँ।' ब्रह्माजी सृष्टि बनाते हैं, इसलिए उसके अन्तकी ओर उनकी जिज्ञासा दौड़ती है। हंसका स्वरूप बनाकर वे

उस ज्योतिर्लिंगके ऊपरकी ओर उसका सिरा देखने प्रायः उसी गतिसे चले जिस गतिसे वाराह मूर्ति विष्णु नीचे गये थे।

श्रीहरि पाताल तक नीचे गयें, किन्तु उस ज्योतिस्तम्भका मूल प्राप्त नहीं हुआ। खिन्न होकर वे युद्धस्थलमें अर्थात् क्षीरसागरमें अपने स्थानपर लौट आये क्योंकि यह युद्ध वहीं हुआ था।

ब्रह्माजी ऊपर जा रहे थे, उनको ऊपरसे गिरता हुआ एक केतकीका पुष्प मार्गमें मिला। वह अत्यन्त सुरभित था, अम्लान था। भगवान् शिवने शिरःकम्पनसे उसे गिरा दिया था। ब्रह्माने उस पुष्पसे पूछा— 'तुम क्यों गिरते हो ? तुमको किसने धारण किया था ? तुम्हारा पतन तो उचित नहीं है क्योंकि तुममें सुगन्धि है, मलिनता नहीं है। गिरो मत।'

पुष्प—'मैं इस प्रादुर्भूत स्तम्भके ऊपरके मध्य देशसे ही गिरा हूँ।' (पुष्प भगवान् शंकरके कण्ठदेशसे गिरा था)। ब्रह्मा भी निराश हो गये कि अभी तक वे पुष्पके गिरनेके स्थान मध्यदेश तक ही नहीं पहुँचे हैं तब उसके ऊपरी सिरे तक कैसे पहुँच सकेंगे। लेकिन रजोगुणका अहंकार पराजय स्वीकार नहीं करता। अपनेको छोटा स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे कोई भी असत्य-छल स्वीकार करनेमें हिचक नहीं होती। ब्रह्मा तो रजोगुणके अधिष्ठाता ही हैं। उनको लगा, 'मैं ऊपर नहीं पहुँचा' यह बात विष्णुके सामने कैसे स्वीकार करूँ। उन्होंने पुष्पसे कहा—'मैं सृष्टिकर्ता हूँ। तुमको मेरी सहायता करनी चाहिए। इसका मैं तुम्हें विपुल पुरस्कार दूँगा। इस स्तम्भके सिरे तक मैं पहुँच सकूँगा, इसकी मुझे आशा नहीं है, लेकिन विष्णुके सामने मैं जब कहूँगा 'मैं इसके सिरे तक पहुँच गया था' तब तुम्हें साक्षी देनी चाहिए। तुम्हें कहना चाहिए कि मैंने स्तम्भका अन्त देखा है। तुम भी विपत्तिमें हो, तुम्हारा पतन हुआ है और मैं भी विपत्तिमें हूँ, मेरा सम्मान आपद्ग्रस्त है। विपत्तिमें मान और पतनसे बचनेके लिए असत्यका सहारा लेना दोष नहीं है। समान विपत्तिने हम दोनोंको मित्र बना दिया है। तुमको मेरी मैत्रीका आदर करना चाहिए।

केतकीके पुष्पने ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली। एक साधारण पुष्प सृष्टिकर्त्ताकी अवज्ञा कर नहीं सकता था, यद्यपि केतकीका पुष्प साधारण पुष्प नहीं था, वह शिवका श्रृङ्गारभूत था, लेकिन प्रत्येक जीव परमात्माका अभिन्न अंग है, पर उससे पृथक् होकर जीवका अपना वह

सब ऐश्वर्य समाप्त हो जाता है और वह तुच्छ हो जाता है। शिवके अंगसे स्खलित होकर केतकीके पुष्पसे यह तुच्छता आ गयी थी और इसीलिए उसमें अधर्मकी स्वीकृति स्थान पा सकी।

ब्रह्मा क्षीरसागर लौट आये। विष्णु श्रान्त-हताश बैठे थे। उन्होंने ब्रह्मासे स्पष्ट कह दिया, 'मैं असफल होकर लौटा हूँ।' ब्रह्मा तो आनन्दसे नृत्य करने लगे। उन्होंने कहा—'मैंने इस स्तम्भका सिरा देखा है और इसके ऊपर रखा हुआ यह केतकीका पुष्प मैं उठा लाया हूँ। तुम चाहो तो इस पुष्पसे ही पूछ लो।'

श्रीहरिने पूछना आवश्यक नहीं माना, किंतु पुष्पने स्वयं ही ब्रह्माकी बातका समर्थन कर दिया। अब विष्णुने स्वीकार किया—'सचमुच आप महान् हैं, अतः पूजनीय हैं।' ब्रह्माको उन्होंने प्रणाम किया और षोडशोपचारसे उनका पूजन करनेको प्रस्तुत हुए। इसी समय उस अग्निस्तम्भसे नीललोहित त्रिलोचन भगवान् धूर्जटि प्रकट हो गये। उन्हें देखते ही विष्णुने उनको सांष्टांग प्रणिपात किया और प्रस्तुत पूजा-सामग्रीसे विधिपूर्वक पूजन करके अञ्जलि बांधकर बोले—'आप मुझपर प्रसन्न हो।'

भगवान् शिवने कहा—'तुमपर मैं प्रसन्न हूँ। तुम सत्यवक्ता हो। तुमको ईश्वरत्व प्राप्त हो। मुझसे तुमको साम्य प्राप्त हो और मेरे समान ही सर्वत्र तुम्हारा सत्कार हो। संसारमें तुम्हारी पूजा होगी और उसमें मैं संतुष्ट हूँगा।'

ब्रह्माने कहा—'नीललोहित चन्द्रशेखर ! डरो मत। मैं तुमको जानता हूँ। तुम तो मेरे भ्रूमध्यसे प्रकट हुए हो। तुमने जन्मते ही रुदन किया, तब मैंने ही तुम्हारा नाम रुद्र रखा। मेरी शरण आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

भगवान् महेश्वर इससे क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपने भ्रूमध्यसे एक अद्भुत पुरुष प्रकट किया। यह उनके ही समान त्रिलोचन, लेकिन बहुत भयंकर, अत्यन्त कृष्णवर्ण था। बहुत उग्र स्वर होनेके कारण उसे भैरव कहा गया। उसने प्रकट होते ही अञ्जलि बाँधकर शिवसे पूछा—'मैं क्या सेवा करूँ ?'

शिव—'इस ब्रह्माकी तीक्ष्णधार खड्गसे पूजा करो।'

भैरवने ब्रह्माका केश पकड़ा और उनका असत्यभाषी पाँचवा सिर काट दिया। तबसे ब्रह्मा चतुर्मुख हो गये। भैरव उनके और भी सिर काटना चाहते थे, लेकिन शीघ्रतापूर्वक ब्रह्माने अपनी माला, आभूषण आदि त्याग दिये, केश खोल दिये और काँपते हुए भैरवके ही पैरोंमें गिर पड़े। ब्रह्माकी यह भयकातर दशा देखकर भगवान् विष्णुको दया आ गयी। उन्होंने भगवान् शिवसे प्रार्थना की—'आपने इन्हें पाँच सिर दिये थे, ये आपकी प्रतिमूर्ति थे। अब उनमें-से एक सिर तो चला ही गया। इन चतुर्मुखको क्षमा कर दें।'

संकेतसे भैरवको रोककर शिवने ब्रह्मासे कहा—'तुमने कपट किया, अपनी पूजा तथा ईश्वरत्वके लोभमें तुम झूठ बोले, इसलिए लोकमें तुम्हारी पूजा नहीं होगी।'

ब्रह्माजीने अपनी चारों अञ्जलि बाँधकर स्तुतिकी, प्रार्थना की—'मेरे इस कटे सिरका अधःपात न हो, ऐसी कृपा करें और मुझपर भी अनुग्रह करें। लोकमें जिसकी कोई पूजा नहीं करेगा, वह लोकस्रष्टाके पदपर कैसे रह सकता है ?'

शिवने वरदान दिया—'तुम्हारे सिरको मैं अपनी मुण्डमालामें धारण करूँगा। अग्निहोत्रमें, स्मार्त-कर्ममें और यज्ञमें तुम्हारा सत्कार होगा। तुम्हारी पूजा—आवाहनके बिना यज्ञ निष्फल हो जायगा।'

अब शिवने केतकी पुष्पको तिरस्कृत किया—'मिथ्याभाषी पुष्प ! आजसे मेरी पूजामें तू नहीं होगा।'

सभी देवताओंने तिरस्कारपूर्वक उस पुष्पकी ओर देखा। पुष्पसे अश्रु गिरने लगा। उसने कातर स्वरमें कहा—'आप मेरा जन्म ही निष्फल न करें। अपराध मेरा नहीं है, सृष्टिकर्ताकी अवज्ञा करनेका साहस मैं नहीं कर सका—यह आप सर्वज्ञ जानते हैं।'

'मैं तुझे स्वीकार नहीं करूँगा।' शिवने कुछ दयार्द्र होकर कहा—'विष्णु तथा अन्य देवता तेरा धारण करेंगे। मेरे मण्डपकी रचनामें तेरा उपयोग हो सकेगा।'

अब भगवान् महेश्वरने ब्रह्मा और बिष्णु दोनोंसे ही कहा—'मेरे दो रूप हैं—सकल और निष्कल। दोनों परस्पर अभिन्न हैं। मेरा यह साकार रूप सकल है इसमें समस्त कलाएँ हैं और यह स्तम्भ रूप निष्कल है। इस लिंग रूपमें ही अबसे मेरी मुख्यार्चा होगी। यह लिंग निष्कल ब्रह्मका प्रतीक है। इसकी अर्चा करते रहो।'

सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पञ्चकृत्योंका तथा ओंकारका उपदेश करके भगवान् शंकर तिरोहित हो गये। इसलिए शिवकी आराधना लिंग रूपमें सर्वत्र की जाती है।

द्वितीय कथा

यह कथा वाराह कल्प की है। पहली कथासे बहुत पीछे की, सैकड़ों कल्प पीछे की है।

दारुक वनमें बहुतसे मुनिगण एकत्र रहते थे। उनमें वशिष्ठ आदि प्रसिद्ध ऋषि भी थे। वे सब उस समय वैदिक कर्मकाण्डमें निष्ठा रखते हुए समस्त कर्मोंको सावधानीसे कर रहे थे। इस प्रवृत्तिमें लगे लोगोंको निवृत्तिका उपदेश करनेके लिए, निवृत्तिका प्रत्यक्ष स्वरूप दिखलानेके लिए उन ऋषियोंपर अनुग्रह करके भगवान् नीललोहित वहाँ पहुँचे। वे दिगम्बर थे। त्रिनेत्र, द्विभुज, बिखरी जटाएँ, अत्यन्त सुन्दर सुकुमार अङ्ग, विशाल बाहु, विशाल वक्ष, अर्धोन्मीलित दृग, उन्मत्तके समान स्वेच्छासे वहीं विचरण करने लगे।

मुनिगण उस समय अपने उटजोंमें नहीं थे। वे लोग वनमें कुश, फल, समिधादि लाने गये थे। मुनि-पत्नियोंने अकल्पनीय सुन्दर युवा उस विचित्र पुरुषको देखा जो सम्पूर्ण नग्न था, जिसकी सुनहरी जटाएँ बिखरी हुई थीं, जो बिना किसी ओर देखे इस तरह घूम रहा था जैसे वही सृष्टिका सम्राट् हो। मुनि-पत्नियोंके हृदयमें विकार उत्पन्न हुआ। कामके आवेगने उन्हें अस्थिर कर दिया। अरुन्धतीने रोका, किन्तु ऐसे विकारमें जब आवेश होता है, किसीका भी उपदेश कभी किसीके काम नहीं आया है। वे स्त्रियाँ मुनि-पत्नियाँ थीं, संयमी थीं, पतिव्रता थीं, किन्तु इस समय उनका संयम और उनका विवेक उनका साथ छोड़ गया था। वे अस्त-व्यस्त कुछ देर अपनी कुटियाके द्वारपर खड़ी रहीं ~~और~~ फिर उस पुरुषके पीछे चल

पड़ीं। उनमें कुछ वृद्धाएँ भी थीं। जब वही धैर्य खो चुकी थीं, तब जो युवा थीं उनका वर्णन व्यर्थ है। उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे। वे अर्धनग्न प्राय हो चुकी थीं। कुछ गाने लगीं, कुछ नाचने लगीं। कुछ आवेशसे मूर्छित हो चुकी थीं। वे परस्पर ही एक दूसरेका आलिंगन करती थीं, हाव-भाव कटाक्षोंसे रुद्रको आर्कषित करना चाहती थीं। प्रायः उन सबके केश खुल गये थे। उन्होंने मण्डल बनाकर रुद्रका मार्ग रोक लिया। बोलीं—'भद्र ! आप कौन हैं ? कहाँसे पधारे ? भुवनसुन्दर ! हमपर प्रसन्न हो जाओ। यहाँ बैठो।' लेकिन शिव आत्मलीन थे, उन्होंने किसीकी ओर देखा नहीं था। वे ऐसे चल रहे थे जैसे उनके चारों ओर स्त्रियाँ न हों, जंगलके वृक्ष या पशु हों।

ऋषिगण बनसे लौटे। उन्होंने अपनी पत्नियोंकी यह अस्त-व्यस्त स्थिति और उनके मध्य इस कृष्णवर्ण दिगम्बर पुरुषको देखा। मनुष्यके मनमें बड़ी कठिनाईसे अपनोंका अपराध आता है। जहाँ भी व्यक्तिकी ममता है, लगता है कि हमारा ममतास्पद दोषी नहीं हो सकता, दूसरा ही अपराधी है। मुनियोंने कुछ पूछने-सोचनेका प्रयत्न नहीं किया। उन्हें लगा, यह पुरुष ही हमारी पत्नियोंको आर्कषित करके भ्रष्ट करता है। उन्होंने क्रोधपूर्वक शाप दिया—'तू इन स्त्रियोंके मध्य दिगम्बर रहकर इनकी मर्यादाका नाश कर रहा है, इसलिए तेरा उपस्थ तत्काल गिर जाय।'

उपस्थ गिर गया। गिरते ही प्रज्वलित हो गया। मार्गमें जो कुछ पड़ा, उसे भस्म करता हुआ चारों ओर घूमने लगा। अब वे सब मुनिगण भयसे संत्रस्त हो गये। सब वहाँसे ब्रह्म लोक ब्रह्माके पास गये। उन्होंने पुकारा कि—'अपनी सृष्टिको आप कृपा कर बचाओ। यह नीललोहितका गिरा हुआ लिंग त्रिलोकीको भस्म करनेके लिए गतिमान हो गया है।'

ब्रह्मा—'तुम सबने नहीं पहचाना कि यह भगवान् रुद्र हैं। ये कोई अपराधी नहीं थे। मध्याह्नमें आये परिग्रहहीन दिगम्बर निर्दोष अवधूतको अतिथि मानकर सत्कार करना तुम्हारे लिए उचित था। तुम गृहस्थ हो और गृहस्थके लिए अतिथि परम पूज्य है। तुम लोगोंने जो शाप देकर अतिथिका तिरस्कार किया, इसलिए तुम्हारे समस्त पुण्योंका नाश हो गया।'

'हमसे अपराध हुआ। हमारे पुण्योंका नाश तो हो ही गया, किन्तु अब तो सृष्टिकी रक्षाकी समस्या सम्मुख उपस्थित है। आप इसका कोई उपाय करें।' मुनियोंने बहुत खिन्न स्वरमें ब्रह्मासे प्रार्थना की।

'भगवान् रुद्रके तेजको कौन सह सकता है ? आप सब उनकी ही शरण जायँ। इसके अतिरिक्त उनकी अवज्ञाका और कोई दूसरा प्रतिकार मुझे सम्भव नहीं दीखता।' ब्रह्माने कहा।

मुनिगण लौटे। शिव अन्तर्धान हो चुके थे। उनका प्रज्वलित लिंग बहुत अधिक विनाश करचुका था। मुनियोंने अब शंकरकी स्तुति प्रारम्भकी। वे आशुतोष प्रकट हुए। उन्होंने मुनियोंसे कहा—'केवल पार्वती ही मेरे इस लिंगको धारण करनेमें समर्थ हैं। वह स्वयं भगस्वरूप धारण करें तो यह शान्त हो सकता है।'

मुनियोंने पार्वतीजीका स्तवन किया, उनकी आराधना की। भगवती जगदम्बिका प्रकट हुईं। उनको भी ऋषियोंपर और सृष्टिके निरीह प्राणियोंपर दया आयी। उन्होंने योनिरूपा होकर उस लिंगको धारण किया। ऋषियोंने उस शान्त लिंगका वहाँ अर्चन किया और यही लिंग हाटकेश नामसे विख्यात हुआ क्योंकि वह प्रज्वलित स्वर्णके समान दिव्य वर्णका था।

इस दूसरी घटनाके कारण लिंगको शिश्न भी माना जाने लगा और वामाचार आदि सम्प्रदायोंमें शिश्नाकार लिंगकी अर्चना भी प्रचलित हो गया।

एकादश रुद्र

भगवान् शिव परात्पर परम तत्व हैं—इसमें दो मत नहीं हैं। पूर्ण तत्वमें अंश नहीं हुआ करता। उसमें जो भी अभिव्यक्ति होती है, पूर्ण ही होती है। जैसे अग्निसे प्रकट प्रत्येक चिनगारी सम्पूर्ण रूपसे अग्नि है और अनुकूल स्थिति तथा ईंधन मिलनेपर पूरी सृष्टिको भस्म कर देनेमें समर्थ है। जलका प्रत्येक कण जल है और उसमें जलके सम्पूर्ण तत्व हैं। ऐसे ही परम पुरुषसे प्रकट उसका प्रत्येक रूप उससे अभिन्न और सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त है। इस दृष्टिसे उसमें श्रेष्ठ-कनिष्ठका भेद नहीं किया जा सकता। भेद उपासनाकी दृष्टिसे किया जाता है। आरम्भसे ही प्रकट महारुद्र और उनसे प्रकट एकादश रुद्र भैरवादि उनसे सर्वथा अभिन्न हैं, इसीलिए पुराणोंमें शिव रूपसे ही उनकी महिमा कही गयी है। अनेक स्थानोंपर उनको शिव ही कहा गया है। रुद्र महारुद्रके अर्थात् जिनको सृष्टिमें शिव कहा जाता है, जिनके लिए गीतामें श्रीकृष्णने कहा है 'रुद्राणां शंकरश्चास्मि' (गीता १०.२३) उनसे ग्यारह रुद्र और प्रकट हुए। इन सबके नाम पृथक्-पृथक् हैं और रुद्र भी पृथक् हैं, किन्तु ये सब त्रिलोचन हैं, चन्द्रमौलि हैं, पिंगल केश हैं। शरीरके वर्ण इनके भिन्न-भिन्न हैं। इनके प्राकट्यकी कथाएँ भी कई हैं।

प्रथम कथा—

दैत्योंसे पराजित देवता अपने पिता महर्षि कश्यपके पास पहुँचे और उन्होंने पितासे अपना दुःख निवेदन किया। दैत्य भी कश्यपके ही पुत्र हैं, लेकिन जब दो पुत्रोंमें संघर्ष हो जाता है और कोई बलवान् पुत्र दूसरेका स्वत्व छीन लेता है, तब दुःखी पराजित पुत्रोंको उनका स्वत्व दिलानेके लिए पिताको कुछ करना ही पड़ता है। महर्षि कश्यपने देवताओंको आश्वासन दिया। वे जानते थे कि दैत्य इतने उद्धत हैं कि उन्हें कोई आज्ञा नहीं दी जा सकती। जब अपनेसे छोटे ऐसे हो गये हों कि वे अनुशासन न मानें, तब उन्हें समझाना और आज्ञा देना बुद्धिमानी नहीं होती। बड़ेको तब अपने सम्मान-रक्षाके लिए तटस्थ ही रहना चाहिए।

महर्षि कश्यपके लिए तटस्थ रहना भी उचित नहीं था। देवता दुःखी थे। उनका स्थान छीन लिया गया था। उनकी कोई व्यवस्था की जानी चाहिए थी। कश्यप वाराणसी पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिवलिंगकी स्थापना की और उमामहेश्वरका अर्चन करने लगे। दीर्घकाल तक तप किया उन्होंने, अन्ततः भगवान् विश्वनाथ सन्तुष्ट हुए। प्रकट होकर उन्होंने कहा—'प्रजापति। वरदान माँगो।'

कश्यपने भगवान् शंकरकी स्तुति की और प्रार्थना की—'मेरे–अदितिके पुत्र देवता अपने सौतेले भाई दैत्योंसे पराजित हो गये हैं। आप उनके सहायक बनें, उनकी रक्षा करें।'

'एवमस्तु।' आशुतोषसे दूसरा कुछ सुननेकी आशा नहींकी जा सकती। उन्होंने वरदान दिया और अन्तर्धान हो गये।

महर्षि कश्यप लौट आये। भगवान् शिवने उनके पुत्र रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन दिया था। कश्यपसे सुरभिमें शिव ११ रूपोंमें प्रकट हुए। इनके नाम हैं—कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजैकपाद, अहिर्बुध्न, शम्भु, चण्ड तथा भव। इन्हींको एकादश रुद्र कहा जाता है। इनकी सहायतासे देवताओंने दैत्योंपर विजय प्राप्त की। ईशान् दिशामें इनका निवास है।

(शिव पुराण)

द्वितीय कथा–

ब्रह्मा सृष्टिके लिए उग्र तप करते हुए निराश हो गये। इस निराशाके कारण उन्हें बहुत क्रोध आया। क्रोधावेशमें उनके नेत्रोंसे जो अश्रुबिन्दु गिरे उन बिन्दुओंसे रोगोंके अधिदेवता और सर्प उत्पन्न हुए। अपने द्वारा हुई इस वीभत्स उत्तेजक सृष्टिको देखकर ब्रह्माको बहुत पश्चात्ताप हुआ। वे मूर्छित हो गये और उन्होंने शरीर त्याग दिया। उस परित्यक्त शरीरसे करुणापूर्वक रुदन करते हुए, ग्यारह रुद्र प्रकट हुए, जो उस देहके प्राण थे।

(लिंग पुराण)

तृतीय कथा–

सृष्टिके लिए उद्यत ब्रह्माको कोई उपाय नहीं सूझता था। वे इस असफलतासे क्रुद्ध हुए तो उनके भ्रूमध्यसे वह क्रोध महेश्वरके रूपमें व्यक्त

हुआ। ब्रह्माने उनको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी तो रुद्रने सोचा, तपस्याके बिना तो मैं सृष्टि करनेमें असमर्थ हूँ, अतः तप करना चाहिए। वे तप करनेके लिए जलमें प्रविष्ट हो गये। यह देखकर ब्रह्माको बडी झुंझलाहट हुई। उनके शरीरसे फिर उनका क्रोध अर्धनारीश्वरके रूपमें प्रकट हुआ। यह अत्यन्त प्रलयंकर प्रचण्ड वपु था। ब्रह्माने आदेश दिया—'अपने शरीरको विभक्त करो' और अदृश्य होगये। अर्धनारीश्वरने अपनेको दो भागोंमें विभक्त किया। एक भाग स्त्री हो गया और दूसरा पुरुष। उस पुरुष वपुको भी उन्होंने १० और भागोंमें विभक्त किया। ग्यारहवें स्वयं बने रहे। इस प्रकार यह एक कल्पकी एकादश रुद्रके व्यक्त होनेकी कथा है।

(ब्रह्मपुराण)

भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न होनेपर रुद्रको सृष्टि करनेके लिए कहा, तब रुद्रने अपनेसे दस और रुद्र उत्पन्न किये। बहुतसे भूत, प्रेत, पिशाच प्रकट किये। यह देखकर ब्रह्माने कहा - 'आप तो ऐसी सृष्टि उत्पन्न कर रहे हो जो प्रलय पर्यन्त मरेगी ही नहीं। सृष्टि ऐसी उत्पन्न करो जो मरण-धर्मा हो।'

रुद्रने ब्रह्माकी ओर देखा और बोले—'मरणधर्मा सृष्टि उत्पन्न करनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है। ऐसी सृष्टि आप ही उत्पन्न करो।'

यह कहकर वे मुमुक्षुओंके आदिगुरु तपोनिरत हो गये।

(लिंग पुराण)

सती–महाशक्तिका अवतरण

जहाँ केवल पुरुष है, वहाँ सृष्टि और विक्रिया नहीं है, इसीलिए उपनिषदोंने ब्रह्माको नपुंसक माना। एक अखण्ड अद्वितीय तत्त्व निरञ्जन निष्क्रिय अचिन्त्य सच्चिदानन्द है। लेकिन सृष्टिके प्रत्यक्ष सत्यको अस्वीकार तो नहीं किया जा सकता और जब सृष्टि है तब परम तत्व शक्ति समन्वित ही है; क्योंकि बिना शक्तिके सृष्टि सम्भव नहीं है। सगुण साकार परमात्मा शक्ति समन्वित है, इसीलिए सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयका हेतु एवं उपादान है।

भगवान् महेश्वर अर्धनारीश्वर हैं, नित्य शक्ति समन्वित हैं, इसीलिए शिवलिंगमें पीठका भाग शक्तिका स्वरूप माना जाता है। जैसे महारुद्र सृष्टि होनेपर सगुण साकार रूपसे ब्रह्माण्डमें प्रकट होते हैं, उनसे नित्य अभिन्न महाशक्ति भी प्रकट होती हैं। उनके प्राकट्यकी कल्प-कल्पमें प्रणाली एक-सी नहीं होती। इस कल्प-भेदसे उन सती, उमा, पार्वती आदि अनेकनामा महाशक्तिके प्रादुर्भावकी कई कथाएँ हैं।

प्रथम कथा–

सृष्टि जब तक मानसी थी, उसका अभिवर्धन होता नहीं था। प्रजापति ब्रह्मा एक संकल्प करते थे और उससे एक प्राणी पैदा होता था। वह अकेला ही बना रहता था। यह क्रम चलने वाला नहीं था। ब्रह्माजी चाहते थे, सृष्टि अपने आप बढ़नेकी प्रक्रिया स्वीकार कर ले। इसलिए वे उमा-महेश्वरका ध्यान करके तपस्या करने लगे। उनके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् महेश्वर अर्ध-नारी-नर रूप धारण करके प्रकट हुए। ब्रह्माने स्तुति की, प्रार्थना की और तब शिवके वाम भागसे महाशक्ति शिवा प्रकट हो गयीं। सृष्टिकर्ताने महाशक्तिसे प्रार्थना की—'मेरी सृष्टिको स्वतः अभिवर्धनकी शक्ति प्रदान करो।'

महाशक्तिने अपने भ्रूमध्यसे एक नारीको प्रकट किया और उसे ब्रह्माको दे दिया—'इसे पत्नीके रूपमें स्वीकार करो, यह सृष्टिके अभिवर्धनका साधन बनेगी।'

वह नारी ब्रह्माणीके नामसे जगतमें प्रसिद्ध हो गयी। ब्रह्माजीने महाशक्तिसे प्रार्थना की—'आप स्वयं भी सृष्टिमें प्रकट हों, तब मैं अपनेको धन्य मानूँगा।'

शिवाने स्वीकार किया—'मैं दक्षपुत्री होकर प्रकट होऊँगी' और फिर वे भगवान् शंकरके शरीरमें ही प्रविष्ट हो गयीं।

द्वितीय कथा—

सृष्टिके आरम्भमें आज जैसे सामाजिक आचार हैं, उनका चलना सम्भव नहीं होता है। जब एक ही पुरुष हो या उसका ही कुल हो, तब सृष्टिके अभिवर्धनके लिए उनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्धके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यह बात प्रत्येक विचारवान्को मनुष्यके आदिपुरुषके सम्बन्धमें सोचते समय स्वयं ध्यानमें आ जायगी।

रजोगुणका एक दोष है कि वह बुद्धिको स्वस्थ नहीं रहने देता। क्रियाशीलतामें व्यक्ति सदा सम्पूर्ण रूपसे सावधान रहे—यह सम्भव नहीं है और जब असावधानी आती है, अन्तःकरणमें दूसरे दोषोंको भी अवसर प्राप्त होता है। ब्रह्माजी रजोगुणके अधिष्ठाता हैं। रजस्का स्वभाव ही अन्तःकरणकी निर्मल सात्त्विकताको आच्छन्न करना है। दूसरी बात, आप प्रजा-सृष्टि भी करना चाहें और निष्काम भी बने रहें—ये दोनों बातें, परस्पर विरोधी हैं, सम्भव कैसे हैं? प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि करना चाहते थे और उसमें लगे थे। यह स्वयंमें काम है या नहीं? और जब काम है तब उसका अपना रूप क्यों प्रकट न हो? ब्रह्माने संध्याका सृजन किया और अपनी इस पुत्रीको देखकर उनके मनमें विकारका उदय हुआ। बात मनुष्य लोककी नहीं है। देव लोककी भी नहीं है,ब्रह्म लोककी है। वहाँ चेष्टाएँ दैहिक और मानसिक भिन्न-भिन्न नहीं होतीं। जहाँ संकल्प ही वार्तालापका साधन है, वहाँ किसीके मनका कोई संकल्प दूसरेसे अज्ञात नहीं रहता। ब्रह्माके मनमें संध्याके प्रति कामका उदय हुआ—इतना पर्याप्त था। ब्रह्माके दूसरे मानसिक पुत्रोंने पिताकी स्थिति जान ली। लेकिन ब्रह्माके मानस-पुत्रोंने—मरीचि, आदिने—मस्तक झुका लिया। उन्होंने कोई प्रतिवाद नहीं किया; परन्तु स्वभावसे परम वीतराग भगवान् रुद्रने सृष्टिकर्त्ताकी भर्त्सना की—'छिः, लोकपितामह! तुमने वासनाका उत्थान करके अपनी प्रजाके पतनका मार्ग प्रशस्त कर दिया। लोकमें

आत्मविस्मृत यह अनुचित आकर्षण फैलेगा। तुम्हारे लिए यह अत्यन्त घृणास्पद स्थिति होनी चाहिए। तुम वन्दनीय नहीं रहोगे। तुम्हें लज्जा आनी चाहिए और लज्जा आनी चाहिए तुम्हारे इन पुत्रोंको भी, जो पिताको अनुचित स्थितिसे रोकते नहीं हैं।'

रुद्र तो ब्रह्माको फटकारकर, धिक्कारकर वहाँसे चले गये। लेकिन इससे ब्रह्माके मनमें अपनी स्थितिसे घृणा नहीं उत्पन्न हुई, उलटे रुद्रसे द्वेष उत्पन्न हो गया। सकाम व्यक्तिका स्वभाव ही है कि उसे उसका दोष बताया जाय तो उसकी दृष्टि अपने दोषपर नहीं जाती, दोष बतलाने वालेको वह अपना द्वेषी मान लेता है और उसको गिरानेका प्रयत्न करता है।

'इन्हें भी मोहित करूँगा'—ब्रह्माने दृढ़ निश्चय किया—ये अपनेको इतना बड़ा तपस्वी तटस्थ मानते हैं कि मुझ लोकपितामहकी भी मेरे पुत्रोंके समक्ष इन्होंने इस प्रकार अवमानना की है।'

ब्रह्माने अपने पुत्रोंसे कहा—'स्त्रीकी अभिलाषा मात्र होनेसे महा-योगी महादेवने मुझे तथा तुम सबको बहुत धिक्कारा है, अतः जैसे भी रुद्र स्त्रीका ग्रहण करें, ऐसा प्रयत्न करो। वे गृहस्थ बनेंगे, तब मेरा चित्त शान्त होगा। इस समय तो वे स्त्रीका नाम भी सहन नहीं करते हैं।'

ब्रह्माने पुष्पधन्वा मकरध्वज कामका स्मरण किया, उसकी प्रशंसा की—'तुम त्रिभुवनमें सबसे अधिक शक्तिशाली हो। तुमको कहीं विफल होना नहीं पड़ा। तुम तो साक्षात् नारायणके स्वरूप, उनके व्यूह रूप हो, उनकी द्वितीय मूर्ति हो। अतः शिवको सम्मोहित करो।'

काम—'मेरा अस्त्र तो स्त्री ही है, इसलिए आप शिवके योग्य किसी स्त्रीका सृजन कर दें।'

सृष्टिकर्त्ता उदास हो गये। चिन्ता करने लगे। शिवके योग्य स्त्री! ऐसी स्त्रीके निर्माणकी शक्ति उनमें कहाँ है जो रुद्रको सम्मोहित कर सके। चिन्तित सृष्टिकर्ताके श्वाससे बसन्तका प्राकट्य हुआ। कामने उसे सहचर बनाया। प्रजापतिने मन्मथसे कहा—'तुम प्रयत्न करो, रुद्रके मनमें स्त्रीको स्वीकार करनेकी वासना उत्पन्न हो जाय तब उनके योग्य स्त्रीका सृजन भी सम्भव हो जायगा।'

बसन्तको लेकर काम कैलाश पहुँचा। उसने अपने प्रयत्न प्रारम्भ किये, किन्तु निष्फल होकर लौट आया। सृष्टिकर्तासे उसने कहा—'मेरे प्रयत्नसे रुद्र समाधिसे जग गये थे, किन्तु उनके प्रदीप्त लाल नेत्र देखकर उन प्रलयंकरके सम्मुख खड़े रहनेका साहस कोई कर नहीं सकता। मैं भाग आया।'

ब्रह्माने पुनः मार नामके गण उत्पन्न किये और स्मरको सहायकके रूपमें देकर उसे फिर भेजा। इस बार भी मदन विफलप्रयास होकर लौट आया। अब सृष्टिकर्ता एकाग्र चित्तसे भगवान् नारायणकी स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णु प्रकट हुए। ब्रह्माने कहा—'मेरा पुत्र होकर रुद्रने मेरी निन्दा की है, मुझे धिक्कारा है, मेरे हृदयको यह व्यथा शान्त नहीं होने देती।'

'वे परमपुरुष हैं, उनसे द्वेष करना उचित नहीं है, वे सर्वेश्वर हैं।' विष्णुने समझाया, तुम्हारे क्रोधको निमित्त बनाकर तुम्हारे भ्रूमध्यसे वे प्रकट हुए—यह उनकी कृपा है। उनको सामान्य देवता माननेकी दुर्मतिका त्याग करो। वे तो सबके स्वामी आत्माराम हैं। वेदके ज्ञाता होकर भी इस तथ्यको तुम भूल गये।'

ब्रह्माके मनसे द्वेष तो चला गया, किंतु उनके मनसे हठ दूर नहीं हुआ। उन्होंने फिर नारायणसे प्रार्थना की—'मैं चाहता हूँ, शिव गृहस्थ बनें, स्त्रीको स्वीकार करें।'

'तब तुम उनकी नित्यशक्तिका ध्यान करो। उन पराशक्तिको प्रसन्न करनेके प्रयत्नमें लगो'—नारायणने कहा—'भगवती महाशक्ति किसीकी कन्या बनें तो शिव उनसे विवाह कर लेंगे।' विष्णु यह आदेश करके अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्माने अब महाशक्ति दुर्गाका स्तवन आरम्भ किया। अन्ततः वे योगमाया चण्डिका, अञ्जनद्युति चतुर्भुजा, सिंहवाहिनी, चन्द्रमस्तका, त्रिनेत्रा, कमलारुणचरणा परम सुन्दरी प्रकट हुई और प्रजापतिसे बोलीं—'तुम क्या चाहते हो?'

ब्रह्माने प्रणिपात किया। पुनः स्तवन किया। बोले—'महेशानि! आपके स्वामी रुद्र कैलाशमें हैं, तपोनिरत हैं, अपत्नीक हैं। आप कृपा करके

अपने स्वामीको अपने सान्निध्यसे सुखी करें, उनकी भार्या बनें। आपने स्वयं ही मुझे प्रारम्भमें जो दक्षपुत्री होनेका वरदान दिया है उसे सफल करें।'

शिवा चिन्तित हो गयीं—'यह वेदका वक्ता मोहमें पड़ गया है। नित्य निर्विकार शिवको मोहित करना चाहता है। उन संसारके स्वामी परमार्थ-पथके पथिकोंके परम गुरु, निर्मोह, निर्विकार, निखिल साधन स्वरूपको सम्मोहित करना चाहता है। उन्हें सम्मोहित भी किया जा सके तो क्या लाभ ? इससे तो सृष्टिमें जीवोंके परम कल्याणके साधनकी परम्परा ही विकृत होगी ; किन्तु मेरे स्वामी निर्गुण हैं, निर्मोह हैं, सर्वसमर्थ हैं, वे स्वतंत्र परमेश्वर हैं, मैं तो उनकी आज्ञानुवर्तिनी दासी हूँ। मुझे उनके श्रीचरणोंका सान्निध्य प्राप्त हो जाय, यह मेरा सौभाग्य ही होगा।'

'महादेव मुझे छोड़कर अन्य स्त्रीको ग्रहण नहीं करेंगे यह तुम्हारी बात सच है। यह भी सच है कि वे गृहस्थ न बनें तो तुम्हारी यह सनातनी सृष्टि चल नहीं सकती'—महाशक्तिने कहा—'अत: मैं दक्षकी पत्नीसे प्रकट होऊँगी। मुझे आशा है, मेरे प्रभु मेरी श्रद्धाको स्वीकार कर लेंगे और मुझे उनका चरण-सान्निध्य प्राप्त होगा।' देवी इस आदेशके साथ अन्तर्धान हो गयीं—'तुम दक्षको उपयुक्त अधिकारी बननेके लिए प्रेरित करो।'

सृष्टिकर्ताने तपसे निवृत्त होकर अपने मानस पुत्र दक्षको बुलाया। उनकी प्रशंसाकी—'तुम धन्य हो, महाशक्तिने तुम्हें पिताका गौरव देना स्वीकार किया है। अब तुम तपस्या करके उनके प्रसादकी प्राप्ति करो जिससे उनका आविर्भाव शीघ्र हो।'

दक्षने क्षीरोदधिके उत्तर तटपर महाशक्तिका ध्यान करते हुए तपस्या प्रारम्भकी। वे केवल जल पीकर रहते थे और भगवतीका ध्यान, जप, स्तवन—इसीमें सम्पूर्ण समय लगाते थे। बार-बार प्रार्थना करते थे कि आप शीघ्र अवतार धारण करें। सहसा दिशाएँ आलोकसे पूर्ण हो गयीं। दक्षने देखा—उनके सम्मुख अचिन्त्य सौन्दर्य राशि नीलाञ्जनद्युति चतुर्भुजा सुप्रसन्ना, महाशक्ति, नारी आकारमें हैं। दक्षने प्रणिपात किया, स्तवन किया। महाशक्तिने वरदान दिया—'आपके यहाँ प्रकट हो रही हूँ, किन्तु यह मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि आप अनादर करेंगे तो मैं शरीर त्याग दूँगी।

दक्षने हर्यश्व नामके मानस पुत्र उत्पन्न किये, किन्तु वे देवर्षि नारदके उपदेशसे वीतराग हो गये। ब्रह्माजीके द्वारा सान्त्वना दिये जानेपर दक्षने

अपनी पत्नी असिक्नी (जिसका दूसरा नाम वीरिणी भी था), से सवलाश्व नामके एक हजार पुत्र उत्पन्न किये, लेकिन देवर्षि नारदने उपदेश करके भी निवृत्ति पथका पथिक बना दिया। तीसरी बार दक्षने पाञ्चजन्या असिक्नीमें ही ६० कन्याएँ उत्पन्न कीं। इनमें-से शिवा (सती) को कोई ज्येष्ठा, कोई मध्यमा और कोई कनिष्ठा कहते हैं। कल्प-भेदसे तीनों ही बातें ठीक हैं। शिवा चतुर्भुजा सायुधाभरणा ही प्रकट हुई थीं। माता-पिताके द्वारा स्तुति किये जानेपर वे शिशु बन गयीं। दक्षने उनका नाम उमा रखा। बादमें और भी उनके नाम हो गये। शैशवमें ही सर्वगुणमयी क्रीड़ामें भगवान् शिवकी लिंग-प्रतिमा बना लेती थीं और उसका पूजन करती थीं।

तृतीय कथा—जब सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके क्रुद्ध होनेपर उनके भ्रुमध्यसे महारुद्रका प्राकट्य हुआ, ब्रह्माने अपने शरीरसे एक परम सुन्दरी कन्या प्रकटकी और उस गौरीको रुद्रको भार्या बनानेके लिए दे दिया। साथ ही आदेश दिया—'प्रजाकी सृष्टि करो।'

रुद्र सोचने लगे—मैं तो सृष्टि करनेमें असमर्थ हूँ। जब तक किसीमें तपःशक्ति नहीं है, शक्तिहीन—केवल कामप्रेरित—सृष्टि व्यर्थ है। उससे किसी प्रयोजनकी पूर्ति नहीं होती। अतः मुझे तपस्या करनी चाहिए। यह निश्चय करके वे प्रलयसागरके अनन्त जलमें प्रविष्ट हो गये।

ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न उस कन्याका क्या हो ? रुद्रने उसकी ओर देखा तक नहीं था। ब्रह्माने उसे पुनः अपनेमें ही लीन कर दिया। फिर जब अपने मानस पुत्रोंकी सृष्टि कर ली तब दाहिने अंगूठेसे उत्पन्न दक्षको वह पुत्री प्रकट करके देते हुए कहा—'यह गौरी तुम्हारी पुत्री रहेगी, क्योंकि इसे रुद्रने विवाहा है। जब तक वे तपोलीन हैं, तुम इसका पालन करो।'

(ब्रह्म पुराण)

चतुर्थ कथा—सृष्टिके माहेश्वर कल्पमें सदाशिवने प्रथम चतुर्मुख ब्रह्माको उत्पन्न करके उनको श्रुतिका ज्ञान प्रदान किया। हिरण्यगर्भने रुद्रका दर्शन कर उनका स्तवन किया और प्रार्थना की—'विश्वेश ! आप सृष्टिके लिए अपनी इस विश्वात्मभूत मूर्तिका विभाग कीजिए।

कमलोद्भवकी इस प्रार्थनाको स्वीकार करके रुद्रने अपने वामांगसे स्त्रीका सृजन किया। वही उनकी शुभा पत्नी श्रद्धा कही गयीं। महेश्वरकी आज्ञासे वे दक्षकी कन्या हुई और वहाँ उनका नाम सती पड़ा।

(वाराह पुराण)

———

सती-विवाह

देवर्षि नारद लोकपितामह ब्रह्माजीके साथ दक्षके यहाँ पधारे। दक्षने और उमाने भी इन दोनोंको प्रणाम किया, पूजाकी। ब्रह्माने दक्षसे कहा—'पुत्र! अब तुम अपनी पुत्रीसे प्रार्थना करो कि वह रुद्रको पति रूपमें पानेके लिए आराधना करे। जब तक रुद्र भार्या स्वीकार नहीं करते, मेरा चित्त शान्त नहीं होगा।'

नारदने उमासे उनकी माताके समीप कहा—'आप तो जगद्धात्री सर्वसमर्थ हैं, किन्तु आपके परम वीतराग स्वामी तपस्याके बिना प्रसन्न होकर आपको स्वीकार करें—ऐसा सम्भव नहीं लगता, अतः आपको तप करके उनको सन्तुष्ट करना चाहिए।'

ब्रह्मा और नारदके जानेके पश्चात् माता-पिताकी प्रेरणा, सहायता, सहानुभूतिसे उमाने घरमें ही शिवकी आराधना प्रारम्भ की। यह आराधना आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ हुई। नन्दा तिथिमें वे गुड़, भात, लवण द्वारा शिवकी पूजा करके वही प्रसाद ग्रहण करती थीं। कार्तिकमें केवल चतुर्दशीको खीर और पुएसे पूजा करके वही प्रसाद लिया। मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमीको यव, तिल और भातसे पूजा करके प्रसाद लिया। पौष शुक्ल सप्तमीको उन्होंने रात्रि-जागरण किया और खिचड़ीका नैवेद्य अर्पित किया। माघ शुक्ल पूर्णिमाको रात्रि-जागरणके साथ दिनमें भीगे कपड़े पहने रहतीं और नदी तटपर भगवान् धूर्जटिकी आराधनामें तन्मय रहतीं। फाल्गुनकी महाशिवरात्रि बिल्वके फल और पत्रसे पूजन करते हुए व्यतीत की। चैत शुक्ल चतुर्दशीको पलाश-पुष्प और दमतकसे उन्होंने पूजन किया। वैशाख कृष्ण तृतीयाको नये तिल, चावल और यवसे पूजन हुआ। ज्येष्ठ पूर्णिमाकी रात्रि नवीन वस्त्र और मालती पुष्पोंके पूजनसे बीती। इस महीनेमें उमा निराहार थीं। आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको उन्होंने मालती पुष्पोंके साथ काले वस्त्र चढ़ाये। श्रावण शुक्ल अष्टमीको यज्ञोपवीत और वस्त्र तथा भाद्र कृष्ण त्रयोदशीको नाना वस्तुओंसे पूजन किया। आश्विनमें भी वे पूजनमें अनेक प्रकारके पुष्प, फल और अन्नका नैवेद्य अर्पण करती थीं, किन्तु स्वयं केवल जल ग्रहण करती थीं।

उमाकी कठोर तपस्या देखकर सब देवता, ब्रह्मा और विष्णु उनके समीप गये । उन तपःसिद्धाने देवताओंको प्रणाम किया । देवताओंने उनके तपकी प्रशंसा की और वे सब मिलकर वहाँसे एक साथ कैलास गये ।

ब्रह्माजीने देवताओंके साथ कैलास पहुँचनेपर भगवान् भूतनाथकी स्तुति की । रुद्र प्रसन्न हुए । उन्होंने पूछा—'आप सब यहाँ कैसे आये हो ?'

विष्णुभगवान्के संकेत करनेपर ब्रह्माजीने कहा—'आपको हमारी सहायता करनी चाहिए । यदि आप मेरी सहायता नहीं करेंगे तो जगत्की रक्षा नहीं होगी । मेरी सृजन शक्तिका कोई अर्थ नहीं है, जब तक आप मेरी सहायता न करें ; क्योंकि सृष्टिमें कोई असुर मेरे द्वारा बध्य होगा, कोई श्रीहरिके द्वारा, कोई आपके द्वारा, कोई आदिशक्तिके द्वारा और कोई आपके औरस पुत्रके द्वारा । ऐसा ही सदा, सब कल्पोंमें होता रहा है । आप सदा तप-निरत रहेंगे तो सृष्टि नहीं चलेगी । अतः आप भार्या रूपमें किसी स्त्रीको स्वीकार करें ।'

भगवान् शंकरने कहा—'आत्माराम तपोनिरत योगीको स्त्रीसे प्रयोजन ? मैं जगद्विकार भोगरहित हूँ, मुझे योगमें ही आनन्द है । ज्ञानहीन ही कामेच्छा करते हैं । इस ओर मेरी रुचि नहीं है । लेकिन आप दोनों मुझसे अभिन्न हैं, आपकी बात अस्वीकार कर देना उचित नहीं है, इसलिए मैं विवाह करूँगा । आप कहीं ऐसी स्त्रीको ढूढ़ें जो मेरे तेजको ग्रहण करनेमें समर्थ हो । साथ ही जो मेरे योगस्थ रहनेपर योगिनी रहे और मैं जब चाहूँ तब कामिनी हो । एक बात और यदि वह कभी मेरी बातका विश्वास नहीं करेगी तो मैं उसका परित्याग कर दूँगा ।'

ब्रह्माजी और विष्णुने उमाका परिचय दिया । उनकी तपस्याका वर्णन किया । महेश्वरने सुप्रसन्न होकर कहा—'तथास्तु' ।

सती आश्विन शुक्ल अष्टमीको व्रत करके शिव-पूजा कर रही थीं । उन्होंने रात्रि-जागरण किया । नवमीको वे ध्यानस्थ थीं । सहसा भगवान् शंकर उनके सम्मुख प्रकट हुए । पञ्चमुख, त्रिनेत्र, चन्द्रशेखर, कर्पूरगौर, नीलकण्ठ, चतुर्भुज, त्रिशूली, भस्मोद्धलित, कोटि चन्द्रोज्वल, गंगाधर, अहिभूषण उन विश्वनाथको देखकर सतीने लज्जापूर्वक प्रणाम किया ।

महेश्वर बोले—'दक्षपुत्री । मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो ।

लज्जाके कारण सतीने मस्तक झुका लिया । वे कुछ बोल नहीं पा रही थीं । सस्मित सुप्रसन्न शिव बार-बार आग्रह कर रहे थे 'वरदान मांगो ।' अन्ततः बड़े संकोचसे सतीने कहा—'आपकी जो इच्छा हो, वह प्रदान करें ।'

शिव—'तुम मेरी वामांगी हो ।'

सती—'आप विवाह विधिसे मुझे स्वीकार करें ।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकर वहाँसे कैलास चले गये । सती भी प्रणाम करके माता-पिताके पास चली गयीं । उन्होंने सखीको अपने वरदान-का वर्णन सुनाया । सखीने माता-पितासे कहा । वे बहुत प्रसन्न थे, किन्तु कुछ समय बाद दक्षको चिन्ता होने लगी 'रुद्र सहज स्वभावसे उदासीन और आत्मलीन रहते हैं । वे समाधिमें बैठ जायँ तो सहस्रों युग बैठे रहते हैं । पता नहीं, पुत्रीको दिया गया वरदान उन्हें स्मरण भी होगा या नहीं ।'

भगवान् शिवने कैलाश जाकर ब्रह्माजीका स्मरण किया । वे हंस-वाहन सरस्वतीके साथ उपस्थित हुए । सतीको दिये गये अपने वरदानका वर्णन सुनाकर रुद्रने कहा—'आप दक्षके पास जायँ और उन्हें समझावें कि वे कन्यादान कर दें ।'

ब्रह्मा—'इसमें तो मेरा तथा देवताओंका ही हित है ।' यह कहकर वे दक्षके पास आये । दक्षसे उन्होंने कहा—'पुत्र ! तुम पूर्णकाम हो । तुमने मेरे मनोरथको पूर्ण किया है । मेरे अन्तरकी व्यथा मिटायी है । शिव अब समाधि त्यागकर सतीका चिन्तन करने लगे हैं । मेरी इच्छा पूर्ण हुई । अब तुम उनसे सतीका विवाह करो ।'

विधिपूर्वक दक्षने शिवके पास विवाहके लिए सन्देश भेजा । चैत्र शुक्ल त्रयोदशी रविवार, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें यह विवाह यात्रा प्रारम्भ हुई थी । दक्षने देवताओंका सत्कार किया । ब्रह्माने इस विवाहका पौरोहित्य किया । विवाह सम्पन्न होनेपर जब महादेव दक्षकन्याके साथ विराजमान हुए, तब स्तुति करते हुए विष्णुने कहा—

'स्निग्धनीलाञ्जनश्याम शोभया शोभसे हरः ।
दाक्षायण्या यथा चाहं प्रतिलोमेन पद्मयः ॥

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, १९.५)

अर्थात्—हे हर ! इस चिकने नीलाञ्जनके समान श्यामा दाक्षायणीके साथ आपके चन्द्रगौर श्रीविग्रहकी ऐसी शोभा हो रही है जैसे इससे ठीक उल्टी स्थितिमें मैं पद्मसम्भवाके साथ शोभित होता हूँ ।'

अन्ततः विष्णुने प्रार्थना की—'जो सतीको देखकर साभिलाष हो, आप उसका हनन करें ।'

शिव—'एवमस्तु ।'

अग्नि-परिक्रमाके समय सतीके वस्त्र उड़नेसे उनके पादद्वय दीखने लगे । उन्हें देखकर मायामोहित ब्रह्माका मन विकृत हो गया । वह विकार इतना ही था कि जिनके चरण इतने सुकुमार सुन्दर हैं उनका श्रीमुख कैसा होगा ? ब्रह्माके मनमें सतीके श्रीमुखको देखनेकी इच्छा अत्यन्त प्रबल हो गयी, किन्तु सतीने उस समय घूंघट कर रखा था । शिवके संकोचसे भी ब्रह्मा दृष्टि ऊपर नहीं कर पाते थे । अब उन्होंने युक्ति की । अग्निमें कुछ गीली लकड़ियाँ डाल दीं जिनसे धुआँ उठने लगा । उस धुएँके कारण शिवके अपने नेत्र हाथोंसे बन्दकर लिए । ब्रह्माने सतीके मुखसे वस्त्र इस प्रकार उठाया जैसे यह भी कोई विधि हो ; किन्तु उस अनन्त सौन्दर्यराशिको देखकर उनका तेज स्खलित हो गया । सर्वज्ञ भगवान् शंकर इस बातको समझ गये । रोषपूर्वक बोले—'आपने विवाहके समय अपनी पौत्री, जो मेरी कान्ता है, का मुख सविकार देखा है, इसे मैं जानता हूँ ।' बोलते हुए रुद्र सहसा क्रोधदीप्त हो उठे । उन्होंने हाथ बढ़ाकर त्रिशूल उठा लिया ।

सब देवता और मुनि हाहाकार करने लगे । सब प्रार्थना करने लगे—'सृष्टिकर्त्ताका अपराध क्षमा करें ।'

दक्षने बद्धाञ्जलि प्रार्थना की—'आप मेरे इन पिताको क्षमा कर दें ।'

शिव—'मैंने अभी-अभी विष्णुको वरदान दिया है कि जो मेरी पत्नीको साभिलाषा देखेगा, मैं उसका वध करूँगा । ब्रह्माको मारकर मैं अपने उस वरदानको सत्य करूँगा ।'

'ब्रह्माको मत मारो, ये प्रजाके स्रष्टा हैं'—विष्णुने प्रार्थना की । 'यह भी आपका ही कार्य है ।'

'देवदेव रमापति ! तुम मेरे प्रिय हो, मुझे रोको मत । मैंने तुम्हें वरदान दिया है । यह दुष्ट है, इसे मार दूँगा ।' रुद्रने कहा—'चिन्ता मत करो, मैं दूसरा सृष्टिकर्ता उत्पन्न कर दूँगा ।'

'प्रतिज्ञा-पूर्ति परके लिए योग्य है, स्वके लिए नहीं।' विष्णुने फिर प्रार्थना की—'ये आपके ही अंश हैं, आपके स्वरूपभूत हैं।'

शिव सन्तुष्ट हो गये। ब्रह्मा बहुत लज्जित हुए। उन्होंने पूछा—'मेरे अपराधका प्रायश्चित्त ?'

रुद्र—'तुम मेरे स्वरूपमें तप करो।' तबसे ब्रह्माका एक मस्तक त्रिनेत्र हो गया। उसे रुद्रसिर कहते हैं।

विवाह सानन्द सम्पूर्ण हुआ। अन्तमें रुद्रने ब्रह्मासे कहा–'आचार्यकी दक्षिणाके रूपमें जो चाहिए मांग लो।'

ब्रह्मा—'आप यहाँ इसी रूपमें नित्य निवास करें।'

सतीको साथ लेकर विशाल वृषभपर आरूढ़ होकर भगवान् शंकर विदा हुए। विष्णुके साथ ब्रह्मा आदि देवता भी कैलास आये और वहाँसे वे विदा हुए। यह विवाह-कथा स्वायम्भू मन्वन्तरकी है।

(शिव पुराण)

सती-प्रिय

विवाहके २५ वर्ष पश्चात् वर्षाके मेघोंको देखकर एक दिन सतीने महादेवसे प्रार्थना की—'मुझे ये मेघ रुचते नहीं हैं। यहाँ निरन्तर वर्षा होती है। इस ऋतुमें पशु-पक्षी घोंसला बनाते हैं। आप अब गृहस्थ हैं। यह वृक्षोंके नीचे जहाँ-तहाँ रहना मुझे अनुकूल नहीं पड़ता। मेरे लिए घरका प्रबन्ध करो।'

शिव—'कैलासपर, हिमालयपर या महाकाशी वाराणसीमें, तुम जहाँ कहो, मैं तुम्हारे लिए भवनकी व्यवस्था कर दूँ। मैं ऐसा स्थान बनाऊँगा कि वहाँ मेघ नहीं जा सकेंगे। सुमेरुके ऊपर मेघ नही जाते। तुम कहो तो हम वहाँ निवास करें।'

सती—'मैं आपके साथ हिमालयपर रहना चाहती हूँ।'

महादेव वहाँ पहुँचे। उनके संकल्पसे ही हिमालयके कैलास शिखरपर दिव्य भुवन व्यक्त हो गया। सतीके साथ वे वहाँ दीर्घकाल तक रहे।

सतीके जिज्ञासा करनेपर वे ज्ञानके परम गुरु अनेक प्रकारसे उपदेश करते थे। इनमें मंत्र-तंत्र-शास्त्र, नाना प्रकारके साबर मंत्र, यंत्र, प्रणाली और आचार शास्त्र, तत्व-उपदेश तथा प्राणियोंके कल्याणके लिए द्रवित जगदम्बिकाके पूछनेपर आयुर्वेद, ज्योतिष आदिका उपदेश किया। भगवान् शंकर ही इन सब शास्त्रोंके आदि उपदेष्टा हैं और उन्होंने सतीके पूछनेपर ही यह सब सुनाया।

× × ×

एक समय भगवान् रुद्रने सतीको अपने दिव्य लोकमें गोलोकका दर्शन कराया। परमपुरुष महेश्वरने विश्वकर्माका स्मरण किया और वहाँ एक श्रेष्ठ गौशाला निर्माणकी आज्ञा की। उस गौशालामें एक स्थानपर अत्युत्तम सिंहासनकी स्थापना की। इसके पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंको आमन्त्रित किया। सिद्ध, गन्धर्व, नाग, अप्सराएँ आदि सब आमन्त्रित हुईं। सब सपत्नीक उपहार लेकर आये। समस्त ऋषिगण, तीर्थ, वेद, पर्वत, नदियों आदिके अधिदेवतागण भी आमन्त्रित हुए। वहाँपर इन सबका महोत्सव प्रारम्भ हुआ। गायन, वाद्य वेदघोष, जयध्वनि—इससे सम्पूर्ण दिशाएँ पवित्र होने लगीं। शिवने श्रीहरिका स्मरण किया। उन्हें उत्तम मुहूर्तमें उस दिव्य सिंहासनपर आसीन किया। स्वयं अपने करोंसे उनको अलंकृत किया। मुकुट धारण कराया और उनका अभिषेक किया। स्वयं उनकी स्तुति करके ब्रह्मासे बोले—'आप तथा सब लोकेश सुनें। ये श्रीहरि मुझसे सर्वथा अभिन्न हैं। मेरे परम प्रिय हैं, प्राण हैं। मेरे भी वन्दनीय हैं। सब इनको प्रणाम करें, वेद इनका यशगान करें।'

भगवान् महेश्वरने फिरसे विष्णुकी स्तुति की और बोले—'हरि! आप सबके कर्ता, भर्ता और हर्ता हो। चारों पुरुषार्थोंके प्रदाता हो। अधर्मियोंके शासक हो और युद्धमें मेरे लिए भी अजेय हो। आपसे द्वेष करने वालोंको मैं अवश्य शासित करूँगा और आपके भक्तोंको मैं अवश्य निर्वाण पद दूँगा। आप मेरे स्वरूप हैं। ब्रह्माके भी आप उत्पादक और

रक्षक होंगे। रुद्र मेरा हृदय है, वह रुद्र आपसे और ब्रह्मासे भी पूज्य होगा। यह स्थान अबसे इस ब्रह्माण्डका गोलोक कहा जायगा परमोज्ज्वल होगा।

कमलापतिने गोप वेष धारण किया और गोप-गोपियोंके साथ वही रहने लगे।

× × ×

भगवान् शिव सतीके साथ जब हिमालयपर रहने लगे, हिमालयपत्न मैनाको उनसे बहुत स्नेह हो गया। वे सतीको अपनी आत्मजाके समान स्नेह करने लगीं। शिव उन्हें अपनी ही कन्याके पति लगते थे। सब ऋद्धि-सिद्धियों सहित वे इस दम्पतिकी सेवा करती थीं।

(शिवपुराण)

दक्षका दौरात्म्य

प्रजापति ब्रह्माने अपने सब पुत्र-पौत्रोंको एकत्र किया था। उनसे सभा सुसज्ज थी। उसमें प्रायः सभी प्रमुख देवता महर्षिगण उपस्थित थे। लगभग सबके पीछे प्रजापति दक्ष अपने अनुगतोंके साथ आये। उनके तेजसे दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। उनको आया देखकर ब्रह्मा और रुद्रके अतिरिक्त सभी देवता-ऋषि अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए। दक्षको उन्होंने प्रणाम किया। क्योंकि दक्ष ब्रह्माकाके ज्येष्ठ पुत्र हैं। वैसे भी सृष्टिकर्ताने उनको प्रजापतियोंमें प्रधान पद दे रखा है। दक्षने ब्रह्माको प्रणाम किया और ब्रह्माकी आज्ञा पाकर अपने आसनपर बैठ गये। लेकिन पहलेसे बैठे अभ्युत्थान न देने वाले रुद्रको देखकर क्रोधसे तिलमिला उठे। आसन ग्रहण करनेके स्थानपर वे पुनः आवेशमें खड़े हो गये।

दक्षता—कर्म-कुशलता अपने आपमें बहुत बड़ा सद्गुण है, किंतु

उसका एक बहुत बड़ा दोष है अहंकार, और अहंकार जीवके कल्याणका—शिवका परम शत्रु है। जो कार्य-दक्ष है, वह अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान, प्रशंसा चाहता ही है और यह न प्राप्त हो तो उसे वह अपनी अवमानना मान लेता है, रुष्ट हो जाता है। यह रोष सामान्य नहीं होता; क्योंकि जो सम्मान पाना अपना स्वत्व मान चुका है, अवमाननाका अनुभव उसमें बद्धमूल बैर उत्पन्न करता है।

रुद्रका अभ्युत्थान न देना दक्षके लिए असह्य हो गया। वह इस प्रकार कठोर दृष्टिसे रुद्रको देखने लगा मानो उन्हें जला देगा और सम्पूर्ण सभाको सम्बोधित करते हुए बोला—'ब्रह्मर्षियों! देवताओं! अग्नियों! और जो भी उपस्थित हैं, मेरी बात सुनें। मैं अज्ञानवश अथवा द्वेषवश नहीं बोल रहा हूँ, सज्जनके लिए उचित जो आचार है, उसकी बात कह रहा हूँ। (रुद्रकी ओर संकेत करके) यह लोकपालोंके यशका विनाश करने वाला निर्लज्ज मूर्ख यहाँ बैठा है जिसने सत्पुरुषोंके द्वारा आचरित मार्गको दूषित किया है। भले यह मुझसे पहले उत्पन्न हुआ हो, किंतु यह मेरा पुत्र हो चुका; क्योंकि इसने ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निकी साक्षीमें मेरी सावित्रीके समान पवित्र कन्याका साधुपुरुषोंके समान पाणिग्रहण किया। उस मृगलोचनी कन्याका इस मर्कटलोचनने पाणिग्रहण करके भी न तो मुझे देखकर अभ्युत्थान दिया, न प्रणाम किया और न वाणीसे ही इसने मेरा सत्कार किया। यह पहलेसे ही क्रियाहीन है, अपवित्र है, अभिमानी है, मर्यादा तोड़ चुका है। इसे कन्या देनेकी इच्छा न होनेपर भी मैंने लोकस्रष्टा अपने पिताजीकी आज्ञा स्वीकार करके इस प्रकार अपनी पुत्री प्रदान की जैसे कोई शूद्रको वेदवाणी प्रदान करे (जिसका वह पूरा उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि श्रुतिका शुद्धोच्चारण उसके लिए अनभ्यस्त होनेसे अशक्य है।) प्रेतोंके रहनेके स्थानमें रहता है, घोर भयंकराकृत भूतों-प्रेतोंको गण बनाकर उनसे घिरा रहता है, बालकके समान नंगा, बाल बिखेरे, कभी हँसता, कभी रोता हुआ भटकता रहता है। चिताकी भस्म पूरे शरीरसे लगाये, मुर्दोंकी हड्डीकी माला पहने, हड्डियोंको आभूषण बनाते यह शिव कहा जाने वाला अशिव उन्मत्त है और उन्मत्त लोगोंको ही प्रिय है। ये भूतप्रेत आदि जो तमोगुणके प्राणी हैं उनका स्वामी है। ऐसे उन्मत्तनाथ, नष्टशौच, स्वभावसे ही शत्रुता रखने वालोंको मैंने परमेष्ठिकी प्रेरणासे अपनी साध्वी पुत्री प्रदान कर दी।'

इस प्रकार दक्षने भगवान शंकरकी निन्दा की। यद्यपि वे शान्त बैठे थे, किंतु फिर भी दक्षका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने हाथमें जल लिया और शाप दिया—'यह रुद्र इन्द्र, उपेन्द्र आदि देवताओंके साथ किसी भी दैवयज्ञमें भाग न प्राप्त करे, क्योंकि यह देवताओंमें अधम है।'

'रुकिए, शान्त हो जाइए'—इस प्रकार उस सभाके मुख्य सदस्योंने दक्षको शाप देनेसे रोका, मना किया था, किंतु दक्षने शिवको शाप दिया। क्रोधकी बहुलताके कारण वह वहाँ बैठ नहीं सकता था। आवेशमें ही सभासे निकल कर अपने भवन् चला गया।

भगवान् महेश्वरके प्रधान गण नन्दीश्वर सभाके द्वारपर थे। दक्ष इतनी झुंझलाहटसे सभागृहसे बाहर गया कि उन्हें आश्चर्य हुआ। क्या हुआ, यह जिज्ञासा करनेपर किसीने उनको सूचना दी—'दक्षने हमारे आराध्यको शाप दिया है और कुछ लोगोंने उसका अनुमोदन भी किया है।' यह सुन-कर नन्दीश्वर क्रोधसे काँपने लगे। उन्होंने दक्षको और उसके सब अनुमो-दकोंको अत्यन्त दारुण शाप दिया—'जो किसीसे भी शत्रुता न करने वाले करुणावरुणालय देवदेव महादेवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्वेष करता है वह पार्थक्य दृष्टि रखने वाला अज्ञानी सत् तत्वके ज्ञानसे विमुख रहे। वेदकी पुष्पिता वाणीसे कंगाल बनी उसकी बुद्धि कर्मविस्तारमें फैली रहे। ग्राम-सुखकी इच्छामें आसक्त, घरके झूठे घमण्डमें वह लगा रहे। परम तत्वके ध्यानमें लगी विशुद्ध बुद्धि उसको प्राप्त न हो। विस्मृत गति वह पशु बना रहे अत्यन्त स्त्रीकामी रहे और दक्ष शीघ्र ही बकरेके मुख वाला हो जाय। अविद्याको विद्या मानने वाले कर्मकाण्डमें ही लगकर जड़ बने गये लोग जो भगवान् शिवकी अवमानना करते हैं, सदा जन्म-मरणके चक्रमें भटकते रहें। जो हर द्वेषी हैं वे श्रुतिकी पुष्पिता वाणीमें, जिसमें केवल सुगन्धिका आधिक्य मात्र है, छाछ मथनेके समान अन्तःकरणको लगाए हुए मोहित होते रहें। विद्या और तपस्याका व्रत धारण करने वाले शिवद्वेषी ब्राह्मण सर्वभक्षी हो जायँ। धन, शरीर और इन्द्रियोंमें ही सुख मानकर भिखारी बने पृथ्वीपर भटकते रहें।'

नन्दीश्वरका शाप अत्यन्त दारुण था। लगभग समस्त ब्राह्मण कुलके लिए था। यह बात परमर्षि भृगुको असह्य हो गयी। उन्होंने भी दुरत्य शाप दिया—'जो श्रुति विपरीत केवल भवव्रतधारी—केवल पशुपति आराधक हैं,

वे और उनके अनुयायी पाखण्डी हो जायँ, क्योंकि वे सद्शास्त्रसे उल्टा चलने वाले हैं। वे नष्टशौच, मूढ़बुद्धि, जटा-भस्मास्थिधारी उस शिव-दीक्षामें प्रवृत्त हों जहाँ सुरा ही इनका देवता है क्योंकि तुम लोग वेद और ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हो, मर्यादाको धारण करनेके साधनोंको दूषित करते हो, इसलिए पाखण्डी हो जाओ। लोकके लिए यही कल्याणकारी सनातन मार्ग है कि श्रुतिका अनुशासन स्वीकार किया जाय—उस श्रुतिका, जिसमें भगवान् जनार्दनका प्रतिपादन है। तुम लोग ऐसे परम शुद्ध सज्जनोंके सनातन मार्ग वेदकी निन्दा करते हो, इसलिए पाखण्डको प्राप्त हो; जहाँ तुम्हारे भूतनाथ हम्हारे साथ रहें।'

इस प्रकार महर्षि भृगुको शाप देते देखकर भगवान् शिव खिन्न हो गये। वे चुपचाप उठे, अपने गणोंको उन्होंने संकेत किया, और सबको लेकर वहाँसे निकल गये। शेष बचे लोगोंने वह सत्र किसी प्रकार पूरा किया क्योंकि अब उसमें उल्लास नहीं रह गया था। फिर सबने प्रयाग-त्रिवेणीमें आकर अवभृथ स्नान किया और अपने-अपने भवनको चले गये।

जब नन्दीश्वर द्वारसे सभागृहके सम्मुख गये थे और शाप देने लगे थे, भगवान् शिवने उन्हें संकेतसे निषेध किया, किंतु क्रोधावेशमें नन्दीश्वरने उस संकेतको देखा नहीं। सभासे निकलकर रुद्रने केवल इतना ही कहा—'तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिए था। तुमने ब्रह्मकुलको व्यर्थ शाप दिया। तुम तत्वज्ञ हो, जानते हो कि वेद मेरे स्वरूप हैं, वे प्रशप्त नहीं हो सकते। क्रोधका त्याग करो।' इससे अधिक अब और कुछ किया नहीं जा सकता था क्योंकि नन्दीश्वरके लिए स्वामीकी इतनी भर्त्सना पर्याप्त थी।

(श्रीमद्भागवत)

सती-त्याग

भगवान् महेश्वर आत्माराम हैं, किन्तु लोकमें जब लीला करनी होती है, उनका व्यवहार वैसा ही होता है, जैसा किसी भी उत्कृष्ट तत्वज्ञका होना चाहिए। बुद्धि परमतत्वमें व्यवस्थित, मन सगुण-साकारके चिन्तनमें तन्मय और शरीर लोकहितमें लगा हुआ। रुद्रके जीवनका भी यही स्वरूप है। वे कैलासपर हों अथवा परिव्रजनमें, कैलासपर वे देवीको नाना प्रकारके संसारकी कल्याणकारिणी विद्याका उपदेश करते हैं और घूमने निकलते हैं तो ,किसी अधिकारी सत्पुरुषकी साधनाको अपने सान्निध्यसे सार्थक बनाते हैं।

इसी प्रकारकी अपनी यात्रामें एक बार भगवान् शंकर देवी दाक्षायणीके साथ भारत भूमिपर विन्ध्यके दक्षिण पहुँचे। अगस्त्य आश्रममें उन्होंने महर्षि अगस्त्यका आतिथ्य ग्रहण किया, आग्रह करके अगस्त्यसे रामचरित सुना और अगस्त्यको तत्वोपदेश किया, राम-भक्तिका स्वरूप एवं साधन समझाया। वहाँसे विदा लेकर कैलासके लिए प्रस्थित हुए।

वर्तमानसे प्रायः २७ या इससे भी अधिक कल्प पहलेका यह चरित है, क्योंकि रामचरितमानसमें काकभुसुण्डिने गरुड़से कहा है—

'इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा । बीते कलप सात अरु बीसा ।।'

यह चरित इससे भी पूर्वका होना चाहिए; वह भी कल्पके प्रारम्भिक त्रेताका, क्योंकि सती पाद्मकल्पके प्रारम्भमें ही थीं।

वनमें सहसा वल्कलवसन जटामुकुटी श्याम-गौर धनुर्धर अवध-राजकुमार श्रीराम-लक्ष्मण दीख पड़े। उस समय श्रीरघुनाथ जानकी-वियोगमें विक्षिप्तप्राय दीखते थे। वे लीलामय श्रीजनकनन्दिनीके प्रेमकी महत्ता सूचित करनेके लिए उनके वियोगमें स्वयं प्रलाप करते इधर-उधर दौड़ते घूम रहे थे। लताओं, वृक्षों, पशु-पक्षिओंसे मैथिलीका पता पूछ रहे थे। कुमार लक्ष्मण अपने अग्रजको संभालने और समझानेके प्रयत्नमें व्यस्त थे।

'जय सच्चिदानन्द'—भगवान् रुद्रने दूरसे ही बद्धाञ्जलि मस्तक झुकाया। समीप जानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। यह अवसर नहीं था कि अपनेको प्रकट करके परिचय किया जाय। लेकिन श्रीरामके दर्शनसे शिवका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रोंसे आनन्दाश्रु गिरने लगे। बार-बार उनके भस्मभूषित श्रीअंगमें कम्प होता रहा। वे इस प्रकार चल रहे थे कि सतीकी तरफ भी उनका ध्यान नहीं था।

सतीने शिवकी यह आनन्दविभोर अवस्था देखी। देर तक प्रतीक्षा करती रहीं कि स्वामी सावधान हों, किन्तु पर्याप्त देर तक शिव उसी अवस्थामें निमग्न रहे। प्रेमको कैसे स्वीकार करना चाहिए मानों रघनाथने अपनी विह्वलताके द्वारा इसे प्रत्यक्ष दिखाया था—इस भावका स्मरण भगवान् शँकरको तन्मय किये था, किन्तु सतीके हृदयमें मन्थन चल रहा था—'मेरे स्वामी देवेश्वर हैं, त्रिलोकीके वन्दनीय हैं, इन्द्र आदि देवता भी इनके चरणोंमें अपना मस्तक रखनेमें अपना सौभाग्य मानते हैं। इन्होंने सामान्य राजकुमारोंको सच्चिदानन्द कहकर प्रणाम किया—यह कैसे उचित है।'

शास्त्रोंका नियम है कि अपनेसे छोटेको प्रणाम करने, सम्मान देनेसे उसकी आयु, श्री और तेजका क्षय होता है। शिव ऐसा कोई अमंगल संकल्प इन राजकुमारोंके लिए करेंगे—इस प्रकारका कोई निमित्त सतीको जान नहीं पड़ता था। फिर उनके दर्शनसे शिवकी जो आनन्दविभोर अवस्था हो गयी थी, वह भी सतीके लिए बुद्धिगम्य नहीं थी। उनके मनमें तर्क चल रहा था—'यदि राम अवतार हैं तो विष्णुके होंगे, और विष्णु भी तो मेरे स्वामीके समान ही सर्वज्ञ हैं। फिर वे एक अज्ञानी सामान्य पुरुषके समान अपनी पत्नीका पता क्यों पूछ रहे हैं ? उनमें इतनी वियोग-विह्वलता क्यों है ? वे तो आनन्दसिन्धु हैं।' लेकिन सती यह भी नहीं समझ पा रही थीं कि सर्वज्ञ आत्माराम भगवान् शंकर किसी मर्त्यको सच्चिदानन्द कहेंगे, उसे प्रणाम करेंगे और उसको देखकर आनन्द-मग्न होंगे।

बहुत देरमें शिव सावधान हुए। उन्होंने सतीकी ओर देखा और उनका मनोमन्थन समझ गये। बोले—'दक्षपुत्री ! अभी ही तो तुमने मेरे साथ महर्षि अगस्त्यसे इन कौशल्यानन्दवर्धनका परम पावन चरित सुना

इन्हीं आनन्दकन्द रघुनन्दनकी भक्तिका स्वरूप और साधन मैंने महर्षिको सुनाया है। यह सब सुननेके बाद भी तुम्हारे मनमें ऐसा विक्षेप क्यों ?

सतीने कुछ कहा नहीं, किन्तु उनका मन समाधान नहीं पा रहा था। उन्हें संतोष नहीं हो रहा था। यह बात उनकी भावभूमिसे परे थी कि अवतार विष्णुका ही नहीं, परात्पर परमपुरुषका भी होता है और वे सामान्य नर-नाट्य भी करते हैं। भगवान् शंकरने समझानेका प्रयत्न किया लेकिन नियम है कि जो जिस भावभूमि पर है, उससे बहुत अधिक ऊपरकी बात उसकी समझमें नहीं आती। कोई कुछ भी कहे, उसकी बातोंका अर्थ हम अपने स्तरसे ही समझते हैं। अनेक बार हम उपदेष्टामें सम्मान बुद्धि होनेके कारण मौन रह जाते हैं, लेकिन उसकी बात हमारा अन्तःकरण, ग्रहण नहीं करता। सतीकी यही अवस्था थी। भगवान् शिवसे उनके चित्तकी स्थिति छिपी नहीं थी, अतः अन्तमें उन्होंने कहा—'यदि तुम्हारे मनमें बहुत अधिक सन्देह है और तुम्हारा समाधान नहीं हो पा रहा है तो जाकर परीक्षण कर लो। जिस प्रकार भी तुम्हारा संदेह दूर हो, वैसा करो। तब तक मैं यहाँ इस समीपके वटकी छायामें बैठकर तुम्हारे लौटनेकी प्रतीक्षा करूँगा।'

सतीको यह बात ठीक लगी, जबकि यह ठीक नहीं थी। भूल यहीं हो गयी। वे एक ओर मानती हैं कि भगवान् शिव सर्वज्ञ हैं और दूसरी तरफ उनकी बातमें संदेह करके परीक्षा भी लेने जा रही हैं। इस प्रकारका संदेह किसीके लिए भी मंगलकारी नहीं हुआ करता। परीक्षा कैसे ली जाय, इस सम्बन्धमें भी सतीने अधिक नहीं सोचा। उन्होंने झटसे संकल्प-बलसे अपनेको सीताके रूपमें परिणत किया और जिस मार्गसे ढूंढ़ते हुए राम-लक्ष्मण जा रहे थे उसी मार्गसे इस प्रकार श्रीरघुनाथकी ओर बढ़ीं जैसे श्रीजानकीने जान-बूझकर छिपे रहनेका नाटक किया हो और अब प्रकट होकर चली आ रही हैं।

सतीका यह परीक्षण-प्रयोग अविवेकपूर्ण था। इसकी मूलभूत त्रुटि यह थी कि यह सोचा नहीं गया था कि यदि श्रीरघुनाथ इस बनाये हुए रूपको सचमुच ही सीता मान लें और अचानक समीप आकर आलिंगनमें ले लें तो क्या होगा। यह श्रीरामका अपराध तो होगा नहीं, लेकिन सतीका

पातिव्रत—परपुरुषको स्पर्शका जान-बूझकर अवसर देनेका यह प्रयत्न मानसिक दृष्टिसे धर्मकी कसौटीपर किसी भी प्रकार उचित नहीं था और जब धर्मका त्याग किया जाता है, धर्म रक्षक नहीं रह जाता है।

श्रीरघुनाथने सतीके इस कृतिम वेषको जान लिया। सहसा उनके श्रीमुखसे जो जानकीके वियोगका व्याकुल भाव था, लुप्त हो गया। मुख गम्भीर बन गया। दोनों हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाकर उन्होंने कहा—'मैं इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि राम आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करता हूँ। आप यहाँ वनमें अकेले कैसे भ्रमण कर रही हैं ? भगवान् वृषभध्वज कहाँ हैं ? उन्होंने आपको छोड़ कैसे दिया ?'

लक्ष्मणने भी सतीका कृत्रिम वेष देख लिया, भले उन्होंने पहचाना न हो, इतना समझ गये थे कि मेरी वन्दनीयासे भिन्न ही कोई हैं। लक्ष्मणकी दृष्टि नारीके शरीरपर जाती ही नहीं थी, सीताके समान सतीके भी चरण ही देखे थे उन्होंने, लेकिन इन चरणोंमें उनको वह आकर्षण नहीं लगा जो श्रीजनकनन्दिनीके चरणोंके दर्शनसे प्राप्त होता है। अतः वे शान्त रहे।

सतीने ध्यान दिया होता तो वे उसी समय चौंक जातीं। सत्य-संकल्प श्रीरघुनाथने कहा था—'वृषभध्वजने आपको छोड़ कैसे दिया ?', यह बात सचमुच भविष्यकी सूचक है। इसपर तो किसीने भी ध्यान नहीं दिया था। सतीको बहुत संकोच हुआ, बहुत लज्जा आयी। वे शीघ्रतासे मुड़ीं, किन्तु देखती हैं कि सामने श्रीरघुनाथ, लक्ष्मण जानकीके सहित चले आरहे हैं। अब वे जिधर मुड़ती हैं, उधर ही वही दृश्य है—राम-लक्ष्मण-जानकी। जैसे प्रकृतिका कण-कण, वृक्षोंके पत्ते-पत्ते, डाल, तने—सब कुछ राममय हो गया हो। सती बैठ गयीं, वहीं मार्गमें बिना किसी आसनके, बिना देखे कि वे कहाँ बैठ रही हैं, बैठ गयीं और उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए। कोई शब्द, कोई आहट, किसी प्रकारका स्पन्दन प्रतीत नहीं हुआ। जब सगुण-साकार रूपमें परम तत्व अभिव्यक्त होते हैं, मनको एकाग्र करनेका, विक्षोभरहित करनेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। मन है भी यह अनुभूति ही लुप्त हो जाती है। सती कब तक बैठी रहीं, यह पता उन्हें स्वयं नहीं है तो दूसरा कैसे बतलावे। जब उन्होंने नेत्र खोले, वन पूर्ववत्

था, किंतु राम-लक्ष्मण जा चुके थे। उनके वहाँ होनेका या आस-पास होनेका कोई चिन्ह नहीं था।

सती लौटीं, किंतु उनके चित्तमें बहुत विक्षोभ था, बड़ा संकोच था, बड़ा भय था—'मैं अपने स्वामीसे क्या कहूँगी ?' कोई उत्तर सूझता नहीं था, क्योंकि वे यह कैसे कहेंगी कि मैं सीताका रूप बनाकर रामके सामने गयी थी।'

उन्हें समीप आया देखकर भगवान् रुद्र हँसे। वे अब तक श्रीरघु-नाथका ही चिंतन करते बैठे थे। सहज भावसे सतीसे पूछ लिया—'तुमने परीक्षा ले ली ? कैसे परीक्षा ली ? क्या निर्णय किया ?'

सतीने संकोचपूर्वक कह दिया—'स्वामी ! मैंने कोई परीक्षा नहीं ली, आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिए मैंने भी जाकर आपकी भाँति ही उनको प्रणाम कर लिया है।'

असत्य-अधर्म—ये अज्ञानकी संतानें हैं, इसलिए जब ये आती हैं, समझ विदा हो जाती है। भगवान् शंकरके पहले समझानेपर भी सती परीक्षा लेने गयी थीं, अब लौटकर यह कहना कि 'मैंने कोई परीक्षा नहीं ली और मैं आपकी बातपर विश्वास करती हूँ' यह बात स्वयंमें ही अत्यन्त अविश्वनीय है। कोई सामान्य व्यक्ति भी इसपर विश्वास नहीं करेगा। फिर सती जानती हैं कि उनके स्वामी सर्वज्ञ हैं। शिवसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। इतनेपर भी अधूरा, अपूर्ण, अपर्याप्त बहाना सतीके भय और अस्थिर मानसका ही परिचायक था।

बात विश्वास करने योग्य थी ही नहीं, इसलिए शिवने ध्यान करके सत्यका साक्षात्कार किया। लेकिन सत्यको जानकर भी वे अत्यन्त गम्भीर हो गये। अब मनोमंथन रुद्रके मनमें आरम्भ हुआ—'करना क्या चाहिए ! सतीने मानसिक अनाचार किया है। मेरे लिए भी अब यह बात बहुत महत्वकी हो गयी है कि सतीने श्रीजानकीका स्वरूप धारण किया था। भले ही यह छलसे किया गया हो, परन्तु किया गया है और व्यवहारमें शरीरकी ही महत्ता है। परम तत्व एक अभिन्न निर्विकार है। सगुण साकार रूपमें श्रीरघुनाथ मेरी आराधना करते हैं और मैं उनकी आराधना

करता हूँ। हमारा अभिन्नत्व तात्विक है और हमारा भिन्नत्व व्यावहारिक है, लोकादर्श है। अब इस लोकादर्शमें सतीके द्वारा किया हुआ यह व्यतिक्रम उपेक्षणीय नहीं है।' कुछ क्षण शिव चिन्तन करते रहे। फिर उन्होंने निश्चय किया—'सतीको उनके इस शरीरसे मैं अब फिर पत्नीके रूपमें स्वीकार नहीं करूँगा।'

सहसा आकाशवाणी हुई—'धन्य भगवान् महेश्वर! आपके अतिरिक्त इस प्रकारका कठोर निश्चय दूसरा कोई करनेमें समर्थ नहीं है। आप ही भक्तिकी ऐसी उत्कृष्टतम मर्यादाके स्थापनमें समर्थ हैं।'

सतीने जिज्ञासा की, उनके प्रभुने ऐसी कौन-सी प्रतिज्ञा की है, किन्तु शिवने प्रश्नका उत्तर देना टाल दिया। सती शिवके व्यवहारसे समझ गयीं कि मेरे स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है क्योंकि अब शिव उनके साथ सम्मानका, सहानुभूतिका व्यवहार तो कर रहे थे, किन्तु उनके व्यवहारमें एक तटस्थता थी। वह सरसता नहीं थी जो पहले सतीको अनायास प्राप्त थी।

शिवने सतीको अधिक पूछनेका अवसर नहीं दिया। वे मार्गमें नाना प्रकारकी कथाएँ सुनाते चलते रहे। प्रयत्न कर रहे थे जिससे सती अधिक खिन्न न हों। कुछ पूछने-कहनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि सतीका विषणानन यह बतलानेको पर्याप्त था कि उन्होंने परिस्थिति समझ ली है कैलास आकर भगवान् शंकरने शीघ्र ही अपने शाश्वत वटवृक्षके नीचे सिंहचर्म अपने हाथोंसे डाला। इस सेवाका अवसर भी सतीको प्राप्त नहीं हुआ। सती-विवाहके पश्चात् यह पहला अवसर था कि शिव आसनपर बैठ गये और उन्होंने नेत्र बन्द करके समाधिकी स्थिति प्राप्त कर ली।

दिशाएँ निस्पन्द, पवनका वेग भी शिथिल, कैलाशपर वैसे भी पशु-पक्षी नहीं होते, भूत-प्रेत-पिशाच-प्रमथ आदिका निर्घोष तत्काल शान्त हो गया, चाञ्चल्य दूर हो गया। केवल नन्दीश्वर दूर अपना त्रिशूल लेकर सावधान खड़े हो गये। तर्जनीके संकेतसे ही उन्होंने गणोंको दूर चले जानेको कहा। देवी सतीकी सेवामें गणोंने कोई प्रमाद नहीं किया, किन्तु

भगवान् शिवके समाधिमें बैठ जानेपर कैलासका वातावरण इतना शुद्ध-सात्विक हो गया कि दूसरोंको भी कुछ करने, कुछ भोगनेकी प्रवृत्ति नहीं रह गयी। सबके लिए ध्यानस्थ रहना स्वाभाविक हो गया और बाह्य प्रवृत्ति कष्टकर-अस्वाभाविक बन गयी। इस सात्विकताके महोच्छ्वासमें भी सतीका मानस पति-परित्यागकी पीड़ासे परम व्याकुल था। उनका प्रत्येक क्षण कल्पके समान व्यतीत हो रहा था। 'किसी प्रकार देह छूट जाय'—एक ही कामना निरन्तर परमपुरुषसे यह एक ही प्रार्थना।

कहते हैं, भगवान् शंकर ८७ सहस्र वर्षके पश्चात् समाधिसे जागे। उनके कण्ठसे अनाहत अद्वितीय प्रणव ध्वनि उठी जैसे वे निखिल ब्रह्माण्डको अपने अंकमें ले लेंगे। सतीको तनिक आश्वासन प्राप्त हुआ किन्तु जब वे अपने आराध्यके समीप अंजलिमें पुष्प लिए पहुँचीं, शिवने उनकी पुष्पाञ्जलि अत्यन्त तटस्थ भावसे स्वीकार कर ली। उनकी प्रणतिका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। स्वयं उनके बैठनेके लिए अपने सम्मुख आसन डाल दिया। यह संकेत ही था कि वे सतीको वामांगी स्वरूप स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं हैं।

सती उस आसनपर बैठ गयीं। बैठना पड़ा कहना चाहिए, क्योंकि दूसरा उपाय नहीं था। उसको अस्वीकार करना भी आराध्यकी अवज्ञा थी, किन्तु कोई शूलोंका आसन—प्रज्वलित अग्निका आसन, उस आसनसे कहीं सुखद होता सतीके लिए। बेचारी सती!

———

दक्ष-यज्ञ-ध्वंस

प्रजापति दक्षने भगवान् शंकरको शाप दिया था कि यज्ञमें देवताओंके साथ रुद्रको भाग नहीं मिलेगा, लेकिन किसीने भी कोई ऐसा यज्ञ करनेका साहस ही नहीं किया जिसमें रुद्रकी अवमाननाका प्रश्न उठे। कोई भी न तो दक्षको रुष्ट करना चाहता था और न भगवान शिवके अपमानके लिए प्रस्तुत था। दक्ष इस स्थितिसे सन्तुष्ट नहीं थे। वे प्रजापतियोंमें अग्रणी बनाये गये थे, अतः उन्होंने स्वयं ही अश्वमेध यज्ञ करना निश्चय किया। इस यज्ञके लिए गंगाद्वार (हरिद्वार) के समीप कनखलके पुराणप्रसिद्ध, परम पावन स्थलको चुना गया। दक्षने पूरे आडम्बरसे बहुत बड़ा यज्ञ करनेका आयोजन किया। इस यज्ञमें ८८ सहस्र ऋषि होता, ६४ सहस्र उद्गाता, इतने ही अध्वर्यु और ऋत्विक थे। अगस्त्य, भृगु, कश्यप, मरीचि आदि सब मुख्य महर्षि, प्रायः सभी देवता, सिद्ध, नाग, गन्धर्व विद्याधर, किन्नर, वसु, आदित्य, लोकपाल, सुर्रषि, महर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि बुलाये गये थे, किन्तु शिवको आमन्त्रित नहीं किया गया था।

जब यज्ञके प्रारम्भमें सब आमन्त्रित आ बैठे परम शैव महर्षि दधीचिने सभामें उठकर कहा—'मेरे स्वामी भगवान् सदा-शिव यहाँ क्यों नहीं हैं? उनकी उपस्थितिसे ही समस्त अमंगल नष्ट होते हैं। उन मंगलमयको ब्रह्मा या विष्णुको भेजकर बुलाया जाना चाहिए अथवा दक्षको स्वयं इन्द्रादिके साथ जाकर प्रार्थना करके दाक्षायणीके सहित उनको ले आना चाहिए। वे साक्षात् परमात्मा हैं। उनके आनेसे यज्ञ पवित्र हो जायगा, अन्यथा यह अपूर्ण ही रहेगा।'

दक्ष यह सुनकर क्रोध पूर्वक हंसते हुए बोले—'देवमूल भगवान् विष्णु हैं जिनमें सनातन धर्म स्थित है। उन्हें मैंने यज्ञमें बुला ही लिया है, अतः अब यज्ञमें न्यूनता क्या है? लोकपितामह ब्रह्मा तथा सब वेद यहाँ आये हैं। देवताओंके साथ देवेन्द्र भी उपस्थित हैं। सभी ऋषि-महर्षिगण यहाँ पधार चुके हैं। अब रुद्रसे हमें क्या प्रयोजन है? वह अकुलीन, पितृ-मातृ-रहित, भूत-प्रेत-पिशाचोंका स्वामी अहंकारी है, अतः मैंने उसे नहीं बुलाया है। आप सब मिलकर इस यज्ञको सफल करें।'

दधोचि—'शिवके बिना यह यज्ञ अयज्ञ ही हो रहा है। इसमें तुम्हारा विनाश होगा।' शाप देकर वे यज्ञ-मण्डपसे उठकर अपने आश्रम चले गये। और भी जो शिवभक्त वहां थे वे वहाँसे निकल गये।

इन लोगोंके जानेपर दक्ष हँसा—'मैं यही चाहता था। रुद्रके समर्थक और सेवक उसीके समान अशिष्ट एवं सत्कारके अयोग्य हैं। उनका यहाँसे जाना अच्छा ही हुआ। इन घमण्डी श्रुतिबाह्य लोगोंको बुलाना ही उचित नहीं था। आप सब अब यज्ञ प्रारम्भ करें।'

× × × ×

कैलासपर सतीने विमानोंसे देवताओंको एक ही दिशामें जाते हुए देखा, ऋषियोंको भी, गन्धर्व, अप्सराओंको भी। उन्हें कौतूहल हुआ कि ये सब कहाँ जा रहे हैं। इतनेमें ही चन्द्रमाका विमान निकला। सतीने अपनी सखी विजयासे कहा—'तू रोहिणीसे पूछ कि चन्द्रमा कहाँ जाता है?'

चन्द्रमाने दक्षके यज्ञका जो वर्णन किया और यज्ञोत्सवमें अपना जाना बतलाया, उसे सुनकर विजयाको आश्चर्य हुआ। उसने आकर देवीसे कहा। देवीको भी आश्चर्य हुआ—'मुझे मेरी माता वीरणी तथा पिताने ऐसे अवसरपर स्मरण नहीं किया?'

सती भगवान् शिवके पास गयीं। विजयाको उन्होंने वहीं छोड़ दिया था। उन्होंने शिवसे जानेकी अनुमति मांगी। भगवान् शिवने मना किया, किन्तु सतीका बहुत आग्रह था। शिवने समझाया—'जहाँ जानेसे कोई क्षुब्ध होता हो वहाँ जाना उचित नहीं, क्योंकि स्वजनोंके द्वारा किया हुआ अपमान इतना उत्पीडक होता है कि कोई भी सम्मानित व्यक्ति उसे सह नहीं पाता। यह मरणका कारण भी हो सकता है।'

सती शिवके परित्यागसे इतनी व्यथित थीं कि उन्हें अपने देह-त्यागमें सुख प्रतीत होता था। उन्होंने रुदन प्रारम्भ किया और अकेले ही चल पड़ीं। भगवान् शंकरके संकेतसे सहस्रों शिवगण उनके साथ हो गये। उन्हें वृषभारूढ़ किया और जयध्वनि करते हुए उनको ले गये। सतीका अपने पिताके घरमें माताने तथा बहिनोंने स्वागत किया, किन्तु दक्षने उनकी ओर देखा ही नहीं। सतीने जाकर देखा, यज्ञशालामें सभी देवताओंका

भाग निश्चित है, उनके बैठनेके स्थान हैं, किन्तु भगवान् शिवका भाग कहीं नहीं है। यह देखकर सतीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने पृथक्-पृथक् विष्णु, ब्रह्मा, वशिष्ठ आदिको डाँटा—'तुमने शिवके भागके बिना इस अशिव यज्ञमें अपना भाग कैसे स्वीकार कर लिया ?'

दक्ष क्रूर दृष्टिसे सतीकी ओर देखते हुए क्रोधपूर्वक बोला—'तेरा यहाँ क्या काम है ? आ गयी है तो रहना है रह, नहीं तो चली जा, पर यहाँ आयी ही क्यों ? तेरा पति शिव अमंगल, अकुलीन, भूत-प्रेत पिशाचोंका स्वामी है, अतः उसे मैंने नहीं बुलाया है। क्रोधका त्याग करके शान्त हो। यज्ञमें आ ही चुकी है तो अपना भाग ग्रहण कर।'

सती सोचने लगीं—'मैं यदि यहाँसे स्वामीके पास लौट जाऊँ तो उनको क्या कहूँगी।' उन्होंने सब देवताओंकी, दक्षकी भर्त्सना की और विधिपूर्वक आचमन करके शुद्ध पीतवस्त्र धारण करके आसन लगाया, नेत्र बन्द कर लिए, शरीरमें अग्निकी अवधारणा की। इस अग्निकी अवधारणासे उनका शरीर भस्म हो गया। सतीके देहत्यागसे देवनाओंको भी भय देने वाली आकाशमें हाहाकार ध्वनि हुई। शिवगण चिल्लाने लगे—'हम सबको धिक्कार है, धिक्कार है।' फिर परस्पर सम्मति करके उन्होंने शस्त्र उठाया। अपने ही अंगोंको काटने लगे। इससे बहुतसे गण स्वयं ही मर गये, बहुत अधिक दक्षको मारने झपटे।

महर्षि भृगु इस यज्ञमें यज्ञ-रक्षाके लिए नियुक्त थे। उन्होंने यजुर्वेदके मन्त्रोंसे दक्षिणाग्निमें हवन किया। इससे सहस्रों ऋभु नाम वाले अत्यन्त पराक्रमी गण अग्नि-कुण्डसे प्रकट हुए। उनके करोमें जलते हुए अलात (लुकाठी) थे। उन्होंने युद्ध करके शिवगणोंको पराजित कर दिया। कुछ शिवगण मरे और कुछ भग्नांग भाग गये।

आकाशवाणी हुई—'दक्षको धिक्कार है। भगवान् सदाशिव सर्वेश्वर हैं। सती ही जगन्माता हैं। इस दक्षने दधीचिके जानेपर भी ध्यान नहीं दिया था। दक्षका विनाश निश्चित है। देवताओं ! ऋषियों यहाँसे निकल जाओ। यहाँ महा अनर्थ होने वाला है।' लेकिन इस आकाशवाणीको सुनकर भी सब वहीं बैठे रहे।

भागकर बचे हुए गणोंने सतीके देहत्यागका समाचार भगवान् रुद्रको सुनाया। प्रलयंकर क्रोधोदीप्त हो उठे। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़कर

भूमिपर पटक दी। उस जटासे सहस्रभुज अत्यन्त विकराल प्रज्वलित केश वीरभद्र प्रकट हुए, एक सौ प्रकारके ज्वर और तेरह सन्निपात प्रकट हुए। जटाके दूसरे भागसे महाभयंकरा चामुण्डा प्रकट हुई जो सहस्रों शाकिनी-मणिसे आवृत थी।

'स्वामी। मुझे क्या करना है ?' प्रकट होते ही वीरभद्रने अञ्जलि करके प्रार्थना की—'आपके अनुग्रहसे मैं त्रिभुवनको दग्ध करनेमें समर्थ हूँ।'

'वत्स ! तुम्हारी विजय हो।' क्रुद्ध रुद्रने आदेश दिया—'जाओ और परिकरों सहित दक्षको मार दो ! जो भी उसका समर्थन करें, उनको दण्डित करो। इस यज्ञका ध्वंस करके ही नीलधाराके जलका आचमन करो।'

वीरभद्र अकेले चल पड़े। भद्रकाली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रा, त्वरिता, काली, वैष्णवी,—ये नौ दुर्गा, उनके पीछे डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, कुष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्म-राक्षस, भैरव, क्षेत्रपाल, योगिनीगण, शंकुकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पर्य्यात्र, विकृतानन, ज्वालकेश, समद, दद्रु, सन्दारक, कोटिमुण्ड, विष्टम्भी आदि गणनायक समस्त गणोंको लेकर चल पड़े।

दक्षके यज्ञ-मण्डपमें अपशकुन होने लगा। ध्वजाएँ अकारण टूट गिरीं। दिशाओंमें अन्धकार छा गया। पृथ्वी काँपने लगी। दिनमें ही उल्कापात होने लगा। इतनेमें रुद्रके गणोंकी दिगन्तभेदी हुंकृति सुनायी पड़ने लगी। व्याकुल होकर दक्षने इन्द्रसे प्रार्थना की—'आपके बलपर ही हमने यह साहस किया है। यज्ञमें आपका प्रधान भाग है। आपको यज्ञकी रक्षा करनी चाहिए।' देवता रुद्रगणोंसे इन्द्रके नेतृत्वमें युद्ध करने लगे, किंतु शीघ्र ही अत्यधिक आहत हो गये। देवताओंने अपने गुरु बृहस्पतिसे पूछा—'यज्ञकी रक्षाका उपाय क्या है ?'

बृहस्पति—'तुम सबको धिक्कार है। तुम स्वयं महेश्वरको क्रुद्ध करके अब रक्षा चाहते हो।' इस भर्त्सनाके पश्चात् देवता वहाँसे भाग गये।

यज्ञदेव मृग रूपधारण करके वहाँसे पलायन कर रहे थे। वीरभद्रने उछलकर उनको आकाशमें-से पकड़ा और उनका शिर छेदन किया। महर्षि

भृगु फिर दक्षिणाग्निमें आहुति देने जा रहे थे, मणिभद्रने उनको पटककर बाँध दिया और उनकी दाढ़ी उखाड़ ली क्योंकि जब ब्रह्माकी सभामें भगवान शंकरको दक्ष दुर्वचन कह रहे थे, भृगुने अपनी दाढ़ीपर हाथ घुमाकर प्रसन्नता प्रकटकी थी। उस समय पूषाने दाँत दिखाते हुए उपहासपूर्ण हास्य किया था और भग देवताने नेत्रोंसे कुटिल संकेत किया था। अब इस समय चण्डने पूषाके सब दाँत तोड़ दिये। नन्दीश्वरने भगके नेत्र निकाल दिये।

दक्ष इस उत्पातके समय भागकर भीतर छिप गया था। वीरभद्र उसे पकड़ ले आये। खगड्से वे दक्षका सिर काटने लगे, किंतु दक्षका चर्म भी उससे नहीं कटा। वीरभद्र गम्भीर हो गये। उन्होंने भगवान शिवका ध्यान किया और समझ लिया, यजमान यज्ञमें यज्ञ-पशुको अपना प्रतिनिधि बनाता है, अतः उस पशुके समान ही इसकी मृत्यु होनी चाहिए। हाथसे मरोड़कर वीरभद्रने दक्षका सिर गर्दनके पाससे तोड़ दिया और उसे अग्निकुण्डमें हवन कर दिया। इतनी देरमें शिवगणोंने सम्पूर्ण यज्ञमण्डप ध्वस्त कर दिया था, कुण्ड तोड़ दिये थे, सामग्री खा ली थी या नष्ट कर दी थी।

यज्ञका सम्पूर्ण रूपसे विनाश करके वीरभद्र गणोंके साथ जब कैलास पहुंचे, भगवान् शिवने उन्हें गणनायकका पद प्रदान किया।

यज्ञमें आहत छिन्नांग देवता ब्रह्म लोक गये। ब्रह्माको साथ लेकर वे कैलास पहुँचे। भगवान् शंकरकी सबने स्तुति की। आशुतोष प्रसन्न हुए। उन्होंने देवताओंको स्वस्थ देह होनेका वरदान दिया। ब्रह्मा आदिके साथ यज्ञ-स्थलपर आये। कह दिया—'भृगुको बकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय, पूषा पिष्टभोजी रहे, भग मित्र देवताके नेत्रोंसे देखें।' ब्रह्माने विधान किया—'यज्ञका अवशेष रुद्रका भाग है।'

भगवान् रुद्रने वीरभद्रसे दक्षका देह मंगवाया और पूछा—'सिर कहाँ है ?'

'देव ! वह तो भस्म हो गया।' वीरभद्रने उत्तर दिया।' मैंने उसे यज्ञ-पशुके रूपमें बलि दे दी।'

'यज्ञीय पशु लाया जाय।'—रुद्रने आज्ञा दी। उनकी आज्ञासे यज्ञीय पशु बकरेका सिर लाकर दक्षके धड़पर रखा गया। शिवके स्पर्शसे उसमें जीवन आ गया। दक्षने भगवान् महेश्वरकी स्तुति की और तब यज्ञ पूर्ण हुआ। (शिवपुराण एवं स्कन्द पुराण)

द्वितीय कथा—एक बार दक्ष अपनी पुत्री सतीसे मिलने कैलास पधारे। शिवने उठकर यथोचित रूपसे उनका सत्कार किया; किन्तु दक्ष चाहते थे कि उनको बहुत विशेष अतिथि मानकर पहलेसे उनके स्वागतकी प्रस्तुति की गयी होती। ऐसा कुछ हुआ नहीं था। योगेश्वरके आदि-गुरुने सामान्य रूपसे सम्मान्य अतिथिका जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा ही किया था। इससे दक्षको क्रोध आया। उन्होंने तिरस्कारपूर्वक कहा—'तुम अस्पृश्य हो। तुम्हारा कोई पदार्थ स्वीकार करने योग्य नहीं है, और वे वहाँसे चले गये।

किसी समय सती जब पिताके घर गयीं तो दक्षने उनकी पतिसहित निन्दाकी—'मेरे दूसरे सब जामाता श्रेष्ठ हैं, किन्तु तेरा पति पिनाकी और तू—दोनों ही ऐसे हैं कि उनके कारण मैं अपनेको समाजमें लज्जित अनुभव करता हूँ। अतः तू अब यहाँ मत आया कर।' इस अवमाननासे देवीने दक्षके सामने ही अपने शरीरको भस्म कर दिया।

यह समाचार जब भगवान् शंकरको मिला, वे दक्षके समीप आये। उन्होंने शाप दिया—'तुम्हारा भी यह शरीर नष्ट हो जाय और अब तुम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होओ; क्योंकि तुम अत्यन्त मूढ़बुद्धि अहंकारी हो।' यह शाप देकर महादेव कैलास लौट गये। इसके प्रभावसे दक्षका शरीर छूट गया और वे कालान्तरमें प्रचेतासे उत्पन्न हुए। (कूर्मपुराण)

तृतीय कथा—सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माने रुद्रको जब सृष्टि करनेको कहा तो वे प्रलयके जलमें तपस्या करने प्रविष्ट हो गये थे। उसके पश्चात् ब्रह्माने अन्य मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया जिनमें दक्ष, मरीचि, अत्रि आदि थे। इनसे सृष्टिका विस्तार हुआ। दक्षने यज्ञ प्रारम्भ किया, उसमें सब देवता, ऋषि, महर्षि आये हुए थे। सबका उसमें भाग था। इसी समय रुद्र तपस्या समाप्त करके जलसे निकले। वे सहस्र आदित्यके समान तेजोमय, ज्ञानमय जलमें सहस्रों वर्ष तपोलीन थे। ऊपर आकर उन्होंने देखा—पृथ्वी वृक्ष, पशु, मनुष्य, तृण, लता आदिसे पूर्ण है। उनको दक्षके यज्ञमें ऋत्विकों द्वारा होता वेदघोष सुनायी पड़ा। वे उसी ओर चले।

'ब्रह्माने मुझे सृष्टि करनेका आदेश दिया था'—रुद्रको क्रोध आ गया—'मुझसे पूर्व यह किस अनधिकारीने सृष्टि उत्पन्न की है?'—क्रोधसे वे हुंकार कर रहे थे। उनकी हुंकृतिकी ज्वालासे सहस्रों भूत, प्रेत, पिशाच,

वेताल, पूतना, कोटरादि उत्पन्न हो गये। अनेक अस्त्र-शस्त्र लिए वे उनके साथ हो गये।

भगवान् रुद्रने अपने संकल्पसे ही दिव्य रथको प्रकट किया और उसमें गायत्रीके धनुष प्रणवकी ज्या और सप्त स्वरके बाण लिए दक्षके यज्ञकी ओर प्रस्थित हुए।

शिव प्रलयंकर हैं। प्रलय मोक्षके अधिष्ठाताके द्वारा होगा तो वह आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष ही होगा। रुद्रको क्रोध इसलिए आया था कि सृष्टिमें उन्हें जो कुछ दीखता था वह सब मरणधर्मा, दुःखसे ग्रस्त—उनकी दृष्टिमें हेय था, निर्माणके योग्य नहीं था। ऐसे निकृष्ट, जरा-मरणरत, निरन्तर दुःखी हीन सत्व जीव समुदायका जिसने निर्माण किया है, रुद्रकी दृष्टिमें वह श्रेष्ठपुरुष स्रष्टा पुरुष नहीं हो सकता था। वह दण्डनीय था, वध्य था।

श्रुति कहती है—'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।' रुद्रने गायत्रीका धनुष, प्रणवकी ज्या बनायी थी। उनका यह विनाश भी मंगलमय ही था।

दूरसे आती हुंकृति और गणोंको देखकर देवता व्याकुल हुए। उन्होंने परस्पर चर्चा की—'लगता है, सृष्टिकर्ताने कोई असुर उत्पन्न कर दिया है और वह इस परम दुर्लभ यज्ञमें भाग लेने आ रहा है।'

देवताओंने दक्षसे पूछा—'मातामह! हमारा कर्तव्य क्या है?'

दक्ष—'शीघ्र शस्त्र ग्रहण करो और युद्ध करो। हम किसी असुरको यज्ञमें भाग नहीं लेने देंगे।'

शिवगण और देवताओंमें भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। रुद्रने बाण मारकर भग देवताके नेत्र फोड़ दिये, पूषाके दाँत तोड दिये। देवता हारकर भागने लगे। अन्तमें देवताओंके परम सहायक भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठने युद्ध करने आये। यह हरिहरात्मक युद्ध अद्भुत था। एक शंखनाद कर रहा था, दूसरा डमरू बजा रहा था। एकके हाथमें गदा थी तो दूसरा दण्डधर था। एकके कण्ठमें कौस्तुभ उद्भासित हो रहा था तो दूसरेका सम्पूर्ण अङ्ग भस्मोद्धूलित था। एकने पीताम्बर परिधान कर रखा था तो दूसरा दिगम्बर सर्पमाला धारण किये था। शिवने पाशुपतास्त्र उठाया और विष्णु

नारायणास्त्र। लगा, प्रलय होने ही वाली है। सृष्टिकर्ता दोनोंके मध्य आकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—'शाम्यतामस्त्रम्। आप दोनों एक ही तत्व हैं, परस्पर अभिन्न हैं। यह यज्ञ जो ध्वस्त हो गया है, आपके अनुग्रहसे पूर्ण हो जाय और दक्षकी ख्याति हो।'

'ब्रह्माने दक्षसे कहा—'रुद्रको यज्ञका भाग दो।'

'रुद्र भागो ज्येष्ठ भागः इतीयं वैदिकी श्रुतिः।' (वाराहपुराण ६१.६६) रुद्रको स्तुति करके प्रसन्न करो। 'रुद्र! भगके नेत्र और पूषाके दाँत आपकी कृपासे पूर्ववत् हो जायँ।'

देवताओंने दक्षके साथ भगवान् रुद्रकी स्तुति की। वे आशुतोष प्रसन्न होनेपर बोले—'भगके नेत्र ठीक हो जायँगे। पूषाके दाँत भी स्वस्थ हो जायँगे। दक्षका यज्ञ पूर्ण होगा। तुम अदितिके पुत्रोंने मुझे देखकर पशु भाव ग्रहण कर लिया था, उसे मैं दूर करता हूँ। मैं पशुओंसे सम्बन्धित हूँ, अतः मुझे पशुपति कहा जाता है। मेरा यजन पाशुपत दीक्षासे होता है।'

ब्रह्मा—'निश्चय ही लोकोंमें आप पशुपति नामसे ख्यात होंगे।' दक्षसे ब्रह्माने कहा—'अपनी कन्या गौरीको रुद्रको अर्पित कर दो। उसे मैंने पहले ही अपनेसे प्रकट करके इन्हें प्रदान कर दिया है।'

विवाह करके भगवान् रुद्र भार्याके साथ वृषभारूढ़ होकर भूत, प्रेतादिको साथ लिए वहाँसे कैलास आये। (वाराह पुराण)

चतुर्थ कथा—वैवस्वत् मन्वन्तरमें भगवान् महादेव मेरुगिरिके ज्योतिस्थल नामक शिखरपर आसीन थे। यह रत्नशिखर है। उनके वाम भागमें देवी शैलाधिराजतनया बैठी थीं। आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, गुह्यकोंके सहित कुबेर, शुक्राचार्य, सनत्कुमार, राक्षस, दानव, देवता, पिशाच—सब उन जगदाधारकी सेवामें उपस्थिति थे। इसी समय दक्षने यज्ञ प्रारम्भ किया था। विमानोंपर बैठकर इन्द्रादि देवता वहाँ जा रहे थे। भगवान् महेश्वरकी सेवामें उपस्थित आदित्य, वसु, मरुद्गण, आज्यप, सोमक, नाग, देववर्ग, अश्विनीकुमार भी उस यज्ञमें पहुँचे।

देवताओंको इस प्रकार जाते देखकर देवी पार्वतीने अपने आराध्यसे पूछा—'ये इन्द्रादि देवता कहाँ जा रहे हैं?'

'प्रजापति दक्षके यज्ञमें ।'—शिवने अन्यमनस्क भावसे कहा—'प्रजापति यज्ञ प्रारम्भ करने वाले हैं ।'

'आप क्यों नहीं जा रहे हैं ?' देवीने प्रश्न किया—'आपके पधारनेमें ऐसी क्या बाधा है ?'

'देवताओंने किसी भी यज्ञमें मेरा भाग नहीं रखा ऐसी ही परम्परा है ।' शिवने समझाया—'प्रथम कल्पमें जब तुम सती थीं, तुम्हारे कारण दक्षका यज्ञ नष्ट हो चुका है और देवताओंने उस समय उच्छिष्टको मेरा भाग नियत किया है । अतः यज्ञमें मेरा जाना अनिवार्य नहीं है । जो मार्ग पहलेसे चला आ रहा है उसीसे अपनेको चलना चाहिए ।'

उमा—'आप देवताओंमें सर्वोत्तम हो । गुण और प्रभावमें—दोनोंकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हो । आप तेज, यश, श्रीसे भी अजेय हो, अधृष्य हो । यज्ञमें आपके ही भागका निषेध—इसे मैं सहन नहीं कर सकती ।' महाशक्ति रुष्ट हो उठीं । उनका शरीर क्रोधसे काँपने लगा ।

महादेव बोले—'तुम तो मुझे जानती हो, फिर तुम्हें यह मोह कैसे हो हो गया । मेरे क्रोधसे देवतासहित त्रिलोकी भस्म हो सकती है । प्रलयके समय भस्म ही हो जाती है । मैं ही यज्ञका अधिष्ठाता हूँ । सब मेरी ही स्तुति करते हैं । मेरी तुष्टिके लिए ही रथान्तर-सामगान किया जाता है । वेदमन्त्रोंसे मेरा ही स्तवन होता है । अध्वर्यु यज्ञमें अनेक नामोंसे (अनेक देवताओंके नामसे भी) मेरे लिए ही यज्ञ भाग निर्धारित करते हैं ।'

देवीका क्रोध इससे शान्त नहीं हुआ । उनके मुखसे भद्रकाली उत्पन्न हुईं । भगवान् शिवने भी अपने मुखसे एक महाभयंकर प्रेतको प्रकट किया । उसका नाम पीछे वीरभद्र रखा गया । श्मशानमें उसको पीछे निवास दिया गया । रुद्रने उसको आदेश दिया—'दक्षके यज्ञको नष्ट कर दो ।'

उस भूतने साक्षीके लिए भद्रकालीको साथ ले लिया । सिंहका वेष धारण किया । उसके रोमकूपोंसे अनेक भयानक भूत, प्रेत प्रकट हुए । उन सहस्रों भूत, प्रेतोंके झुण्डको लेकर वह यज्ञमण्डपमें पहुँचा । वे प्रेतगण मण्डपमें आग लगाने लगे, यूप उखाड़ने लगे । वस्तुएँ तोड़ने फेंकने लगे । यज्ञपात्र चूर-चूर हो गया । यज्ञ-कुण्डोंको मल-मूत्रसे दूषित कर दिया । देवतागणमें-से अनेकको मार दिया । यज्ञका सिर काटकर फेंक दिया ।

काँपते हुए दक्षने हाथ जोड़कर वीरभद्रसे पूछा—'आप कौन हैं ?'

'मैं न देवता हूँ, न दैत्य हूँ, न यज्ञमें भोजन करने आया हूँ, न कौतूहलवश इसे देखने आया हूँ'—वीरभद्रने अट्टाहास करते हुए उत्तर दिया। 'मैं रुद्रकोपसमुत्थ वीरभद्र हूँ। ये देवी पार्वतीके कोपसे उद्भूत भद्रकाली हैं। मैं इस यज्ञका विनाश करने आया हूँ। तुमको जीवन-रक्षा चाहिए तो देवदेव उमाकान्तकी शरण ग्रहण करो जिनका क्रोध भी वरदानके ही तुल्य है। मेरे सामने हाथ जोड़ना व्यर्थ है। मैं किसीपर दया नहीं करता।'

प्रजापति दक्षने भगवान् शंकरकी मनसे शरण ग्रहण की, कातर कण्ठसे उन्हें पुकारने लगे। सदाशिव वहीं प्रकट हो गये और उन्होंने पूछा—'क्या चाहते हो ?'

दक्षने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'यदि आप प्रसन्न हैं तो वरदान दें कि जो सामग्री यहाँ नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी है, खा-पी ली गयी है, तोड़ी-फोड़ी फेंकी गयी है वह दीर्घ कालसे सावधानी पूर्वक सञ्चित सामग्री व्यर्थ न जाय। वह सब सम्पूर्ण हो जाय और यज्ञमें उपयोगका फल दे। यह यज्ञ पूर्ण हो।'

'एवमस्तु'—भगवान् शंकरने वरदान दिया।

दक्षने शिवका स्तवन किया। सुप्रसन्न सदाशिवने उनको सामीप्य प्राप्तिका वरदान दिया। (ब्रह्मपुराण)

———

शक्ति-पीठ

शिवपुराण और श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि सतीने दक्षके यज्ञमें योगाग्निसे अपना शरीर भस्म कर दिया, किन्तु तंत्रोंका वर्णन है कि सतीने प्राणायाम करके मूर्धासे प्राणका विसर्जन किया। जब भगवान् शिवको यह पता लगा, वे वीरभद्रके साथ स्वयं ही दक्षकी यज्ञशालामें पधारे। वीरभद्र और शिवगणोंने दक्षका यज्ञ ध्वंस कर दिया। भगवान महेश्वरने सतीका शरीर उठाकर अपने वाम स्कन्धपर रखा और वे अनन्तकरुणावरुणालय प्रेमैक-धाम त्रिलोकीको यह दिखलानेके लिए कि जैसा प्रेम आराधक भगवानसे करता है, भगवानमें वह वैसा ही—उससे अनन्तगुणा—प्रेम प्रतिफलित होता है। सदाशिव सतीके शरीरको लिए उन्मत्तकी भाँति त्रिलोकीमें विचरण करने लगे। शिवगण अपने प्रभुकी इस व्याकुल अवस्थाके कारण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे और वे दक्षके अनुयायियोंसे ही नहीं, सम्पूर्ण वैदिक कर्मकाण्ड और उसके अनुमोदकोंसे चिढ़ गये थे। पृथ्वीमें रुद्रगणोंका उत्पात यज्ञ, हवन, कर्मकाण्ड, वेदपाठ सबको आशंकाग्रस्त कर चुका था। द्विजोंके लिए वे जनपदमें हों या वनमें, कहींपर भी शरण नहीं प्राप्त होती थी। देवता भी रुद्र पार्षदोंके क्रोधके आखेट थे। वे भी कहीं स्थिर नहीं रह पाते थे।

देवताओंने भगवान ब्रह्माकी शरण ली। उनसे प्रार्थना की। सृष्टि-कर्ताने कहा—'प्रलयके अधिष्ठाता जब तक शान्त नहीं हो जाते, उनके परि-करोंका उत्पात शान्त नहीं हो सकता। भगवान महेश्वरके पार्षदोंको पराभव नहीं दिया जा सकता। ब्रह्मा देवताओंके साथ भगवान नारायणकी शरणमें गये। उन्होंने प्रार्थना की—'आप सृष्टिके रक्षक हो और महेश्वरका आपपर असीम अनुराग है। वे किसी भी अवस्थामें आपपर रोष नहीं कर सकते, आपको विस्मृत नहीं कर सकते, इसलिए आप ही कोई ऐसा यत्न करो जिससे वे शान्त हों। उनके शान्त होनेपर ही रुद्रगणोंका आक्रोश और उस आक्रोशसे उत्पन्न हुआ उत्पात शान्त होगा।'

भगवान नारायणने अपने चक्रसे सतीके उस निष्प्राण शरीरको, जिसे कंधेपर लेकर रुद्र उन्मत्त त्रिलोकीमें घूम रहे थे, काटना प्रारम्भ किया।

सतीके अङ्गके जो अंश जहाँ गिरे, वहीं शक्तिपीठ हो गये। क्योंकि सती महाशक्तिका साकार विग्रह थीं, उनका शरीर जड़ नहीं होता और उनका अङ्ग एक अङ्ग दीखनेपर भी सम्पूर्ण महाशक्तिके स्वरूपमें भी रहता है। भगवान् महेश्वर क्योंकि महाशक्तिसे नित्य अभिन्न हैं, प्रत्येक शक्तिपीठपर वे भी उस पीठके रुद्र रूपसे वहीं विद्यमान हैं और उनके शरीरमें भगवती गङ्गा होनेके कारण उस देवपदीके अंशसे समुद्भूत सरिता भी शक्ति-पीठके समीप होती ही है।

प्रत्येक शक्ति पीठमें देवीका स्थान, भगवान् शिवका स्थान और नदी—ये तीनों आधे योजनके भीतर ही होते हैं।

शक्ति-पीठोंकी संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। यह 'कल्याण शक्ति अंक' (गीताप्रेस, गोरखपुर) के अनुसार है। इसमें-से अनेकका स्थान अब अज्ञात हो गया है। कुछ पाकिस्तानमें और कुछ बंगला देशमें पड़ गये हैं। जिनके स्थान ठीक जाने जा सके हैं, उनके वर्तमान नाम दे दिये गये हैं।

(किस-किस स्थानपर सतीका कौन-कौन अङ्ग गिरा था तथा कौन-कौन भैरव और शक्ति वहाँ रहती हैं, तन्त्रचूड़ामणिमें इस विषयमें जो कुछ उल्लेख है, उसकी तालिका निम्न प्रकार है—)

स्थान	अंग तथा अंगभूषण	शक्ति	भैरव
१. हिंगुलाज (क्वेटाके पास)	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टवीशा	भीमलोचन
२. शर्करार	तीन चक्षु	महिशमर्दिनी	क्रोधीश
३. सुगन्धा (त्र्यम्बकेश्वर)	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
४. काश्मीर	कण्ठदेश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर
५. ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्त भैरव
६. जलन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
७. वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
८. नेपाल	जानु	महामाया	कपाली
९. मानस(मानसरोवर-तिब्बत)	दक्षिणहस्त	दाक्षायणी	अमर
१०. उत्कलमें विरजाक्षेत्र (पुरी)	नाभिदेश	विमला	जगन्नाथ
११. गण्डकी	गण्डस्थल	गण्डकी	चक्रपाणि
१२. बहुला	वाम बाहु	बहुलादेवी	भीरुक

स्थान	अंग तथा अंगभूषण	शक्ति	भैरव
१३. उज्जयिनी	कूर्पर	मंगलचण्डिका	कपिलाम्बर
१४. त्रिपुरा	दक्षिणापाद	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरेश
१५. चहल	दक्षिणबाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
१६. त्रिस्रोता	वामपाद	भ्रामरी	भैरवेश्वर
१७. कामगिरि (कामाक्षा)	योनिदेश	कामाख्या	उमानन्द
१८. प्रयाग	हस्तांगुलि	ललिता	भव
१९. जयन्ती	वाम जंघा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
२०. युगाद्या	दक्षिणांगुष्ठ	भूतधात्री	क्षीरखण्डक
२१. कालीपीठ (आदिकाली कलकत्ता)	दक्षिणपादांगुलि	कालिका	नकुलीश
२२. किरीट	किरीट	विमला	संवर्त्त
२३. वाराणसी	कर्णकुण्डल	विशालाक्षी-मणिकर्णी	कालभैरव
२४. कन्याश्रम (कन्याकुमारी)	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष
२५. कुरुक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु
२६. मणिबन्ध (पुष्कर)	दो मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
२७. श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
२८. काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु
२९. कालमाधव	नितम्ब	काली	असितांग
३०. शोणदेश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन
३१. रामगिरि (नागपुरके पास)	अन्य स्तन	शिवानी	चण्डभैरव
३२. वृन्दावन (मथुरा)	केशपाश	उमा	भूतेश
३३. शुचि	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
३४. पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र
३५. करतोयातट	तल्प	अर्पणा	वामनभैरव
३६. श्रीपर्वत	दक्षिण गुल्फ	श्रीसुन्दरी	सुन्दरानन्दभैरव
३७. विभाष	वामगुल्फ	कपालिनी	सर्वानन्द
३८. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
३९. भैरवपर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	अवन्ती	लम्बकर्ण
४०. जनस्थल	दोनों चिबुक	भ्रामरी	विकृताक्ष

स्थान	अंग तथा अंगभूषण	शक्ति	भैरव
४१. सर्वशैल	वाम गण्ड	राकिनी	वत्सनाभ
४२. गोदावरीतीर	गण्ड	विश्वेशी	दण्डपाणि
४३. रत्नावली	दक्षिणस्कन्ध	कुमारी	शिव
४४. मिथिला	वाम स्कन्ध	उमा	महोदर
४५. नलहाटी	नला	कालिकादेवी	योगेश
४६. कर्णाट	कर्ण	जयदुर्गा	अभीरु
४७. वक्रेश्वर	मन:	महिषमर्दिनी	वक्रनाथ
४८. यशोर (जसोर)	पाणिपद्म	यशोरेश्वरी	चण्ड
४९. अट्टहास	ओष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश
५०. नन्दिपुर	कण्ठहार	नन्दिनी	नन्दिकेश्वर
५१. लंका	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर

(देवीभागवतमें एक सौ आठ पीठस्थानोंका उल्लेख देखनेमें आता है। तन्त्रचूड़ामणिमें स्थान, अंग, भैरव और शक्ति नामका जैसा विशेष रूपसे उल्लेख किया गया है, देवी भागवतमें वैसा नहीं है। इसमें महर्षि वेद-व्यासने जनमेजयके प्रश्नानुसार पीठस्थान और वहाँके अधिदेवताका नाम उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—)

स्थान	देवता	स्थान	देवता
१. वाराणसी	विशालाक्षी	१२. मलय	रम्भा
२. नैमिषारण्य	लिंगधारिणी	१३. एकाग्र	कीर्तिमती
३. प्रयाग	ललिता	१४. विश्व	विश्वेश्वरी
४. गन्धमादन	कामुकी	१५. पुष्कर	पुरुहूता
५. दक्षिणमानस	कुमुदा	१६. केदार	सन्मार्गदायिनी
६. उत्तरमानस	विश्वकामा	१७. हिमवतपृष्ठ	मन्दा
७. गोमन्त	गोमती	१८. गोकर्ण	भद्रकर्णिका
८. मन्दर	कामचारिणी	१९. स्थानेश्वर (कुरुक्षेत्र)	भवानी
९. चैत्ररथ	मदोत्कटा	२०. बिल्वक	बिल्वपत्रिका
१०. हस्तिनापुर	जयन्ती	२१. श्रीशैल	माधवी
११. कान्यकुब्ज (कन्नौज)	गौरी		

स्थान	देवता	स्थान	देवता
२२. भद्रेश्वर	भद्रा	५१. शिवकुण्ड	शुभानन्दा
२३. वाराहशैल	जया	५२. देविकातट	नन्दिनी
२४. कमलालय	कमला	५३. द्वारावती	रुक्मिणी
२५. रुद्रकोटि	रुद्राणि	५४. वृन्दावन	राधा
२६. कालाञ्जर	काली	५५. मथुरा	देवकी
२७. शालग्राम	महादेवी	५६. पाताल	परमेश्वरी
२८. शिवलिंग	जलप्रिया	५७. चित्रकूट	सीता
२९. महालिंग	कपिला	५८. विन्ध्य	विन्ध्यवासिनी
३०. माकोट	मुकुटेश्वरी	५९. करवीर	महालक्ष्मी
३१. मायापुरी	कुमारी	६०. विनायक	उमादेवी
३२. सन्तान	ललिताम्बिका	६१. वैद्यनाथ	आरोग्या
३३. गया	मंगला	६२. महाकाल	महेश्वरी
३४. पुरुषोत्तम	विमला	६३. उष्णतीर्थ	अभया
३५. सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी	६४. विन्ध्यपर्वत	नितम्बा
३६. हिरण्याक्ष	महोत्पला	६५. माण्डव्य	माण्डवी
३७. विपाशा	अमोघाक्षी	६६. माहेश्वरीपुर	स्वाहा
३८. पुण्ड्रवर्द्धन	पाटला	६७. छगलण्ड	प्रचण्डा
३९. सुपार्श्व	नारायणी	६८. अमरकण्टक	चण्डिका
४०. त्रिकटु	रुद्रसुन्दरी	६९. सोमेश्वर	वरारोहा
४१. विपुल	विपुला	७०. प्रभास	पुष्करावती
४२. मलयाचल	कल्याणी	७१. सरस्वती	देवमाता
४३. सह्याद्रि	एकवीरा	७२. तट	पारावारा
४४. हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका	७३. महालय	महाभागा
४५. रामतीर्थ	रमणी	७४. पयोष्णी	पिंगलेश्वरी
४६. यमुना	मृगावती	७५. कृतशौच	सिंहिका
४७. कोटितीर्थ	कोटवी	७६. कार्त्तिक	अतिशांकरी
४८. मधुवन	सुगन्धा	७७. उत्पलावर्त्तक	लीला (लोला)
४९. गोदावरी	त्रिसन्ध्या		
५०. गंगाद्वार (हरिद्वार)	रतिप्रिया		

स्थान	देवता
७८. शोणसंगम	सुभद्रा
७९. सिद्धवन	लक्ष्मी
८०. भरताश्रम	अनंगा
८१. जालन्धर	विश्वमुखी
८२. किष्किन्धापर्वत	तारा
८३. देवदारुवन	पुष्टि
८४. काश्मीरमण्डल	मेधा
८५. हिमाद्रि	भीमादेवी
८६. विश्वेश्वर	तुष्टि
८७. शंखोद्धार	धरा
८८. पिण्डारक	धृति
८९. चन्द्रभागा	कला
९०. अच्छोद	शिवधारिणी
९१. वेणा	अमृता
९२. बदरी	उर्वशी
९३. उत्तरकुरु	औषधि

स्थान	देवता
९४. कुशद्वीप	कुशोदका
९५. हेमकूट	मन्मथा
९६. कुमुद	सत्यवादिनी
९७. अश्वत्थ	वन्दनीया
९८. कुबेरालय	निधि
९९. वेदवदन	गायत्री
१००. शिवसन्निधि	पार्वती
१०१. देवलोक	इन्द्राणी
१०२. ब्रह्मामुख	सरस्वती
१०३. सूर्यविम्ब	प्रभा
१०४. मातृमध्य	वैष्णवी
१०५. सतीमध्य	अरुन्धती
१०६. स्त्रीमध्य	तिलोत्तमा
१०७. चित्रमध्य	ब्रह्मकला
१०८. सर्वप्राणीवर्ग	शक्ति

पार्वतीका प्रादुर्भाव

पर्वतराज हिमालयकी पत्नी मैना पितरोंकी ज्येष्ठा कन्या थीं। प्रजा-दक्षने अपनी कन्या स्वधाका विवाह पितरोंके साथ किया था। स्वधाके तीन कन्याएँ हुईं — मैना, धन्या और कलावती। ये तीनों ही आयोनिजा मानस पुत्री थीं। लोकमें अकेले मैनाका ही नाम प्रचलित हुआ है। ये तीनों ही कन्याएँ जन्मजात योगिनी और वैदिक ज्ञान सम्पन्ना थीं। सर्वलोकोंमें समर्था थीं। तीनों एक बार श्वेतद्वीपमें भगवान् नारायणका दर्शन करने गयीं। उन्होंने नारा-यणकी स्तुति की और आज्ञा पाकर बैठ गयीं। कुछ कालमें वहाँ सनकादिक कुमार पधारे। उनको देखकर जो भी देवता और मुनिगण वहाँ थे, सब खड़े हो गये। स्वयं नारायणने उनको प्रणाम किया, किन्तु ये तीनों परस्पर कुछ चर्चामें लगी थीं, इन्होंने सनकादिके आनेकी ओर ध्यान नहीं दिया। प्रमाद स्वयंमें ही तमस् है और अनर्थकारी है। सनादि कुमारोंने इनके प्रमादको क्षमा नहीं किया। उन्होंने शाप दिया—'तुम पितृकन्या होकर भी पूज्यका सम्मान नहीं करती हो, इसलिए स्वर्गसे दूर हो मानव स्त्री बनो।'

तीनों ही इस शापसे भयभीत हो गयीं। उन्होंने अंजलि बाँधकर प्रार्थना की—'हमसे प्रमाद हुआ, किंतु आप कृपालु हैं, हमपर अनुग्रह करें।'

सनत्कुमार—'तुममें से ज्येष्ठा सतयुगमें हिमालयकी पत्नी होगी। इन्हें मर्त्यलोकमें तो जाना पड़ेगा, किन्तु मानवी नहीं बनेगी। मध्यमा धन्या जनककी पत्नी होगी और महालक्ष्मी सीताके रूपमें इनकी पुत्री होंगी। द्वापरमें कलावती वृषभानुकी पत्नी होंगी। श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा इन्हें अपनी माता बनाकर धन्य करेंगी। मैना महाशक्तिमें पुत्री भाव रखकर उनकी कृपासे कैलास जायँगी। धन्याको त्रेतामें बैकुण्ठ प्राप्त होगा। कलावती द्वापरान्तमें गोलोकका नित्य निवास प्राप्त करेंगी।' तीनों प्रसन्न हो गयीं। सनत्कुमार आदि यह आश्वासन देकर ब्रह्मलोक चले गये।

× × ×

सतीके वियोगमें व्याकुल भगवान् शिव कहीं भी रुकते नहीं थे। वे परिव्राजक बन गये थे। देवताओंने और ब्रह्माने भी जिस उद्देश्यसे महा-

शक्तिसे सती रूपमें प्रकट होनेकी प्रार्थना की थी, वह उद्‌देश्य ही निष्फल हो गया था। इसलिए फिरसे देवताओंने महा-शक्तिकी आराधना प्रारम्भ की, स्तवन किया और उनके प्रकट होनेपर प्रार्थना की—'मातः ! आप नित्य शिवप्रिया हैं। हम सबपर कृपा करके आप दाक्षायणी हुईं, किन्तु दक्षके अपराधसे आपने वह श्रीविग्रह त्याग दिया। इससे आपके स्वामी भगवान् महेश्वरको भी बहुत क्लेश हुआ। महेश्वरी ! आपके देहत्यागसे देवकार्य भी अपूर्ण रह गया है क्योंकि वह तो आपकी सन्तानसे पूर्ण होगा। हम सब आपकी शरण आये हैं। आष कृपाकर पुनः अवतार धारण करें और शिव-पत्नी बनें।'

देवीने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा। वे वोलीं—मेरे स्वामी मेरे वियोगमें कालाग्नि रूप होकर दिगम्बर रहने लगे हैं। उन्होंने मेरे उस शरीरकी अस्थिमाला कण्ठमें डालकर रखी है। वे सदा जागते रहते हैं। समाधिमें बैठना भी उन्होंने त्याग दिया है। मैं अवश्य हिमालयकी पुत्री बनकर उनकी जाया बनूँगी।'

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे हिमालय और मैना महाशक्तिका ध्यान करते हुए तपस्या करने लगे थे। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ कर २७ वर्ष उन्होंने पुत्री होनेके निमित्त गंगाके तटीय स्थान औषधिप्रस्थपर शिव-संयुक्त-शिवाकी मृण्मय मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की। कभी ये दम्पत्ति केवल जल ग्रहण करते थे और कभी निर्जल ही रहते थे। उनकी इस आरा-धनासे प्रसन्न होकर भगवती प्रकट हुईं। उन्होंने कहा—'वरदान मांगो।'

मैना—'देवी ! आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। मैं आपके प्रभावको, स्वरूपको कुछ जानती हूँ, मुझपर अनुग्रह करें।' देवीने उनका आलिंगन किया। इससे मैनाको परम ज्ञान प्राप्त हुआ। वे देवीकी स्तुति करने लगीं।

भगवतीने कहा—मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, बिना संकोच माँगो।'

'मेरे दीर्घायु १०० पुत्र हों और आपके समान त्रिलोकीमें पूजिता कन्या हो। मैं यो चाहती हूँ कि आप ही मेरी कन्या बनें।' मैनाने नेत्रोंमें अश्रु भरकर कहा—'रुद्र दाक्षायिणीके वियोगमें

भटकते फिरते हैं, इससे मेरा हृदय फटता है। मैंने सदा ही उनको अपना जामाता माना है। तुम अवतार धारण करके उनका वरण करो, लीलाका विस्तार करो, उनको सुखी करो।'

देवीने 'तथास्तु' कहा और अन्तर्धान हो गयीं।

समय पाकर मैनाके एकसौ पुत्र हुए। ये सब पर्वतोंके अधिष्ठाता देवता हुए। इनमें-से ज्येष्ठ पुत्र मैनाक समुद्रमें रहने लगा। चैत्र शुक्ल नवमीको अर्धरात्रिमें, जबकि मृगशिरा नक्षत्र था, चन्द्रमंडलसे गंगाके समान देवीका प्राकट्य हुआ। हिमालय दिव्य रत्नों और औषधियोंके आविर्भावसे परिपूर्ण हो गया। देवताओंका सम्पूर्ण समूह अपने विमानों द्वारा स्तुति करने पहुँच गया।

नीलकमलके समान ज्योतिर्मय देह देवीका दर्शन करके माता मैना बहुत प्रसन्न हुईं। माताकी प्रार्थनासे वे चतुर्भुजा, सामुधाभरणा-शिशु बन गयीं। उनकी कान्तिसे हिमालयकी सब मणियाँ निस्तेज हो गयीं। पर्वत-राजने अपने यहाँ महोत्सव किया। कन्याका नाम पार्वती पड़ा। उमा नाम तो तब पड़ा जब पार्वती तपके लिए जाने लगीं और माँने मना करते हुए कहा—'उमा' (ऐसा मत करो)।

(शिवपुराण)

द्वितीय कथा—नमुचिके पुत्र असुर तारकने अत्यन्त उग्र तप करके ब्रह्माजीको संतुष्ट किया। ब्रह्माने प्रसन्न होकर वरदान माँगनेको कहनेपर उसने माँगा—'आप मुझे अजर-अमर और अजेय बना दें।'

ब्रह्मा—'तुम अमर कैसे हो सकते हो। संसारमें जन्म लेने वालेको मरना तो पड़ता ही है। मृत्युको सदाके लिए टाला नहीं जा सकता। अजेय भी हरि और हरको छोड़कर कोई नहीं होता। तुम कोई विकल्प स्वीकार करो।'

तारक—'शिवके औरस पुत्रके अतिरिक्त किसीसे भी मेरा पराभव और मृत्यु न हो।'

यह वरदान स्वीकार करके ब्रह्माजी चले गये। तारकने देवताओंको स्वर्गसे भगा दिया। असुरोंके साथ वह अमरावतीमें पहुँच गया। देवता किसी प्रकार मुचुकुन्दजीकी सहायतासे बीचमें स्वर्गपर विजय प्राप्त भी करते थे तो भी उनको बार-बार भागना पड़ता था। केवल जब तारक

कहीं गया हो, वे दैत्योंको भगा पाते थे। ब्रह्मलोकमें जा करके उन्होंने ब्रह्मासे प्रार्थना की--दैत्यनायकोंसे आप हमारी रक्षा करो।'

इसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे शिवको गृहस्थमें रुचि उत्पन्न हो। उनके औरस पुत्रके द्वारा ही तारकका बध होगा। शिव पत्नी ग्रहण करें, ऐसा तुमको प्रयत्न करना चाहिए।'

बृहस्पतिको आगे करके देवता हिमालयपर आये। उन्होंने पर्वत-राजसे कहा—'तुम ऋषियोंको, यक्षोंको गन्धर्वोंको सबको आश्रय देते हो। हम देवताओंको भी तुम्हें आश्रय देना चाहिए। हमारी सहायता करनी चाहिए।'

हिमालयने कहा—'मैं अचल हूँ। आप सब मेरे ऊपर निवास करें तो यह तो आपका ही अनुग्रह होगा, किन्तु मैं कहीं जाकर आपकी सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। आप ही आज्ञा करें—मैं आप सबकी क्या सेवा करूँ?'

देवताओंने आकाशवाणीकी बात सुनायी और कहा—'आपको ऐसी कन्या उत्पन्न करनी चाहिए जिससे भगवान् शंकर विवाह करना स्वीकार कर लें।'

हिमालय अधिदेवता हैं, इसलिए संतानोत्पादन संकल्पके अनुसार ही करनेमें समर्थ हैं। उन्होंने पत्नीसे कहा—'देवी। तुम्हें कन्या उत्पन्न करनी चाहिए।'

'कन्या माता-पिताको चिन्तामें जलाने वाली होती है'—मैनाने पतिसे कहा—'आपने इस सम्बन्धमें ठीक-ठीक यदि विचार कर लिया है तो आज्ञा करें।'

हिमालयने पत्नीको समझाया—'जिस प्रकार भी दूसरोंकी रक्षा होती हो उनका हित होता हो, सत्पुरुषोंको वैसा ही करना चाहिए। इस समय तुम्हारी कन्या देवताओंके कष्ट-निवारणका साधन होगी।'

'मैनाने पतिकी आज्ञा स्वीकार कर ली और आराधना करके उन्होंने जो कन्या उत्पन्न की, उसका नाम गिरिजा हुआ।

(स्कन्द पुराण)

तृतीय कथा—

एक समय महर्षि कश्यप हिमवानके गृह पधारे। उनकी अर्चा करके हिमालयने अत्यन्त विनयके साथ पूछा—'ऐसा कौन-सा उपाय है जिसको करनेसे मुझे अक्षय लोककी प्राप्ति होगी और मैं सत्पुरुषोंके द्वारा पूजनीय माना जाऊँगा।'

कश्यप—'उत्तम सन्तान ही पिताको पूजनीय और अक्षय लोक प्रदान करती है। मैं दूसरोंकी बात नहीं कर सकता, पर लोकमें मेरी प्रसिद्धि तो संतानके कारण ही है। 'तुम तप करके श्रेष्ठ कन्या प्राप्त करो।'

हिमालयने तपस्या प्रारम्भ की और कठिन तपसे भगवान् ब्रह्माको सतुष्ट किया। ब्रह्माजीने प्रकट होकर जब वरदान माँगनेको कहा, तब उन्होंने सृष्टिकर्तासे गुणवान सन्तान प्रदान करनेकी प्रार्थना की।

'तुम्हें त्रिभुवन-वन्दिता सम्पूर्ण गुणोंकी निधान कन्या प्राप्त होगी।'—ब्रह्माने वरदान दिया—'उसके द्वारा तुम लोकमें उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करोगे। कोटि-कोटि तीर्थ तुममें निवास करेंगे। तुम देवताओंके भी पूजनीय होओगे, उन्हें भी पावन करोगे।'

इस तपके फलस्वरूप हिमालयको जो अयोनिजा ज्योतिर्मयी कन्या प्राप्त हुई उसका नाम उन्होंने अपर्णा रखा। (ब्रह्मपुराण)

चतुर्थ कथा—

यह कथा उस कल्पकी है जिस कल्पके प्रारम्भसे ही शिव जलमें निमग्न होकर तप कर रहे थे (देखिये–'महारुद्रोत्पत्ति' नाम अध्याय)। इस कल्पमें दक्ष-कन्या गौरी थीं जिनको ब्रह्माने दक्षको पुत्री रूपमें प्रदान किया था। पीछे दक्षने गौरीको रुद्रको दे दिया, किन्तु स्वयं गौरीके मनमें इससे शान्ति नहीं हुई। उनके मनमें आया—'इन मेरे स्वामीने तो मेरे पितासे शत्रुता करली है। इन्होंने उनका यज्ञ ध्वंस कर दिया। उनका पुर कैलास उनसे छीन लिया। मेरे पिताके स्वजन मारे गये। भला अब कभी मैं पिताके घर कैसे जा सकती हूँ।' वे भगवान् शंकरसे कुछ कहे बिना हिमालयपर चली गयीं। वहाँपर दीर्घकाल तक तपस्या करती रहीं और अग्नि धारण करके शरीर त्याग दिया। पुनः वे शैलजा होकर उत्पन्न हुईं क्योंकि शिवका ध्यान करते हुए ही उन्होंने शरीर त्याग किया था।

(वाराह पुराण)

———

मदन-दहन

देवर्षि नारद परिव्रजन-व्यसनी हैं। इस क्रममें घूमते हुए वे पवत-राज हिमालयके सदन पधारे। हिमालयने उनका उचित सत्कार किया। पूजनके पश्चात् गिरिजाको बुलाकर प्रणाम करवाया और पूछा—'आप तो सर्वज्ञ हैं, भविष्यसूचक ज्योतिष शास्त्रके प्रणेता हैं। इस कन्याके गुण-दोष सूचित करनेका अनुग्रह करें।'

देवर्षिने हाथ जोड़कर उमाको मस्तक झुकाया। 'गिरीन्द्र! तुम्हारी कन्या त्रिभुवन-वन्द्या है। यह तुमको अक्षयकीर्ति देगी। तुम सुरोंसे वन्दनीय हो जाओगे। ऐसा कोई सद्गुण नहीं जो इसमें सम्पूर्ण रूपसे स्थित न हों। सब ऋद्धियाँ, निखिल सम्पत्ति, समस्त सद्गुण और दुर्लंध्य संकटोंसे परित्राण, प्राणी इसकी उपासनासे प्राप्त करेंगे। इसकी महिमाका वर्णन सम्भव नहीं है। 'देवर्षि कुछ क्षण गम्भीर नीरव रहे—'थोड़ेसे अवगुण भी इसमें हैं। इसे नग्न रहने वाला, भिक्षुक, कपाली पिशाचनायक, कुलके पतेसे रहित पति प्राप्त होगा।'

हिमालय—(स्तब्ध देवर्षिका मुख देखते हुए) 'अकुलीन भिक्षुकको कन्या विवाहनी पड़ेगी' इस चिन्ताने उन्हें ऐसा स्तब्ध बना दिया कि देर तक वे कुछ बोल नहीं सके। फिर नेत्रोंमें अश्रु भरकर उन्होंने देवर्षिके चरण पकड़े—'इसका कोई परिमार्जन?'

'यह तो सद्गुण है। इसे सुनकर इतनी व्याकुलता, इतनी चिन्ता क्यों?'—देवर्षिने खुलकर हँसते हुए कहा—'मैंने सोच लिया है। ये सबके सब अवगुण निखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् विश्वनाथमें हैं और वे किसी कन्याको पति रूपमें प्राप्त हों, इससे बड़ा सौभाग्य त्रिभुवनमें भी सम्भव नहीं है।'

'हर तो निर्विकार हैं। सतीकी मृत्युके पश्चात् वे किसी और नारीको कैसे ग्रहण करेंगे?' हिमालयने कहा—'मैंने किन्नरोंके मुखसे सुना है

कि सतीसे उन्होंने कहा था, तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसीको पत्नी रूपमें ग्रहण नहीं करूँगा।'

देवर्षि—'वही अम्बिका गौरी तुम्हारी पुत्री हुई हैं।' नारदजीने पार्वतीके पूर्व जन्मकी सम्पूर्ण कथा हिमालयको सुना दी। सुनकर लज्जासे देवीने मुख नीचा कर लिया। उनके श्रीमुखपर मनोहर मन्द स्मित आया।

देवर्षिके जानेके पश्चात् मैंनाने पतिसे कहा—'कन्याका विवाह इसके अनुरूप सुन्दर वरसे करना उचित होगा।'

हिमालयने पत्नीसे कहा—'मैंने प्रभातमें एक स्वप्न देखा है। नारदने जैसे तपस्वीका वर्णन किया है, वैसे रूपवाले एक तपस्वी मेरे शिखरपर तप करने आये। मैं पुत्रीके साथ उनके समीप गया। मैंने उनकी सेवामें पुत्रीको नियुक्त कर दिया, किन्तु उन्होंने कन्यासे सेवा लेना स्वीकार नहीं किया। पता नहीं उनसे और इस उमासे क्या शास्त्रार्थ हो गया। मैं उसे सम्पूर्ण समझ नहीं सका, किन्तु उन्होंने अन्तमें उमाको सेवार्थ स्वीकार कर लिया। यह उनकी सेवा करने लगी।'

कुछ समय पश्चात् सचमुच भगवान् शंकर थोड़ेसे गणोंके साथ हिमालयपर तपस्या करनेके लिए पधारे। उन दिनों वे सतीके विरहमें बहुत दुःखी थे। दिगम्बर रहते थे, कण्ठमें सतीके अस्थियोंकी माला थी। आते ही गंगाके उद्गमके समीप समाधि लगाकर बैठ गये।

तपोनिरत भगवान् त्रिलोचनके ललाटसे स्वेद टपका। उससे एक बालक प्रकट हुआ। यह चतुर्भुज अरुण वर्ण बालक उत्पन्न होते ही रोने लगा। स्त्रीरूप धारिणी भूदेवीने उसे गोदमें ले लिया। यह देखकर शंकर बोले—'तुम धन्य हो। मेरे इस पुत्रको पालो। यह तुम्हारे नामसे ही भौम कहलायेगा।' तत्काल ही वह युवा हो गया। वाराणसीमें जाकर तपस्या और शिवार्चनके प्रभावसे उसने ग्रहत्व प्राप्त किया। इसे लोग मंगल कहते हैं।

पार्वती उस समय आठ वर्षकी थीं जब भगवान् शंकर नन्दी आदि शान्त गणोंको लेकर हिमालयपर गंगावतरण स्थानपर आये थे और तपस्यामें

लग गये थे। उनके साथ वे गण नन्दी, भृंगी आदि भी मौन रहते थे, सेवामें तत्पर रहते थे और स्वयं भी तप करते थे।

भगवान् शंकरका आगमन सुनकर पर्वतराज हिमालय अपने सेवकोंके साथ वहाँ पधारे। उन्होंने स्तवन किया—'आप स्वयं तपस्वियोंकी तपस्याके फलदाता हैं। मुझे सनाथ करने ही आप यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक जानकर सेवाका सौभाग्य प्रदान करें। आज्ञा दें कि क्या सेवा करूँ ?'

भगवान शंकरने धीरेसे नेत्र खोला—'मैं एकान्तमें रहकर तपस्या करने आया हूँ। ऐसी व्यवस्था कर दो कि यह स्थान दुर्गम हो जाय। कोई मेरे समीप न आ सके। तुम देवता, दैत्य, तपस्वी—सबके आश्रय हो। मुझे भी आश्रय दो। मेरा तप निर्विघ्न हो।'

'प्रभो ! आपका स्वागत है। आपने मुझपर अनुग्रह करके मुझे धन्य किया।'—पर्वतराजने अञ्जलि बांधकर कहा—'आप निर्विघ्न तप करें। मैं आपकी सेवा करूँगा।'

घर आकर हिमालयने अपने परिवार और सेवकोंको बुलाकर आज्ञा दी—'गंगावतरणकी ओर कोई नहीं जायगा। यदि कोई उधर गया तो उसे दण्ड प्राप्त होगा।'

उत्तम पुष्प, फल और पुत्रीको लेकर हिमालय दूसरे दिन शिवके समीप गये। वहाँ उन्होंने तपोनिरत महेश्वरसे प्रार्थना की– 'मेरी यह पुत्री श्रीचरणोंकी सेवाको उत्सुक है, अतः इसे ले आया हूँ। यह सखियोंके साथ नित्य आपकी सेवा करेगी। यदि इसपर अनुग्रह है तो इसको स्वीकार कर लें।'

शिव नीलोत्पलवर्णा परम सौन्दर्यमयी गिरिराजकुमारीको देखकर नेत्र बन्द कर लिए।

पर्वतराजने पुनः स्तुति की। फिर प्रार्थना की—'दयामय ! आप नेत्र खोलकर इस सेवकको कृतार्थ करें। आप शरणागतवत्सल हैं। मैं आपकी शरण आया हूँ। अनुमति दें कि मैं आपके दर्शनार्थ प्रतिदिन आया करूँ। मेरी यह सुता आपकी सेवामें आया करे, इसकी भी आज्ञा दें।'

'पर्वतराज ! आप प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थ आ सकते हैं—गंगाधरने नेत्र खोलकर गम्भीर स्वरमें कहा—'किन्तु अपनी कन्याको घरपर ही रखिये, अन्यथा मेरे दर्शन नहीं होंगे।'

तात्पर्य स्पष्ट था कि कन्या आवेगी तो शिव यहाँसे चले जायँगे। बहुत खिन्न होकर हिमालयने पूछा—'क्या यह सुता आपकी सेवाके अयोग्य हैं ?'

शिव—'तुम्हारा सुता चन्द्रानना है, सौन्दर्यमयी है। श्रुतिदर्शियोंने स्त्रीको माया कहा है, वह तपस्याके लिए विघ्न है। मुझ तापसको स्त्रीसे क्या लेना-देना ? तुम स्वयं तपस्वियोंके आश्रय हो, ज्ञानी हो। ऐसा प्रयत्न तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुम जानते हो कि स्त्री तपमें विघ्न रूप होती है।'

शिव मौन हो गये। हिमालयने भी मस्तक झुका लिया, किन्तु तभी पिताको चकित करते हुए स्वयं पार्वती बोलीं—'प्रभो ! आप तपःशक्तियुक्त हो। तप करते हो या नहीं। सब कर्मोंकी शक्ति तो प्रकृति है। उसीसे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है। बिना प्रकृतिके आप लिंगरूप महेश्वर भी कैसे हो सकते हैं ?'

भगवान् शंकर हँसे। दक्ष-कन्याके देह-त्यागके पश्चात् विश्वनाथके मुखपर पहली बार हास्य रेखा नन्दीश्वरने देखी। वे तपोधन बोले—'अपने तपसे प्रकृतिका नाश करके मैं अपने स्वरूपमें निर्विकार नित्य स्थित रहता हूँ। सत्पुरुषोंको प्रकृति-परिग्रहसे रहित ही रहना चाहिए।'

गिरिराजकुमारीके अधरोंपर भी हास्य आया—'यह आपके वचन क्या अपनी प्रकृति नहीं हैं ? सम्पूर्ण वचन-रचना, समस्त क्रिया तो प्रकृति ही है। यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो यहाँ एकान्तमें तप क्यों कर रहे हैं ? इसकी क्या आवश्यकता है ? देव ! प्रकृति ही आपकी भी सब क्रियाओंका मूल है और वह प्रकृति मैं हूँ। मेरे अनुग्रहसे ही आप सगुण ब्रह्म हुए हैं। मेरे बिना आप निरीह—कुछ करनेमें असमर्थ निष्क्रिय हैं। आप प्रकृतिसे परे हो, यदि आपका यह वचन सत्य है तो मेरे सान्निध्यसे आपको भय नहीं करना चाहिए।'

शिव—'गिरिजे ! तुम तो सुभाषिणी हो, सांख्यके अनुसार बोलती हो। तत्वज्ञा हो। मैं तुम्हारा निषेध नहीं करता। वेदान्तवेद्य निर्लिप्त परम-ब्रह्म—मेरी तुमसे कोई हानि नहीं है। तुम प्रतिदिन मेरी सेवा कर सकती हो।'

शिवने हिमालयसे कहा—'पर्वतराज ! मुझे यहाँपर तप करनेकी अनुज्ञा दो, क्योंकि स्थानाधिपतिकी अनुज्ञाके बिना की हुई कोई भी साधना, अनुष्ठान सफल नहीं होता।'

हिमालय—'आप सर्वेश्वर हैं। समस्त जगत आपका ही है। मैं तो आपका तुच्छ सेवक हूँ। क्या कह सकता हूँ।'

शिवने हिमालयको सादर विदा किया। पर्वतराज वहाँ भगवान् धूर्जटिके दर्शनके लिए नित्य जाने लगे। पार्वती सखियोंके साथ पिताके बिना भी दिनभर भगवान् महेश्वरकी उस तपस्थलीमें ही रहती थीं और उनकी सेवा करती थीं। चन्द्रशेखरने भी अपने नन्दीश्वर आदि गणोंसे कह दिया कि वे शैलसुताको यहाँ आनेसे रोकें नहीं।

गिरिराज-तनया भगवान् नीलकण्ठके प्रतिदिन चरण धोकर उनका चरणामृत लेतीं। वह्नि शुद्ध वस्त्रसे उनके अङ्गका मार्जन करतीं। षोडशो-पचार पूजन करतीं। बारम्बार प्रणाम करके तब पितृगृह जातीं। वे कभी वहाँ सखियोंके साथ भगवान् शंकरका मधुर भजन गातीं। कभी कुश, पुष्प, समिधा स्वयं ले आतीं। कभी सखियोंके साथ उस स्थानका संस्कार करतीं। जब भी किसी काममें लगी नहीं होती थीं, निर्निमेष नेत्रोंमें भगवान चन्द्र-मौलिका दर्शन करतीं, अचञ्चल खड़ी रहती थीं। शिव प्रायः ध्यानलीन रहते थे। सब जानते हुए भी वे महेश्वर मानो कुछ देखते नहीं थे, कुछ जानते नहीं थे।

× × ×

असुरनायक तारकने कठोर तप करके ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया था कि वह शिवके औरस पुत्रके अतिरिक्त और किसीके हाथसे मरे नहीं।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके दो पुत्र थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। भगवान् विष्णुने वाराह और नृसिंह रूप धारण करके इन दोनोंको मार दिया। दितिने कश्यपकी सेवा करके मरुद्गणको उत्पन्न किया, किन्तु इन्द्रने उनको देवता बना दिया। दितिने फिर कश्यपकी सेवाकी। कश्यपने कहा—'तुम तपस्या करो तो तुम्हें महापराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा।'

दितिकी तपस्याके पश्चात् उसे जो पुत्र प्राप्त हुआ, उसका नाम था वज्रांग। माताकी आज्ञासे उसने इन्द्र तथा देवताओंको दण्ड दिया, किन्तु फिर इन्द्रको स्वर्गका राज्य वापस कर दिया। ब्रह्माने वरांगी नामक एक कन्याका निर्माण करके उससे वज्रांगका विवाह कर दिया। वरांगीको यह प्रिय नहीं था कि उसका पति देवताओंको उनका राज्य फिरसे दे दे। अतः उसने तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न किया और उनसे त्रिलोकविजयी पुत्र माँगा। ब्रह्माके आशीर्वादसे उसे जो पुत्र हुआ उसका नाम था तारक।

तारकने मधुवन (मथुरा) में जाकर घोर तप किया। उसकी तपस्या-से प्रसन्न हो जब विश्वस्रष्टा उसके समीप आये, उसने वरदान माँगा—'केवल शिव शुक्रसमुद्भूत पुत्र ही मुझे मार सके।'

तारकको वरदान देकर ब्रह्मा अपने लोकको चले गये। तारकने शोणितपुरको अपनी राजधानी बनाया। शुक्राचार्यने असुर-पति पदपर उसका अभिषेक किया। उसने त्रिलोकीको जीत लिया। सभी लोकपाल, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदिसे उनके जो भी श्रेष्ठ रत्न थे, तारकने छीन लिए। इन्द्रका ऐरावत, वरुणका श्वेताश्व, कुबेरकी निधियाँ तारकने प्राप्त कर लीं। ऋषियोंने उसे कामधेनु दे दी। सूर्यने डरकर उच्चैःश्रवा अश्व दे दिया। इस असुरने त्रिलोकीको निस्सार कर दिया। स्वयं इन्द्र बनकर त्रिलोकीका शासन करने लगा।

देवता संकटमें ब्रह्माजीकी शरण लेते हैं। इस बार भी सृष्टिककर्ताकी स्तुति की और तारककी निर्दयता, उपद्रव, क्रूरता बड़े कष्टसे निवेदन किया।

पद्मयोनि ब्रह्माने कहा—'रुद्र तो तपोनिरत हैं। उनकी नित्यशक्ति शैलसुता युवा हो गयी हैं। यदि उन्हें महेश्वर स्वीकार कर लें तो देव-ताओंका काम बन सकता है। अतः तुम लोग उनके समीप कामको भेजो।'

ब्रह्माने तारको भी समझाया और उनके समझानेसे वह स्वर्गको त्यागकर शोणितपुर चला आया।

देवराज इन्द्रने कामका स्मरण किया। वे पुष्पधन्वा मकरध्वज जब उपस्थित हुए, इन्द्रने उसकी प्रशंसा की—'तुम्हारी शक्तिकी सीमा नहीं है। तुम सबसे अजेय हो, इसलिए मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।'

'मैं ब्रह्मा, हरि तथा हरको भी सम्मोहित कर सकता हूँ।'....कामने गर्ववश जब यह बात कही, उसे इसकी कोई आशा नहीं थी कि सचमुच वह हरको सम्मोहित करने भेज दिया जायगा। लेकिन इन्द्रने कहा— 'तुम ठीक कहते हो, सचमुच ऐसे ही अजेय हो, प्रत्येक संकटमें मेरे सहायक हो, अत्यन्त प्रिय हो। अत: तपोनिरत रुद्र जैसे भी शैलजामें अनुरक्त हों, वैसा करो। वसन्तको अपने साथ ले जाओ। और भी जिन अप्सराओंको ले जाना हो, तुम स्वतंत्र हो।'

मदन अपने ही शब्दोंसे बँध चुका था। वह सहायकोंके साथ वहां गया जहाँ भगवान् शंकर तपस्या कर रहे थे। वसन्तने आसपासके उपवनको पुष्प नवपल्लव आदिसे सुशोभित बना दिया। हिमालयके शिखरोंपर भी कोकिल कूजने लगे। थी यह कामकी भूल ही, क्योंकि हिमालयपर वसन्तका यह विलास किसीको भी सशंक करनेके लिए पर्याप्त था। अप्सराओंके नृत्य, गन्धर्वोंके संगीत और कामके वाण लगभग विफल हो चुके थे तभी श्रीगिरिराजतनया भगवान् शंकरके समीप पधारीं। उनको देखकर मकर-ध्वजमें उत्साह आगया। पुष्पधन्वाने अपनी धन्वाहर सम्मोहन वाण चढ़ाया। जैसे ही पार्वतीने भगवान् रुद्रके चरणोंमें कमल पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित की, मन्मथकी धन्वासे सम्मोहन वाण छूट गया। शिवने नेत्र खोले और पार्वतीकी ओर साभिलाष दृष्टिपात किया। उमा संकुचित हो गयीं और अपने अंगोंको सिकोड़ने लगीं। सहसा शिव चौंके—'यह विघ्न कैसे ? मुझमें विकार क्यों ?'

अपने भीतर विकारका कारण न हो तो निश्चय ही उसे कहीं बाहर होना चाहिए। आत्माराम आप्तकाम महायोगेश्वर भगवान् भूतनाथमें विकार असम्भव है। उन्होंने चारों ओर दृष्टिपात किया। बिना ऋतुके ही उस हिमालयके प्रदेशमें हरीतिमा और कुसुमावली राशि-राशि बिखरी पड़ी थी, कोकिल कूज रहे थे। बात समझमें आगये--'यह सब इन्द्रका उत्पात है। मन्मथको भी यहीं कहीं होना चाहिए।' इधर-उधर देखने लगे। वामपार्श्वमें नवकिसलय और मौरके भारसे झुके आम्र पल्लवोंमें छिपा धनुष चढ़ाये मदन दृष्टि पड़ गया। उसने भी रुद्रकी भयंकर दृष्टि देख ली। धनुष फेंककर गगनमें भागा। उसने देवताओंका स्मरण किया। इन्द्रादि देवता भी आये। सबने पुकार की—'देव, दयानिधान ! क्षमा ! क्षमा !

किंतु तब तक शिवकी तृतीय नेत्र-ज्वालासे मदन भस्म हो चुका था। यह देखकर पार्वती भयसे श्वेत पड़ गयीं। सखीके साथ वे घर लौट गयीं।

रति मूर्छिता हो गयी। दुःखसे विलाप करने लगी। देवताओंने उससे कहा—'तुम कामकी देह-भस्म लेकर उसकी रक्षा करो। इस भस्मसे वह पुनः जीवित होगा।'

(शिवपुराण)

देवताओंने प्रार्थना की—'देवदेव महादेव ! हमने तो गिरिराज-नन्दिनीकी सहायताके लिए मन्मथको आपके समीप भेजा था, उसका कोई अपराध नहीं था। विश्वके एकमात्र बन्धु ! आपको अपने तेजसे देवताओंको अभय देना चाहिए। हम सब देवता तारकसे डरते हैं। उसने हमें बहुत सताया है। पार्वतीके गर्भसे उत्पन्न आपका औरस पुत्र ही उसे मार सकता है। हमारी रक्षाके लिए आप कामदेवको जीवन-दान दें। आपने बार-बार हमारी रक्षा की है। प्रत्येक संकटमें हमारी सहायता की है। इस बार भी हमें शरण दें। शैलसुताका पाणिग्रहण करें। हमारे कार्यको सिद्ध करनेके लिए आए हमारे उपकारमें संलग्न कामदेवकी आपको रक्षा करनी चाहिए।'

भगवान् महेश्वरने कुछ रुष्ट होकर कहा—'देवताओ ! तुम सबको कामनारहित होना चाहिए। जब भी देवता कामको आगे करके चले हैं, तब-तब अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हुए हैं, दुःखमें पड़े हैं और दैन्यके भागी हुए हैं। मैंने सबकी शान्तिके लिए कामदेवको जलाया है। तुम सब देवता, असुर, ऋषि-मुनि और दूसरे प्राणी भी अब निर्भय होकर तपस्यामें लगे रहो। आज सम्पूर्ण जगतको मैंने कामके महाविघ्नसे रहित कर दिया है। यह पापी काम दुःखकी जड़ है, अतः मैं अभी इसे जीवनदान नहीं दूँगा। तुम्हें समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।' (स्कन्द पुराण)

रतिकी व्याकुलता और उसकी स्तुतिसे भगवान् शिव संतुष्ट हुए। उन्होंने उसे आश्वासन दिया—'श्रीकृष्णावतारमें तुम्हारा पति अंग प्राप्त करके श्रीकृष्णका पुत्र बनेगा, तब तक वह अनंग रहेगा। इस अवधिके मध्य मैं कामको जीवित करूँगा। वह मेरा गण होगा। यह आश्वासन देकर भगवान् शंकर गणोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये। (शिवपुराण)

रति रोती हुई पार्वतीके समीप गयी। उन महाशक्तिने भी आश्वासन दिया—'तुम शोक मत करो। तुम्हारे पतिको मैं जीवन दिलाऊँगी।'

(स्कन्द पुराण)

द्वितीय कथा—

मदन-दहनकी यह कथा, जो ब्रह्मपुराणमें आयी है, उमाके विवाहके पश्चात्की है—

भगवान शिव जब पर्वतनन्दिनीसे विवाह करके गन्धमादनपर आ गये, तब पुष्पधन्वाको उनपर विजय करनेकी सूझी। वह अपनी पत्नी रतिके साथ चक्रवाक पक्षी बनकर आया और शिवपर उसने अपने सम्मोहनास्त्रका प्रयोग किया। भगवान महेश्वरने तृतीय नेत्र खोलकर अवहेलनापूर्वक कामकी ओर देखा। उनके नेत्रसे उठी ज्वालाकी लपटोंसे मदन जलने लगा, आर्तनाद करता गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। रतिने उमा-महेश्वरकी स्तुति की और पतिके प्राणकी याचना की।

महेश्वर—'कल्याणी ! मदन तो अब निश्चय दग्ध हो चुका। यहाँ इसको जीवन मिलना सम्भव नहीं है। तपोवनमें जीवित कामकी उपस्थिति उचित नहीं है। लेकिन यह अशरीर रहते क्रियाशील रहेगा। द्वापरमें श्रीकृष्णका पुत्रत्व प्राप्त होनेपर शरीरधारी रहेगा।' रति प्रणाम करके विदा हो गयी।

—: ० :—

पार्वतीकी तपस्या

भगवान शंकरके नेत्रसे निकली ज्वाला चराचरको भस्म कर रही थी। ब्रह्माने उसे समुद्रमें डाल दिया। वहाँ वह वाड़वाग्नि हो गयी। जल ही उसका आहार है। यह अग्नि जिस समय कामदेवको जला रही थी, बड़ा भयानक शब्द हुआ। दिशाएँ उस शब्दसे मानो फट गयीं। सपरिवार हिमालय चकित, भयभीत हुए, चिन्तित हुए और पुत्रीका क्या हुआ, यह देखने घरसे निकले। उसी समय देखा कि अत्यन्त विह्वल अवस्थामें पार्वती रोती हुई चली आ रही हैं। सखियाँ उनके पीछे हैं। भगवान् शिवके अन्तर्हित हो जानेसे उनके वियोगसे व्याकुल उमा अपनेको भूल गयी थीं। पिताने उन्हें हृदयसे लगाया, उनकी पीठ सहलायी, 'डरो मत, डरो मत' आश्वासन देकर घरके भीतर ले गये।

शिव इस प्रकार तिरोहित हो गये कि उनके पुनः मिलनेकी आशा दीखती नहीं थी। मातासे पार्वती मिलीं, मानो उनको नया जन्म मिला हो। वे बार-बार अपने रूपकी निंदा करती थीं, कहीं भी उन्हें शान्ति मिलती नहीं थी, सखियोंके समझानेका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। भोजन, स्नान, शयन, सखियोंका संग कुछ भी रुचता नहीं था। माता-पिता सखी सबके समझानेपर भी उमाको धैर्य नहीं होता था। अपने रूपको धिक्कारना और शिव-शिव' नामका जप—दो ही कार्य उनके रह गये थे।

देवर्षि नारद हिमालयके गृह पधारे। पर्वतराजने उन्हें अपनी पुत्रीकी व्यथा सुनायी। सब सुनकर देवर्षिने हिमालयसे कहा—'तुम शिवका भजन करो।' पार्वतीसे देवर्षि एकान्तमें मिले। बोले—'देवि! वैसे तो आप महेश्वरसे नित्य अभिन्न उनकी शक्ति ही हैं, किंतु आपने गर्वसे उनकी सेवा की यह समझकर कि वे आपके रूपपर मुग्ध होंगे। सदाशिव नित्य-निर्विकार हैं। उन्होंने आपका गर्व नष्ट कर दिया है, किंतु वे दीनोंपर अनुग्रह करने वाले शरणागतवत्सल हैं। तपस्या उनका स्वरूप है। यदि आप तपस्या करके उनकी तपस्या करें तो वे आपको स्वीकार कर लेंगे। वे

आपको छोड़कर दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकते और आप भी अपने स्वामीको छोड़कर दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकतीं।'

पार्वतीने बद्धाञ्जलि प्रार्थना की—'आप मुझे मन्त्र देनेका अनुग्रह करें; क्योंकि गुरुमुखसे सुना हुआ मन्त्र ही सफल होता है। देवर्षि नारदने पञ्चाक्षर मन्त्रकी दीक्षा दी।

देवर्षिके जानेपर उमाने अपनी जया और विजया सखियोंसे कहा कि वे पितासे तपस्याके लिए अनुमति प्राप्त करें। सखियोंने हिमालयसे प्रार्थना की—'आपकी पुत्री तपस्या करना चाहती हैं। तपसे ही शिवको पाना सम्भव है, अतः आपको आज्ञा देनी चाहिए।'

'मुझे तो यह बात उचित लगती है, पर उसकी मातासे पूछना चाहिए। निश्चय ही हमारा कुल कन्याकी सफलतासे धन्य होगा।'

सखियोंने माताके पास जाकर प्रणाम करके पार्वतीके लिए तपस्या करनेकी आज्ञा मांगी। मैना व्याकुल होकर बोलीं—'उमा, उमा' (ऐसा नहीं, ऐसा नहीं)। तबसे गिरिजाका उमा नाम प्रचलित हो गया।

पार्वतीने अञ्जलि बाँधकर माताके चरणोंमें मस्तक रखा। माताने उन्हें गोदमें बैठा लिया और बोलीं—वत्से! तू बहुत दुःखी है और तप ही करना चाहती है तो घरमें रहकर कर, वनमें मत जा। तेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है। मैंने तपोवनमें स्त्रियोंकी गति नहीं सुनी है।'

मैना निवारण ही करती रहीं, किंतु पार्वती बोलीं नहीं। वे मस्तक झुकाकर रुदन करती रहीं। उनका रुदन माताको असह्य हो गया। उन्होंने आज्ञा दी—'मैं तेरे कमलनेत्रोंमें आँसू नहीं देख सकती। तुझे यदि तपस्या करनेमें ही प्रसन्नता है तो जा।'

उमा बहुत प्रसन्न हुईं। माता-पिताको प्रणाम करके दोनों सखियोंको साथ ले वे वहीं गंगावतरणमें तपस्या करने गयीं, जहाँ भगवान शंकरने तपस्या की थी।

पर्वताधिराजकन्याने हार, आभूषण, किंकिणी, दिव्य वस्त्र—सब त्याग दिये। कटिमें मौंजी मेखला, वल्कल वस्त्र, मृगचर्मका उत्तरीय धारण

करके अपने केशोंको जटाके रूपमें परिणत किया। उनके उस तपोवनमें आनेसे उस शिखरका नाम गौरीशंकर शिखर पड़ा। वहाँके जो वृक्ष शिवकी नेत्राग्निमें झुलसकर सूख गये थे, पार्वतीके आनेसे हरे हो गये। स्वयं गिरिजाने भूमि शुद्ध करके अपने करोंसे वहाँ वेदीका निर्माण किया। ग्रीष्ममें वे अपने चारों ओर अग्नि जलाकर उसके मध्य ध्यानस्थ बैठी रहती थीं। वर्षामें शिलापृष्ठपर स्थिरासना वारिधारा सहती थीं। शीतकालमें रात्रिमें भी आकण्ठ जलमग्ना रहती थीं। जिह्वा निरन्तर पञ्चाक्षरके जपमें लगी रहती थी। मनमें तरुणेन्दु शेखर भगवान् शिवकी अविचल मूर्ति विराजमान थी। उन्होंने वहाँ वृक्ष लगाये थे और स्वयं ही उनको सींचती थीं। प्रथम वर्षमें उन्होंने फलोंपर निर्वाह किया, द्वितीय वर्षमें केवल पत्ते खाकर रहीं। तृतीय वर्ष शीर्ण पत्र (वृक्षसे टूटकर अपने आप गिरे पत्ते) खाया। फिर वह भी त्याग दिया। इससे देवताओंने पुष्प-वर्षा की और कहा—'देवि ! जगदम्बे ! आप सचमुच अपर्णा हो।'

चीरवल्कल, जटा-जूटधारिणी, एक चरणपर खड़ी अनन्त तेजोमयी पार्वतीकी तपस्विनी मूर्ति ऐसी हो गयी कि किसीके लिए भी उनकी ओर देख पाना कठिन हो गया। ऋषि-महर्षि, मुनिगण, और योगीन्द्र भी दूर-दूरसे उनके दर्शन करने आने लगे। दूरसे ही प्रणाम कर वे अपना अहो-भाग्य मानते। त्रिभुवनके साधक, तपस्वियों, ऋषियोंमें सर्वत्र पार्वतीकी तपस्याकी ही चर्चा, प्रशंसा होने लगी। उस तपोवनमें बाहरके भी स्वभावतः शत्रु जीव आकर शान्त हो गये थे। पर्वतका शिखर मणियोंके प्रकट होनेसे ज्योतिर्मय हो गया। सभी वृक्ष और तृण सदा पुष्पित और फलित रहने लगे।

बहुत दिनों पीछे पर्वतराज हिमालय सपत्नीक पधारे—'बेटी तुम जन्मसे ही दुर्बल देह और सुकुमारी हो। इतना कठोर तप तुम्हारा यह शरीर कब तक सहेगा ? उठो और घर चलो। रुद्रने काम ही भस्म कर दिया। उनसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है ? वे तुम्हें ग्रहण करने क्यों आवेंगे ?'

'शिव निर्विकार हैं–उनका सबसे बड़ा दुर्गुण यही है'—माताने झुंझला कर कहा।

'आप सब कृपा करके घर लौट जायँ।'—पार्वतीने बड़ी नम्रतासे मस्तक झुकाकर प्रार्थना करते हुए कहा—'मेरी तो प्रतिज्ञा है, मैं इसी

प्रकार तप करते हुए एक नहीं, सकड़ों शरीर छोड़ने पड़ें तो छोड़ती रहूँगी। वे देवदेव भक्तवत्सल हैं। वे मेरी तपस्यासे संतुष्ट होंगे—यह मुझे विश्वास है। मेरा मन सुदृढ़ है। मुझे भरोसा है, वे निर्विकार कामारि निश्चय ही आवेंगे।'

माता-पिता, भाइयोंने पार्वतीके निश्चयकी, निष्ठाकी प्रशंसा की और लौट गये। पार्वतीके तपसे त्रिलोकी संतप्त होने लगी। देवता व्याकुल हो गये। उन्होंने देवगुरु वृहस्पतिकी शरण ली। उनके समझानेसे भगवान् ब्रह्माके समीप गये। सबके सब कान्तिहीन हो रहे थे। उन्होंने स्तुति करते हुए कहा—हमारा शरीर जला जा रहा है। चराचर जगत संतप्त हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है, हम समझ नहीं पाते हैं। आप ही हमारे रक्षक हैं।'

सृष्टिकर्ता भी कुछ कर नहीं सकते थे। वे देवताओंको लेकर क्षीर-सागरके किनारे गये और नारायणकी स्तुति की। भगवान् विष्णुने प्रकट होकर कहा—'सृष्टिमें जब कोई गुण अपनी सीमाको पार कर लेता है, उससे त्रिभुवन प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता। पार्वतीके दीर्घकालीन कठोर तपसे ही यह त्रिभुवनका संताप है। अतः हम सब कैलास चलें। शिव गिरिजाका पाणिग्रहण स्वीकार करें, तब लोक-कल्याण हो।'

'कालाग्निस्वरूप रुद्र हमें भी भस्म कर दे सकते हैं।'—देवताओंने भयभीत स्वरमें आशंका की।—कामने उन्हें गिरिजाकी ओर आकर्षित करना चाहा था, उसे उन्होंने जला दिया। यही प्रार्थना आप हमें भी करनेकी सम्मति दे रहे हो।'

'आप सब डरें नहीं। भगवान आशुतोष सब समय प्रलयंकर नहीं होते।'—श्रीहरिने सान्त्वना दी और देवताओंके साथ कैलास पहुँचे। नन्दिकेश्वरने नारायणको आया देखकर भगवान शंकरसे निवेदन किया—श्रीहरि, ब्रह्मा और देवताओंके साथ आपके दर्शनार्थ पधारे हैं।'

ध्यानस्थ परम योगेश्वर रुद्रने धीरे-धीरे नेत्र खोले। बोले—'आप सब मेरे समीप क्यों पधारे हैं?'

ब्रह्मा—'तारकासुरसे इस जगतको बड़ी पीड़ा हो रही है। आप गिरिजाका पाणिग्रहण करें, तभी इस असुरका शमन हो सकता है।'

'मैंने तो सबको निष्काम करनेके लिए कामका दहन किया है। इससे सबके कार्य सिद्ध ही होंगे। मदन अत्यन्त उन्मत्त था। उसने देवता, मुनि, ऋषि तथा साक्षात् सृष्टिकर्ताको भी तंग किया था। काम नर्कका द्वार है, उससे क्रोध, मोह, स्मृति-विभ्रम पैदा होते हैं।'—शिवने कहा—'इसलिए देवताओंको भी काम, क्रोधका त्याग ही इष्ट होना चाहिए।'

भगवान शंकर इतना कहकर ध्यानस्थ हो गये। देवता हताश हो गये। नन्दीश्वरके कहनेसे उन्होंने पुनः शिवका स्तवन प्रारम्भ किया। महेश्वरने नेत्र खोले। विष्णुने प्रार्थना की—'तारक को ब्रह्माजीने वरदान दे दिया है। जब आप आर्तप्राणियोंकी रक्षासे उदासीन हो जायँगे तो त्रिलोकी किसकी शरणमें जायगी ? तारकको पार्वतीमें उत्पन्न आपका पुत्र ही मार सकता है। दूसरी ओर आपकी प्राप्तिके लिए शैलजा अत्यन्त कठिन तप कर रही हैं। उनके तपस्तेजसे भी त्रिभुवन संतप्त है। उन महाशक्तिका अतिक्रमण करनेकी सामर्थ्य भी किसीमें नहीं है—यह आप जानते हैं। इसलिए हम सबपर—त्रिभुवनके सब प्राणियोंपर दया करके आप उनको वरदान देने पधारें और कठिन तपसे विरत करें।'

'यद्यपि योगनिरतके लिए विवाह बन्धन है, किन्तु आप सबकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं की जा सकती। आप सब अपने धाम पधारें, मैं आपका काम सिद्ध करूँगा।'

पार्वतीके तपः प्रभावसे शिवका हृदय भी द्रवित हो गया था। उन्होंने सप्तर्षियोंका स्मरण किया। वशिष्ठ आदि सप्तर्षि वहाँ आये। भगवान शंकरके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया। शंकरने कहा—'आप सब उमाके पास जाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लें और उन्हें समझाकर तपस्यासे निवृत्त करें।'

सप्तर्षि गंगावतरणपर तपोनिरता पार्वतीके समीप पहुँचे। सखियों सहित उमाने उनका स्वागत किया, अर्ध्य देकर उनकी पूजा की। सप्तर्षियोंमें-से वशिष्ठने पूछा—'देवि ! आप इतना उग्र तप क्यों कर रही हैं। ऐसा क्या अभीष्ट है जिसे प्राप्त करनेके लिए आपको भी तप करना पड़ा। आपके पिता सम्पूर्ण मणियोंके—सम्पत्तिके स्वामी हैं, तपस्वी ऋषि-महर्षि उनकी शरण लेकर तप करते हैं। आपका सौन्दर्य-प्रभाव भी ऐसा है कि त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं है जो आपका कर ग्रहण करके सौभाग्यशाली न हो। फिर ऐसा क्या आपको दुर्लभ है जिसके लिए आप तपस्यामें लगी हैं ?'

भगवतीने सखीको संकेत किया और सखीने ही बताया कि उमा शिवको पति रूपमें पानेके लिए यह तप कर रही हैं। सप्तर्षियोंने इस निश्चय-की हँसी उड़ायी—'शिव निर्विकार हैं, कंगाल हैं, सर्प-कपाल धारण करते हैं, इससे तो अच्छा है कि आप भुवनसुन्दर निखिल ऐश्वर्यमय विष्णुका वरण कर लें। आप अनुमति दें तो हम नारायणको इसके लिए प्रस्तुत कर दें।'

पार्वतीने अञ्जलि बाँधकर विनम्रता पूर्वक कहा—'आप सबने अपनी समझसे जो कहा है उचित है। शिव सम्पूर्ण गुणोंसे रहित हैं—निर्गुण हैं, जानती हूँ। भगवान् नारायण निखिलगुणोंकेधाम हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु मुझे जन्म-जन्ममें शिवके चरणारविन्द प्राप्त हों। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी कोई गति नहीं है। आपका मंगल हो। आप सब यहांसे पधारें, मैं अपने निर्णयको परिवर्तित करनेमें असमर्थ हूँ।'

सप्तर्षियोंने उमाकी निष्ठा—प्रेमकी प्रशंसा की। वहांसे भगवान् शंकर-के पास जाकर उन्होंने जो कुछ हुआ था, सुना दिया। स्वयं भगवान् शंकर ब्रह्मचारी बनकर उमाके तपोवनमें पधारे। देवीने उस तपस्वी ब्रह्मचारीकी पूजा की। पूछा—'आप कौन हैं ? कहाँसे पधारे हैं ? आप तो अपने तेजसे दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं।'

'मेरी जहाँ इच्छा होती है, जाता हूँ। विप्र हूँ, वृद्ध हूँ, शरीर निर्बल है, दूसरोंको सुख देना ही मेरा व्रत है।'—उस ब्रह्मचारीने कहा—'तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? इस निर्जन वनमें तपस्या क्यों कर रही हो ? तुम तो वृद्धा नहीं हो, तरुणी हो, पतिके बिना यह तीव्र तप क्यों ? किसकी सहधर्मिणी हो ? क्या वह तुम्हारा पोषण नहीं करता ? या अन्यत्र कहीं चला गया है ? तुम महासुन्दरी यहाँ व्यर्थ तप क्यों कर रही हो ? सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती—इनमें-से तुम कोई हो ?'

उमाने अपना परिचय दिया। उनके संकेतपर सखियोंने उनकी तपस्याका उद्देश्य बतलाया। वृद्ध ब्रह्मचारी बोला—'तुम्हारी सखियोंकी बात क्या ठीक है ? यह भी क्या विश्वास करने योग्य है ?

'मैं जन्म-जन्मकी शिवकी सेविका हूँ। इस जन्ममें भी उनकी सेवा मुझे मिली थी, पर मेरे दुर्भाग्यसे वे कामको भस्म कर मेरा त्याग करके

अन्तर्हित हो गये। उन्हें प्राप्त करनेके लिए ही मैं तपस्या कर रही हूँ।'— गिरिजाने बहुत संकोच पूर्वक कहा।—'वे अब तक मिले नहीं हैं। मैं तो निराश हो गयी थी और अग्निमें ही प्रवेश करने वाली थी। आप आ गये, अतः कुछ क्षणको रुक गयी हूँ। अब आप यहाँसे पधारें। शिवने मुझे अंगीकार नहीं किया, अतः उनकी सेवाके अयोग्य इस देहको मैं अग्निको समर्पित कर दूँगी।'

'ऐसा मत करो।'—ब्रह्मचारीने कहा, किन्तु उमाने उसकी बात स्वीकार नहीं की और पहलेसे प्रस्तुत काष्ठराशिमें उनके संकेतपर उनकी सखी विजयाने अग्नि प्रज्वलित किया, पार्वतीने उसमें प्रवेश किया, किन्तु अग्नि उन महाशक्तिके शरीरका स्पर्श करनेमें ही समर्थ नहीं था। ज्वालाएं स्वयं ही शान्त हो गयीं। तब पार्वतीने आसनस्थ होकर योगमें देहत्यागका उद्यम किया।

ब्रह्मचारी हंसा—'भद्रे! तुम्हारे तपका क्या होगा? न अग्निने तुम्हें जलाया, न तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। तुम अपना मनोरथ ठीक-ठीक समझाओ, तुम चाहती क्या हो? मुझे तो सब फल तुममें ही मूर्तिमान दीखते हैं।'

पार्वतीने सखीको संकेत किया। सखी विजयाने बतलाया—'हमारी यह सखी अब तक अविवाहित है। यह शिवके अतिरिक्त किसीको इच्छा नहीं करती। इन्हें यहां तप करते दीर्घकाल व्यतीत हो चुका। जिन वृक्षोंको इन्होंने स्वयं लगाया था इनमें अनेक बार पुष्प और फल आ चुके हैं, पर मेरी सखीपर अब तक भगवान् पिनाकपाणि सन्तुष्ट नहीं हुए।'

ब्रह्माचारी—(पार्वतीसे) 'यह तुम्हारी सखी बहुत परिहासप्रिय है। क्या सचमुच तुम्हारा ऐसा निश्चय है? यह ठीक कहती है?'

'विप्रश्रेष्ठ! सखी सत्य कहती है'।—उमाने कहा—'मैं जानती हूँ, सदाशिव दुर्लभ हैं, किन्तु मैंने उनको प्राप्त करनेका ही निश्चय किया है।'

ब्रह्मचारी—'देवि! मैं उत्सुक था कि तुम्हारे जैसी सुन्दरी किस लिए तपस्या कर रही है। अब मैं जाता हूँ। तुम्हारे हितकी बात भी क्या कहूँ?'

ब्रह्मचारी जाने लगा। पार्वतीने अञ्जलि बाँधकर सामने आकर कहा--'देव ! जब आपने यहाँ आनेका अनुग्रह किया है तो मेरे हितकी बात जो आपके मनमें है, कहते जाइये।'

'हितकी बात कहनेको कहती हो तो सुनो।' दण्ड लेकर चलने वाले उस वृद्ध ब्रह्मचारीने कहा--'महादेव भस्म लगाये जटा बढ़ाये दिगम्बर रहते हैं। बहुत हुआ तो व्याघ्र चर्म पहनते और गजचर्म ओढ़ते हैं। कपाली हैं, सर्प लपेटे रहते हैं। विष तथा अभक्ष्य-भक्षण करते हैं। एक तो त्रिनेत्र हैं, दूसरे वे नेत्र भी पिंगल हैं, इसीलिए उनको विरूपाक्ष कहा जाता है। भूत-प्रेतोंसे घिरे रहते हैं। तुम ऐसे स्वामीकी इच्छा क्यों करती हो ? पहले दक्षने अपनी पुत्री उनको विवाह दी। फिर उसने कपालीकी स्त्री कह कहके सुताका त्याग कर दिया। शिवको यज्ञमें भाग भी नहीं मिलता। इसी अपमानसे तो सतीने प्राण दे दिये। तुम तो स्त्रियोंमें रत्न हो, तुम्हारे पिता पर्वतोंके राजा हैं। तुम चन्दनको छोड़कर कीचड़ क्यों लगाना चाहती हो ? सूर्यको त्यागकर खद्योतकी कामना क्यों तुम्हें प्रिय हैं ? कौशेय छोड़कर चर्माम्बरकी रुचि क्यों ? तुम कमल-लोचना हो शिव विकट-लोचन हैं, तुम चन्द्रमुखी हो शिव पञ्चमुख, तुम्हारे सुकुमार केश बहुत मनोहर वेणी बनाते हैं और वे धूर्जटि हैं। तुम्हारे अंग मलयजलिप्त होने योग्य हैं वे चिता-भस्म लगाते हैं। तुम्हें दिव्याभरण सजाते हैं वे मुण्डमाली, अहिभूषण हैं। तुम्हारे अनुचर देवता उनके भूत-प्रेत। तुममें और शिवमें तो कहीं भी तो कोई समानता नहीं है। वे निर्धन होनेसे बूढ़े बैलपर बैठते हैं। स्त्रियोंको जो कुछ प्रिय होता है उनमें-से कोई भी गुण तो रुद्रमें नहीं हैं। कामको उन्होंने भस्म कर दिया। स्वयं तुम्हारी उपेक्षा करके तुम्हारा अनादर किया। उनकी जाति, विद्या, कुलका कोई पता नहीं है। एकाकी रहते हैं, उनसे तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? अतः शंकरमें मन मत लगाओ। अपना मन वहाँसे हटा लो।'

'मैंने तुम्हें सत्पुरुष समझा था।' शिव-निन्दा सुनकर पार्वती क्रोध-पूर्वक बोलीं— ब्रह्मचारी अवध्य होता है, इसलिए बहुत क्रोध आनेपर भी तुम्हें शाप नहीं दिया जा सकता। यदि तुम हरको जानते तो ऐसे वचन नहीं कहते। वे परमब्रह्म अपनी लीलासे सगुण होते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमात्मा को विद्यासे क्या काम ? जो सबका आदि कारण है, उसका कुल और जाति क्या ? उनकी सेवासे जीव लोकेश्वर होता है। उन्हें और उनके सेवकोंको भी त्रिभुवनमें कहीं कुछ दुर्लभ है ? भगवा न्महेश्वरके अंगसे गिरी हुई

चिता-भस्म देवता और ब्रह्म भी अपने सिरपर धारण करते हैं। जो पुरुष शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्म-भरका पुण्य भस्म हो जाता है। शिवद्रोहीको देखकर सचैल स्नान कर प्रायश्चित्त करना उचित है। शिव रूपवान् हों या कुरूप, निर्गुण हों या गुणधर्म वाले, वही मेरे सर्वस्व हैं। वे भक्तवत्सल, दीनोंपर अनुग्रह करने वाले मेरी भी सुनेंगे ही।'

पार्वती यह कहकर चुप हो गयीं। ब्रह्मचारी कुछ बोलना चाहता है· यह देखकर उमाने विजयासे कहा—'सखि ! यह द्विजाधम फिर शिव-निन्दा करने वाला है। इसे रोकना चाहिए ; क्योंकि शिव-निन्दा करनेसे ही नहीं उसका सुनने वाला भी पापका भागी होता है। शिव-निन्दक ब्राह्मणेतर हो तो उसे दण्ड देना चाहिए, ब्राह्मण हो तो उसे त्याग देना चाहिए। यह ब्राह्मण होनेसे अवध्य है, अतः इस स्थानको मैं छोड़ जाती हूँ।'

जानेके निश्चयसे जैसे ही पार्वती मुड़ीं, शिवने ब्रह्मचारी रूप त्याग-कर अपना स्वरूप ग्रहण किया और उमाका हाथ पकड़ लिया—'अब मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी ? मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो। आजसे मैं तुम्हारा तपःक्रीत हो गया। तुमने अपनी तपस्यासे मुझे मोल ले लिया है। अब लज्जा त्याग दो। तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो।'

लज्जासे उमाने सिर नीचे झुका लिया। उनका मन प्रसन्न था, शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। स्वेदसे स्नात हो गयी थीं। मन्द स्वरमें बोलीं—'देवदेव ! आप मेरे नाथ हैं। यदि आप प्रसन्न हैं तो विवाह करके मेरे पति बनें। आपकी आज्ञासे मैं पिताके घर जाती हूँ। आप मेरे पितासे मुझे मागें जिससे मेरे पिताका गृहस्थाश्रम सफल हो। ऋषियों द्वारा समझाये जानेपर पिता आपको मुझे दे देंगे।'

शिवने इसे स्वीकार कर लिया और अन्तर्धान हो गये। संकोचके साथ पार्वती पितृ-गृह आयीं। मैना और हिमालयने हर्षित हो उनका स्वा-गत किया। बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, प्रशंसा की, उत्सव मनाया।

(शिवपुराण)

स्कन्दपुराणमें भी यह कथा प्रायः इसी रूपमें है। केवल इसके अन्तिम अंशमें कुछ अन्तर है—

जब ब्रह्मचारीके रूपमें आये शिवने अपनी ही निन्दा की तब उसे सुनकर रोष प्रकट करती हुई उमाने अपनी सखियोंसे कहा—'जया, विजया, विश्वसुन्दरी, प्रमलोचा जौर सुलोचने ! मैं तुम लोगोंसे कहती हूँ, मैंने जो कुछ किया है, ठीक किया है। तुम्हें इस ब्रह्मचारीसे क्या काम है जो इसकी कठोर बातें सुनती हो ? ब्रह्मचारी रूप धारण करके यह कोई शिव-निन्दक आ गया है। संतोंकी निंदा करने वाले पापी, कृतघ्न, वेददूषक, वेदभ्रष्ट और मर्यादाभ्रष्ट लोगोंके साथ बुद्धिमानोंको बात नहीं करनी चाहिए। श्रेष्ठ पुरुषकी निंदा सुनकर जो तत्काल वहाँसे उठकर अन्यत्र नहीं चला जाता, वह पापका भागी होता है।'

ब्रह्मचारी ! जाओ,'यहाँसे अभी चले जाओ। तुम्हें यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहिए।'—विजयाने इस प्रकार फटकार करके ब्रह्मचारीको विदा कर दिया। वह तत्काल अन्तर्धान हो गया। कुछ ही क्षण पीछे भगवान् महेश्वर अपने वास्तविक रूपमें पार्वतीके सम्मुख प्रकट हुए। उमा जब ध्यानमें अपने मनको शिवमें लगाना चाहती थीं, अपने सम्मुख उन्होंने द्विभुज, जटा-जूट घारण किये, चन्द्रमौलि गजचर्माम्बर पहने हुए सर्पोंसे कुण्डल बनाये भगवान शंकरका दर्शन किया। शिवने प्रसन्न होकर कहा—'कल्याणी ! वर माँगो।'

'देवेश ! आप मेरे सनातन स्वामी हैं। आपने अपनी किंकरी दक्षकी कन्या सतीको सर्वथा विस्मृत कर दिया ? मैं वही आपकी दासी अब मैनाके गर्भसे प्रकट हुई हूँ। आपको ऋषियोंके साथ मेरे पिताके पास जाना चाहिए और मेरी याचना करनी चाहिए। मेरे पिता आपकी आज्ञाका पालन करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।'

'तुम त्रिगुणात्मिका प्रकृति हो और मैं सदा तुम्हारे सब व्यापारोंका साक्षी मात्र हूँ। हिमालयके पास मैं नहीं जाऊँगा, किसी प्रकारकी याचना नहीं करूँगा क्योंकि किसीके सामने 'दीजिए' ऐसा कहनेसे पुरुष लघुताको प्राप्त होना है। 'यह कह करके भगवान् शिव तिरोहित हो गये।'

इसी समय पत्नीके साथ हिमवान् वहाँ पधारे। उमाने माता-पिताको प्रणाम किया। हिमालयने पूछा — 'तुमने जैसे-तैसे यहाँ रहकर क्या किया है ? अब घर चलो।'

'पिताजी ! सब लोगोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ मेरा मनोरथ आज सिद्ध हो गया है ।'—उमाने सलज्ज भावसे कहा–'भगवान् नीलकण्ठ यहाँ पधारे थे, किंतु जब मैंने कहा कि पिताजीकी अनुपस्थितिमें आप मेरा पाणिग्रह कैसे कर सकते हैं तब वे यहाँसे चले गये ।'

बन्धु-बान्धवों सहित हिमवानको बड़ी प्रसन्नता हुई। सखियोंके साथ पार्वतीको लेकर वे घर आ गये ।

द्वितीय कथा—शिवकी प्राप्तिके लिए अपर्णाने दीर्घकाल तक तपस्या की। संतुष्ट होकर हंसवाहन ब्रह्माजी आये और बोले—'देवि ! इस कठोर तपसे क्यों तुम सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त कर रही हो ? तुम्हींने तो सम्पूर्ण जगतकी सृष्टि की है। स्वयं ही सृजन करके अब इसका विनाश मत करो। जगन्माता ! तुम्हीं अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करती हो, फिर ऐसी क्या वस्तु है जिसे तुम तपसे प्राप्त करना चाहती हो ?'

'पितामह ! जिसके लिए मैं तप करती हूँ, उसे आप भली प्रकार जानते हैं ।'—पार्वतीने कहा–'मुझसे क्यों पूछ रहे हैं ?'

'जिनके लिए तुम तपोलग्ना हो वे स्वयं तुम्हारा वरण करेंगे ।' —ब्रह्माने वरदान दिया। 'वे सम्पूर्ण लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। हम सब तो उनके अधीन उनके किंकर हैं। वे परमोदार तुम्हें अवश्य स्वीकार करेंगे ।'

सृष्टिकर्ताके विदा हो जानेके कुछ काल पश्चात वहाँ देवता आये। उन्होंने गिरिजाको आश्वासन दिया–'शिव थोड़े दिनोंके पश्चात् आपके स्वामी होंगे। अब आप तपस्या मत करें ।' उमाने तपस्याका त्याग कर दिया, पर वे उसी आश्रममें बनी रहीं। देवता चले गये।

एक दिन गिरिजा अशोक वृक्षका सहारा लेकर खड़ी थीं, तभी वहाँ लीलामय भगवान शंकर विचित्र वेशमें पधारे। वे चन्द्रमौलि अत्यन्त नाटे, विकृत रूपमें, कटा नाक वाले, कुबड़े, पीली आँख वाले, विकृतानन समीप आकर बोले–'देवि ! मैं तुम्हारा वरण करता हूँ ।'

योगसिद्धा उमाका अन्तःकरण तपः शुद्ध था। उन्होंने अपने लीलामय स्वामीको पहचान लिया। अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क देकर उनका अर्चन

किया। बोलीं—'भगवन् ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। घरमें मेरे पिताजीका मुझ पर अधिकार है। वही मुझे देनेमें समर्थ हैं। मैं तो उनकी कन्या हूँ।'

शिव उसी वेशमें हिमालयके पास जाकर बोले—शैलेन्द्र ! आप अपनी कन्या मुझे दे दें।'

हिमालयको सन्देह तो हुआ कि सम्भवत: ये रुद्र ही हैं, पर निश्चय नहीं हुआ। अवश्य ही उन्हें इस ब्राह्मणके शापका भय था। उन्होंने कहा—'देव ! ब्राह्मण पृथ्वीके देवता हैं। मैं आपकी अवज्ञा नहीं करता, लेकिन मैंने पहले ही पुत्रीके स्वयंवरका संकल्प कर लिया है। जिसे वह वरण करेगी वही उसका पति होगा।'

लौटकर शिवने उमासे कहा—'तुम्हारे पिता तुम्हारा स्वयंवर करना चाहते हैं। तब तुम्हारे जैसी भुवन सुन्दरी रूपवानोंको छोड़कर मुझ अयोग्य-को कैसे वरण करेगी ?'

'आपको अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए। मैं आपका ही वरण करूँगी। इसमें अद्भुत कुछ नहीं है; क्योंकि आप ही मेरे सर्वस्व हैं। गिरिजाने कहा—'आपको मुझपर सन्देह हैं तो मैं यहीं आपका वरण करती हूँ।'देवीने एक अशोक पुष्पका गुच्छ लेकर शंकरके कन्धेपर रखा 'देव ! मैंने आपका वरण कर लिया।'

भगवान् शिवने अशोकको वरदान दिया—'तुम्हारे परम पवित्र गुच्छसे मेरा वरण हुआ, इसलिए तुम अमर कल्पवृक्ष तुल्य हो जाओ। तुममें सब उत्तम सुरभि निवास करें। देवताओंके भी तुम अत्यन्त प्रिय हो जाओ।'

गिरिजासे विदा होकर शिव अन्तर्धान हो गये। उसी समय उन्होंने एक लीला प्रकट की निकटके सरोवरसे बालकण्ठसे चीत्कार गूँजा— 'रक्षा करो, कोई मेरी रक्षा करो ! यह ग्राह मुझे घसीटे लिए जा रहा है।'

आर्त पुकार सुनकर पार्वती दौड़ीं। सरोवरके समीप जाकर देखा—अत्यन्त सुन्दर बालक है, भयसे उसके नेत्र फटे हुए हैं, अत्यन्त कातर हो रहा है, ग्राहने जलमें उसे पकड़ रखा है। उस परमसुन्दर बालकके दु:खसे आतुर होकर पार्वती बोलीं – 'ग्राहराज ! यह कहता है कि मैं अपने माता-पिताका इकलौता पुत्र हूँ। इसे शीघ्र छोड़ दो।'

'देवि ! मैं छः दिनोंपर एक दिन आहार करता हूँ। छः दिन बीतने पर जो स्वयं यहाँ आ जाय, विधाताने उसे मेरे लिए आहार बनाया है ।' ग्राह स्पष्ट मनुष्य भाषामें बोला – 'आज छठे दिन भाग्यसे इसे भेजा है, मैं इसे छोड़ नहीं सकता ।'

'तुम इसे छोड़ दो ।' उमाने कहा– 'मैंने हिम शिखरपर जो उत्तम तपस्या की है उसका पुण्य मैं तुम्हें प्रदान करती हूँ ।'

ग्राह—'आपने कम या कठोर, जो भी तप किया हो, वह सबका सब मुझे दे दें, केवल तभी मैं इसे छोड़ सकता हूँ ।'

अनन्त करुणामयी भगवती दयासे द्रवित होकर बोलीं—'महाग्राह ! मैं बलपूर्वक तुम्हारा आहार तुमसे छीनना नहीं चाहती । मैंने जन्मसे अब तक जो भी पुण्य किया हो, वह सब तुम्हें समर्पित करती हूँ । तुम इसे शीघ्र छोड़ दो ।'

देवीके यह कहते ही ग्राह सूर्यके समान तेजस्वी हो गया । उसने कहा—'भद्रे ! फिर सोच लो । बड़े कष्टसे तुमने तपका उपार्जन किया है । तुम अपना तप ले लो । मैं इस बालकको ऐसे ही छोड़ देता हूँ ।'

'उमाने ग्राहसे कहा—'मुझे तो अपना शरीर देकर भी इस ब्राह्मण बालककी रक्षा करनी थी । यह मेरा कर्त्तव्य था । तपस्या मैं फिर भी कर सकती हूँ, पर यह विप्र बालक अपने माता-पिताको फिर प्राप्त नहीं होगा । तप ब्राह्मणसे श्रेष्ठ नहीं है । दिया हुआ दान लौटाया नहीं जाता, अतः मैंने जो तपस्या दे दी, नहीं लौटाऊँगी । इस तपसे तुम्हीं शोभित होओ, तुम्हारी सद्गति हो ।'

ग्राहने पार्वतीकी प्रशंसा की । बालकको छोड़कर अन्तर्धान हो गया । पार्वतीने पुनः तप प्रारम्भ किया, तब भगवान् शङ्कर प्रकट हो गये—'देवि ! अब तपका प्रयोजन ?' ग्राह तो मैं ही था । तुमने तप मुझे अर्पित किया है, अतः वह सहस्रगुणित होकर अक्षय हो गया ।' (ब्रह्म पुराण)

तृतीय कथा—गिरिजा जब तप कर रही थीं, उनके दीर्घकालीन तपसे सन्तुष्ट होकर अत्यन्त वृद्ध, शिथिलाङ्ग, काँपते हुए, पद-पदपर गिरते लड़खड़ाते वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें भगवान् शिव वहाँ आये । बोले—'मैं बहुत भूखा हूँ, भोजन दो ।'

उमा—'आप शीघ्र स्नान करलें। मैं कन्द, मूल, फल आदि देती हूँ। क्षुधा निवृत्त करें।'

समीप ही गङ्गामें स्नानार्थ जब वे उतरे, मकरने उन्हें पकड़ लिया। पुकारना प्रारम्भ किया—'शीघ्र बचाओ। यह जब तक मुझे निगल न जाय, मेरा उद्धार करो।'

गिरिजाको चिन्ता हुई—'मैंने पितृभावसे हिमालयका और पति भावसे शिवका स्पर्श किया है। मैं तपःपूता हूँ। इस ब्राह्मणका स्पर्श कैसे करूँ? यदि इसे खींचती नहीं हूँ तो यह मकर इसे निगल जायगा। मुझे ब्रह्महत्या लगेगी। यह तो धर्म-सङ्कट उपस्थित हो गया।'

उमाने दो क्षण सोचा और समीप जाकर हाथ पकड़कर ब्राह्मणको खींचकर निकाल लिया। सहसा ब्राह्मण भगवान् शङ्करके रूपमें प्रकट हो गये। देवी अपने पूर्व त्यागका स्मरण करके बहुत लज्जित हुईं। मौन रह गयीं। (देखिये वाराह पुराण, देवीने अपने आप त्याग कर दिया था।)

रुद्र हँसे—'भद्रे! तुमने मुझे त्याग क्यों दिया था? अब मत छोड़ो। यदि तुम मेरा यह पाणिग्रहण व्यर्थ करोगी तो मैं फिर ब्राह्मण बनकर भोजन मागूँगा।'

उमाने सलज्ज कहा—'देव-देव! आपके चरणोपलब्धिके लिए ही मैंने यह अल्पप्रयास किया है। आप ही मेरे जन्मके सर्वस्व हैं। दूसरा कोई मेरा भर्ता सम्भव नहीं है, किन्तु मेरे पिता शैलेन्द्रको भी धन्य होना चाहिए। मैं उनके पास जाती हूँ। उनसे कहकर विधिपूर्वक आप मेरा पाणिग्रहण करें।'

उमाने जाकर पितासे सब कहा।

हिमालय—'पुत्री! तुमने मुझे धन्य किया।'

पर्वतराज हिमालय ब्रह्माके पास गये। उन्होंने प्रार्थना की कि देव आप शिवसे मेरी कन्याके विवाहका प्रस्ताव करें और इस विवाहको सम्पन्न करावें।' (वाराह पुराण)

———

पार्वती-परिणय

भगवान् शिवने पार्वतीसे स्वीकार किया था कि वे जाकर हिमालयसे कहेंगे कि वे अपनी पुत्री उनको दे दें। लीलासे सदाशिवने नटका रूप बनाया। उनके बायें हाथमें शृंगी थी, दाहिने हाथमें डमरू, पीठपर गुदड़ी, लाल वस्त्र पहिने हुए नृत्य करते थे, गान करते थे। इस रूपमें हिमालयके यहाँ पहुँचे। अनेक प्रकारकी नटोंके समान क्रीड़ा दिखाने लगे। वहाँके सब स्त्री-पुरुष, नागरिक एकत्र हो गये। इस दिव्य नटकी कलाने, संगीतने, नृत्यने सबको सम्मोहित कर लिया। केवल उमाने पहचाना कि ये मेरे आराध्य हैं। उन्होंने चुपचाप प्रणाम किया। देवी मैना स्वर्णपात्रमें रत्न लेकर नर्तकको देने आयीं। नटने अस्वीकार कर दिया—मैं इन पत्थरोंका क्या करूँगा ?

मैना—'तुम्हारी कलाने मुझे और मेरे सब परिकरोंको बहुत सन्तुष्ट किया है। तुम जो लेना चाहते हो, मांग लो।'

नट—'मैं एकाकी हूँ, इसलिए आप अपनी कन्या मुझे दे दें। यह कहकर फिर नृत्य करने लगा।

मैना क्रोधमें भर गयीं—'तू नट होकर ऐसा साहस करता है। बहुत धृष्ट और असभ्य है।'

इसी समय हिमालय गंगास्नान करके वहाँ आ गये। मैनाने पतिसे कहा—'इस भिक्षुक नटको देखिये ! यह दण्डनीय है।'

हिमालय—'कलाकार अशिष्ट हो सकता है, दण्डनीय नहीं होता। इसने कोई धृष्टता की है ?'

'यह आपकी पुत्री चाहता है'—मैनाने बड़े रोषसे कहा।

हिमालय भी सुनकर रुष्ट हुए। सेवकोंको उन्होंने आज्ञा दी—इसे यहाँसे निकाल दो।'

उस अद्भुत नटको कौन निकालता। वह तो उसी क्षण अग्निके समान तेजस्वी हो गया। उसके शरीरसे ज्वाला निकलने लगी। दो क्षण

पीछे चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, किरीट-मुकुट-कुण्डल पहने विष्णुके रूपमें प्रकट हो गया। हिमालयने आश्चर्यसे देखा—अभी पूजनके समय जो पुष्प उन्होंने अपने आराध्य नारायणके मस्तकपर चढ़ाये थे वे इस नटके सिर पर सुशोभित हैं। पर्वतराज आश्चर्यसे सम्हल सकें, इससे पहले ही वह नट ब्रह्मा बन गया। चतुर्मुख, अरुण वस्त्र, मूर्तिमान वेद उनकी स्तुति कर रहे थे। पर्वतराज कुछ समझ पाते, इससे पहले ही वह सप्तरश्मि सूर्यके रूपमें परिवर्तित हुआ और अन्तमें रुद्र रूपमें उसने दर्शन दिया। सहसा रुद्र रूप भी तिरोहित हुआ और वह निराकार ज्योति बनकर अदृश्य हो गया। फिर प्रकट होकर नटने हिमालयसे कहा—मैं आपकी कन्या चाहता हूँ।'

हिमालय स्तब्ध रह गये। कुछ बोल नहीं सके। नट वहीं अन्तर्धान हो गया। अब मैना और हिमालय चौंके। यह बात समझमें आ गयी कि शिव ही इस रूपमें उनको वंचित कर गये हैं। मैना और हिमालयके मनमें भगवान् शंकरके प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रगाढ़ हो गयी।

× × × ×

स्वर्गकी स्थिति दूसरी थी। देवराज इन्द्रको सम्भवतः सृष्टिकर्ताने अकारण भयभीत रहने वाला सशंक स्वभाव दिया है। अमरावतीके अधिपतिको आशंका हुई—'यदि हिमालय सपत्नीक भगवान वृषभध्वजकी भक्ति करेंगे तो ये दोनों मुक्त हो जायेंगे। पर्वतराज रत्नोंकी खान हैं। ये पृथ्वी त्याग जायँ तो पृथ्वी निस्सत्व हो जायगी।'

इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके पास गये—'आप हिमालयके सदन पधारें और इस प्रकार शिव-निन्दा करें कि वे दोनों शिवको अपनी कन्या तो विवाह दें, किन्तु बिना मनके विवाह करें। इससे वे पृथ्वीपर बने रहेंगे, उनकी मुक्ति नहीं होगी।'

'तुम्हें धिक्कार है। तुम गुरुसे ऐसी बात कहनेका साहस करते हो' देवगुरुने झल्लाकर कहा—'तुम्हें पता है, शिव-निन्दा करने वाला नर्क जाता है। तुमको जाना है! तुम्हीं क्यों हिमालयके पास जाकर शिव-निन्दा नहीं करते? तपस्वी ब्राह्मणके योग्य तुमको यही काम मिला है? तुममें-से जाओ या जाकर अपने पितामह ब्रह्मासे कहो। इस तरहकी चर्चा पुनः मेरे पास करनेसे प्रशप्त हो सकते हो।'

देवराज हताश लौटे। लेकिन अपना उद्योग त्याग देनेको वे प्रस्तुत नहीं थे। देवताओंके साथ वे ब्रह्मलोक पहुँच गये। उनका प्रस्ताव सुनकर सृष्टिकर्ताने दुःखी होकर कहा—'मैं शिव-निन्दा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। लोक महेश्वर सर्वात्मा शिवकी निन्दा विपत्तिका बीज है। यह ऐश्वर्य-सम्पत्तिको विनष्ट करने वाला कार्य है। तुम लोग कैलास जाओ। शिवको सन्तुष्ट करो। उन्हींको हिमालयके घर भेजो। वे स्वयं अपनी निन्दा करें। त्रिभुवनमें और कोई उनकी निन्दा नहीं कर सकेगा। स्वयं अपनी निन्दा यशदायिनी होती है।'

देवता कैलास पहुँचे। भगवान् महेश्वरकी उन्होंने स्तुति की और सिर झुकाकर वे खड़े हो गये। वृषभध्वजने पूछा—'अमरावतीमें कोई उपद्रव तो नहीं ? आज देवता यहाँ कैसे आये हैं ?'

'यदि हिमालय मुक्त हो जायँ पृथ्वीमें कोई सार नहीं रह जायगा। आपके श्रीचरणोंमें भक्ति रखकर उनकी मुक्ति न हो, यह भी सम्भव नहीं है। अब तो एक ही उपाय है कि आप स्वयं उनके पास जाकर अपनी निन्दा करें जिससे वे दम्पति आपकी भक्तिसे विरत हों। अपनी कन्या तो वे आपको देंगे ही, क्योंकि गिरिजा दूसरेका वरण नहीं कर सकतीं, किन्तु जब वे बेमनसे कन्या-दान करेंगे, तत्काल मुक्त नहीं होंगे। कल्पपर्यन्त वे इस पृथ्वीपर रहें, हम इतना ही चाहते हैं।' देवताओंने अपना अभिप्राय निवेदन कर दिया।

भगवान रुद्र हँसे 'अच्छी बात है।' देवतोंको उन्होंने विदा कर दिया। बड़ा विचित्र रूप शिवने बनाया। दण्ड और छत्र लिए, दिव्य वस्त्र पहिने, करमें स्फटिक माला, गलेमें शालिग्राम लटकाये, ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये, 'नारायण-नारायण' जपते वैष्णव साधुके वेशमें हिमालयके घर पहुँचे। उस समय पर्वतराज बन्धु-बान्धवोंके सहित सभामें बैठे थे। पार्वती भी उनके समीप ही थीं। इन तेजस्वी गौरवर्ण प्रलम्बकाय साधुको देखकर सब उठ खड़े हुए। सबने दण्डवत् प्रणिपात किया, पूजन किया। जब आगतने आसन स्वीकार कर लिया, पूजनके अनन्तर पर्वतराजने पूछा—'आपका परिचय प्राप्त कर पवित्र होना चाहता हूँ।'

'मैं एक ज्योतिषी हूँ। पृथ्वीपर घूमता रहता हूँ। गुरुकी कृपासे मुझे मनके समान गति प्राप्त है। सर्वत्र जा सकता हूँ। त्रिकालज्ञ हूँ।'—

साधुने कहा—'मैं जानता हूँ, तुम अपनी यह कमललोचना, दिव्यरूपा, सर्वलक्षण सम्पन्ना कन्या शिवको देना चाहते हो। तुमने सोचा नहीं है कि वे भूतनाथ आश्रयहीन हैं, असंग हैं कुरुप हैं, गुणहीन हैं, सर्प लपेटते हैं, श्मशानमें रहते हैं, दिगम्बर रहते हैं और मलिन हैं। उस अज्ञात कुल शील, क्रोधी, विकट भिक्षुकको जो भूत-प्रेतों से घिरा रहता है, कन्या देनेकी बुद्धि मंगलदायिनी तो नहीं है। तुम्हारी कन्या उस मुण्डमालीके साथ कैसे रहेगी ? इससे संसारमें तुम्हारा उपहास होगा। तुम्हीं सोचो—जो बन्धुहीन है, निर्धन है और सर्प लपेटे है, उसे तुम पुत्री दोगे ? तुम्हारी पुत्री तो बालिका है, हठी है, किन्तु अपनी पत्नी तथा बन्धु-बान्धवोंसे भी तो पूछो।' यह कहकर शिवने वहाँ भोजन किया और विदा हो गये। इस नये साधुकी बात सुनकर मैना बहुत दुःखी हुई। पतिसे उन्होंने कहा—'इस वृद्ध विप्रने जो बात कही है, उसका निश्चय करो। यदि रुद्र इसके वर्णनके अनुसार ही हैं तो मैं उनको कन्या नहीं दूँगी। अपनी सुमन सुकुमार कन्या कुरूप कुत्सित अहि-आभरण शिवको कैसे दे सकती हूँ। कैसे दे सकती हूँ ? आप मेरी बात स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं प्राण दे दूँगी, विष खा लूँगी, समुद्रमें डूब जाऊँगी, किन्तु पुत्री शिवको नहीं दूँगी।'

मैना दुःख एवं क्रोधसे रोती हुई कोपभवन चली गयीं। आभूषण उन्होंने त्याग दिये और पृथ्वीपर पड़ गयी।

× × × ×

भगवान शंकरने कैलासपर पहुँचकर सप्तर्षियोंका स्मरण किया। अरुन्धतीके साथ सब ऋषि अपनी पत्नियोंको लेकर आये। उन्होंने गंगा-धरकी स्तुति की—'हमारी तपस्या, हमारे जन्म-जन्मके पुण्य सफल हुए जो आपने हमारा स्मरण किया। आप परिपूर्ण हैं, किन्तु हमारा जीवन सफल हो, इसलिए किसी सेवाका आदेश दें।

'हिमालयके घर जाकर मैनाको समझाओ'—शिवने कहा—'पार्वतीका विवाह वे मुझसे कर दें, ऐसा प्रयत्न करो।

सप्तर्षि आकाश मार्गसे हिमालयके यहाँ पहुँचे। हिमालयने उनकी पूजा की – 'मेरा गृहस्थाश्रम आज धन्य हो गया। आप सबने यहाँ पधारकर मुझे पवित्र किया। मैं अपनेको कृतार्थ मानूँगा यदि आप मुझे किसी सेवाका आदेश दें।

'शिव जगदाधार जगतपिता हैं। तुम्हारी कन्या उमा जगन्माता शिवा उनकी नित्य शक्ति हैं—इसमें सन्देह नहीं है।' सप्तर्षियोंने पूरी गम्भीरतासे कहा—'अतः हरको अपनी हरिणाक्षी कन्या देकर अपने जन्मको सफल करो।'

हिमालयने सप्तर्षियोंको उस साधुकी बात सुनाई जो उनके यहाँ आया था—'उसकी बातसे पत्नीकी मति भ्रष्ट हो गयी है। मेरे समझानेसे भी वह मानती नहीं है। उसीको क्यों दोष दूँ। मैं भी संदिग्ध हो गया हूँ। भिक्षु रूपधारी शिवको मैं अपनी कन्या अब नहीं देना चाहता हूँ।'

सप्तर्षियोंने अरुन्धतीको मैनाके पास भेज दिया था। उन्हें देखते ही मैना उठी प्रणाम किया, पूजन किया—'देवि ! हमारे धन्य भाग्य। आप कैसे पधारीं ? मैं तो आपकी दासी हूँ, पुत्री हूँ।'

'शिव संहारकर्ता हैं, उन्हें रुष्ट मत करो।' अरुन्धतीने समझाया—'तुम्हारी कन्याने उनकी प्राप्तिके लिए तपस्या की है। चन्द्रमौलि उसे वरदान दे चुके हैं।'

सप्तर्षियोंने हिमालयको समझाया—'शिवके रुष्ट होने में अमंगल ही है। उनको रुष्ट करके तुम स्वयंको, अपने परिवारको, अपनी कन्याको विपत्तिभाजन क्यों बनाना चाहते हो ? तुम्हारी कन्या भी दूसरे किसीका वरण नही करेगी। तुम क्या कन्याको सदा कुमारी ही रखोगे ?'

'शिव निर्धन हैं, बन्धुहीन हैं। जो मोह, भय या लोभवश कन्याको प्रतिकूल वरको देता है वह नर्कमें जाता है।' हिमालयने कहा—'आप सब सृष्टिकर्ताके पुत्र हैं। विचार करके उचित मार्ग बतलाइये। मैं शिवको स्वेच्छासे तो अपनी पुत्री नहीं दूँगा, परन्तु आपकी आज्ञा भी टाल नहीं सकता। आप सर्वज्ञ हैं, पार्वतीका सम्बन्ध जहां पूर्वनिश्चित हो उसकी सूचना दें।'

'शिवकी नित्य प्रिया है तुम्हारी कन्या उमा।' वसिष्ठने कहा—'तुम रुद्रको निर्धन क्यों कहते हो ? जानते हो कि कुबेर उनके सेवक हैं। उनके भ्रू-विलाससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है। दक्षकन्या सती, जो रुद्रकी अर्धांगिनी थीं, वही तुम्हारे गृह अपर्णाके रूपमें

अवतरित हुई हैं। तुम दुराग्रह करोगे, उन्हें उनके अपने स्वामीको नहीं दोगे तो वे स्वयं शिवके पास चली जायँगी। उन महाशक्तिको रोकनेकी तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है। तुम्हींने तो अपनी पुत्रीको शिवको प्राप्त करनेके लिए तपस्या करनेकी अनुमति दी थी। अतः शिवको कन्या-दान करो। उन ईश्वरकी इच्छा अमोघ है। रुद्रके क्रोधसे जगत भस्म हो सकता है। इस सम्बन्धको तुम रोक नहीं सकते हो। अब तक अनेक नरेशोंने, मान्धाता जैसे चक्रवर्ती नरेशोंने भी, तपस्वियोंको अपनी कन्या दी और तपस्वियोंके क्रोधसे इस प्रकार अपने राज्य, अपने धन और अपने आपको बचाया। च्यवनका दृष्टान्त तुम जानते हो। यदि ययाति सुकन्याका उससे विवाह नहीं करते, क्या होता ? तुम भी रुद्रको अपनी अन्या देकर अपने वन्धुवर्गकी ओर अपनी रक्षा करो। अभी एक सप्ताह पीछे अत्यन्त दुर्लभ योग है। लग्नेश लग्नमें रहेगा, चन्द्रमा बुधके साथ होगा। इस मार्गशीर्ष मासमें शिवको कन्या-दान करके कृतार्थ हो जाओ।'

हिमालयके सब बन्धु-बान्धव आशंकित हो गये थे। सबको अपनी ही रक्षा प्रिय होती है। रुद्रने जैसे दक्षका यज्ञ ध्वन्स किया था, सब जानते थे। सबने मुनियोंका समर्थन किया--'जब विरोध करनेमें लाभ नहीं, गिरजाका जन्म देवकार्यके निमित्त ही हुआ है, अतः उसे शिवको देना ही चाहिए, यह उनके द्वारा स्वीकृत हो चुकी है।'

हिमालयने ऋषियोंकी बात स्वीकार कर ली। उनको उनकी पत्नियोंके साथ भोजन करवाया। पार्वतीको आशीर्वाद देकर वे विदा हुए। हिमालयके घर लौकिकाचार प्रारम्भ हो गये। सप्तर्षि भगवान शंकरके समीप पहुँचे। उन्होंने सब समाचार दिया।

'मैं जैसा हूँ, आप जानते ही हैं।' शिवने कहा—इसलिए व्यवस्था आप सबको ही करनी है।

सप्तर्षियोंने देवर्षि नारदको निमन्त्रण देने भेजा। सपार्षद भगवान नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता अपनी पत्नियों सहित आमन्त्रित हुए। हिमालयने लग्न-पत्रिका भेज दी। उन्होंने अपने सब बन्धु-बान्धवोंको आमन्त्रित कर दिया। पर्वतों, नदियों, वनोंके अधिदेवता आमन्त्रित होकर उनके यहाँ आए।

कैलासपर भगवान शंकरका गणोंने शृङ्गार किया। उनका तृतीय नेत्र तिलक स्वरूप हो गया। अंगमें सज्जित सर्प रत्नमय हो गए। विभूति उत्तम अंगराग बन गयी। गजचर्म दुकूल हो गया। परम सुन्दर रूप धारण किया शिवने।

सब ऋषि-मुनि, यक्ष,गन्धर्व, किन्नर आये थे। लौकिक, वैदिक सम्पूर्ण कृत्य सम्पन्न हुए। उसके पश्चात् वृषभ-वाहन शिव चलनेको प्रस्तुत हुए। उन्होंने अपने साथ अपने समस्त गणोंको चलनेकी आज्ञा दी।

श्रीहरिने नारदजीको भेजकर हिमालयको समाचार भेजा कि भगवान शंकरकी बारात आ रही है। हिमालयने विश्वकर्माका आवाहन किया। विश्वकर्माने एक विचित्र कार्य किया। उन्होंने अपनी मायासे हिमालयके यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, सब ऋषि-महर्षि आदि सब ऐसे बना दिये जो सच्चे और वास्तविक लगते थे। देवर्षि नारद यहाँ अपना कृत्रिम रूप देखकर चकित हो गये।

बारात आयी। हिमालयने सबका स्वागत किया। भगवान शंकरके दाहिने विष्णु, बाए ब्रह्मा, पीछे इन्द्र और उनके पीछे कुबेर, यम, वरुण, अग्नि आदि सब लोकपाल, सब देवता, व ऋषिगण, गन्धर्व आदि अपने वाहनोंपर सपार्षद आये थे। हिमालयने प्रणाम करके शिवका स्वागत किय।

वर देखनेकी उत्कण्ठासे मैना गृह-द्वारपर सखियोंके साथ उपस्थित थीं। भगवान् शंकरने देवताओंको, ब्रह्मा और विष्णुको भी पहले भेजा। जब वे आगे चले गये, रुद्रने अपना विकट वेष प्रकट किया। पर्वतराजके द्वारके समीप पहले परम सुन्दर शिवगण आये। उनमें-से प्रत्येकको देखकर मैनाको बार-बार भ्रम होता था—'ये शिव हैं ?'

देवर्षि नारद—'नहीं। ये शिवके गणनायक हैं।'

देवता, लोकपाल, अग्नि, कुबेर, वरुण, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, ब्रह्मा, विष्णु क्रमशः ये आये। उत्तरोत्तर इनका सौन्दर्य, तेज, प्रभाव बढ़ता ही दीखता था। मैना बहुत उत्साहमें थीं। बहुत प्रसन्न थीं। प्रत्येकको देखकर लगता था-- 'अवश्य यही रुद्र होंगे। मेरी कन्या इतने सौन्दर्यशाली, विभूतिवान्, लोकवन्द्यको प्राप्त होगी' - यह सोचकर वे अपनेको धन्य-धन्य मान रही थीं।

देवर्षि नारद नामसे उन देवताओं, लोकपालों आदिका परिचय दे रहे थे। अन्ततः उन्होंने सामनेसे आते शिवको दिखलाया। वह विकट रूप देखकर मैना व्याकुल हो गयीं। दशभुज, कपालधारी, मुण्डमाली, विरूपाक्ष, अहिभूषण, पिंगलजटा रुद्रको देखकर वे मूर्छित हो गयीं। सखियोंने उपचार करके उन्हें सावधान किया।

'तुम सबने मुझे ठग लिया।' मैनाने अपने पुत्रोंको फटकारा। 'मेरी पुत्रीने इतना कठिन तप ऐसे वरकी प्राप्तिके लिए किया? मेरा जीवन नष्ट हो गया।'

'वह महासती कहलाती है। बहुत धूर्ता निकली।' अरुन्धतीपर मैनाका आक्रोश सबसे अधिक था। सप्तर्षियोंसे वह क्रुद्ध थीं। सबको—पर्वतोंको वे धिक्कार रही थीं, रुदन कर रही थीं—'तुम सबने मेरा घर नष्ट कर दिया। अब मेरा मरण होगा। मेरी चितामें अग्नि देकर तुम्हें संतोष होगा? मैं बन्ध्या क्यों न हो गयी? सप्तर्षियों और पर्वतेशसे कह देना, अब मुझे मुख न दिखलावें। यह विवाह होता मैं नहीं देख सकती। उमाको मैं मार दूँगी और मर जाऊँगी।' इतना कहकर मैना मूर्छित हो गयीं।

बड़ा हाहाकार मचा था। सभी देवता वहाँ पहुँचे। ब्रह्माजीने समझाया—'तुमने शिवका यथार्थ स्वरूप नहीं देखा है। यह विकट रूप तो उन्होंने लीलासे धारण किया है। वे ऐसे नहीं हैं। क्रोध त्याग दो। सावधान हो। हठ छोड़ो।'

'तुम भी दुष्ट हो, अधम हो। यह निकृष्ट सृष्टि तुम्हीं करते हो। यहाँसे जाओ।' मैना विलाप कर रही थीं। देवताओंके समझानेका उनपर कोई प्रभाव नहीं था।

'मैं उग्र रूप शंकरको कन्या नहीं दूँगी। तुम सब क्यों मेरी पुत्रीका जीवन नष्ट करनेपर तुले हो।' मैना सबको तिरस्कृत कर रही थीं।

सप्तर्षि आये, किन्तु मैना ने उनका वचन भी स्वीकार नहीं किया। हिमालय समझाने आये। मैनाने कहा—मैं सुताको कण्ठसे बाँधकर अग्निमें जल जाऊँगी, किन्तु विवाह नहीं करूँगी।'

'माँ! तुम यह क्यों नहीं सोचती हो कि सब देवता जिनके दास हैं, जिनके साथ आये हैं, वे सर्वेश्वर तुम्हारे यहाँ तुम्हारे द्वारपर आये हैं।'

अन्तमें पार्वतीने मातासे कहा—'माँ ! तुम शंका और हठ छोड़ दो। मैं किसी दूसरेका वरण नहीं करूँगी।'

मैना अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने हाथसे ही पार्वतीका ताड़न प्रारम्भ किया। तब ऋषिगण गिरिजाको उनसे छीनकर दूर ले गये। मैना क्रोधसे कह रही थीं—'इस हठी लड़कीको मैं क्या करूँ? इसे काटकर फेंक दूँ, विष दे दूँ, समुद्रमें डाल दूँ, करूँ क्या ? ऐसे विकट भूतोंसे घिरे भूतनाथको मैं इसे दूँगी नहीं। इसने कैसा भयंकर वर चुना है।' वे रो रही थीं, क्रन्दन कर रही थीं।

ब्रह्माने आकर शिव-तत्वका वर्णन करके मैनाको शान्त करनेका प्रयत्न किया। कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्तमें भगवान विष्णु आये। उनके समझानेपर मैनाने कहा—'यदि शिवका शरीर मनोहर हो जाय तो मैं उन्हें पुत्री दे सकती हूँ, अन्यथा किसी प्रकार नहीं।'

लीलामय चन्द्रशेखरके समीप भगवान विष्णु गये। स्तुति की—'अब आप इस विकट रूपका त्याग करें। यह रूप इस अवसरके उपयुक्त नहीं है।'

शिवने वह भयंकर रूप छोड़कर फिरसे वही दिव्य रूप धारण किया जिससे वे कैलाससे चले थे।

'शिवको एक बार फिर देख लो। तब कोई निश्चय करना। तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जायगा।' देवर्षि नारदने मैनाके पास जाकर कहा।

मैना द्वारपर आयीं। वे आश्वस्त नहीं थीं, किन्तु सब कह रहे थे, इसलिए एक बार शिवको देख लेनेमें कोई हानि नहीं है, यह उन्होंने बिना मनके स्वीकार किया। किन्तु शिवपर दृष्टि पड़ी और वे चित्रलिखितकी भाँति खड़ी रह गयीं। कोटि काम कमनीय, कोटि-कोटि सूर्योंसे तेजस्वी, समस्त सुर-मुनिसेवित, सौन्दर्य-ऐश्वर्यकी घनीभूत मूर्ति भगवान् शिवको मैनाने देखा। उनके मुखसे निकला—'मेरी पुत्री धन्य है।' अञ्जलि बाँधकर उन्होंने स्तुति की—'सर्वेश्वर ! भक्तवत्सल ! आप मेरी निन्दाको, मेरी धृष्टताको क्षमा करें। मैं अज्ञानी हूँ। मैंने आपका तिरस्कार किया है। मेरी पुत्रीके भाग्यकी सीमा नहीं है।' (शिवपुराण)

विधिपूर्वक मैनाने शिवका पूजन किया।

सप्तर्षि जब हिमालयके भवन आये थे, हिमालयने पर्वतोंसे पूछा थो—'आप सब अपनी सम्मति दें, क्या करना उचित है ?'

'नाथ ! इस समय इसपर विचार करनेसे क्या लाभ ?' मैनाने कहा– 'यह कार्य तो तभी सम्पन्न हो गया जब आपके घर इस बड़भागिनी कन्याने जन्म लिया। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए ही यह उत्पन्न हुई है। शिवके लिए ही इसका अवतार हुआ है। इसने रुद्रकी आराधना की है और उनसे वरदान पाया है। यह साक्षात् सती ही है। अतः शिवको ही व्याही जाय। इस प्रकार हम उन महेश्वरकी पूजामें निमित्त बनेंगे।'

हिमवान पत्नीकी बातसे सन्तुष्ट हुए। सप्तर्षियोंने लौटकर भगवान् शिवको सुनाया –'पर्वतराजने अपनी कन्या आपको देनेका संकल्प कर लिया है। अब आप देवताओंके साथ विवाह करने पधारें।'

मैनाने जब लोकपालों और देवताओंके साथ शिवको देखा, जामाताको देखकर वे मुग्ध हो उठीं। 'पुत्रीने मुझसे जो कुछ कहा था उससे कहीं अधिक सौन्दर्य मैं महादेवमें देख रही हूँ।' वे विस्मयमें डूब गयीं।

विवाह मण्डपमें ब्रह्मा भगवान शिवके पुरोहित हुए। संकल्प पढ़ा गया। अन्तमें हिमवानने कहा 'महाभाग ! आप अपने गोत्रका नाम और कुलका परिचय दें।'

भगवान शंकर चुप रहे। उनके मुखपर स्मित आया। देवर्षि नारद खुलकर हँसने लगे और खड़े होकर वीणा बजाने लगे।

'आप इस समय अपनी वीणा मौन रहने दीजिए' —पर्वतराजने विनम्रतापूर्वक कहा।

देवर्षि बोले—'आपने भगवान शंकरसे उनका गोत्र बतलानेके लिए कहा है, किन्तु उन सबके आदिकारणका गोत्र तो नाद ही है। वे न किसी कुलमें उत्पन्न हुए हैं और न किसी कुलसे उनका विशेष सम्बन्ध है। गोत्रोंकी भी यही परमगति हैं। नादमें शिव प्रतिष्ठित हैं और शिवमें नाद प्रतिष्ठित है। यही सूचित करनेके लिए मैं वीणा बजा रहा हूँ। इनका कुल-गोत्र कौन बतलावेगा। ब्रह्मा और विष्णु भी इन्हींसे प्रकट हुए हैं। सबके आदि कारणको कोई कैसे जानेगा ?'

सविधि विवाह सम्पन्न हुआ। सबने नारदजीकी प्रशंसा की। हिमालयके आग्रहवश देवताओं सहित भगवान शिव बहुत दिनों तक वहीं रहे। विदा होते समय मैनाने पार्वतीको पति-भक्तिका उपदेश दिया। सब देवता

वहाँसे कैलास आये। कैलासमें उमा-महेश्वरको प्रणाम करके अपने लोकों-को विदा हुए।

(स्कन्द-पुराण)

द्वितीय कथा—

भगवान शंकर हिमालयके पास कन्या देनेकी प्रार्थना करने आये थे, उस समय हिमालयने कहा था—'मैं पुत्रीका स्वयंवर करूँगा।' शिवने लौटकर पार्वतीको वरदान दिया था—'मैं तुम्हारे स्वयंवरमें सौम्य रूपमें आऊँगा।' तपोवनसे भगवतीके लौटनेपर हिमवानने उनके स्वयंवरका आयोजन किया। सब लोकोंमें इसकी घोषणा करायी गयी। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, भग, त्वष्टा, अर्यमा, विवस्वान, यम, वरुण, वायु, सोम, अश्विनोकुमार, सब आदित्य, चारों वसु, मुनिगण, ऋषिगण, यज्ञ, गन्धर्व, सिद्ध, दानव दैत्यगण, किंपुरुष, उरग, नाग, पर्वत, समुद्र आदि सब पार्वतीके इस स्वयं-वरमें पधारे।

गिरिराज-कन्या स्वर्ण मण्डित, रत्नजटित विमानपर आरूढ़ हुईं। उनके ऊपर श्वेत छत्र लगा था। उन पूर्ण चन्द्राननाके समीप उनकी सखी जया कल्पवृक्षकी जयमाला लिए खड़ी थी। विजया व्यजन कर रही थी। देवताओंने उन अद्भुत रूपराशिको आश्चर्यपूर्वक देखा। उनके उत्संगमें एक शिशु सो रहा था। क्रीड़ासे देवदेव महादेव ही इस रूपमें परिवर्तित हो गोदमें आ गये थे।

'यह शैलसुताकी गोदीमें कौन है ?' देवताओंको बड़ा क्षोभ हुआ। इन्द्रने वज्र उठाकर उस शिशुको मार देना चाहा, किन्तु उनका हाथ स्तम्भित हो गया। अग्निने चाहा कि फूत्कार करके अपनी लपटोंसे उसे भस्म कर दें, किन्तु उनमें हिलने या मुख खोलनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। यमराज़ने दण्ड उठाना चाहा, पर कालदण्ड उठानेमें वे असमर्थ हो गये। वरुणका कर भी उस शिशुको बाँधनेके लिए पाश उठा करके ऐसा निश्चल हो गया जैसे उसमें कभी गति थी ही नहीं। वायु ध्वज लिए निश्चल हो गया था। सोमने गदा उठायी थी, आदित्यने मुसल उठाया था, वसुओंने मुद्गर लिया था। विष्णुने भी चक्र सम्हाला था, किन्तु उन्होंने शिवको पहचान लिया था और सिर हिलाकर बैठ गये थे। अन्य सब देवताओंके अंग स्तम्भित जड़ हो गये थे। बालरूपधारी विश्वनाथने सबका तेज, बल और अंगगति स्तम्भित कर दी थी।

'यह क्या हो रहा है ?' सृष्टिकर्ता ब्रह्माने विष्णुको सिर हिलाकर बैठते देखा और चौंके । उन्होंने ध्यान किया । उमाकी गोदमें साक्षात् चन्द्रमौलि, त्रिनयन शिवके दर्शन करके कमलोद्भव उठकर खड़े हो गये । हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे । बोले--'देवदेव ! सब सुर आपकी मायासे मोहित हैं । आप इनपर अनुग्रह करें । इनके अंग स्वस्थ हो जायँ ।'

सृष्टिकर्ताने देवताओंसे कहा—'आप सबने मायामोहित होकर महादेवको पहचाना नहीं है । सबके द्वारा वन्दित ये धूर्जटि यहाँ पधारे हैं । शीघ्र इनकी शरण लो ।'

नारायण, ब्रह्मा सहित इन्द्रादि देवताओंने शिवको प्रणाम किया । देवताओंका अङ्गस्तम्भ दूर हो गया । सब स्तुति करने लगे ।

वह बालक सहसा उमाकी गोदसे अदृश्य हो गया । सभाके मध्यमें दिव्यरूपधारी त्रिलोचन शशांकशेखर प्रकट हुए । उनके तेजके सम्मुख सब देवता हतप्रभ हो गये । किसीके भी नेत्र उस ज्योतिको देखनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे । जगदम्बा गिरजाने ही देवताओंपर कृपा की । उन्होंने शक्ति दी, तब सबने शिवके दर्शन किये, सबने उनको प्रणाम किया । मैना तथा हिमवानने भी प्रणिपात किया । पार्वतीने परमस्निग्ध वरमाला जयाके करोंसे लेकर शिवके चरणोंमें डाल दी । 'साधु-साधु' जय ध्वनिसे गगन गूँज उठा । समस्त देवताओंने भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । हिमवानने विधिपूर्वक पुत्रीका विवाह शिवके साथ कर दिया ।

(लिंग पुराण)

तृतीय कथा–

हिमालयके पृष्ठ भागपर स्वयंवर सभाका आयोजन हुआ । क्योंकि पर्वतराज चाहते थे, मेरी पुत्री देव, दानव सबके सम्मुख महादेवका वरण करे, यही उत्तम होगा । पार्वतीने सूचित कर दिया था कि उन्होंने अशोक गुच्छ शिवके स्कन्धपर रखकर उनका वरण कर लिया है । स्वयंवर सभाकी घोषणा हो गयी । ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर आदि सब आये ।

जैसे ही विमानमें बैठी हुई गिरिराज-कन्या वरमाला लिए देव-सभामें पधारीं, पाँच शिखा वाला शिशु बनकर शिव उनकी गोदमें आ गये । उमाने उनको देखा, पहचाना और अंकमें लिए ही स्वयंवर सभासे लौट गयीं ।

'यह कौन है ?' शिशुको देखकर देवताओंमें चर्चा हुई। उमाको लौटते देखकर बड़ा कोलाहल हुआ। 'उस शिशुको मार दो'—इन्द्रने वज्र उठाया, किन्तु भुजा स्तम्भित हो गयी। दूसरे देवताओंने भी अस्त्र-शस्त्र उठाये, पर उनके अंग भो स्तम्भित हो गये। ब्रह्माने पहचाना। उमा-महेश्वरका स्तवन किया। देवताओंको धिक्कारा—'मूढ़ मत बनो। इन महेश्वरकी शरण जाओ।' देवताओंने स्तुति की। त्रिनेत्र सदाशिव प्रकट हुए। गिरजाने वरमाला उनके चरणोंमें चढ़ा दी।

सभी देवता हिमालयके भाग्यकी प्रशंसा कर रहे थे। उन पर्वताधिराजने सृष्टिकर्तासे कहा—'जिस विधिसे उचित हो, आप उस विधिसे विवाह सम्पन्न करें।'

ब्रह्माने शिवसे प्रार्थना की—'आप उमाका पाणिग्रह करने मन्दिरमें पधारें।' शंकरने इसे स्वीकार किया। विधि पूर्वक विवाह हुआ। देवताओंने उमा-महेश्वरकी स्तुति की। प्रसन्न होकर शिवने कहा—'आप सब वरदान माँगो।'

देवता—'अभी यह वचन आपके पास ही सुरक्षित रहे। जब आवश्यकता होगी, हम इसे मांग लेगे।'

'एवमस्तु'—भगवान शंकरके स्वीकार कर लेनेपर बारात विदा हुई। कैलास पहुँचकर देवता अपने-अपने धाम चले गये।

(ब्रह्म पुराण)

चतुर्थ कथा—

भगवान शंकरकी प्राप्तिके लिए पर्वतराज नन्दिनी तपोलीना थीं। बारह वर्ष तक उन्होंने अधोमुख रखकर जलती धूनीका धूम्रपान करते हुए व्यतीत किया। चौंसठ वर्ष सूखे पत्ते खाकर रहीं। वे शीतमें आकण्ठ गंगा जलमें दिन भर खड़ी रहा करती थीं। ग्रीष्मसे पञ्चाग्नि तापती थीं। श्रावणमें उन्होंने सर्वथा अन्न और जल—दोनों त्याग दिये। सूखा पत्ता भी छोड़ दिया। प्राणाधिकप्रिय पुत्रीके इस अकल्पनीय कठोर तपसे पर्वतराज हिमालयको बहुत दुःख हुआ। वे चिन्तासे व्याकुल होने लगे। उनके मनमें आया, 'इस कन्याका शीघ्र विवाह होना चाहिए। क्या करूँ ? किससे इसका विवाह करूँ ?' अहर्निश एक ही चिन्ता उनको व्यथित किये थी।

इन्हीं दिनोंमें देवर्षि नारद हिमालयके यहाँ पधारे। हिमगिरिने उनका स्वागत किया। आसन, पाद्यादि देकर पूजन किया। प्रार्थना की—'मुनिश्रेष्ठ! मेरा बड़ा भारी सौभाग्य है कि आपके चरणोंके स्पर्शसे मैं पवित्र हुआ। आप यदि किसी उद्देश्यसे पधारे हों तो मैं आपकी सेवा करके कृतार्थ होना चाहता हूँ।

'शैलेन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो। मुझे भगवान विष्णुने तुम्हारे समीप भेजा है।' देवर्षिने सीधे बिना किसी भूमिकाके कहा—'आपकी कन्या त्रिभुवनमें रत्न है। उसे आप नारायणको प्रदान कर दो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें-से कोई भी महत्वमें किंचित् भी न्यून नहीं है—ये परस्पर अभिन्न हैं। अतः मेरी ऐसी सम्मति है कि आप अपनी कन्याका विवाह वासुदेव के साथ कर दो।'

हिमगिरिने कहा—'देवर्षि! आप जानते हैं, हम पर्वतोंके कुलमें वर-पक्षको आकर कन्याकी याचना करनी पड़ती है। यदि स्वयं वासुदेव आकर मुझसे कन्याकी प्रार्थना करेंगे तो उनके साथ कन्याका विवाह कर दूँगा।'

देवर्षि नारद हिमवानसे वचन लेकर आकाशमें अन्तर्धान हो गये। भगवान विष्णुके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीहरिसे कहा—'देव! मैंने आपके विवाहका योग लगा दिया है। अब आप स्वयं हिमवानके समीप जाकर उनसे कन्याकी प्रार्थना करें।'

'मैंने तो आपको केवल पर्वतराजके समीप जाकर उनकी तपोलीना कन्याके दर्शन करनेका विचार व्यक्त किया था।' नारायणने हँसते हुए कहा—'वे महाशक्ति जिनकी हैं, वही उनको स्वीकार करेंगे। आपने यह जो प्रयत्न किया है, इससे उनकी निष्ठा स्पष्ट होगी और हर प्रसन्न ही होंगे। यह समझकर आपका उद्योग क्षम्य है।'

देवर्षि नारदके चले जानेपर हिमालय प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीके पास गये और बोले—'पुत्री! अब तुम यह तपस्या त्याग दो। त्रिभुवनमे जिनकी कोई समता नहीं है, समस्त देवता जिनका स्तवन करते हैं, जिनके आश्रयमें रहते हैं, उन गरुड़ध्वजको मैंने तुम्हारा वाग्दान कर दिया है।'

हिमालय अपनी कल्पनामें ही आनन्दमें उल्लसित थे। उन्होंने यह ध्यान ही नहीं दिया कि मेरी बातका मेरी पुत्रीके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। वे समाचार देकर भवन लौट गये। उन्होंने देख लिया था कि गिरिजा तपोवन से चल पड़ी हैं। वे समझते थे, उमा संतुष्ट हो गयी है और अपनी माताके पास जायगी।

भगवती उमा रुदन करती हुई अपनी सखी विजयाके पास गयीं। वहाँ वे शोकसे भूमिपर गिर पड़ीं। विजयाने उन्हें सम्हाला। 'देवि ! आप इतनी आर्त क्यों हैं ? आपका रुदन मुझसे देखा नहीं जाता। आप अपनी वेदनाका कारण मुझे कहो। मैं प्राण देकर भी आपका कष्ट मिटाना चाहती हूँ। आप जो चाहती होंगी, मैं वही करूँगी।'

'सखि ! बात तुम्हारे करनेकी नहीं है। तुम जानती हो कि मैं देवदेव महेश्वरको अपने आपको दे चुकी हूँ। उनके अतिरिक्त मैं और किसी पुरुषको मनसे भी स्वीकार नहीं कर सकती, किन्तु पिताने कुछ और ही कर दिया है। इसलिए इस शरीरको त्यागनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मैं तुम्हारे समीप केवल तुमसे अन्तिम मिलनके लिए आयी हूँ। अब मुझे अंकमाल देकर विदा करो।' क्रन्दन करती पार्वतीने कहा।

विजयाने पार्वतीसे पूछकर जो कुछ हुआ था, जान लिया। बोली— इसमें देह-त्याग करनेकी तो कोई बात नहीं है। मैं तुमको लेकर ऐसे वनमें चली चलती हूँ जहाँ तुम्हारे पिता और उनके कोई अनुचर तुमको नहीं पा सकेंगे। हम दोनों तप करेंगी। भगवान महेश्वर सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं। वे अवश्य कृपा करेंगे।'

पार्वतीके साथ विजया वहाँसे चली गयो। हिमवानने पत्नीको समाचार देना चाहा। शीघ्र ही उनको पता लग गया, उनकी पुत्री भवन नहीं आयी। आशंकित चित्तसे व्याकुल होकर उन्होंने पार्वतीके तपोवन और उनकी सखियोंके भवनोंको भी ढूंढा। उमा और विजयाका कहीं पता नहीं था। अब पर्वतराज बहुत व्याकुल हुए। 'मेरी पुत्रीको देवता, दानव, किन्नर, गन्धर्व पता नहीं कौन हरण कर ले गया। मैंने देवर्षिको वचन दे दिया है कि उसे विष्णुको दूंगा। गरुड़ध्वज, चक्रधर हरिसे अब मैं आनेपर क्या कहूँगा ? उनके क्रोधको शमित करनेका उपाय भी मेरे पास क्या है ? और मेरी अत्यन्त सुकुमार पुत्री—पता नहीं, उसका क्या हुआ।' गिरिराज इस चिन्तामें मूर्छित होकर गिर पड़े। चारों ओर हाहाकार होने लगा।

'मेरे कन्यारत्नका किसने हरण किया, अथवा उसे कालसर्पने खा लिया, व्याघ्रने मार डाला या वह गङ्गामें गिर गयी। पता नहीं, उसे कोई दुष्ट हरण कर ले गया या अब उसका शरीर ही नहीं रह गया।' शोक-संतप्त हिमालय काँपने लगे, बार-बार मूर्छित होकर गिरने लगे। अधिदेवता की इस दशाने हिमगिरिके अनन्त शिखरोंको भग्न कर दिया। सम्पूर्ण हिमालयमें जैसे बार-बार भूकम्प आने लगा। भूस्खलन होने लगा। पर्वत टूटने लगे। नदियोंने अपने मार्ग बदल दिये वनके वृक्ष टूट-टूटकर नष्ट होने लगे।

× × ×

विजयाके साथ पार्वती पिताके भवनसे जान-बूझकर अत्यन्त घोर काननमें जो व्याघ्र, रीछ, महासर्प आदि क्रूर प्राणियोंसे भरा हुआ था, घूमने लगीं। घोर वनमें घूमते हुए वे एक जलधाराके समीप पहुँचीं। वहाँ पर्वतमें गुफा थी। दोनों ही उस गुफामें प्रविष्ट हो गयीं। दोनोंने अन्न जलका त्याग कर दिया। देवी पार्वतीने सरिताके किनारे बालुकाका शिवलिङ्ग स्थापित किया और उसकी पूजा करने लगीं।

भाद्र शुक्ल तृतीया थी। हस्त नक्षत्रका योग मिल गया था। विजया और पार्वती जलका भी त्याग करके शिवार्चनके पश्चात् आशुतोष, शङ्कर, त्रिनयन, चन्द्रमौलि, धूर्जटि, मुण्डमाली, गङ्गाधर, देवदेव—इस प्रकार शिवके नामोंका तन्मय होकर कीर्तन कर रही थीं। लगभग सम्पूर्ण रात्रि वे कीर्तनमें तन्मय रहीं।

जिस गुफामें उमा और विजया थीं वह कैलासकी ही एक गुफा थी। एकाग्रचित्ता, तन्मया, तपस्विनीके कीर्तन, आर्त आवाहनने भगवान् शिवकी समाधि भङ्गकी। वे दोनों कन्याओंके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने उमासे कहा--'वरानने! मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हें जो भी अभीष्ट हो, माँग लो।'

पार्वती—'आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी सेवामें स्वीकार कर लें।'

'एवमस्तु' कहकर भगवान शङ्कर अन्तर्धान हो गये। विजया और उमाने प्रातःकाल नदीमें उस स्वनिर्मित लिङ्ग प्रतिमाका विसर्जन कर दिया। व्रतका पारण किया। दोनों ही अत्यन्त श्रान्त थीं। जलसे ही उन्होंने पारण किया था। वहीं नदी-पुलिनपर लेटीं और सो गयीं।

पर्वतराज हिमालय अपने परिकरोंके साथ अपनी कन्याका अन्वेषण कर रहे थे। बहुत व्याकुल थे। प्रत्येक गुफा, प्रत्येक खड्ड, प्रत्येक गह्वर और वन ढूढ़ रहे थे। हिमालय तो उनका अपना ही शरीर था। समीपके दूसरे

वन और पर्वतोंको वे देखते रहे थे। बार-बार शोकसे मूर्छित होकर गिरते थे। अचानक ही कैलासके समीप पहुँचे। सरिताके किनारे उन्होंने दोनों कन्याओंको भूमिपर सोते हुए देखा। दोनोंको ही उन्होंने अङ्कमें ले लिया। रुदन करने लगे—'पुत्री ! सिंह, व्याघ्र, महासर्प, भल्लूकोंसे दूषित इस वनमें तुम लोग कहाँसे आ गयी हो ?'

उमाने मस्तक झुकाकर बहुत मन्दस्वरमें, किन्तु स्पष्ट कहा—'पिताजी ! आप जानते हैं, मैंने जिनकी प्राप्तिके लिए तपस्या प्रारम्भकी थी। आपने मुझे तप करनेका आदेश दिया था। कन्या एक बार ही अपना हृदय समर्पित करती है। मुझे विश्वास था कि आप मुझे देवदेव त्रिलोचनको ही प्रदान करेंगे ; किन्तु जब आपने अन्यथा किया, मेरे पास देहत्यागके अतिरिक्त दूसरा क्या उपाय था ? यह तो इस विजयाने मुझे प्राण दान दिया, यहाँ ले आयी। अब भी मेरा निश्चय है, महेश्वरके अतिरिक्त दूसरे किसी पुरुषका वरण मैं नहीं कर सकती हूँ। शरीर आपका है। आप अधिक आग्रह करेंगे तो आपके अङ्कमें ही मैं इसे त्याग दूँगी।'

'वत्से ! मुझसे प्रमाद हुआ। मैं विष्णुसे उनके पैर पकड़कर क्षमा माँगूँगा। आशा है, वे दयामय मुझे क्षमा कर देंगे।' पर्वतराजने कहा—मैं शीघ्र ही शिवको दूत भेजकर तुम्हारा पाणिग्रहण करनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। तुम भवन चलो।' हिमालय पुत्रीको लेकर भवन आ गये।

देवर्षिने आकर समाचार दे दिया कि 'भगवान विष्णु उमाका विवाह शिवके साथ हो, ऐसी आकांक्षा रखते हैं। उन्होंने हरके लिए पार्वतीको देखना है, यह सोचकर मुझे कन्या देखनेके लिए भेजा था। भ्रमवश ही मैंने उमाको वे स्वयं चाहते हैं, ऐसा मान लिया।'

हिमालय प्रसन्न हो गये। चिन्ता दूर हो गयी। देवर्षिने ही भगवान शङ्करको आमन्त्रित किया। देवताओं और गणोंके साथ शिव पधारे। सम्पूर्ण विधिके साथ उन्होंने गिरिजाका पाणिग्रहण किया।

(भविष्योत्तरपुराण)

उमा-महेश्वर एकान्तमें बैठे, उसी समय रति अपने पतिकी भस्म लिए रुदन करती हुई कैलास पहुँची। सानुकूल शिवकी दृष्टि पड़ते ही उस भस्मसे काम सजीव हो गया। महेश्वरने सस्मित उसकी ओर देखा। पत्नी सहित वह वहाँसे शिवकी आज्ञा लेकर श्रीहरिके समीप चला गया।

कुमारका प्रादुर्भाव

देवता असुर तारकके उपद्रवोंसे बहुत पीड़ित थे। भगवान शंकरने विवाह कर लिया, किन्तु उनके कोई पुत्र हुआ नहीं था। अनन्तका संयम जहाँ अनन्त है, भोग भी अनन्त ही है। गिरिजाके साथ वे एकान्त-विहारमें लगे थे। इसकी सीमा कब कहाँ आयेगी, कोई नहीं कह सकता था, किन्तु देवता अनन्त काल तक धैर्य रख सकें, ऐसी स्थितिमें नहीं थे। उनके लिए तारकके अत्याचार दिनोंदिन असह्य होते जा रहे थे। सब इकट्ठा होकर ब्रह्माजीके पास गये और ब्रह्माजी उनको लेकर नारायणके समीप पहुँचे। पद्मसम्भवकी प्रार्थना सुनकर भगवान नारायणने कहा—'सबको शिवकी ही शरण लेना चाहिए। उनका शृङ्गार भंग अनुचित है। किसी भी स्त्री-पुरुषकी एकान्त क्रीड़ामें जो बाधा डालताहै, वह स्वजन-वियुक्त हो जाता है, उसकी कीर्ति और लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। इसलिए भगवान महेश्वरके विहारका समय पूरा हो जाय, तब निमित्त उपस्थित करना चाहिए।' इतना कहकर नारायण अन्तर्धान हो गए। देवता लौट आए।

कुछ और समय बीत गया। देवता फिर नारायणके पास पहुँचे। सबको लेकर श्रीहरि कैलास आये। उन्होंने शिवगणोंसे पूछा—'हर कहाँ हैं ?'

नन्दीश्वरने बतलाया—'बहुत समय पूर्व हमको यहाँ छोड़कर प्रभु देवी पार्वतीके साथ इस मन्दिरमें चले गये थे। हम नहीं जानते, वे वहाँ क्या कर रहे हैं ?'

देवता ब्रह्मा और नारायणके साथ द्वारपर पहुंचकर भगवान शंकरकी स्तुति करने लगे और उनको पुकारने लगे। यह पुकार सुनकर त्रिलोचन शिव संयोग-विरत होकर द्वारपर आए। देवताओंने उनको प्रणिपात किया, उनकी स्तुतिकी।

शिव-- 'जो हुआ, वह होना ही था। अब यह प्रस्तुत प्रसंग है कि मैं तेजस्खलनके समय यहाँ चला आया हूँ। जो मेरे वीर्यको धारण करनेमें

समर्थ हो वह इसको धारण करे' —यह कहकर उन्होंने वीर्य त्याग कर दिया।

'तुम तेजस्वरूप हो, सृष्टिको भी भस्म करनेमें समर्थ हो, तुम्हीं इसे धारण करो।' —देवताओंने अग्निको प्रेरणाकी। कपोत रूप बनकर अग्निने अपनी चोंचसे उस वीर्यका भक्षण कर लिया।

भगवान शंकरको लौटनेमें देर होती देखकर देवी पार्वती द्वारपर आ गयीं। जो कुछ वहाँ हुआ, उसे उन्होंने देख लिया। क्रोधपूर्वक बोलीं— 'देवताओ! तुमने स्वार्थके कारण हमारा विहार भंग कर दिया, इससे मैं बन्ध्या हो गयी। आजसे सब देव-स्त्रियाँ बन्ध्या रहेंगी। अग्नि! तुमने शिव-वीर्य भक्षण किया है, अतः तुम सर्वभक्षी हो जाओ।'

भगवान शंकरने उमाको बहुत समझाया, किन्तु देवताओंकी उपेक्षा करके वे तुरन्त लौट गयीं। देवता भी वहाँसे लौटे। अग्नि उस दुस्सह वीर्यसे संतप्त हो गया था। वह उसे धारण करनेमें असमर्थ हो गया। उसने वमन कर दिया। पृथ्वीपर पड़ते ही वह स्वर्णके समान प्रकाशमान हो गया। उसका तेज आकाशको छूने लगा।

प्रातःकाल सप्तर्षियोंकी पत्नियाँ गंगास्नान करने आयीं। शीत बहुत था। शिवके उस प्रज्वलित तेजको देखकर उन्होंने उसे अग्नि समझा। वे वहाँ जाने लगीं तो अरुन्धतीने उन्हें रोका, किन्तु अरुन्धतीके अतिरिक्त शेष छः वहाँ पहुँचीं। पारदरूप शिववीर्य वहाँ प्रज्वलित अग्निके तापसे उन सबके रोम-कूपोंके द्वारा उनके भीतर प्रविष्ट हो गया। यह काम अग्नि-देवताने किया था। ऋषि-पत्नियोंकी वञ्चना करके उनके शापके भयसे वे तत्काल अन्तर्हित हो गए।

सप्तर्षियोंकी वे छः पत्नियाँ सगर्भा हो गयी थी। अन्तर्दाह उन्हें बहुत पीड़ित कर रहा था। उनके पतियोंने क्रोधवश उन्हें त्याग दिया। इससे दुःखी होकर उन्होंने हिमालयके पृष्ठपर उस गर्भका त्याग किया। वह अद्भुत भ्रूण था। हिमालय उसके तेजको सहनेमें असमर्थ हो गये। उनका वह शिखर काँपने लगा। इससे लुढ़ककर वह भ्रूण गंगामें जा गिरा। गंगा भी उसके तेजको सहनेमें असमर्थ थीं। उन्होंने अपनी लहरोंके द्वारा उसे एक सरकण्डेके वनमें फेंक दिया।

सरकण्डोंके वनमें शिवका वह वीर्य तत्काल बालक बन गया। इस प्रकार मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीको कुमारका प्रादुर्भाव हुआ। अकस्मात् कैलास-

पर देवी पार्वतीके स्तनोंमें आनन्दसे दूध उतर आया। देवर्षि नारदने आकाशसे उस बालकपर पुष्प-वर्षा की।

ब्रह्माजीकी प्रेरणासे महर्षि विश्वामित्र उस स्थानपर आये। बालकको उन्होंने नमस्कार किया, उसकी स्तुति की। उस बालकने प्रार्थना की—'आप यहाँ आ गए हैं तो श्रुतिसम्मत मेरा संस्कार सम्पन्न करें। आजसे आप मेरे पुरोहित हुए।'

'तात! मैं गाधिकुमार क्षत्रिय हूँ।' विश्वामित्रने कहा—'तुम अपना परिचय दो।'

'मैं वरदान देता हूँ, तुम निश्चय ब्रह्मर्षि हो जाओगे।' बालकने कहा—'मेरी आज्ञासे मेरा संस्कार करो और यह बात गुप्त रखो।'

विश्वामित्रने उस बालकका संस्कार किया। क्योंकि वे देवज्ञ तो थे ही, बालकने दक्षिणाके रूपमें उनको तत्वज्ञानका उपदेश किया।

इसी समय महामुनि श्वेत वहाँ पधारे। आते ही उन्होंने बालकको गोदमें ले लिया, उसका चुम्बन किया। उसे पुत्र कहकर सम्बोधित किया, दिव्य शक्ति तथा दूसरे अस्त्र-शस्त्र दिये। महामुनि श्वेतके द्वारा दी गई उस शक्तिको लेकर बालक क्रौंच पर्वतपर चढ़ गया। उसने शक्तिसे पर्वत-शिखरपर प्रहार किया, इससे वह शिखर चूर्ण हो गया।

कृत्तिका नामकी छः देवियाँ वहाँ गंगास्नान करने आयीं। उस बालकको देखकर प्रत्येककी इच्छा उसे ग्रहण करनेकी हो गयी। उनमें विवाद होने लगा इस शिशुको दूध कौन पिलावेगी?

'मातः! आप सब मुझे एक साथ दूध पिला सकती हैं।' बालकने छः मुख धारण कर लिए और उनमें-से सबका एक साथ दूध पिया। कृत्तिकाएँ उसे लेकर अपने लोकको चली गयीं। वहाँ उनका दूध पीकर वह बढ़ने लगा।

× × × ×

देवी पार्वतीने भगवान शंकरसे कहा—'देवताओंने स्वार्थवश हमारी रति भंग कर दी। मैंने देखा कि आपका तेजःपात पृथ्वीपर हुआ था। आपका अमोघ वीर्य व्यर्थ जा नहीं सकता। अवश्य ही उससे कहीं-न-कहीं

किसी बालककी उत्पत्ति हुई होगी अथवा किसी देवताने उसे छिपा लिया है। उसका क्या हुआ, यह जाननेको मैं बहुत उत्सुक हूँ।'

भगवान शंकरने देवताओंका स्मरण किया। वे सर्वज्ञ महेश्वर स्वयं भी बतला दे सकते थे, किन्तु वे चाहते थे कि देवता ही समाचार दें जिससे बात निर्विवाद लोकमें प्रचलित हो जाय।

'मैंने उसे कैलासपर ही त्याग दिया था' —देवताओंके आनेपर पूछताछ प्रारम्भ हुई तो अग्निने कहा—'मैं उसे सहनेमें असमर्थ था।'

'मेरा शिखर काँप उठा और इससे वह तेज गंगामें लुढ़ककर गिरा।' हिमालयने बतलाया।

गंगाने कहा—'मैंने भी व्याकुल होकर उसको शरोवनमें फेंक दिया था।'

वायु— 'वहाँ वह बालक बन गया था।'

सूर्य—'मैं उसे रोता छोड़कर अस्ताचल चला गया।'

चन्द्र—'उसे रोता देखकर कृत्तिकाएँ उठाकर बदरिकाश्रम ले गयीं। उन्होंने उसे अपना दूध पिलाया। उन्होंने उसका नाम कार्तिकेय रखा है और उसका पालन कर रही हैं।'

भगवती पार्वती इस समाचारसे बहुत प्रसन्न हुयीं। वहाँ उत्सव प्रारम्भ हो गया। शंकरने अपने गण भेजे। उन असंख्य गणोंने कृत्तिकाओंका घर जाकर घेर लिया। यह देखकर कुमार कार्तिकेय शक्ति लेकर युद्धोद्यत हुए, किन्तु नन्दिकेश्वरने आगे आकर अञ्जलि बाँधकर कहा—'भाई! मेरे आनेका कारण और अपनी माताका समाचार सुनो। जगतके संहर्ता महेश्वरने हमें भेजा है। इस समय सब देवता कैलासपर एकत्र हैं। वहाँ महोत्सव हो रहा है। आपके माता-पिता आपको देखना चाहते हैं। अतः आप वहाँ पधारें। भगवान शंकर देवताओंके साथ आपका वहाँ अभिषेक करेंगे। वहाँ आपको सब अस्त्र-शस्त्र प्राप्त होंगे। आपका प्रादुर्भाव ही तारक असुरको मारनेके लिए हुआ है। आप तो त्रिभुवनपति हो, विपत्ति विदारक हो, शिव पुत्र हो, यहाँ इनके घरमें सुशोभित नहीं हो सकते।'

नन्दीश्वरके द्वारा अपने जन्मकी सम्पूर्ण कथा सुनकर कुमार कार्तिकेयने कहा—'आप सब ज्ञानी हैं। साक्षात् महेश्वरके आश्रित हैं। ये कृत्ति-

काएँ योगिनियाँ हैं, प्रकृति कला हैं। मैं इनके उपकार तथा दुग्धपानसे बढ़ा इनका पौष्य पुत्र हूँ। मैं भगवती उमासे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, अतः वे भी मेरी धर्ममाता हैं जैसे ये कृत्तिकाएँ। भगवान शंकरने मुझे पुत्र समझकर तुम्हें भेजा है तो मैं चलूँगा।'

कार्तिकेयने कृत्तिकाओंसे आज्ञा ली। शिवगण विश्वकर्माका बनाया हुआ सौ पहियों वाला मनोवेग सुन्दर रथ ले आये थे। देवी पार्वतीने उसे भेजा था। कुमार जब उसमें बैठने चले, कृत्तिकाएँ व्याकुल हो गयीं—'तुम हमें त्यागकर जाते हो, यह पुत्रका धर्म नहीं है। हम क्या करें?' वे सब कुमारको हृदयसे लगाकर मूर्छित हो गयीं।

कृत्तिकाओंको समझाकर कुमार रथमें बैठकर शिवगणोंके साथ वहाँसे चले। उन सूर्यके समान तेजस्वी शिवपुत्रको आते देखकर देवताओंने जयनाद किया। कैलास आकर वे रथसे उतरे। भगवान शंकरने अपने चरणोंमें प्रणत पुत्रको उठाकर हृदयसे लगाया। भगवती पार्वतीने प्रणाम करते उठाकर उनको गोदमें बैठा लिया और स्तनपान कराया। माताकी गोदसे उठकर फिर वे महेश्वरकी गोदमें बैठ गये।

भगवान् विश्वनाथने रत्नसिंहासनपर बैठाकर सब तीर्थोंके जलसे कार्तिकेयका अभिषेक किया। देवता वेदमन्त्रोंका पाठ करते थे। शिवने दिव्य किरीट मुकुट केयूर आदि आभूषणोंसे उन्हें विभूषित किया। हरिने उन्हें अपना चक्र दिया। शिवने शूल, पिनाक, वाण, संहारास्त्र दिये। ब्रह्माने वेद और ब्रह्मास्त्र अर्पित किये। सभी देवताओंने अपने-अपने विशेष शास्त्र कुमारको अर्पित किये। गरुणने चित्रवर्हण नामका पुत्र, जो मयूर था, वाहनके लिए कार्तिकेयको दिया। वरुणके अग्रज अरुणने अपने पुत्र कुक्कुटको उसे समर्पित किया। इसलिए कार्तिकेय मयूर और कुक्कुट वाहन हुए। कैलासपर महोत्सव हो रहा था। उमा-महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने देवताओंसे कहा—'इस अवसरपर तुममें-से जिसे जो चाहिए माँग ले।'

'कुमार ही तारकको मार सकते हैं।' देवताओंने प्रार्थना की—'अतः इन्हें तारक वधकी आज्ञा दे दें।'

भगवान शंकरने यह आज्ञा दे दी। देवताओंने कुमारका देव-सेनापतिके पदपर अभिषेक किया।

कुमार कार्तिकेयने युद्धमें न केवल तारकासुरको, अपितु उसके अन्य सहायकोंको भी रणशय्या दी।

(शिवपुराण)

तारकासुर भगवान शंकरका आराधक था। शिवकी आज्ञासे, देवताओंके अनुरोधसे कुमार कार्तिकेयने उसका युद्धमें वध तो किया, किन्तु उसे मारकर वे बहुत उदास हो गये, शोक-संतप्त हो गये। विजयी कुमारकी जब देवता स्तुति करने लगे, तब उन्होंने कहा—'मुझ पातकीका तुम लोग गुण-गान करते हो, यह कैसे उचित है? यद्यपि पापाचारीके वधमें दोष नहीं था, किन्तु तारक शिव-भक्त था। मुझसे भक्तापराध हुआ है, मुझे कोई प्रायश्चित्त निर्देश करो जिससे मैं निष्पाप हो सकूँ।'

'जो निर्दय प्राणी दूसरोंके प्राणोंकी हानि करके अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका वध स्वयं उसीके लिए कल्याणकारी है क्योंकि पापका फल नरक है, वह अपने क्रूर कर्मसे जितना शीघ्र पृथक कर दिया जाय, उसका ही हित होगा।' श्रीहरिने कहा—'कुमार तुमने तारकका वध करके कोई पाप नहीं किया है। किन्तु यदि तुम इसे भक्तापराध मानते हो तो शिवार्चन करो। पाप करके जिसे पश्चात्ताप न हो उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है, किन्तु पाप करके जिसे पश्चत्ताप होता है उसके लिए शंकरकी आराधनासे बड़ा कोई उपाय नहीं है।'

भगवान शंकरने भी कुमार कार्तिकेयको हृदयसे लगाकर समझाया—'पुत्र! तुम मेरे भक्तपर इतनी कृपा रखते हो, इससे मेरे परम प्रिय हो। श्रीवासुदेव जगद्गुरु हैं। इनका वचन भी मेरा ही वचन है। ये मेरी दूसरी मूर्ति हैं।

यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो योहरिः सोहमित्युत।
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत।
एनं द्वेष्टि समां द्वेष्टि योऽन्वेयेनं स मानुगः॥

(स्कन्दपुराण, मा० कु० २६. ४१-४२)

अर्थात्—जो मैं हूँ वही हरि हैं, जो हरि हैं वह मैं हूँ। सुव्रत! दीपकी ज्योतिके समान हममें अन्तर नहीं है। जो इनसे द्वेष करता है वह मुझसे ही द्वेष करता है। जो इनका अनुगामी है, वह मेरा ही अनुगामी है।'

कार्तिकेय—'पिताजी! मैं आपको और श्रीहरिको एक ही समझता

हूँ। इन भक्तवत्सलने मुझे शिवलिंग स्थापन करके अर्चन करनेकी सम्मति दी है। तारकवधके समय यही करनेका आकाशवाणीने भी मुझे निर्देश दिया था। मैं ऐसा करके निष्पाप बनूँगा।'

कुमारकी आज्ञासे विश्वकर्माने तीन शिवलिंग बनाकर उनको दिये। कुमार कार्तिकेयने उनकी स्थापना करके पूजा की। उनके नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए।

लिंगपुराणमें कुमार कार्तिकेयके मंगलमय विपत्तिवारक बारह नाम दिये हुए हैं— १. स्वाहेयः, २. कार्तिकेय, ३. गांगेय, ४. शर्मात्मज, ५. शिखी, ६. विशाख, ७. नैगम, ८. सेनापति, ९. कुमार, १०. पावकी, ११. षडास्य, और १२. द्वादशभुज।

द्वितीय कथा–

कुमार कार्तिकेय अहंकारात्मक हैं, जबकि गणेशको गगनात्मक माना जाता है। सृष्टिके प्रारम्भमें देवता-दैत्योंका संघर्ष चलता ही रहता था। दैत्य बहुत बलवान थे। हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदिसे आये दिन देवोंका पराभव होता रहता था। देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'देवताओंको एक सेनापति चाहिए। अकेले इन्द्र इन देवताओंकी रक्षा करें, इसमें रक्षा सम्भव नहीं है।'

देवता ऐसी समस्यामें ब्रह्मलोक ही जाते हैं। ब्रह्मासे प्रार्थना की— 'हमको सेनापति प्रदान करें।'

'मैं इन्द्रसे अधिक शक्तिशालीकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हूँ।' ब्रह्माजीने कहा—'दैत्य मेरे सृजन हैं–यह सत्य है, किन्तु उनकी शक्ति जन्मजात नहीं है। वे तपस्या करके समर्थ होते हैं। इन्द्रसे अधिक शक्तिशालीकी सृष्टिमें केवल रुद्र ही समर्थ हैं। हम उनके समीप चलें।'

देवताओंको लेकर ब्रह्मा कैलासपर रुद्रके समीप पहुँचे—'दैत्योंके द्वारा उत्पीड़ित देवता आपकी शरण आये हैं। आप शरणागतपाल हैं; हमें सेनापति प्रदान करें।'

'अच्छा! सेनापति देता हूँ।' रुद्रने अपने भीतर स्थित शक्तिको संक्षुब्ध किया। इस संक्षोभसे प्रज्वलित अग्निके समान शक्तिहस्त षण्मुख कुमार कार्तिकेय उत्पन्न हुए। रुद्रने अहंकारको स्वीकार करके इनको

उत्पन्न किया था, इसलिए ये अहंकारस्वरूप हैं ।

'मुझे वाहन और खिलौने भी दीजिये ।' कुमार कार्तिकेयने पितासे कहा ।

'मयूर तुम्हारा वाहन होगा ।' रुद्रने अपने नवजात पुत्रको खिलौना दिया—'इस कुक्कुटसे तुम खेल सकते हो। शाख और विशाख नामक भूतनायक तुम्हारे सहायक रहेंगे । देवता तुम्हारा स्तवन करेंगे ।'

देवताओंने कार्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ।

(वाराह पुराण)

यक्षराज कुबेरसे मैत्री

कम्पिल्य नगरमें सोमयाजी कुलमें उत्पन्न यज्ञदत्त नामके एक दीक्षित ब्राह्मण थे । वे वेद-वेदांगके ज्ञाता, कर्मनिष्ठ और संयमी थे । अपने पुत्र गुणनिधिका आठ वर्षकी आयुमें ही उन्होंने यज्ञोपवीत संस्कार कराया, उसे सम्यक् शिक्षा दी, किन्तु पिताके अनजानमें ही कुसंगके कारण गुणनिधिको द्यूतक्रीड़ाका व्यसन हो गया । माता पुत्र-स्नेहके कारण पतिसे छिपाकर उसे धन दिया करती थी । इस प्रकार जुआरियोंके साथसे वह आचारहीन हो गया । वेद, देवता और ब्राह्मणोंकी वह निन्दा करने लगा । पाखण्डी मनुष्योंसे भी उसका साथ हो गया ।

मनुष्य जब अर्थतृष्णामें ग्रस्त होता है, उसे दुर्व्यसन पकड़ लेते हैं, तब उसे तुच्छ चमत्कार दिखाने वाले पाखण्डी अपना आखेट बना लेते हैं । जो उचित श्रमके बिना बहुत अधिक लाभ चाहता हो, वह ठगा नहीं जाय, ऐसा सम्भव नहीं है । साथ ही ऐसे कुसंगमें लौकिक-पारलौकिक दोनों ही हानि होती है ।

वात्सल्यके कारण माता गुणनिधिको अकेलेमें समझाती थी, किन्तु माताकी बातपर उसने कभी ध्यान नहीं दिया । माताने पतिसे उसका दोषा छिपा रखा । १६ वर्षकी आयुमें गुणनिधिका विवाह हो गया । वह कुसंगके कारण अनाचारी पहले ही हो चुका था ।

एक दिन अकस्मात् यज्ञदत्तने अपनी अंगूठी एक दूसरे व्यक्तिके हाथमें देखी। उन्होंने उससे पूछा—'मेरी यह मुद्रिका तुम्हें कहाँसे प्राप्त हुई ?'

'मैंने इसकी चोरी नहीं की है। तुम मुझपर आक्षेप क्यों करते हो ?' उस व्यक्तिने रोष पूर्वक यज्ञदत्तसे कहा—'मैंने इसे तुम्हारे पुत्रसे मोल लिया है। पहले दिन वह द्यूतमें मेरी माताकी साड़ी जीत ले गया था। उसने तो बहुत-सा धन, रत्न, आभूषण जुआरियोंको दिया है। प्रायः प्रत्येक दिन जुआरी उसे हराकर नंगा करके बाँध लेते हैं, तब वह उन्हें धन देता है। वह द्यूतकार शिरोमणि, अनीति पण्डित है।'

यज्ञदत्तको पुत्रके इन सब कृत्योंका पता लगा तो बहुत अधिक क्लेश हुआ। घर आकर उन्होंने पत्नीसे पूछा। पत्नीने बहाना किया, पर अब बहाना चल नहीं सकता था। यज्ञदत्तने उस पत्नीका ही त्याग कर दिया और दूसरी कन्यासे विवाह कर लिया। उन्होंने कह दिया—'जो मोहवश अधर्म-परायण पुत्रका समर्थन करती है, वह मेरी अर्धांगिनी नहीं हो सकती। मैं उससे किसी प्रकारका सम्बन्ध रख नहीं सकता हूँ।'

जब यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिको यह समाचार मिला, वह बहुत दुःखी हो गया। घर त्याग करके वह निकल पड़ा। एक वृक्षके नीचे जाकर बैठ गया। अब तक उसने कुछ भी करना सीखा नहीं था। द्यूतके अतिरिक्त उसे कोई उद्योग आता नहीं था। निरुपाय बैठा रहा। दिन व्यतीत हो गया। तभी एक शिवभक्त वहाँ आये। समीपके शिवमन्दिरमें उन्होंने पूजन किया। उन्होंने भगवान शंकरको पक्वान्नका नैवेद्य लगाया। जब वे पूजनके लिए गुणनिधिके समीपसे निकले थे, तभी पक्वान्नकी सुगन्धिसे गुणनिधिका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो गया था। दिन भरसे बिना कुछ खाये ही वह वहाँ बैठा था, इसलिए क्षुधापीड़ित होकर उसने उस शिव-भक्तका पीछा किया था। मन्दिरके बाहर ही वह बैठ गया था। सोच रहा था 'जब ये लोग सो जायँगे तब मैं भीतर जाकर यह नैवेद्य ले लूँगा। उससे मेरी क्षुधानिवृत्ति हो जायगी।'

संयोगकी बात है-शिवरात्रिका दिन था। बहुत अधिक लोग मन्दिरमें आये थे। महापूजा हो रही थी। वहाँ नृत्य, गीत, वाद्य चल रहे थे। गुणनिधि बाहर बैठा इस पूजाको देख रहा था। प्रदोषसे लेकर चतुर्थ प्रहर

तककी पूजा पूर्ण हो गयी। इसके उपरान्त दूसरे लोग सो गये। अब गुण-निधिने मन्दिरमें प्रवेश किया, किन्तु वहाँ दीपकका प्रकाश बहुत मन्द था। रात्रि भर जलते हुए दीपककी वर्तिका क्षीण हो गयी थी। गुणनिधिने अपना वस्त्र फाड़कर बत्ती बनायी। दीपक जलाया और वहाँ भगवानको लगाये हुए नैवेद्यको लेकर निकलने लगा। निकलते समय उसका पैर एक सोये हुए व्यक्तिसे टकरा गया। वह चौंककर उठा। उसने पुकारा—'कौन है ?' गुणनिधि भागा, इससे उसने 'पकड़ो-पकड़ो' की पुकार प्रारम्भ कर दी। इस पुकारसे दूसरे लोग भी आ गये। सबने पुकारना प्रारम्भ किया। नगर रक्षक आ पहुँचे। सब 'पकड़ो' और 'मारो' की पुकार कर रहे थे। भयभीत गुणनिधि पूरी शक्तिसे दौड़ रहा था, इसलिए ठोकर खाकर गिरा। बहुत चोट लगी, प्राणान्त हो गया।

गुणनिधिने जीवनमें कोई सत्कर्म नहीं किया था। पाश-मुद्गर-हस्त भयंकर यमदूत उसे लेने आये, किन्तु वैसे ही त्रिशूलधारी भगवान शंकरके पार्षद तत्काल पहुँच गये जैसे अजामिलको लेने यमदूत आये थे और नारायण नाम लेनेके कारण विष्णु-पार्षद आ गये थे। यमदूतोंने गुणनिधिके पाप गिनाये। प्रार्थना की—'यह पापी यमालय जाकर वहाँ दण्डसे शुद्ध किये जाने योग्य है।'

शिव-पार्षदोंने कहा—'शिव निर्माल्य भक्षण, निर्माल्य उल्लंघन, निर्माल्य दूसरेको देना, और उसका स्पर्श अपुण्य बतलाया गया है, किन्तु इसने लिंग-विग्रहपर चढ़ाया हुआ निर्माल्य नहीं लिया है। इसने नैवेद्य प्रसाद ग्रहण किया है, मन्दिरमें प्रकाश किया है, पूजा-दर्शन किया है, नाम-श्रवण किया है, इसलिए यह अनजानमें ही की हुई शिव-सेवा इसके उद्धारके लिए पर्याप्त है।' शिवगणोंने यमदूतोंसे उसे छुड़ा लिया।

यही गुणनिधि दूसरे जन्ममें कलिंग देशके नरेश अरिन्दमका पुत्र दम हुआ। बाल्यकालसे ही इसमें शिव-भक्ति आ गयी। जब इसे राज्य प्राप्त हुआ तो इसने राज्यके समस्त शिवालयोंमें दीपदान अनिवार्य बना दिया। मृत्युके पश्चात् यह अलका अधीश्वर कुबेर हुआ। वहाँ इसने भगवान शंकरके लिए रत्नदीपोंकी स्थापना करायी।

पहले कल्पमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके मानसपुत्र पुलस्त्यजीसे महामुनि विश्रवा उत्पन्न हुए। उनके पुत्र वैश्रवणने तपस्या करके धनाधीशका पद

प्राप्त किया। विश्वकर्माने इन धनाध्यक्षके लिए अलकापुरीका निर्माण किया। तपस्यासे इन्होंने भगवान शंकरको संतुष्ट किया।

दूसरे मेघवाहन नामक कल्पमें, जिसकी कथा पहले आयी है, वे दम अलकापुरीके अधिपति हुए। इन्होंने काशीमें जाकर दीर्घकाल तक तपस्या की। अस्थिशेष रह गये, तब भगवान उमा-महेश्वर इनके सम्मुख प्रकट हुए। शिवने कहा—'वत्स ! मैं संतुष्ट हूँ, वरदान माँगो।'

'प्रभो ! आपके परम तेजसे मेरे नेत्र बन्द हो गये हैं। मैं आपके दर्शन करनेमें असमर्थ हूँ।' उसने पृथ्वीमें दण्डवत प्रणिपात करके बद्धाञ्जलि प्रार्थना की—'आप अपने चरणोंके दर्शनकी शक्ति प्रदान करें !'

भगवान शिवने अपने दक्षिण करसे उसके नेत्रका स्पर्श कर दिया। नेत्र खुलनेपर सबसे पहले दृष्टि उसकी गयी उमापर। उसके मनमें आया—'ये कौन हैं ? इनका रूप-लावण्य आश्चर्यमय है। इन्होंने ऐसा क्या तप किया कि भगवान महेश्वरके समीप इनको स्थान प्राप्त हुआ है। इनका तप क्या मुझसे बहुत बड़ा है ?' इस प्रकार वह स्पर्धाकी दृष्टिसे उमाकी ओर देखने लगा। इससे उसका वाम नेत्र फूट गया।

उसके इस प्रकार एकटक देखनेसे देवी रुष्ट हो गयीं। उन्होंने सदाशिवसे कहा—'यह दुष्ट कौन है ? यह बार-बार मेरी ओर देखता है ? मेरे सौभाग्यसे, सौन्दर्यसे असूया करता है ?'

भगवान शंशाकशेखर सस्मित बोले—'देवि ! यह तुम्हारा पुत्र है। तुम इसपर रोष मत करो। यह तो तुम्हारी तपोलक्ष्मी कितनी बड़ी है, इस प्रकार आश्चर्यमें पड़कर तुम्हारी ओर देख रहा है। तुम इससे प्रसन्न हो जाओ।'

भगवान शिवने उससे कहा—'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम निधिपति गुह्यकोंके स्वामी होगे। यज्ञ, किन्नरोंके तुम राजा रहोगे। पुण्यात्माओंको तुम धन देने वाले होगे। मैं तुमसे मित्रता करके सदा तुम्हारे समीप रहूँगा। ये गिरिराजनन्दिनी उमा तुम्हारी माता हैं। इनको प्रणाम करके इन्हें प्रसन्न करो।'

भगवान आशुतोष भक्तवत्सलने देवीसे फिर कहा—'आप अपने इस अबोध शिशुके ऊपर प्रसन्न हों।'

अपने पदोंमें प्रणत उस एकाक्ष, द्वितीय पिंगल नेत्र, उमाके कोपसे कुरूप हो गये, कूबड़युक्त शरीर वाले महातापसपर प्रसन्न होकर देवीने कहा—'वत्स ! शिवमें तुम्हारी निर्मल भक्ति हो। तुम एकाक्ष (दक्षिण नेत्र) रहोगे। मेरे रूपसे, तपसे ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुबेर (कुरूप) शरीर वाले हो गये हो, लेकिन सब वैदिक कर्मोंके अन्तमें ब्राह्मण तुम्हारी स्तुति करेंगे। तुम सबकी कामनाको पूर्ण करोगे।'

कुबेरको वरदान देकर भगवान शंकर अलकाके समीप कैलाशपर रहने लगे। कुबेरको वे स्नेहवश अपना अनुज मानते हैं और पार्वती भी उनको शिवानुज मानकर उनके प्रति वात्सल्य रखती हैं, यद्यपि कुबेर सदा अपनेको शिवका अनुचर, शिव-सेवक ही मानते है।

(शिवपुराण)

शिव-धाम

'देव ! मैं इस पर्वतपर नहीं रहूँगी।' एक बार भगवती उमाने शिवको सानुकूल देखकर बड़े प्रेमसे कहा—'कोई अन्य निवास स्थान बनाइये।'

'मैं तुमसे सदा अन्यत्र चलनेको कहता रहा। तुम्हें ही अपने पिताकी भूमि इतनी प्रिय है कि स्वीकार नहीं करती हो।' भगवान महेश्वर हँसे—'अब आज क्या हो गया ?'

पार्वती—'मैं अपने माता-पिताके घर गयी थी। पिताने एकान्तमें ले जाकर मुझसे कहा—'तुम्हारे स्वामी बहुत दरिद्र हैं, तभी सदा खिलौनोंसे खेला करते हैं। देवताओंकी क्रीड़ा ऐसी नहीं हुआ करती।' मेरी माताको आपका गणोंके साथ नाना प्रकारका विहार पसन्द नहीं है।'

'वे ठीक तो कहती हैं। तुम क्यों दुःखी होती हो ?' शिवने सहास्य कहा—'मैं कभी दिगम्बर रहता हूँ, कभी गजचर्म लपेट लेता हूँ। मेरे गण कोई ऋषि-मुनि नहीं हैं। वे जैसे प्रसन्न होते हैं, उनके साथ मैं वैसी ही चेष्टा करता हूँ।'

'मैं आपका किञ्चित् भी उपहास सहन नहीं कर सकती।' भगवतीने सरोष कहा। उनका मुख अरुण हो गया था—'मुझे माता-पिता भाई किसीसे कोई प्रयोजन नहीं है। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। आप यहाँसे अन्यत्र चलें।'

शिवने वह पर्वत छोड़ दिया और सुमेरुपर, गन्धमादनपर, कैलासपर नवीन आवास बनाये। विश्वकर्माने उनकी आज्ञासे इन सभी स्थानोंपर उनके लिए दिव्य भवन निर्माण किया।

(ब्रह्मपुराण)

भगवान शंकर एक बार इलावर्तमें पार्वतीके साथ एकान्तक्रीड़ामें लगे थे। नर-नारायणके दर्शन करके सनकादि कुमार शिवका दर्शन करने वहाँ आये। उन्हें आता देखकर देवी लज्जापूर्वक उठीं। वे विवस्त्रा थीं। उन्होंने जल्दीसे वस्त्र धारण किया। सनकादिने यह स्थिति देख ली और वे बीचसे ही लौट गये।

शिवने भगवतीको प्रसन्न करनेके लिए कहा—'अबसे यह वन तुम्हारा रहेगा। मुझे, नन्दीको और तुम्हारे पुत्रोंको छोड़कर जो कोई भी पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह तुरन्त स्त्री हो जायगा।

(श्रीमद्भागवत)

द्वितीय कथा—एकान्तमें बैठे महेश्वरसे पार्वतीने प्रार्थना की—स्त्री की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि पतिके साथ उसकी एकान्तक्रीड़ा गुप्त रहे। आप विश्वनाथ हो। आपके समीप चाहे जो, चाहे जब, आ जाता है। आपके गण किसीको रोकते नहीं हैं।'

गणोंको किसीको भी रोकनेकी आज्ञा नहीं है। जो प्राणी मेरे पास आता है, वह आर्त होता है अथवा भक्त होता है। उसे आनेसे वारित कैसे किया जा सकता है?'

'आप मुझे ऐसा स्थान दें जो आपकी आज्ञासे सुरक्षित हो। वहाँ कोई पुरुष न आ सके।'

शिवने हँसकर कहा—'मैं, गणेश, कार्तिक और नन्दी–इनके आनेकी तो तुम अनुमति दोगी ही। अबसे यही वन अन्य किसी पुरुषके प्रवेशके लिए वर्जित है। इसका नाम अम्बिकावन हो गया। कोई भी पुरुष इसमें प्रवेश करते ही स्त्रीत्वको प्राप्त हो जायगा।'

कालान्तरमें मनुके पुत्र सुद्युम्न वनमें आखेट करने निकले। वहाँ उन्होंने साथियोंको विदा कर दिया। रात्रिमें एक गुफामें सो रहे। दुर्भाग्यसे वह गुफा यज्ञराज समन्युकी थी। यज्ञने अपनी पत्नीसे रात्रिमें कहा—'यह नरेश इतना पुण्यात्मा है, शक्तिशाली है कि हम इसका कुछ नहीं कर सकते। इसने मेरी गुफापर अधिकार कर लिया। इसको इसका दण्ड मिलना चाहिए।'

'आप कुछ नहीं कर सकते, तब दण्ड कैसे दिया जायगा ?' यक्षिणीने पूछा।

'इसे आखेटका बहुत व्यसन है। तुम मृगी बनकरके प्रातः इसके सम्मुख जाओ तो यह तुम्हारा पीछा किये बिना नहीं रह सकता। इसको अम्बिकावनमें ले जाओ।' यज्ञने कहा।

'यह कार्य आप ही क्यों नहीं करते हैं ?' साश्चर्य यक्षिणीने पूछा।

यक्षने बतलाया—'वह वन महेश्वरके शापसे पुरुषोंके लिए वर्जित है। उसमें प्रवेश करते ही पुरुष स्त्रीत्वको प्राप्त कर लेता है, अतः उसमें मैं नहीं जा सकता। तुम इसे प्रलुब्ध करके ले जाओ। यह स्त्री हो जायगा तो मेरा प्रतिकार पूरा हो जायगा।'

यक्षिणी प्रातःकाल सुपुष्ट मृगी बनकर गुफाके सामने चरने लगी। सुद्युम्नने उसे देखा और धनुष-वाण लेकर अश्वारूढ़ हुए। मृगी भाग चली। अम्विका वनमें पहुँचकर मृगी तो कहीं अदृश्य हो गयी. फिर यक्षिणी प्रकट हुई। उसने हँसते हुए सुद्युम्नको पुकारा—'अरी इला ! तू यहाँ इस घोड़ीपर कौन-सा पौरुष प्रकट करने आयी है ?'

सुद्युम्न क्रुद्ध हुए, किन्तु यक्षिणी यह कहकर अदृश्य हो गयी—'अपने शरीरकी ओर देखो।' उन्होंने देखा कि वे सचमुच स्त्री हो गये हैं और उनका अश्व घोड़ी हो गया है। उन्होंने इस नारी रूपमें चन्द्रमाके पुत्र बुधका वरण किया। उससे उनके पुत्र पुरुरवा हुए।

एक दिन इला बहुत उदास बैठी थी। माताको उदास देखकर पुरुरवाने पूछा—'आप खिन्न क्यों हैं ?' इलाने अपना परिचय दिया और स्त्रीत्व प्राप्तिका हाल भी सुनाया। पुरुरवाने बुधसे कहा। पत्नी और पुत्रके साथ बुध वहाँसे गोदावरी तटपर आये। गौतमीमें स्नान करके सबने

शिवार्चन किया और उमा महेश्वरकी स्तुति करने लगे। प्रकट होकर देवीने कहा—'तुम लोग क्या चाहते हो ? मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगी।'

'अज्ञानवश आपके वनमें प्रविष्ट होकर मैं पुरुषसे स्त्री हो गया।' इलाने प्रार्थना की—'मुझे क्षमा कर दें। मेरा पुरुषत्व लौटा दें।'

'तथास्तु'—पार्वतीके साथ भगवान शंकरने भी आश्वासन दिया—'गौतमीमें स्नान करो।'

इला स्नान करके वहीं सुद्युम्न बन गयी। सुद्युम्नने वहाँ अश्वमेध यज्ञ किया।

× × × ×

ब्रह्मपुराणकी इस कथामें श्रीमद्भागवतसे इतना ही अन्तर है कि भागवतके अनुसार महर्षि वशिष्ठकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान शंकरने वरदान दिया था—'सुद्युम्न एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहेगा।'

काशीका प्रादुर्भाव

उमा-महेश्वर कैलाशपर, मन्दराचलपर या काशीमें स्वेच्छानुसार निवास करते थे। एक बार वाराणसीके अविमुक्त क्षेत्रमें भगवान सदाशिव पार्वतीके साथ विराजमान थे। देवी पार्वतीने पूछा—'आपके इस अविमुक्त क्षेत्रका भूतलपर कैसे प्राकट्य हुआ ?'

'प्रलयमें समस्त चराचर सृष्टिमें लीन हो जाती है, सर्वत्र अन्धकार होता है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र कुछ भी नहीं रहता। केवल एक अद्वय स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही रहता है। कल्पके प्रारम्भमें अचिन्त्य कारणसे वह सगुण होता है। उस सृष्टि-बीज विशिष्ट ईश्वरमें इच्छाका उदय होता है—'मैं एक हूँ, दो हो जाऊँ।' भगवान महेश्वरने समझाया—'इससे उस निराकार बीज विशिष्ट सगुण ईश्वरसे साकार विग्रहके रूपमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यमय मेरा यह स्वरूप प्रकट होता है उससे इस विग्रहसे उत्पन्न जल—कारण-वारि—अन्तरालमें व्याप्त हो जाता है। विभु, सर्वस्वरूप, सर्वसाक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाला, सबका वन्दनीय, सबका आदि कारण वह मैं हूँ। मैंने

अपनेको दो रूपोंमें व्यक्त किया। दूसरा रूप प्रधान—प्रकृति-गुणमयी माया है, वह तुम हो। तुम्हीं बुद्धि तत्वकी जननी हो। तुम्हारे साथ ही मुझ काल-स्वरूप आदिस्वरूपने इस अविमुक्त धाम काशी क्षेत्रको भी प्रकट किया; क्योंकि जब मैंने कालरूप धारण किया तो कालके साथ देशकी अभिव्यक्ति भी आवश्यक थी। वह प्रथम देश वाराणसी है। बहुत दिनों तक इस पञ्च-कोस विस्तीर्ण काशी क्षेत्रमें तुम्हारे साथ विहार करता रहा। मेरी आनन्द क्रीड़ा भूमि होनेसे इस क्षेत्रका नाम आनन्दकानन हो गया।'

उस माहेश्वर कल्पके प्रारम्भमें सदाशिवने अपने वामांगपर दृष्टि डाली। इस दृष्टिपातसे उनके शरीरके वामभागसे भुवनसुन्दर ताम्र नील कमल लोचन पीताम्बरधारी चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण उनको पुरुषोत्तम कहा गया। उन्होंने शिवक स्तुति की। सुप्रसन्न महेश्वरने वरदान दिया—'महाविष्णु! तुम्हारे निःश्वाससे वेद प्रकट होंगे, तुम सर्वज्ञ हो।'

उस अनन्त वनमें ही विष्णुने अपने चक्रसे एक पुष्करिणीका निर्माण किया। उस पुष्करिणीको अपने स्वेदके जलसे परिपूर्ण करके वे उसके किनारे तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या-श्रद्धासे सन्तुष्ट होकर सदाशिव उनके समीप आये। वहाँ शिवके कर्णाभरण मणिमण्डलकी कर्णिका गिर पड़ी, इसलिए वह स्थान मणिकर्णिका कहा गया।

'देवदेव! आपके मुक्तामय कुण्डलके गिरनेसे यह क्षेत्र मुक्तिप्रधान हो।' नारायणने शंकरसे प्रार्थना की—'आपकी अनिर्वचनीय शिवस्वरूप ज्योति यहाँ नित्य प्रकाशित रहे, इसलिए इसका नाम काशी हो। इस क्षेत्रमें देहत्याग करनेवाले समस्त प्राणियोंको कर्म-ज्ञान-निरपेक्ष मोक्ष प्राप्त हो।'

'एवमस्तु।' शिवने आदेश दिया—'अब तुम सृष्टिके कर्ताको प्रकट करो, वे सृष्टि करें। यह पञ्चकोसात्मक क्षेत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है। यहाँ केवल मेरी आज्ञा चलेगी। सृष्टि होनेपर भी यहाँ काल, कर्म, यम किसीका भी नियन्त्रण या प्रभुत्व नहीं रहेगा।'

जब पृथ्वीका प्राकट्य हो गया, भगवान शंकरने भारतभूमिमें हृदय स्थलपर अपने इस परम पावन अविमुक्त क्षेत्रका स्थापन किया। इस प्रकार यह दिव्यधाम पृथ्वीपर प्रादुर्भूत हुआ।

(स्कन्दपुराण)

———

गणेश-उत्पत्ति

भगवती पार्वती एक समय स्नान कर रहीं थीं। द्वारपर नन्दीश्वर थे। महेश्वर भीतर जाने लगे। नन्दीने निषेध किया—माँ स्नान कर रही हैं, किन्तु रुद्रने नन्दीको डाँट दिया और भीतर चले गये। उमाको बड़ी लज्जा आयी। वे उठकर खड़ी हो गयीं।

जया और विजया नामक सखियोंके साथ पार्वतीने विचार किया—'भगवान् शंकरकी आज्ञामें रहने वाले सब गण हैं, नन्दी-भृंगी हैं, देवता हैं हमारे पास अपना कोई सेवक नहीं है।'

'हमारा भी एक सेवक होना चाहिए।'—विजयाने कहा—'आप उसकी रचना करें।' पार्वतीने स्वीकार कर लिया।

उस समय देवी पार्वतीके अंगमें सखियाँ उबटन लगा रही थीं। अपने अंगसे छुड़ाए हुए उस उबटनसे जगदम्बाने क्रीड़ामें ही एक सर्वलक्षण-सम्पन्न एक पुरुष निर्मित किया। उसे जीवन दे दिया। वस्त्राभरण देकर आशीर्वाद दिया—'तुम मेरे पुत्र हो। सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न और सबसे अजेय हो जाओ।'

'माँ !' वह कुमार हर्ष गद्गद् होकर जगदम्बाके चरणोंपर गिरा। पार्वतीने उसे अङ्कमें उठाया। फिर अंजलि बाँधकर वह बोला—'मुझे कोई सेवा प्रदान करके कृतार्थ करें।'

'तुम मेरे द्वारपाल बनो।' जगदीश्वरीने आज्ञा दी—'मेरी अनुमतिके बिना कोई भी भीतर प्रवेश करने न पावे, चाहे वह कोई भी हो और कितना भी आग्रह करे।'

देवीने एक डण्डा पकड़ा दिया। ये उमानन्दन डण्डा लेकर द्वारपर खड़े हो गये। अब गिरिजा निश्चिन्त स्नान कर सकती थीं।

भगवान शंकर भवनमें जाने लगे तो गणेशने रोका। शिवने उन्हें डाँट दिया— 'तू कौन है ? मेरे ही भवनमें जानेसे मुझे रोकता है ?'

रुद्र नये द्वारपालका तिरस्कार करके भीतर जाना चाहते थे, किंतु गणेशने अपनी लाठी द्वारमें लगा दी और बोले—'आप बल प्रयोग करेंगे तो मुझे इस दण्डको काममें लेना पड़ेगा।'

'यह कौन है ?' शिव वहाँसे हट गये। अपने गणोंसे उन्होंने कहा—'यह यहाँ क्यों आया है ? देखो और हटा दो।'

'तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ?' गणोंने पूछा। साथ ही धमकी दी—'जीवित रहनेकी इच्छा हो तो यहाँसे भाग जाओ।'

'तुम कौन हो ? मेरे समीप क्यों आये हो ?'—गणेशने शान्त स्वरमें ही कहा—'तुम लोग यहाँ खड़े रहो या चले जाओ, पर विरोध मत करो। मैं जगदम्बाका पुत्र हूँ। उनकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। उनकी अनुमतिके बिना भवनमें कोई नहीं जा सकता।'

गणोंने भगवान महेश्वरसे जाकर यह बात कही तो उन्होंने आज्ञा दे दी—'उसे दूर कर दो।'

द्वारपर शिवगण और गणेशका युद्ध शुरू हो गया। इस कोलाहलको सुनकर पार्वतीने विजयाको भेजा—'तू देख, द्वारपर क्या हो रहा है ? हमारे नये द्वारपालकी क्या दशा है ?'

'आपके स्वामीके गण शान्त तो होते नहीं, वे जैसे हैं, आप जानती हैं। सबके सब हमारे बालकको घुड़क रहे हैं, धमका रहे हैं।'—विजयाने गणेशका पक्ष लिया—'वह ठीक कर रहा है, तेजस्वी है, समर्थ है, कर्तव्य-परायण है, अब उसके रहते असमय कोई भी भीतर नहीं आ सकेगा।'

'हटना नहीं, डटे रहो, कर्तव्यका पालन करो।' विजयाने द्वारपर आकर गणेशको उत्तेजित किया। भगवतीने उसके लिए कच्छ और पगड़ी भेज दी। गणेशने उनको धारण कर लिया।

'तुम लोग ही द्वारपाल नहीं हो, मैं भी वैसा ही द्वारपाल हूँ जैसे तुम हो।'—गणेशने शिवगणोंसे कहा—'जब भगवान महेश्वरने तुम्हारी नियुक्ति यहाँ की है तो तुम उनकी आज्ञाका पालन करते हो। इस समय मेरी माँने यहाँ नियुक्ति की है, अतः यह मेरा द्वार-रक्षाका समय है। हठ मत करो। बलपूर्वक या विनयसे कोई भी भीतर नहीं जा सकता।'

गणोंने फिर जाकर रुद्रसे कहा। लीलामय महेश्वर बोले—'तुम अनेक हो और वह अकेला है। तुम उसे हटा नहीं सकते हो? युद्ध करके हटा दो। मैं यदि उसकी मर्यादा मान लूँ तो पत्नीसे पराजित माना जाऊँगा।'

रुद्रगण अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध करने आये तो गणेशने कहा—'मैंने पहले तो कहीं युद्ध किया नहीं है, अभी नवजात बालक हूँ, किंतु मेरी लज्जा मेरी माताको है जो महाशक्ति हैं, जगन्मयी हैं। तुम सबकी लज्जा भी उन्हींको है। शिवा और शिव हम दोनोंकी ही गति हैं। तुम्हें युद्ध ही करना है तो करो।'

युद्ध प्रारम्भ हो गया। बहुत अधिक गण घायल हुए। गणोंके हाथ, पैर, सिर टूटने लगे। भगवान् शंकरकी प्रेरणासे देवता भी युद्ध करने आये। यह देखकर विजयाने जाकर पार्वतीको समाचार दिया। इस समाचारसे दुर्गा क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने अत्यन्त भयंकरी दो शक्तियाँ उत्पन्न कीं और उनको गणेशकी सहायताके लिए भेज दिया। देवी पार्वतीसे प्रकट वे दोनों शक्तियाँ देवता और शिवगण जो भी अस्त्र-शस्त्र डालते थे उसे लेकर मुँहमें डाल लेती थीं, निगल जाती थीं। शीघ्र ही देवता अस्त्र-शस्त्र हीन हो गये। पार्वतीने अपनी शक्ति गणेश और उन दोनों देवियोंको दी थी। विष्णु भी युद्ध करने आये, किंतु महाशक्तिके पुत्रको अजेय समझकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। अब भगवान् शंकर युद्धमें आये। उन्होंने अपने त्रिशूलसे गणेशका मस्तक काट दिया। इस विजयसे रुद्रके गण उत्साहमें भर गये। वे उत्सव मनाने लगे। उनके बाद्य बजने लगे। वे उछलने, कूदने और नृत्य करने लगे, किंतु भगवान शंकर दुःखी होकर एक ओर बैठ गये।

'सब देवताओंने मिलकर मेरे पुत्रको मार दिया।'—महाशक्ति समाचार पाते ही क्रुद्ध हो गयीं।—'जिस सृष्टिमें मेरे पुत्रके लिए स्थान नहीं है, उस सृष्टिके रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। मैं इसका प्रलय कर दूँगी।' उन्होंने अपने शरीरसे सहस्रों शक्तियोंको उत्पन्न किया और आज्ञा दे दी—'जो भी सम्मुख मिले, भक्षण कर लो।'

देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, मानव—उन शक्तियोंके लिए अपना-पराया नहीं था। वे कराली, कुब्जा, खंजा, लम्बशीर्षा मुख फाड़े चारों

ओर दौड़ रही थीं। जहाँ जो मिलता, उसे ही पकड़कर मुखमें डालती, चबाती चली जाती थीं। देवी स्वयं अष्टभुजा सिंहवाहिनी हुंकार कर रही थीं और जब तक वे आवेशमें रहीं, समस्त प्रकृति संक्षुब्ध आलोड़ित अस्त-व्यस्त हो गयी थी। लोकपाल तक अपने जीवनसे निराश हो गये थे। शिव स्वयं दुःखी होकर एक ओर शान्त बैठे थे। किसीको कोई उपाय सूझता नहीं था।

'क्या करना चाहिए—शिवाके सामने कौन जाय?'—सबने देवर्षि नारदसे पूछा—'हम सब उन जगदम्बाके पुत्र ही हैं, क्योंकि किसी भी स्थितिमें पुत्रकी परम गति वही हैं, उनसे उत्पन्न गे कालिकाएँ सबको चबा जायेंगी, अतः उनके सम्मुख ही चलना चाहिए।' स्वयं नारद आगे हुए, सब ऋषि-देवताओंको लेकर वे पार्वतीके समीप पहुँचे माँ! क्षमा करो! हम पुत्रोंको प्राणदान दो।'

'मेरे पुत्रका शव सामने पड़ा है। कौन सी माता मृत पुत्रको देखकर शान्त रह सकती है?'—दुर्गाने सक्रोध कहा। 'इसे जीवित करो, प्रथम पूज्य मानो, तब सब अपने जीवनकी आशा करो।' भगवतीने कालिकाओंको अपने संकेतसे अवरुद्ध कर दिया।

प्रत्येक कार्यकी एक मर्यादा है। इन्द्र अमृत देकर किसीको भी जीवित कर सकते हैं, किंतु जिसे सदाशिवने मार दिया है, उसे जीवन देनेका साहस और शक्ति दूसरे किसीमें नहीं हो सकती है। ऋषियों और देवताओंने शिवके समीप जाकर कहा--'लोकमंगलके लिए आपको भगवतीके इस तनयको जीवित करना ही चाहिए।'

'आप सब यहाँसे उत्तर जायँ। 'शिवने आदेश दिया—'जो पहले मिले उसका सिर लाकर इसकी धड़से जोड़ दें; क्योंकि मेरे त्रिशूलसे कट-कर इसका मस्तक भस्म हो गया।'

देवता उत्तर चले तो उन्हें एक श्वेतगज मिला। उसका मस्तक लाकर उन्होंने गणेशके धड़पर जोड़ा। अश्विनी कुमारोंने यह सिर संधान करके जल छिड़का। शिवेच्छासे बालक जीवित हो गया। देवता उस जीवन-प्राप्त बालकको लेकर देवीके सम्मुख गये। पुत्रको देखकर सिंहवाहिनी

कूदीं। उन्होंने गणेशको अंकमें ले लिया। वे प्रसन्न हुईं तो प्रकृति शान्त हुई।

भगवतीने गणेशका आलिंगन किया। रत्नालंकारोंसे उन्हें सज्जित किया। उनकी प्रशंसा की —'तुम धन्य हो! तुमने प्राण देकर भी मेरे आदेशका निर्वाह किया। तुम्हारे इस नये मुखपर सिन्दूर लगा है, इसलिए मनुष्य सिन्दूरसे तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम्हारी पूजासे सब कार्योंके विघ्न दूर होंगे।'

देवताओंने गणाध्यक्षके पदपर गणेशका अभिषेक किया। फिर उनको ले जाकर महेश्वरके अंकमें बैठाया। शिवने उनके सिरपर हाथ रखा—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।'

गणेशने ब्रह्मा, विष्णु और सब देवताओं, शिवगणोंको भी अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया—'आप सब मेरा अपराध क्षमा करें। कर्तव्यसे विवश ही यह मैंने किया है।' सब देवताओंने और शिव-पार्वतीने भी गणेशका पूजन किया। सबने स्वीकार किया कि गणेश देवताओंमें प्रथम पूज्य होंगे।

भाद्र कृष्ण चतुर्थीको चन्द्रोदयके समय भगवती गिरिराजनन्दिनीके मनसे गणेशका प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिए यह तिथि गणेश-जयन्ती है।

(शिवपुराण)

द्वितीय कथा—

दैत्य, दानव, राक्षस तथा दूसरे भी क्रूर सत्व, अधर्मी, उपद्रवकारी पृथ्वीपर दान, तपस्या और अनुष्ठान करते थे, शिवार्चन करते थे, उनका कार्य निर्विघ्न समाप्त होता था, वे अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेते थे। पुण्य कर्म और शास्त्रीय अनुष्ठान दुरभिप्राय लेकर नहीं किये जा सकते, ऐसा कोई नियम नहीं है। अब भी दुष्ट लोग दूसरोंके उत्पीड़नके लिए अनुष्ठानका, आराधनाका आश्रय लेते ही हैं, किंतु इससे जब उनकी शक्ति बढ़ जाती है, सज्जन-सत्पुरुष उत्पीड़ित हो जाते हैं। देवता भी असुरोंके निर्विघ्न अनु-

ष्ठानोंसे संकटमें पड़ गये थे। देवता अनुष्ठानोंके वशमें हैं, इसलिए वे इन राक्षसों आदिके सेवकप्राय बनकर रह गये। 'क्या किया जाय'—यह ब्रह्मासे उन्होंने जाकर पूछा। ब्रह्माजीने तब भगवान नारायणसे प्रार्थना की।

श्रीहरिने कहा—'असुर और अधर्मीके कार्यमें विघ्न होना चाहिए, देवताओं और धर्मात्माओंके कार्यमें विघ्नका नाश होना चाहिए, मानवके उत्थानके लिए जो उचित हो, ऐसे उसके अभीष्ट पूर्ण होने चाहिए। यह सब तभी हो सकता है जब शिव विघ्नेश्वरका सृजन करें। वे प्रलयंकर विघ्नोंके अधिदेवताको प्रेरित कर सकते हैं, नियंत्रित कर सकते हैं।'

हरिके साथ ब्रह्माजी एवं सब देवताओंने जाकर शिवका स्तवन किया। समाधिमें स्थित रुद्रने नेत्र खोले। नारायणको आया देखकर प्रसन्न हुए। देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'देवता आपके चरणोंमें वरदान पानेके इच्छुक हैं। दैत्योंके द्वारा इनके तथा सत्पुरुषोंके कार्योंमें विघ्न न हो—ऐसा आप विधान करें। जो कार्य सुरोंके अपकारके लिए हो रहा हो, सृष्टिमें अमंगलमूलक हो, लोकमें संतापदायी हो, उनमें विघ्न होना चाहिए—यह वरदान आप हमें दें।'

रुद्रने देवगुरुकी बात सुनकर शिवाकी ओर देखा। उस समय उमा-महेश्वरकी सम्मिलित अंगकान्तिकासे एक बालक प्रकट हुआ और नृत्य करने लगा। वह विचित्र वस्त्राभरणोंसे अलंकृत था। गजमुख, त्रिशूल, पाश-अंकुश और वरमुद्रा उसके करोंमें था। उमा-महेश्वरसे प्रकट उस एकदन्तने माता-पिताको प्रणाम किया। देवता उसकी स्तुति करने लगे।

भगवान शंकरने स्वयं उसका जातकर्मादि संस्कार किया। गोदमें लेकर उसका आलिंगन किया। सिर सूँघा। शिवने कहा—'वत्स! तुम्हारा अवतार दैत्योंके विनाशके लिए एवं देवराजके, देवताओंके उपकारार्थ हुआ है, अतः दक्षिणाहीन, न्यायहीन, अनधिकारीके द्वारा किया हुआ, असत् संकल्पसे किया हुआ जो यज्ञ है, अध्ययन है, अध्यापन है, व्याख्या है, उसमें तुम विघ्न करो। बालगणेश्वर! अपने भक्तोंकी सब प्रकार रक्षा करो। जो युवा या वृद्ध तुम्हारी अर्चा करें, उनकी रक्षा करो। मेरे, श्रीहरिके या देवताओंके

निमित्त जो भी यज्ञ या पूजा होगी, उनमें तुम्हारी प्रथम पूजा होगी। तुम्हारी अग्रपूजाके बिना जो श्रौत-स्मार्त कर्म लौकिक पारलौकिक कल्याणार्थ करेगा उसका वह कर्म निष्फल होगा। तुम्हारी प्रथम पूजाके बिना किसीका भी किया हुआ देवार्चन व्यर्थ जायगा।'

गणपतिने अपने अङ्गसे ही विघ्नगण उत्पन्न किये जो उनके आगे स्थित हुए। दैत्योंके यज्ञ-अनुष्ठान आदिमें विघ्न होने लगा, इससे देवताओंको विश्रान्ति मिली। (लिंगपुराण)

तृतीय कथा—

वाराहपुराणमें गणेशको गगनात्मक कहा गया है। सृष्टिके प्रारम्भमें देवता, ऋषि, तपस्वी जो भी कार्य करते थे, वह सफल होता था, किंतु जैसे सन्मार्गियोंका मार्ग सफल होता था, असन्मार्गियोंकी क्रियाएँ भी सफल होती थीं। इससे देवता चिन्तित हुए—'असन्मार्गमें विघ्न होना चाहिए।' परस्पर मंत्रणा करके वे भगवान शंकरके पास गये। उन्होंने प्रार्थना की—'देवदेव! शूलपाणि! प्रलयंकर! जो असन्मार्गी हैं, उनके कार्योंमें विघ्नके लिए कोई शक्ति उत्पन्न करें।'

देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर रुद्रने आनन्दपूर्वक उमाकी ओर देखा। अनिमेष मुग्ध दृष्टिसे उमाकी ओर देखते हुए सहसा उन्होंने गगनकी ओर दृष्टि उठायी। वहाँ उनको अपनी मूर्ति दृष्ट न हुई--पृथ्वी मेरी मूर्ति है, जल मेरी मूर्ति है, अग्नि मेरी मूर्ति है, और वायु तो मेरी मूर्ति है ही, किन्तु गगनमें मेरी मूर्ति क्यों नहीं दीखती है?'

पहले ब्रह्माने शरीरधारियोंके लिए जो शरीर बनाया था, वह चतुर्भूतात्मक ही था। आकाश तो सर्वव्यापक था और प्रणवसे एक था। इस तथ्यको समझकर महादेव हँसे। उन्होंने गगनके तत्वको लेकर एक कुमारको अपने मुखसे प्रकट किया। वह महातेजस्वी अपनी तेजोराशिसे दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। अपने गुणोंमें सृष्टिकर्ता अथवा साक्षात्

महेश्वरके समान ही था। उसकी कान्ति दीप्ति और सौन्दर्यके कारण देवताओंका तेज क्षीण हो गया था।

उस परम रूपवान कुमारको उमा अपलक लोचनसे देखने लगीं। उनका यह मुग्ध भाव, स्त्रीसुलभ वात्सल्य सम्मोहन देखकर रुद्रको प्रसन्नता नहीं हुई। उनके मनमें आया कि गिरिराजको एकमात्र मेरी ओर देखना चाहिए। यह इस नग्ने कुमारके सौन्दर्यपर मुग्ध हो रही है। रुद्रने कुमारको शाप दे दिया—'तुम गजमुख हो जाओ, प्रलम्बोदर हो, नागयज्ञोपवीती हो जाओ।' साथ ही रुद्र अपने शरीरको भी रोषमें अपने करोंसे ताड़ित करने लगे। इस देह-धुन्वनसे उनके जो रोम टूटकर पृथ्वी या जलमें गिरे उनसे सैकड़ों गजमुख विनायक उत्पन्न हो गये। वे तमाल नील अस्त्र-हस्त थे।

ब्रह्माने आकर स्तुति करके शिवको शान्त किया। शिवने वरदान दिया—'यह विनायक देवद्रोहियों, असत्पुरुषोंके कार्यमें विघ्न करेंगे। यह कुमार इनका अधिपति होगा। जिस यज्ञ अनुष्ठान आदिमें इसकी प्रथम पूजा नहीं होगी, उसको यह नष्ट कर दिया करेगा।' देवताओंने गणेशका अभिषेक किया।

चतुर्थ कथा:--

गणेशपुराणके अनुसार भगवान गणपति कार्तिकेयके अग्रज हैं। इसलिए इनका एक नाम कुमाराग्रज भी है। परमतत्वकी आराधना पाँच सगुण साकार रूपोंमें पुराणसम्मत है। यह बात प्रस्तावनामें कही गयी है। परमतत्वको जब गणपति रूप माना जाता है तब दूसरे शेष चारों रूप गौण हो जाते हैं। इस कथाको इसी प्रकाशमें समझना चाहिए।

उमा-महेश्वरके कोई संतान नहीं थी। वे दोनों ही पुत्रकी इच्छासे परम-पुरुष गणेशकी आराधना कर रहे थे। दीर्घ काल तक आराधना चली। एक दिन ये दम्पति एक साथ शयन कर रहे थे, इसी समय कैलासमें द्वारसे किसी वृद्ध ब्राह्मणने पुकारा—'देवि ! भिक्षां देहि।'

संयोग ही था कि उसी समय महेश्वरका रेतस्खलन हो रहा था। वे वैसे ही उठकर द्वारपर आये। देवी पार्वती भी शीघ्रतापूर्वक भिक्षा लेकर

द्वारपर पहुँचीं। वहाँ कोई नहीं था। जब वे लौटीं, उनके पर्यंकमें एक सुकुमार सुन्दर शिशु पड़ा हुआ था। माताने उसे अंकमें ले लिया।

उमा-महेश्वरके इस पुत्रके जन्मोत्सवमें सभी देवता और ऋषि, ग्रहादि पधारे। सबने उस पुत्रको आशीर्वाद दिया। ऋषियोंने स्वस्ति पाठ किया, किन्तु शनिश्चर सिर झुकाये ही पार्वतीके समीपसे बाहर जा रहे थे। देवीने कहा—'तुम मेरे पुत्रकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? देखो, यह कितना सुन्दर है।'

'देवि ! आप क्षमा करें। मैं किसीकी ओर मंगल भावनासे देख नहीं सकता।'—शनिने अञ्जलि बाँधकर कहा—'आप मुझे ऐसी आज्ञा मत करें।'

शनि कहना चाहता था कि 'मेरी दृष्टि अत्यन्त क्रूर है और अमोघ हैं' किन्तु पार्वती पुत्रके स्नेहसे विभोर थीं। उन्होंने आज्ञा दी—'इसकी ओर देखो।'

शनिने दृष्टिकी कोरसे जैसे ही उस बालकको देखा, बालकका सिर कटकर गिर गया। देवीके आर्तनादको सुनकर भगवान शंकर वहाँ आये। उस मुण्डको उन्होंने अपनी मालामें स्थान दिया। उनके विधानके अनुसार ही गजमस्तक लाकर उस बालकके सिरपर लगाया गया।

अक्ष-क्रीड़ा

सर्वेश्वरकी लीला अचिन्त्य है। सृष्टिके लिए अनेक प्रकारके विधान वे महेश्वर ही करते हैं। धर्म यदि भगवानका हृदय है तो अधर्म भी उनका पृष्ठ भाग है। सर्वरूप सर्वमयसे पृथक कुछ हो नहीं सकता। इसलिए विश्वमें जो कुछ भी है, वह उन्हीं विराट पुरुषमें है, उनका अङ्ग है। वे लीलामय समय-समयपर अनेक प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं।

भगवान रुद्रने कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको द्यूत-क्रीड़ाका अपने मनसे ही प्रादुर्भाव किया। वे देवी उमासे बोले—'देवि! संसारमें ऐसे बहुत-से मानव होंगे, जिनके लिए कालक्षेप ही एक समस्या होगी; क्योंकि जिनमें रजोगुण अधिक है, वे न निद्रामें पड़े रह सकते हैं और न जप, तत्व-चिंतन आदि किसी सात्विक कर्ममें अधिक देर तक लगे रह सकते हैं। उनके सम्मुख कोई उपयोगी कार्य सदा बना रहे—यह भी सम्भव नहीं है। ऐसे भी लोग होंगे जो अनुद्योगी हैं, बिना श्रमके ही सम्पत्ति पाना चाहते हैं और उनका प्रारब्ध उन्हें सम्पत्तिवान् बनानेके अनुकूल है। ऐसे भी लोग होंगे जिनके प्रारब्धके कारण उन्हें सहसा निर्धन हो जाना चाहिए, किन्तु धन-हानिका कोई मार्ग उन्होंने उन्मुक्त नहीं रखा है। इस सबकी व्यवस्था-के लिए मैंने आज द्यूतक्रीड़ाका आविर्भाव किया है। यह किन्हींके काल-क्षेपके लिए, किन्हींको सहसा धनी बना देनेके लिए और किन्हींको निर्धन बना देनेके लिए माध्यम बनेगा। आओ, हम दोनों प्रथम इस क्रीडाको प्रारम्भ करें।'

'यह क्रीड़ा कैसे की जाती है?' उमाने जिज्ञासा की।

भगवान शंकरने उन्हें पासोंसे खेलना सिखलाया और बतलाया—'इसमें कुछ दावपर लगाया जाता है। मैं त्रिभुवनका एक लोक पाताल दावपर लगाता हूँ।'

'भुवन जैसे आपके हैं, वैसे ही मेरे भी हैं, किन्तु मैं अपने आभरण दावपर रखती हूँ।' देवीने कहा। द्यूत-क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी।

भगवान महेश्वरका स्वभाव अद्भुत है। वे निरन्तर अन्तर्मुख रहते हैं। अपने स्वरूपमें ही तन्मय रहते हैं। समाधिमें स्थित न हों, तब भी उनकी प्रवृत्तिमें कोई रुचि नहीं है। इसीलिए किसीको वरदान देना हो या कुछ करना हो, वे बिना पूरा मनोयोग किये 'एवमस्तु' ही कर देते हैं। अक्ष-क्रीड़ामें उनकी यह उपरति उन्हींपर प्रतिकूल पड़ी। वे दाव लगाते रहे और देवी पार्वती जीतती गयीं। त्रिभुवन ही नहीं हारा गया, महेश्वरने अपना वृषभ, डमरू, त्रिशूल, चन्द्रलेखा, व्याघ्राम्बर, अङ्गोंके भूषणभूत सर्प सब हरा दिये। अब उन्होंने देवीसे कहा—'आप कृपा करके मुझे पहननेको व्याघ्राम्बर लौटा दें।'

'जीतकर कुछ लौटाना पड़ेगा, ऐसा तो पहलेसे निर्णय नहीं हुआ है।' परिहासमें देवीने कह दिया।

भगवान शंकर चुपचाप वहाँसे उठे और एकाकी दिगम्बर चल पड़े। भगवती पार्वती समझती थीं, सदाशिव थोड़ी देरमें लौट आवेंगे। उन दोनों-में तो परस्पर कोई भेद कभी रहा नहीं है। जो उनका है, वह भगवान शिवका पहलेसे ही है। उनके इस जयका भी क्या अर्थ है, किन्तु लीलामय रुद्र आवेशमें चले गये थे। उन सहज निष्कामके मनमें विरक्तिके भाव जाग्रत हो गये थे। कैलाससे जाकर वे हिमालयके उस स्थानपर बैठ गये जहाँ उन्होंने कभी पहले तपस्या की थी, जहाँ उमाने तप करके उनको प्राप्त किया था।

कुमार कार्तिकेय क्रीड़ा करते हुए अकस्मात् वहाँ पहुँच गये जहाँ शंकरजी सबसे विरक्त होकर बैठे थे। कुमारने पिताको प्रणाम किया। शिवने पुत्रको अङ्कमें लिया, सिर सूँघा। बोले—'वत्स! तुम सुख पूर्वक घर जाओ। आज तुम्हारी माताने मुझे जीत लिया है, अतः मैं कहीं गहन काननमें जाकर तपस्या करूँगा।'

स्कन्दको आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'माँने आपको कैसे जीता है? आप क्यों वनमें जा रहे हैं? आप जाते ही हैं तो मैं आपके साथ चलूँगा। आपके चरणोंकी सेवा करूँगा। अकेले मैं माताके समीप नहीं जाऊँगा।'

'तुम्हारी माताने मुझसे त्रिभुवन जीत लिया है, अतः मैं इस त्रिलोकीमें नहीं रुक सकता।' शंकरजीने पुत्रको उदास स्वरमें सुनाया।

'आप कहीं नहीं जायँगे।' स्कन्दने स्नेहाग्रहपूर्वक कहा—'यह क्रीड़ा कौन-सी है? पहले आप उसे मुझे सिखा दीजिये। मैं माँके साथ खेलूँगा जाकर और आपने जो कुछ भी हार दिया है, वह सब लाकर आपके चरणोंमें उपस्थित कर दूँगा।'

शंकरजीने पुत्रको वह द्यूत-क्रीड़ा सिखला दी। षडानन वहाँसे कैलासपर आये। उन्होंने माता पार्वतीसे पूछा—'अम्ब! महेश्वर कहाँ हैं? नन्दी* तो यहींपर हैं। पिता क्या पाताल चले गये? उनकी चन्द्रलेखा भी यहींपर है। इसे उन्होंने मस्तकपर धारण नहीं किया है?'

'उन्होंने स्वयं ही द्यूत-क्रीड़ाका आविर्भाव किया। स्वयं ही मुझसे खेलनेको कहा और पराजित हो गये, तब मुझसे क्रोध करके कहीं चले गये हैं। मैं उन्हें कैसे प्रसन्न करूँ?' देवी पार्वतीने बहुत खिन्न स्वरमें पुत्रसे कहा।

'माँ! यह द्यूत-क्रीड़ा क्या है?' स्कन्दने जान-बूझकर अनजान बनते हुए मातासे आग्रह किया—'आप मुझे यह क्रीड़ा सिखला दें।'

पार्वतीने पुत्रको अक्ष-क्रीड़ा सिखला दी। तब स्कन्दने अनुरोध किया—'मैं अपना मयूर दावपर लगाता हूँ। आप पिताके वृषभ नन्दीको दावपर लगाकर खेलिये।' माता-पुत्रमें द्यूत क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी।

स्कन्धको मातासे केवल वही वस्तुएँ जीतनी थीं जो पिताके परिधानकी थीं। उन्हें माताको पराजित करनेका कोई उत्साह नहीं था।

---

*भगवान शंकरके महावृषभका नाम 'नन्दी' है और उनके सब गणोंके मुख्य अधिनायकका नाम 'नन्दीश्वर' है। नन्दीश्वर वामन कदके वानर मुख हैं। ये शिलादपुत्र रुद्रके ही एकादशवें रूप हैं। भ्रमसे ही लोग वृषभको नन्दीश्वर कहते हैं। नन्दीश्वर शीर्षक अध्याय देखिये।

उन्होंने वृषभ, चन्द्रलेखा, व्याघ्राम्बर और भगवान शंकरके सर्पाभरण आदि जीत लिए। उनको लेकर वे पिताके पास पहुँच गये। भगवान शंकरने अपने योग्य पुत्रकी प्रशंसा की।

गणेशजी भी कहीं घरसे बाहर ही गये थे। कैलास लौटे। देवी उदास बैठी थीं। उन्होंने पूछा—'अम्ब ! आप खिन्न क्यों हैं ?'

'आज द्यूत-क्रीड़ामें मैंने महेश्वरको जीत लिया था। वे रुष्ट होकर जाने लगे तो मैंने सोचा, वे अपने वृषभ, व्याघ्राम्बर आदिको लेने आवेंगे, इसलिए मैं साथ नहीं गयी, यहीं रह गयी। तुम्हारे भाईने मुझे जीतकर तुम्हारे पिताकी सामग्री ले ली और वह पिताके पास चला गया। किन्तु तुम्हारे पिता अब भी लौट नहीं रहे हैं।' उमाने कहा—'इससे अधिक चिन्ताकी बात और मेरे लिए क्या है।'

'आप मुझे यह क्रीड़ा सिखला दें।' गणेशने स्थिर स्वरमें कहा—'मैं तभी आपका पुत्र हूँ, जब भाईको और पिताको भी जीतकर दोनोंकी सब सामग्री आपके चरणोंमें लाकर रख दूँ।'

देवीने गणेशको द्यूत-क्रीड़ा सिखला दी। वे दो पासे और उनके गोट लेकर खेलने चले गये। वहाँ पहुँचे जहाँ शिवजी कार्तिकके साथ बैठे थे। उन्होंने जाते ही अक्ष-वस्त्र बिछा दिया, पासे और गोट रख दिये। बोले—'भाई ! आप पिताके सम्मुख मेरे साथ खेलो।'

गणेशजीने अपना मूषक दावपर रखा और वृषभ, मयूर दोनों ही स्कन्दसे जीत लिए। वे शाम तक कार्तिकेय और शंकरजीकी भी सब वस्तुएँ जीतकर उनको लेकर कैलास लौट आये।'

'पुत्र ! तू इन सब वस्तुओंको ले आया, यह तो ठीक है ?' देवीने द्यूत विजयी पुत्रको बहुत उल्लाससे समादृत नहीं किया—'लेकिन तू अपने पिताको तो ला नहीं सका। जैसे भी वे आ सकें, उन्हें ले आओ।'

बुद्धिके देवता पराजय स्वीकार करना नहीं जानते। गजाननने कहा—'मैं उन्हें अभी लाता हूँ। अपने मूषकपर आरूढ़ होकर वे भगवान शंकरके समीप चल दिये।

देवदेव महेश्वर गंगाके उद्‌गम स्थानसे हरिद्वार चले आये थे। देवर्षि नारदने वहाँ इस रूपमें उनके दर्शन किये और जाकर भगवान विष्णुको समाचार देकर ले आये। अकस्मात् ही वहाँ रावण भी पहुँच गया। श्रीहरिने आते ही शंकरजीसे कहा—'आपकी दो पाशों की विद्या बहुत अच्छी नहीं है। आप त्र्यज्ञ महाविद्याका आविर्भाव करें, उनमें मैं एक अक्ष हो जाता हूँ।'

'ठीक है, आप एकाक्ष हो जायँ।' रावणने हँसकर व्यंग्य किया।

'मूर्ख ! मेरे दोनों लोचनोंमें-से एक ही मेरा है।' भगवान विष्णुने दशग्रीवको झिड़क दिया—'एक मैं पहले ही इन सदाशिवको समर्पित कर चुका हूँ। वह इनका प्रसाद है, लेकिन तू बिलावके समान मेरी ओर घूर रहा है, इसलिए बिलाव हो जा।'

श्रीहरिके शापसे रावण बिलाव हो गया। यह देखकर देवर्षि नारद. बहुत प्रसन्न हुए। वे उठकर उल्लाससे बोले—'आपने बहुत अच्छा किया। गणेश्वर अपने माताके पाससे पुनः अक्ष-क्रीड़ा करने यहाँ आ रहे हैं। अब यह बिलाव हुआ रावण उनके मूषकको डरा देगा, इसलिए वे फिर अक्ष-क्रीड़ा नहीं कर सकेंगे।'

देवर्षिकी आज्ञा मानकर रावणने आगे जाकर बिलावका शब्द करना प्रारम्भ किया। वह शब्द सुनकर गणेशजीका मूषक उन्हें मार्गमें ही लुढ़का कर भाग गया। वे लम्बोदर एकदन्त धीरे-धीरे पैदल ही वहाँ पहुँचे। उन्होंने दूरसे ही देख लिया कि श्रीहरि पासा बन गये हैं। समीप जाकर पिताके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया। अञ्जलि बांधकर प्रार्थना की—'आपको माताने सम्मानपूर्वक बुलाया है। आप नहीं लौटेंगे तो वे जीवन त्याग देंगी। आप यहाँसे घर चलें। वहाँ आपकी सब सामग्री मैं आपको भेंट कर दूँगा।'

'गणेश ! मैं केवल एक नियम मान लेनेपर घर लौट सकता हूँ।' भगवान शंकरने कहा—'मैंने अभी-अभी त्र्यक्ष महाविद्याका निर्माण किया है। यदि तुम्हारी माता इसके अनुसार मेरे साथ द्यूत-क्रीड़ा करें तो मैं चलूँ।'

'आपकी सब बातें माताको स्वीकार हैं।' गणेशजीने वचन दे दिया—'आप कैलास लौटें। भाईको साथ लेकर आपको शीघ्र लौटना चाहिए।'

अब अपने दोनों पुत्रोंके साथ भगवान शंकर तीनों पासोंको लेकर कैलास आये। बिलाव बना हुआ रावण भी आ गया। देवर्षि नारद भी

आये। उमाको देखकर शंकरजी हँसे—'देवि ! मैंने गंगाद्वारपर त्र्यक्ष महाविद्याका आविर्भाव किया है। इस विद्याके द्वारा भी आप मुझे पराजित कर दें तब आपकी विजय सच्ची है।'

'आपकी वृषभादि सब सामग्री मैंने पहले ही दावपर लगा दी।' देवीने हंसकर कहा—'अब आप क्या लगाते हैं ?'

शंकरजीने मस्तक झुका लिया। वे पहले ही सब कुछ हार चुके थे। उन दिगम्बर अवधूतके पास अब दावपर लगानेको भी कुछ नहीं था, लेकिन देवर्षि नारदने अपनी वीणा, कौपीन और यज्ञोपवीत भी दावपर रख दिया—'भगवान सदाशिवकी ओरसे यह दाव है।'

क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी। लेकिन एक पासा तो भगवान विष्णु बने थे। अब जब दाव शिवके पक्षमें आता, वे अनुकूल रहते और देवी पार्वतीके पक्षमें जाता तो अपनी स्थिति ऐसी कर लेते कि उसमें भी उमा जीत न सकें। भगवान शंकरने अपने सब पदार्थ जीत लिए। स्कन्दके भी अलंकारादि जो गणेशने जीते थे, जीत लिए। सहसा गणेशजी बोले—'माँ ! अब मत खेलो। भाई और पिताकी सब वस्तुएँ पिताने प्राप्त कर लीं। यह अक्ष-क्रीड़ा ईमानदारीसे नहीं खेली जा रही है। स्वयं रमाकान्त अक्ष बने हुए हैं, इससे पिता तुम्हारा सर्वस्व हरण कर लेंगे। तुम्हें कंगालिनी बना देंगे।'

पार्वती यह सुनकर कि उनके साथ छल किया गया है, क्रुद्ध हो गयीं। इसी समय बिलाव बना हुआ रावण बोला—'मैंने विष्णुको मना किया था, यह अधर्म मत करो, किन्तु हरि सदासे पापी है, इसने शाप देकर मुझे बिलाव बना दिया।'

'वत्स ! मैं इस बलशाली धूर्तको शाप दूँगी।' क्रोधावेशमें देवीने कहा—'धर्मत्यागका फल इसको मिलना चाहिए, अन्यथा व्यक्ति धर्मपर स्थिर नहीं रहेगा। लोकमें यह आदर्श स्थापित होना ही चाहिए कि धर्म-त्याग समर्थके लिए भी संकटदायी है।' उमाने सक्रोध सदाशिवकी ओर देखा—'आपने मुझ अबलाके साथ छल किया, इसलिए आपका मस्तक सदा गंगाके भारसे पीड़ित और आर्द्र रहे।'

'मुने ! आप इधर-उधर कलह उत्पन्न करते घूमते हैं।' देवीने नारदकी ओर देखा—'जान-बूझकर आपने मुझे सावधान नहीं किया, अतः आप कहीं भी एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकेंगे, सदा घूमते ही रहेंगे।'

उमाने विष्णुको भी शाप दिया—'आपने मेरे साथ छल किया है। एक अबला नारीके साथ माया की है, इसलिए यह रावण ही आपकी स्त्रीका हरण करेगा।'

पार्वतीने किसीको क्षमा नहीं किया। उन्होंने स्कन्दकी ओर देखकर उनको भी शाप दिया—'पुत्र ! तूने माताको छोड़कर पिताका पक्ष लेनेका लड़कपन किया है, अतः तू सदा बालक ही रहेगा, वृद्ध या तरुण नहीं होगा। तुझे स्वप्नमें भी स्त्री सुख नहीं मिलेगा।'

'माँ ! इस रावणने बिलाव बनकर मेरे मूषकको भयभीत कर दिया। मार्गमें ही मूषकने मुझे भूमिपर गिरा दिया और भाग गया। इस अधम राक्षसने मेरे मार्गमें विघ्न उत्पन्न किया है।' सक्रोध गणेश बोले—'आप इस दुष्टको भी शाप दें, अन्यथा मैं इसे दण्डित करूँगा।'

'तूने मेरे पुत्रके मार्गमें विघ्न किया है।' देवीने रावणको शाप दिया—'तेरा शत्रु यह विष्णु ही तेरा बध करेगा।'

उमाका शाप सुनकर हर और हरि भी आवेशमें आ गये थे, किन्तु नारदजीने हाथ जोड़कर दोनोंसे ही कहा—'आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। देवी कोई भी शाप देने योग्य नहीं हैं। ये आदि माया हैं, सबके मंगलके लिए ये सबका कल्याण करती हैं। इनका शाप तो शाप नहीं है, यह तो सबके लिए कल्याणदायी है। नीलकण्ठ प्रभुके कण्ठमें हलाहल विष है, अतः उनके मस्तकपर गंगाका स्पर्श उचित ही है। इस अधम राक्षसको श्रीहरि मारेंगे, यह भी इसके लिए कल्याणकर है और निरपराध तो इसे मारेंगे नहीं, इसलिए दशग्रीव रमाका हरण करे—यह भी आवश्यक है। देव सेनापति षडाननको काम-तृष्णासे पृथक् रहना पड़े, वे संयमी नित्य सावधान रहें, यह उनके लिए मंगलमय, शोभास्पद है। अब रहा मैं, तो अकेला किसी एक स्थानपर बना रहूँ, यह बात उचित नहीं है। साधुके लिए परिव्रजन परम श्रेयस्कर है। अतः भगवतीने मेरे लिए भी कल्याणका ही विधान किया है।'

देवर्षि नारद अब अद्भुत चेष्टाएँ करने लगे। वे उछलते-कूदते, संकेत रूपसे नृत्य करने लगे। मुखसे विचित्र-विचित्र शब्द करते थे। कुक्षिमें हथेली लगाकर कुक्षिनाद भी करते थे। इस प्रकार वे सबको हँसानेकी चेष्टाएँ कर रहे थे। उनकी चेष्टाएं देखकर सबके सब हँसने लगे। महामाया

जगदम्बाने प्रसन्न होकर कहा—'विदूषकश्रेष्ठ देवर्षि ! आप कृतकृत्य हैं। आपका कल्याण हो। जो भी आपको प्रिय लगे, वरदान माँग लो।'

देवर्षिने उसी परिहास चेष्टाके साथ कहा—'मैं अकेला अवधूत क्यों वरदान माँगू ? वरदान ही माँगना है तो सब वरदान माँगें और माँगने वालेके वरदानका शेष सब समर्थन करें। आपमें-से कौन क्या माँगना चाहता है ?'

भगवान महेश्वर ही पहले बोले—'देवीसे जो कुछ जीता है, मुझे क्षमा कर दें। अब जब भी हम परस्पर अक्ष-क्रीड़ा करें, चाहे सौ बार देवी जीतें या सहस्र बार मैं जीतूँ, हम दोनोंकी वस्तुएँ हमारे पास ही रहें।'

देवीने भी वरदान माँगा—'आपसे मेरा स्वप्नमें भी कभी वियोग न हो और आप मुझपर कभी क्रोध न करें।'

श्रीहरिने कहा—'मैं जिसे भी छोटा या बड़ा बना दूँ, वह वैसा ही रहे। आप दोनों इसमें हस्तक्षेप न करें।'

स्कन्दने माँगा—'माताने मुझे जो शाप कह करके दिया है, मेरे लिए वही वरदान है। आप सब इसका समर्थन करें कि मेरा मन सदा तपस्यामें लगा रहे। कभी संसारके विषयोंमें मुझे मोह न हो।'

गणेशजीने माँगा—'संसारमें कहीं कोई काम हो, मेरी प्रथम पूजा करनेपर ही वह सिद्ध हो। मेरी कृपाके बिना किसीको कोई सिद्धि प्राप्त न हो।'

रावणने भी मांगा—'मेरा यह बिलावपना इसी क्षण निवृत्त हो जाय और वेदभाष्य करनेकी सामर्थ्य मुझमें बनी रहे। सदाशिवके चरणोंमें मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति हो।'

सबसे अन्तमें देवर्षिने प्रार्थना की—'कोई परम क्रोधी हो, या निष्क्रोधी हो, मूर्ख हो या विद्वान, सुर हो या असुर—सब मेरी बातोंपर विश्वास करें।'

सभी माँगे गये वरदानोंके समर्थक थे। किसी एकको भी एवमस्तु कहनेकी आवश्यकता नहीं थी।

उमा महेश्वरको दोनों पुत्रोंके साथ वहीं छोड़कर देवर्षि, रावण, श्रीहरि भी वहाँसे अपने स्थानको चले गये। तभीसे कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाका एक दिन अपने परिवारमें ही द्यूत-क्रीड़ाके लिए शास्त्रोंने उचित मान लिया। (सनत्कुमार संहिता)

—०—

गणेश-कार्तिक-विवाद

जगन्नियन्ताको जब कोई काम करना होता है, कभी-कभी बहुत अटपटा निमित्त उपस्थित करते हैं। विघ्नेश्वर और सेनापति—इनका कोई सामञ्जस्य नहीं है। इनके अधिदेवताओंका एकत्र रहना किसी भी तरह संगत नहीं हो सकता क्योंकि विघ्नकर्ताका स्वभाव तो उग्र अवश्य है, परन्तु पूजनके पश्चात् वे शान्त होकर सानुकूल हो जाते हैं। सेनापति दिये हुए कर्तव्यमें बाधा, विघ्न और परिवर्तन स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यक था कि शिवके दोनों कुमार पृथक् होकर रहें। गणेशके लिए देवता और असुर दोनों समान हैं। जो अग्रपूजा न करे, उसे वे क्षमा नहीं करते और अपने आराधकके सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश करते हैं। आराधक कौन और कैसा है, इस विवेचनमें नहीं पड़ते। उनकी अभिव्यक्ति ही असत्कर्मियोंके कर्ममें विघ्न डालनेके लिए हुई है। कुमार कार्तिकेय सुरोंके सेनापति हैं। देवताओंको विजयी बनाना और असुरोंका पराभव करना—यह उनका दायित्व है। अतः स्वाभाविक ही गणेशजीसे कभी भी उनकी प्रतिस्पर्धा हो सकती है। दोनोंको पृथक् करने वाली घटना बहुत साधारण है। उसे लीलामय शिवका संकल्प ही कहना होगा।

उमा-महेश्वरके दोनों पुत्र उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण आकार और युवावस्थाके समान वय वाले हो गये थे। माता-पिताके लिए पुत्र कभी युवा और वृद्ध नहीं होता और पुत्र भी माता-पिताके सम्मुख सदा ही शिशु रहता है। बहुत थोड़े काल तक (अवश्य ही यह काल हम मनुष्योंके लिए बहुत दीर्घकाल है, क्योंकि यह गणेश-कार्तिकेयके समान कारक-पुरुषोंका काल है, उनकी दृष्टिसे अल्प है) ये दोनों भाई साथ रहे। किसी प्रकार दोनोंको पता लगा, माता-पिता हमारे विवाहकी चर्चा करने लगे हैं। दोनोंने एक साथ उमा-महेश्वरसे प्रार्थना की—'पहले हमारा विवाह कर दो।'

'पहले मैं विवाह करूँगा।'—कुमार कार्तिकेयने अपना स्वत्व प्रकट किया—'मैं अग्रज हूँ।'

'पहले मैं विवाह करूँगा, मैं अग्रपूजा प्राप्त करता हूँ। समस्त कर्मोंमें मुझे प्रथम सम्मान प्राप्त होता है—यह सम्मान भी मुझे पहले मिलना चाहिए।' गणेशने अपना पक्ष प्रस्तुत किया।

दोनों कुमार इसके लिए प्रस्तुत नहीं थे कि दोनोंका एक साथ विवाह कर दिया जाय। दोनोंका हठ था कि दूसरेका विवाह उसके पश्चात् किया जाय।

'तू परिवेत्ता बनेगा !'—पार्वतीने हंसकर गणेशसे पूछा।

'अम्ब ! मेरे तो कोई अग्रज नहीं है।' गणेशने उत्तर दिया—'मैं तो केवल तुम्हारा पुत्र हूँ।'

बात ठीक है। कुमार कार्तिकेय भगवान शंकरके औरस पुत्र हैं, जगदम्बासे उनका सम्बन्ध केवल भावनात्मक है। वे पार्वतीको धर्ममाता कहते हैं। ठीक इसके विपरीत गणेशजी भगवान शंकरको धर्मपिता कहते हैं। उनका सम्बन्ध केवल जगदम्बासे है। अतः अग्रज और अनुजका सम्बन्ध ठीक-ठीक माना नहीं जा सकता। किसीके भी परिवेत्ता होनेका प्रश्न नहीं था। दोनोंमें से कोई दूसरेको अवसर देना नहीं चाहता था। वैसे भी कुमार कार्तिकेय और गणेशमें थोड़ी-बहुत खटपट चलती ही रहती थी। साम्बसदाशिवने दोनोंको बुलाकर कहा—'तुम दोनों हम दोनोंको समान प्रिय हो। दोनोंमें-से किसी विशेषके प्रति हमारा विशेष प्रेम नहीं है, अतएव जो पहले पृथ्वीकी परिक्रमा करके आवेगा, उसका विवाह पहले कर दिया जायगा।'

यह निर्णय कार्तिकेयको बहुत अनुकूल जान पड़ा। वे अपने मयूरपर बैठकर पृथ्वी-परिक्रमाके लिए चल पड़े। गणेशजी सोचने लगे—'इस स्पर्धामें वे बिना सम्मिलित हुए ही पराजित हैं।' कुछ खिन्न होकर वे बैठ गये।

'बुद्धिके देवता उदासीन क्यों हैं ?'—अचानक देवर्षि नारद आये। गणेशको खिन्न देखकर वे हँस पड़े—'ऐसी कोई समस्या नहीं हुआ करती जो बुद्धिसे सुलझायी न जा सके।' नारदजीको अवकाश कभी रहता नहीं है। वे सांकेतिक भाषामें बोलनेके अभ्यस्त हैं क्योंकि 'परोक्ष प्रिया हि देवाः।'

देवर्षि तो चले गये, किन्तु गणेशजीने अपने आप ही कहा—'बुद्धिसे न सुलझायी जा सके—ऐसी कोई समस्या नहीं है।' वे और गम्भीर हो

गये 'पृथ्वीकी परिक्रमा ? यह केवल शारीरिक प्रश्न नहीं है। देवर्षिने उनके वाहनको और उनके तुन्दिल शरीरको देखकर भी यह जो सूत्र दिया है—बुद्धि अवश्य इसका भी समाधान कर सकती है।' सहसा वे प्रसन्न हो उठे।

'मैं आप दोनोंको सिंहासनपर बैठाकर आप दोनोंकी पूजा करना चाहता हूँ।'—गणपतिने माता-पितासे हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

'आज क्या बात है ?' भगवती उमाने सहसा पूछा।

'आप पिताजीके समीप जाकर बैठिये। मुझे पूजा करनी है।'—गणेशने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया। भगवान् शंकरने भी इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। ध्यान देनेकी बात भी नहीं है। पुत्र यदि माता-पिताकी पूजा करना चाहता है तो इसमें कोई विशेष बात तो है नहीं। पार्वती भगवान् महेश्वरके वामपार्श्वमें बैठ गयीं। गणेशने दोनोंके पाद-प्रक्षालन किये। चन्दन, पुष्प आदिसे पूजन किया। फिर अपने मूषकपर बैठे और दोनोंकी सात परिक्रमा की। शिवने कहा—'तुम हमारी प्रदक्षिणा भी वाहनपर बैठकर कर रहे हो ?' किन्तु गणेशने उस समय उत्तर नहीं दिया।

'अब आप दोनों शीघ्र मेरा विवाह कर दें !'—गणेशने कहा।

'तुम भी पृथ्वी-प्रदक्षिणा करो। कार्तिकेय पहले ही चला गया, अब तुम्हारे सफल होनेकी आशा कम है, फिर भी प्रयत्न करो।'—भगवान शंकरने शान्त स्वरमें तटस्थतापूर्वक कह दिया !

'मैंने तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी सात परिक्रमाकी है।'

'कब ?'

'अभी।' अब गणेशने अपना तात्पर्य स्पष्ट किया—'क्या श्रुतिमें यह वचन नहीं है कि माता-पिताकी प्रदक्षिणा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके तुल्य है ? इनको छोड़ तीर्थ-यात्राके लिए जाना इनका अपमान नहीं है ? माता-पिता क्या सबसे बड़े तीर्थ नहीं हैं ? और क्या आप और मेरी ये माँ निखिल ब्रह्माण्ड स्वरूपा नहीं हैं ?'

शिवा और शिव दोनों प्रसन्न हो गये। भगवतीने स्मितपूर्वक भगवान शंकरकी ओर देखा—'गणेश मेरा पुत्र है।'

'देवि ! क्रियाके क्षेत्रसे सचमुच तुम्हारा ही प्रभुत्व है।' सदाशिवने गणेशसे कहा—'तुममें अपार बुद्धि है और बुद्धि ही महाबल है। देहबल

सदा ही बुद्धिबलका अनुगामी और दास है। निश्चय ही तुम्हारा विवाह प्रथम होना चाहिए।'

भगवान् शंकरके पुत्रको कन्या देनेमें कौन अपना सौभाग्य नहीं मानता ? विश्वकर्माने अपनी दोनों कन्याओं सिद्धि और बुद्धिका गणेशसे विवाह कर दिया। बड़े धूम-धामसे यह विवाह सम्पन्न हुआ। समस्त देवता इस विवाहमें सम्मिलित हुए। गणपतिको दो पुत्र प्राप्त हुए—सिद्धिसे क्षेम और बुद्धिसे लाभ।

सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा छोटा काम तो था नहीं। (भूलना नहीं चाहिए, शास्त्र हमारे इस वर्तमान भूमण्डलको ही पृथ्वी नहीं कहते हैं। आकाशमें आप जितने ग्रह-नक्षत्र देखते हो जिन-जिनमें पार्थिव तत्व हैं अर्थात् जहाँ भी मिट्टी है, वह सबका सब पृथ्वी ही है और पृथ्वी-परिक्रमाका अर्थ उस सबकी परिक्रमा है।) कुमार कार्तिकेय पृथ्वी-परिक्रमा करके लौटे तो पर्याप्त समय बीत चुका था। देवर्षि नारदने मार्गमें ही उन्हें उत्तेजित किया। क्योंकि देवर्षि नारद भगवान नारायणके मनके अवतार हैं, विश्वके सञ्चालक सृष्टिमें जो कुछ देखना चाहते है उसके लिए निमित्त उपस्थित करना देवर्षिको भली प्रकार आता है। गणपति और कार्तिकेय पृथक्-पृथक् रहें—विश्वके लिए यही मंगलमय विधान है, इसलिए देवर्षिने कुमारसे पूछा—'आयुष्मान्! तुम इतने श्रान्त, इतनी तीव्रतासे कहांसे लौट रहे हो ?'

कुमार—'पृथ्वी-परिक्रमा करने गया था।'

'क्यों ?'

'माता-पिताने व्यवस्था दी—तुम दोनों भाइयोंमें-से जो पहले पृथ्वी-परिक्रमा करके लौटेगा, उसका विवाह पहले किया जायगा।'

'शिवा-शिवने तुमको तो ठग लिया।'—देवर्षि खुलकर हँसे—'पृथ्वी-परिक्रमाका बहाना बनाकर तुम्हें उन्होंने दूर भेज दिया और गणेशका विवाह कर दिया। तुम सम्पूर्ण पार्थिव जगतमें भटकते फिरे और अब तो गणेशके दो पुत्र भी हो चुके हैं। मुझे तो नहीं लगता कि माता-पिताने तुम्हारे साथ यह अच्छा व्यवहार किया है।'

कुमार कार्तिकेयको क्रोध आ गया। वे उत्तेजित हो गये। उस उत्तेजनामें ही कैलाश आये। उन्होंने गणेशकी पत्नियों और पुत्रोंको देख

लिया। माता-पिताको प्रणाम किया—'आप दोनों अपने छोटे पुत्रको ही प्यार करते हैं— यह मुझे पहले ही कह देना चाहिए था।'

'ऐसा नहीं है।'—पार्वतीने समझानेका प्रयत्न किया—'तुम विश्राम करो और परिस्थितिसे मुख मत मोड़ो।'

'मैं यहाँ विश्राम नहीं करूँगा।'—कुमार कार्तिकेय आवेशमें ही फिर मयूरपर बैठे और कैलाससे विदा हो गये। वे दक्षिण भारतसे क्रौंच पर्वतपर चले गये।

कहा जाता है कि कुमारने भगवान शिवके द्वारा आविर्भूत भाषाका भी तिरस्कार कर दिया। उन्होंने संस्कृतकी उन्हीं धातुओंका दूसरा अर्थ आविष्कृत किया, वर्णमालासे भी दीर्घ ध्वन्यक्षरोंको त्याग दिया। इस प्रकार तमिलके अक्षर और भाषाका प्रादुर्भाव हुआ।

माता पार्वतीको पुत्रका इस प्रकार रूठकर जाना बहुत व्यथित कर रहा था। भगवान शंकरके साथ वे कार्तिकसे मिलने दक्षिण पधारीं, किन्तु उनके आनेका समाचार मिला तो कुमार उस पर्वतसे भी हटकर दूसरे पर्वतपर चले गये। अब वहाँ जानेसे वह और कहीं चला जायगा— इस आशंकासे वे दोनों एक साथ कुमारके पास नहीं गये। क्रौंच पर्वतपर ही उमा-महेश्वर मल्लिकार्जुनके रूपमें स्थित हुए। जिस पर्वतपर कार्तिकेय विराजमान हुए, वह वहाँसे १२ योजन दूर है। उसका नाम कुमारगिरि पड़ गया। अमावस्याको भगवान शंकर और पूर्णिमाको देवी पार्वती कार्तिकेयसे मिलने कुमार-गिरिपर पधारते हैं। अब भी इस प्रकारका उत्सव वहाँ मनाया जाता है। (शिवपुराण)

—×—

कल्पवृक्ष-वन

देवर्षि नारदको जगतमें और जगतके बाहर दिव्य लोकोंमें भी कुछ अद्भुत करते रहनेका व्यसन है। मन्दराचलपर वे उमा-महेश्वरका दर्शन करने पधारे। बिना पूछे ही उन्होंने भगवती पार्वतीसे कहा—'आज अमरावतीमें शचीने कल्पवृक्षसे बाँधकर इन्द्रका मुझे दान किया है।'

'इसका क्या फल होता है ?' उमाने पूछा। अभी तक देवीके मनमें कोई कुतूहल, कोई जिज्ञासा जगी नहीं थी।

'सर्वकामप्रद कल्पवृक्षके साथ पतिको दान करनेसे उसी पतिकी नित्यप्राप्ति स्वाभाविक है।' देवर्षिने कहा—'इस महादानका परिणाम कालके क्षेत्रमें सीमित नहीं किया जा सकता। शचीने इस प्रकार सदाके लिए इन्द्रका पत्नीत्व प्राप्त कर लिया है।'

'तुम्हारा कल्याण हो।' उमाने प्रफुल्ल होकर देवर्षिको आशीर्वाद दिया। 'इस दानके पश्चात् इन्द्रका और कल्पवृक्षका आपने क्या किया ? क्योंकि इस महादानको प्राप्त करके ये दोनों तो आपके हो गये थे।'

'जगदम्बिके ! मैं कल्पवृक्षका क्या करता ? वैसे ही मैं भटकता रहने वाला एकाकी हूँ। कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म, काम दे सकता है'—देवर्षिने कहा—'किसी दुर्भाग्यसे यदि इसमें-से कुछ पानेकी कामना मेरे मनमें उठ ही गयी, तब अपने इस अनुग्रहभाजनके लिए आप भुवनेश्वरी कभी कृपाकृपण नहीं होंगी—यह मुझे विश्वास है। इन्द्रका भी मैं क्या करता ? उस अमरावतीके महाभोगीको लेकर मैं उसके लिए अमृत और अप्सराएँ कहाँसे जुटाने बैठता। मैंने निष्क्रय लेकर कल्पवृक्ष और शक्र—दोनोंको ही शचीको अर्पण कर दिये।'

'इसका निष्क्रय ?' देवीने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा। अब उन्हें इस विवरणमें बहुत रुचि हो गयी थी। सचमुच यदि इस प्रकारके दानसे भगवान शशांकशेखरका नित्य पत्नीत्व सुनिश्चित हो जाता है तो यह दान उनके लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है, भले ही वे शिवकी शाश्वत, अभिन्न सहचरी हों। प्रकृतिके क्षेत्रमें धर्मकी विधिसे यदि सरलतापूर्वक कोई इस प्रकारका आश्वासन प्राप्त हो सकता है तो उसे क्यों न प्राप्त किया जाय।

'मुझ एकाकी कौपीन-वीणाधारीको कोई निष्क्रय भी क्या देगा ?' देवर्षिने खुलकर हँसते हुए कहा—'शचीने अञ्जलि बाँधकर मेरे चरणोंमें मस्तक रखा और सुरोंकी अधीश्वरीके द्वारा दिया गया यह प्रणिपात ही पर्याप्त निष्क्रय है।'

'आप अभी अमरावती चले जायँ। भगवती पार्वतीने देवर्षिसे कहा—'जाकर इन्द्रसे कहें— मुझे भी कल्पवृक्षके साथ अपने भूतनाथको दान करना है। अतः वे कल्पवृक्ष यहाँ भेज दें। आप उस सुरतरुको अपने साथ लेते आवें। इन्द्रसे कहिये, देवदेवेश्वर, निखिललोकमहेश्वर, सदाशिवने यह क्षीराब्धि सम्भव दिव्य तरु उनसे माँगा है।'

देवर्षि नारदने भगवान शंकरकी ओर देखा। सस्मित शिवने कहा—'देवर्षि ! पर्वतराजतनया मेरा अर्धांग है। उनकी वाणी मेरी ही वाणी है।'

नारदजीने इन्द्रको जाकर जब यह सन्देश दिया, देवराज अत्यन्त खिन्न हो गये। उन्होंने मस्तक झुका लिया। कुछ क्षण वे सोचते रहे। बद्धाञ्जलि बोले—'देवर्षि ! आप मुझपर दया कर सकते हैं। मुझे उपकृत कर सकते हैं। सुरतरु स्वर्गसे चला जाय तो स्वर्ग श्रीहीन हो जायगा। आप भगवान उमाकान्तसे मेरी ओरसे विनीत प्रार्थना करें, हलाहल पान करके सुरोंको उन नीलकण्ठने उपकृत किया, क्षीराब्धिसे जो कुछ निकला, वह उन प्रथमभोक्ताका उच्छिष्ट है। निर्माल्य पुनः उन्हें अर्पित करनेकी धृष्टता मैं नहीं कर सकता। वे सर्वसमर्थ मुझ सेवककी इस विवशताको, इस अविनयको क्षमा करें। कल्पवृक्ष उनकी कृपाका प्रसाद होकर अमरावतीमें रहे। इसके जानेसे अमरपुरी सर्वथा कण्टकवन बन जायगी। भगवान विश्वनाथ तो आत्माराम हैं, तपस्वी हैं, भस्म धारण करते हैं, विरक्त योगियोंके परमाश्रय हैं। कल्पवृक्षका उन्हें क्या करना ?'

देवर्षिने पुनः मन्दरपर पहुँचकर उमा-महेश्वरको शक्रका सन्देश सुना दिया। 'देवर्षिको कोई बात छिपाकर, बनाकर कहना नहीं आता। उन्होंने स्पष्ट कहा—'पुरन्दर आपसे भयभीत अवश्य है, किंतु वह बहुत लोलुप है। कल्पवृक्ष देनेकी बात सुन करके ही वह जैसे सूख गया था। किसी भी प्रकार वह सुरतरु देना नहीं चाहता है। वैसे आप कठोरतापूर्वक आदेश देंगे तो वह देनेको विवश तो है ही।'

भगवान शंकर हँसे—'देवताओंका अधिपति भी अज्ञ ही है।' देवीकी ओर उन्होंने देखा—'हम एक नन्हें क्षुपके लिए किसीसे याचना

क्यों करें ? किसीकी कृपाकी उपेक्षा क्यों करें ? किसीके साथ क्रूरता करके कुछ छीनें क्यों ? अथवा किसीको भीत करके कुछ देनेको विवश ही क्यों करें ? मैं तुम्हारे लिए कल्पवृक्षका पूरा कानन प्रकट करता हूँ, जिसका प्रत्येक वृक्ष सुरोंके इस उपेक्षणीय हीन तरुसे कहीं भव्य-समर्थ होगा। नन्दनका कल्पवृक्ष केवल त्रिवर्ग दे सकता है। देवि ! तुम्हारे काननका प्रत्येक वृक्ष प्राणियोंको परम पुरुषार्थ प्रदान करनेमें भी समर्थ होगा।'

'प्रभो ! आप त्रिभुवनकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, किंतु त्रिलोकीकी मर्यादा मिट जायगी, यदि ऐसा कल्पवृक्षकानन प्राणियोंके लिए सुगम हो जायगा।' देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'आप ऐसे काननको इस प्रकार प्रकट करें कि वह सुरोंके लिए भी अगम्य रहे। कल्पवृक्षकी आवश्यकता देवीको भी नहीं है, वे भी आपको उसके साथ दान करने मात्रके लिए उत्सुक हैं।'

'एवमस्तु !' भगवान आशुतोषने दृष्टि उठायी और मन्दरके अंकमें बहुत बड़ी, योजनविशाल महागुफा प्रकट हुई। सम्पूर्ण गुफामें स्वर्णिमकान्त, नित्य प्रफुल्ल, अकल्पनीय सुन्दर कल्पवृक्ष-कानन प्रकट हो गया। भगवान शिवके आदेशसे रुद्रके अत्युग्र गण उस काननकी रक्षा करने लगे। वह सुरापुर सबके लिए अगम्य हो गया।

देवीने देवर्षिकी ओर देखा, किन्तु देवर्षिने मस्तक झुका लिया। 'मातः ! मैं इस महादानको स्वीकार करनेका अधिकारी नहीं हूँ। भगवान भव मेरे अग्रज हैं, अनुज अपने अग्रजका दान नहीं ले सकता।'

तब तुम एक बार ब्रह्म लोक चले जाओ और मेरे स्वामीके जो अग्रज हैं, उन चारों कुमारोंको मेरी ओरसे प्रार्थना करके यह महादान लेनेको प्रस्तुत करो।' उमाने सविनय कहा—'उन्हें आमन्त्रित करो और साथ ले जाओ।'

देवर्षिके साथ चारों कुमार ब्रह्मलोकसे मन्दरपर उतरे। पूर्वपुरुषोंके भी पूर्वज, सृष्टिमें ब्रह्मासे उत्पन्न प्रथमाभिव्यक्ति, तेजोराशि चारों कुमार सदा दिगम्बर पाँच वर्षकी अवस्थाके शिशुके समान ही रहते हैं। भगवान विश्वनाथने उठकर इन कुमारोंको अंकमाला दी। पार्वतीने सादर मस्तक झुकाया। अर्घ्य, पाद्यादिसे इनका पूजन किया। प्रार्थना की—'आप कल्पवृक्षके साथ शिवको दान करनेकी मेरी आकांक्षा इस महादानको स्वीकार करके परिपूर्ण करें।'

'देवि ! ऐसा अनुपम दान अस्वीकार कौन करेगा ? महेश्वर महामुनियोंको भी अभीष्ट हैं ।' कुमारोंने कहा—'ऐसा कोई भी मुनि नहीं है जो शिवके इन चरणोंकी प्राप्ति-कामना न करता हो । यह आपकी कृपासे मिलता हो तो हमारे सब साधन सफल हो गये ।'

देवी अपने उल्लासमें थीं । उन्होंने कुमारोंकी उस वाणीका रहस्य समझनेका प्रयत्न नहीं किया । कुमार स्पष्ट ही कह रहे थे कि शिवकी प्राप्ति प्राणियोंका परम सौभाग्य है । अभिप्राय बहुत स्पष्ट है कि ऐसा परम सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो कोई भी कभी उसे लौटाना किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं करेगा । देवर्षिने अपनी वीणा बजानी प्रारम्भ कर दी । वे आनन्दसे नृत्य करने लगे—'अब सृष्टिका कुछ अकल्पनीय सौभाग्य बनेगा ।'

पार्वतीजीने भगवानशंकरके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया तो वे आनन्दघन नित्यविनोदप्रिय उठकर कल्पवृक्षके काननमें एक तरुके समीप उससे सटकर खड़े हो गये । देवीने अपने उत्तरीयसे ही उन्हें वृक्षसे बाँध दिया । त्रिभुवनके स्वामी शशांकशेखरके समीप आते ही वह दिव्य तरु इतना छोटा हो गया था कि उसकी उच्चतम शाखा भी उनके स्कन्धसे नीची ही थी । जिनके संकल्पसे यह सम्पूर्ण सुरतरुकानन प्रकट हुआ था, उस काननका कोई एक तरु शिवकी समता कैसे कर सकता था ? किसीको भी इस समय सुरतरुमें कोई रुचि नहीं थी । उसका आकार कैसा है और कैसा हो गया—इसपर किसीने ध्यान नहीं दिया । पर्वतराज-नन्दिनीने हाथमें जल लिया और संकल्प किया—'अहं उमा स्वपतिं शंकरं ब्रह्मपुत्राय सनकादि कुमाराय शिवस्य नित्यपत्नीत्व प्राप्त्यर्थे प्रददे ।

सनत्कुमारने आगे बढ़कर देवीके हाथसे वह संकल्प जल अपने करमें लिया । सनकने उत्तरीयमें बँधे नित्यमुक्त शिवको बन्धन-मुक्त किया । सनातन हँसकर बोले—'हर ! अब आप देवीके द्वारा हमको दिये हुए हो, हमारे हो, हमारे साथ चलो ।'

'आप निष्क्रय लेकर कल्पतरुको और मेरे स्वामीको मुझे प्रदान करें ।' उमाने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की ।

देवि ! ब्राह्मण और देवता अर्चा प्राप्त करके प्रसाद प्रदान किये बिना चले जायँ तो वे किसीके भी आराध्य नहीं रह जायँगे ।' सनन्दनने कहा—'अतः आप सुरतरुको हमारे प्रसाद रूपसे स्वीकार करें । हमको

इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु शिव हमको परमाभीष्ट हैं। यों भी आप देखती हैं हम अपरिग्रही, अनाकांक्षी चारों भाइयोंको कुछ चाहिए नहीं।'

'क्या ?' शैलाधिराजतनया व्याकुल हो गयीं 'आप मेरे स्वामीको मुझे प्रदान नहीं करेंगे ?' यह तो उन्होंने सोचा ही नहीं था। इतनी बड़ी विपत्ति इस विनोदमें आपतित होगी, किंचित् भी आशंका नहीं थी। देवीने देवर्षि नारदकी ओर देखा।

'आप सब शिवका क्या करेंगे ? देवर्षिने, अपने अग्रज कुमारोंसे सविनय कहा—'आप इन्हें कैलासपर छोड़ दें। यह विनोद अम्बिकाको बहुत आकुल कर रहा है।'

'दिगम्बर रुद्र हमारे आगे-आगे चलें।' सनत्कुमार हँसकर बोले—'हम शिशु हैं, हमारा नग्नत्व किसीका विनोद नहीं बनता, किन्तु शिव हमारे साथ नग्न चलेंगे तो जहाँ भी हम जायँगे, सबका विनोद होगा। सब प्रसन्न होंगे। त्रिभुवनको आनन्द-उल्लासके वितरणका अवसर हम छोड़ना नहीं चाहते।'

'आप मुझपर अनुग्रह करें। मेरे स्वामी को यदि आप यहाँसे ले जाते हैं तो मुझे आज्ञा दें कि आप सबके सामने ही इस शरीरका त्याग कर दूँ।' पार्वतीने अत्यन्त कातर कण्ठसे प्रार्थना की।

'हम जानते हैं, आप इसकी अभ्यस्त हैं। दक्षके यज्ञमें भी आपने इसी प्रकार देहत्याग किया था।' सनन्दन सस्मित कह रहे थे-'किन्तु देवि ! हम चारों ही जन्म और मृत्युको कोई महत्व नहीं देते। शरीर ही आप नष्ट कर सकती हैं, आपका अस्तित्व तो शाश्वत है, शिव शाश्वत हैं, किसी देह-त्यागसे कोई अन्तर नहीं आवेगा। हम केवल एक प्रकारसे शिवको आपको प्रदान कर सकते हैं। आप वचन दें—आप दोनों सदा हमारे रहेंगे, सानुकूल रहेंगे और आप महामायाकी हमपर नित्य अनुकम्पा रहेगी। हमारी बुद्धि और मनको आप कभी अव्यवस्थित नहीं होने देंगी। यही शिवका निष्क्रय है।'

'मैं उपकृत हुई। यह सब आपको नित्य प्राप्त है। आपने मुझपर अनुग्रह किया।' देवीने चारों कुमारोंकी पुनः अर्चा की। चारों कुमार देवर्षिके साथ मन्दराचलसे ब्रह्मलोक विदा हुए।   (पद्मपुराण)

काली-गौरी

शुम्भ और निशुम्भ—ये दोनों दैत्य सगे भाई थे। इन्होंने तपस्या करके ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया। ब्रह्माजी किसीको सर्वथा अमर होनेका वरदान तो दे नहीं सकते। उन्होंने इन दोनोंको वरदान दिया—'तुम दोनों सम्पूर्ण पुरुषोंसे अवध्य रहोगे, किन्तु किसी अयोनिजा पुरुष-स्पर्शसे अस्पृष्ट कुमारीसे उलझोगे तो वह तुम्हारा वध कर देगी।'

दोनों दैत्य वरदान पाकर उन्मादी हो गये। उनके उत्पातके कारण जगत वेद-पाठ, स्वधा और स्वाहा अर्थात् पितृतर्पण और यज्ञसे रहित हो गया। सृष्टिकर्ताने रुद्रसे प्रार्थना की—'इस असुरका वध तभी सम्भव है जब आप किसी प्रकार देवीको रुष्ट करें।'

मन्दराचलपर एकान्तमें बैठे हुए महेश्वरने उमाकी ओर देखा और उनको 'काली' कहकर हँसे। सहसा पार्वती रुष्ट हो गयीं—'आपको मेरा वर्ण प्रिय नहीं है तो अब तक आपने मुझसे क्यों नहीं कहा ? आप आत्माराम आप्तकाम कामारि हैं। स्त्री चाहे जितनी सुन्दर हो, किन्तु यदि उसके स्वामी उससे प्रसन्न न हों तो उसके सब गुण व्यर्थ हैं। मैं शरीरके इस वर्णका त्याग करूँगी अथवा प्राण-त्याग ही कर दूँगी। आप मुझे तप करके शरीरके वर्ण-परिवर्तनकी आज्ञा दें, क्योंकि पतिकी आज्ञाके बिना नारीका तप, व्रत, पुण्य व्यर्थ हो जाता है।'

'क्रीड़ा विलासकी बातको तुम इतनी महत्ता देती हो ? भगवान शंकरने सस्नेह समझाया—'व्यर्थ रोष मत करो। तुम मेरी नित्य शक्ति हो। दक्षके यहाँ तुमने देहत्याग किया था, उससे मुझे कितना क्लेश हुआ—यह तुम जानती हो। देहत्यागकी बात पुनः मत करो। न तुम मुझसे कामवश प्रेम करती हो, न मैं तुमसे कामवश प्रेम करता हूँ। कामको तो मैंने सामान्य लोगोंके निमित्त पैदा किया है। वह जब मेरा ही पराभव करने आया, मैंने उसे भस्म कर दिया। उसे तुम्हारे ही अनुरोधसे मैंने संजीवित किया। आज भी मैंने जगत् रक्षार्थ ही तुमसे अनुरोध किया है—क्रोधका त्याग करो—वह कार्य भी शीघ्र ही सम्मुख आ जायगा।'

पार्वतीके हृदयमें शिवके द्वारा उच्चरित 'काली' शब्द लग गया था। उन्होंने नेत्रोंमें आँसू भरकर महेश्वरके चरण पकड़े—'आप मुझे तप करनेकी आज्ञा दे दें, मैं इस काले वर्णका अवश्य त्याग करूँगी।'

'ऐसा ही है, तब भी तपस्याका प्रयोजन ? 'सदाशिवने समझाया—'तुम स्वेच्छासे भी देहका वर्ण परिवर्तित कर सकती हो। मैं सहज ही उसे परिवर्तित कर दे सकता हूँ।'

'मैं स्वयं कर दूँ तो वह मेरी कामरूप सिद्धि होकर रह जायगी।' देवीने यह बात स्वीकार नहीं की—'आप कर दो, वह भी मेरा किया हुआ ही है। आप मुझे आज्ञा दें। मैंने तपस्या करके सृष्टिकर्ताके वरदानसे ही आपको प्राप्त किया है। उन पद्मसम्भव ब्रह्माजीसे ही वरदान प्राप्तकर मैं गौरी बनूँगी।'

सदाशिव हँस पड़े—'वे पद्मसम्भव तुम्हारे या मेरे स्मरण करते ही उपस्थित हो सकते हैं, किंतु तुम्हें तपस्या ही करनी है तो करो। तप मुझे भी प्रिय है, मेरा भी व्यसन है, अतः तुम तपस्या करो, इसमें मुझे आपत्ति नहीं है।'

देवी मन्दराचलसे हिमाचलपर चली गयीं। गंगाके उद्गमके समीप उसी तपोवनमें जहाँ भगवान् शंकरने सतीके देहत्यागके पश्चात् तप किया था, जहाँ शिवकी प्राप्तिके लिए स्वयं उमाने तप किया था, वहीं तपस्याका निश्चय किया। माता-पितासे भी उन्होंने तपस्याकी आज्ञा ली। आभूषण उतार दिये। तपस्विनीका वेष धारण किया। शिवके चरणोंमें अखण्ड मन लगाकर तपोलीन हो गयीं। वे पहले भी अत्यन्त कठिन तप कर चुकी थीं। तपस्या उनके लिए सहज थी। उनकी कठोरतम तपस्याका वर्णन अनावश्यक है।

जब देवी पार्वती तपोनिरता थीं, एक दिन एक महाव्याघ्र वहाँ आया। जब वह देवीके समीप पहुँचा, उसका शरीर स्तम्भित हो गया। व्याघ्र अत्यन्त क्षुधार्दित था, किन्तु हिलनेमें भी असमर्थ था। वह क्षुधा-पीड़ित व्याघ्र उमाकी ओर देख रहा था, किन्तु अंगस्तम्भनसे हिलनेमें भी असमर्थ था। भगवतीको देखकर उसका हिंसाका भाव दूर हो गया।

देवीने भी उसपर कृपादृष्टि की, उसकी क्षुधा विदा हो गयी। वह वहीं रहने लगा और देवीकी अपनी समझसे सुरक्षाकी सावधानी रखने लगा।

उमाकी कठोर तपस्यासे विचलित होकर हंसवाहन ब्रह्माजी पधारे। पार्वतीने उनकी वन्दना की, अर्घ्य, पाद्यादि देकर उनका पूजन किया। चतुर्मुख ब्रह्मा बोले—'आप कठिन तप क्यों कर रही हैं? समस्त फल, समस्त सिद्धियाँ तो सब प्राणी आपके स्मरणसे प्राप्त कर लेते हैं। आपको तो कुछ दुर्लभ नहीं है।'

'आप जगतके सृष्टा हैं। मेरे पिता हिमालय आपके पुत्र हैं, अतः आप मेरे पितामह हैं।' — देवीने अञ्जलि बाँधकर कहा—'मैं अपने शरीरकी कृष्णतासे छूटकर गौरी होना चाहती हूँ।'

'देवि! आप स्वयं यह कर सकतीं थीं, किंतु आपकी यह लीला भी हम सबके हितार्थ ही है। देहके इस वर्णका त्यागकर आप गौरी हो जायँ।'

पार्वतीने उस त्वचाका त्याग कर दिया। वे गौरी हो गयीं। उस त्यक्त त्वचा रूपी कोषसे काले मेघके समान वर्णा कौशिकी नामकी कालीका प्रादुर्भाव हुआ। वे अष्टभुजा-शंख, चक्र, त्रिशूल, वाण, मुसल, घण्टा, हल, धनुष कर-त्रिनेत्रा चन्द्रमौलि, पुरुष, स्पर्शहीना, महासुन्दरी थीं। उन्हींने शम्भु-निशुम्भका वध किया। पार्वतीको प्रणाम करके गौरी विन्ध्याचल चली गयीं।

उमाने उस महाव्याघ्रको, जो तपोवनमें उनकी रक्षा कर रहा था, अपने वाहनके रूपमें स्वीकार कर लिया। भगवान् ब्रह्मासे अनुमति लेकर वे शिवके समीप आयीं। सदाशिवको वह व्याघ्र दिखलाकर बोलीं—'मैं यह उपहार लायी हूँ, यह मेरा प्रिय है।'

'तुम्हारा प्रिय है, इसलिए मेरा भी प्रिय है। अबसे यह भी गणेश्वर हुआ।' शिवने उस व्याघ्रका नामकरण किया—'यह सोमनन्दी कहा जायगा।' (शिवपुराण)

द्वितीय कथा—दारुक नामका असुर बड़ा पराक्रमी था। स्वभावसे ही देव-विप्र-वेद विरोधी था। कालाग्निके समान ब्राह्मणोंको और देवताओंको मारता था। केवल स्त्री ही उसका वध कर सकती थी। ब्रह्मा, यम, इन्द्रो आदिने स्त्रीका रूप धारण करके भी उससे युद्ध किया, किन्तु सब हार

गये। देवताओंके इस कृत्रिम रूपसे वह मारा नहीं जा सकता था। ब्रह्मा-विष्णु आदि सब भगवान् शङ्करके पास गये। उन्होंने अपना दुःख निवेदन किया—'देव ! वह केवल स्त्रीवध्य है।'

'देवि ! मैं इन आर्त शरणागतोंके रक्षार्थ आपसे प्रार्थना करता हूँ।' शिवने गिरिजाकी ओर देखा—'क्योंकि वह स्त्री-वध्य है, आप उसे मार डालें।'

महेश्वरकी यह बात सुनकर देवीने अपने षोडशांशसे उनके शरीरमें ही प्रवेश किया। शिवके कण्ठमें पहुँचकर वहाँ स्थित महाविष हलाहलसे उन्होंने अपनी एकता स्थापित की, फिर वे शिवके शरीरसे कालकण्ठी, कपर्दिनी कालीके रूपमें प्रकट हुई। उन महाविशालाकृता, अत्यन्त काले कण्ठवाली, अग्निके समान प्रज्वलित कालीको देखकर ब्रह्मादि देवता भी भयसे भागने लगे। वे त्रिनेत्रा, चन्द्रमौलि, कराल-त्रिशूलधरा नृत्य करने लगीं, इससे उनके शरीरसे अनेक योगिनियाँ और पिशाच उत्पन्न हुए।

कालीके प्रकट होनेसे पार्वतीका शरीर गोरा हो गया। पार्वतीने आज्ञा दी—'दारुकको मार दो।'

कालीकी क्रोधाग्निमें दारुक भस्म हो गया, किन्तु वे प्रलयङ्कारी सम्पूर्ण जगत्को मानो भस्म कर देंगी इस प्रकार नृत्य कर रही थीं। उनके क्रोधकी शान्ति कहीं दीखती नहीं थी। काशीके महाश्मशानमें वे उद्दाम ताण्डवमें निरत थीं। देवताओंने फिर सदाशिवकी शरण ली। भगवान भूतनाथ भूत-प्रेतोंसे घिरे हुए काशीके श्मशानमें पहुँचे और शिशु रूप रखकर भूमिमें पड़कर रुदन करने लगे। वे कालीकी क्रोधाग्निका पान कर लेना चाहते थे।

भुवन सुन्दर ईशानको शिशु रूपमें रुदन करते देखकर कालीमें वात्सल्यका जागरण हुआ। उसने शिशुको अङ्कमें उठा लिया, सिर सूँघा और अपना स्तनाग्र उसके मुखमें दे दिया। दूधके साथ रुद्रने उसके क्रोधका पान कर लिया।

शिवका यह बालरूप क्षेत्रपाल हो गया। वह समस्त क्षेत्रोंका रक्षक है। इस क्षेत्रपालकी आठ मूर्तियाँ हैं। कालीको प्रसन्न करनेके लिए संध्याके समय महेश्वरने ताण्डव नृत्य किया। भूत-प्रेतोंके साथ कालीने भी उनके

साथ नृत्यमें योग दिया। देवताओंने स्तवन किया। क्षेत्रपालकी अष्टमूर्तियाँ, उनकी शक्तियाँ और पुत्रोंके साथ इस प्रकार हैं—

(१) चराचर इनका क्षेत्र है। ये धाताविश्वम्भर कहे जाते हैं। इनकी पत्नीका नाम है विकेशी। इनके पुत्र हैं अङ्गारक (मङ्गल)
(२) भव—ये सलिलात्मक हैं। पत्नी हैं उमा और पुत्र हैं शुक्र।
(३) पशुपति– ये अग्न्यात्मक हैं। पत्नी हैं स्वधा और और पुत्र हैं षण्मुख ।
(४) ईशान—ये पवनात्मक हैं। पत्नी हैं शिवा और पुत्र हैं मनोजव (हनुमान)।
(५) भीम—ये व्योमात्मक हैं। पत्नी हैं दिक् और पुत्र हैं सर्ग (सम्पूर्ण सृष्टि)।
(६) रुद्र—ये सूर्यात्मक हैं। पत्नी हैं सुवर्चला और पुत्र हैं शनिश्चर।
(७) महादेव—ये सोमात्मक हैं। पत्नी हैं रोहिणी और पुत्र हैं बुध।
(८) ये यजमानात्मक (आत्मा) हैं। पत्नी हैं दीक्षा और पुत्र हैं समस्त सन्तति मात्र।

—××—

नर्मदेश्वर शिवलिंग

देवी पार्वतीको अपने काले वर्णसे अरुचि हो गयी क्योंकि भगवान शङ्करने उनको परिहासमें काली कह दिया था । वर्ण-परिवर्तनके लिए वे सदाशिवका आदेश लेकर तपस्या करने लगीं। उनके तपोनिरत होनेपर शङ्कर पृथ्वीपर विचरण करने लगे।

एक दिन वे स्नान करनेके लिए यमुनामें उतरे । उनके तेजसे यमुनाका जल काला पड़ गया । यमुना अपने दिव्य आधिदैवत रूपमें प्रकट हुई। उन्होंने महेश्वरकी स्तुति की—'आपके अनुग्रहसे मैं धन्य हुई। आपके स्पर्शसे मेरा जल परम पावन हो गया। आप मुझपर प्रसन्न हों।

जहाँपर यमुनामें शंकरजीने स्नान किया था, वह स्थान हरतीर्थ कहा जाता है। वह परम पवित्र हो गया। शिव वहाँसे तिरोहित हो गये।

परम मनोहर रूपमें भगवान शंकर यमुना-तटपर ही फिर प्रकट हो गये। वे करमें डमरू लिए हुए थे। त्रिपुण्ड लगाये हुए थे। जटाएँ बढ़ी हुई थीं। दिगम्बर थे। स्वेच्छानुसार घूमते और नृत्य करते थे। कभी हँसते थे, कभी क्रोध प्रकट करते थे, कभी चुप हो जाते थे। वे इसी रूपमें मुनियोंके आश्रमोंमें घूमने लगे। उनके भुवन-सुन्दर रूपपर मुग्ध होकर बहुत-सी मुनि-पत्नियाँ उनके साथ-साथ चलने लगीं। इससे मुनियोंको क्रोध आया। उन्होंने शिवको पहचाना नहीं था। क्रोधमें शाप दे दिया— 'तुम इस प्रकार नग्न घूमते हो, सती स्त्रियोंमें भी कामका संचार कर रहे हो, अतः लिंग रूप हो जाओ।'

शिव वहाँसे अदृश्य हो गये। फिर अमरकण्टक पर्वतपर जाकर लिंग रूपमें प्रकट हुए। उन्हींसे, उनकी जटासे पीछे नर्मदा प्रकट हुईं। इसलिए नर्मदामें जितने भी शिवलिंग हैं वे सब शिवस्वरूप ही हैं।

(स्कन्द पुराण)

इसी पुराणमें भगवान शंकरके इस लिंग रूप धारणका एक और कारण निर्दिष्ट किया गया है। ऋषियोंका यह शाप भी देवी पार्वतीके पहले दिये गये शापकी ही अभिव्यक्ति थी।

एक बार मन्दराचलपर भगवान नारायण पधारे। सब देवता भी वहाँ एकत्र हुए, किन्तु भगवान शिव और विष्णु परस्पर मिलकर इतने प्रेम विभोर हुए कि उन्हें सब कुछ भूल गया। वे आपसमें ही इतने तल्लीन हो गये कि दोनोंमें-से किसीको भी उमाका ध्यान ही नहीं रहा। बहुत देर तक देवी पार्वतीने प्रतीक्षाकी– दोनोंमें-से कोई उनकी ओर ध्यान देगा। वे दोनोंका ही सत्कार करना चाहती थीं। उन्हें अर्घ्य पाद्यादि देना चाहती थीं, भोजन करवाना चाहती थीं, किन्तु दोनोमें-से कोई उनकी ओर या देवताओंकी ओर देख ही नहीं रहा था। इससे रुष्ट हो करके देवीने शाप दिया—'तुम दोनों मर्त्यलोकमें शिला रूप धारण करो क्योंकि पाषाणके समान ही तुम दोनों मेरी उपेक्षा कर रहे हो।'

भगवान शंकर हँसे —'पर्वतराजकी पुत्रीको अपना पति भी शिला-स्वरूप ही प्रिय है—यह स्वाभाविक है।'

भगवान विष्णुने कहा—'जगदम्बिके ! आप मुझपर प्रसन्न हों। भगवान महेश्वरके प्रेमके कारण मैं सबको और अपने आपको भी भूल गया था।'

देवी—'शिला होकर भी आप दोनों जगत पावन होंगे, सबके पूज्य होंगे। आप नारायणी (गण्डकी) से शिला स्वरूप धारण करेंगे और स्वामी भी वाण लिंगके रूपमें पृथ्वीपर पधारेंगे। इनसे जगतके प्राणियोंका कल्याण होगा।'

भगवान विष्णुने अञ्जलि बाँधी—'जगदम्बाको जगतके प्राणियोंके कल्याणकी चिन्ता हो—यह सर्वथा उचित ही है।'

कपाल-मोचन

अन्तःकरणके चार भेद शास्त्रसम्मत हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहं-कार। व्यष्टिमें भी और समष्टिमें भी इनके यही रूप होते हैं। मन संकल्पात्मक, भावनात्मक, बुद्धि विचारात्मक, निर्णयात्मक, चित्त इन्द्रियों द्वारा प्राप्त और मन द्वारा भावित, बुद्धि द्वारा निर्णीत संस्कारोंका संग्रह है और अहम् व्यक्तिकी अपनी सत्ता। समष्टिके स्रष्टामें यह विकृति रहे, यह आवश्यक है, किन्तु अन्तःकरणात्मक हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा, इनके जो चार मुख हैं, ये नित्य रहते हैं। किन्तु जैसे व्यक्तिके मनके दो भेद हो जाते हैं—अन्तर्मन और बहिर्मन और अन्तर्मनमें ग्रन्थियाँ बन जाती हैं, वैसे ही समष्टिके संचालकके अन्तर्मनमें भी पूर्वकल्पके संस्कारोंके कारण अपमान-मूलक कुण्ठा ग्रन्थियाँ होती हैं - यही उसका पंचम सिर है। अहंमें व्यक्तित्व बोध द्वशु

है, किन्तु यह व्यक्तित्व बोध जब अपनेको स्रष्टात्मक माननेकी ओर प्रवृत् होता है, विकृत हो जाता है। सृष्टिकर्ताके इस विकारको कौन दूर करेगा ? जो प्रलयके अधिदेवता हैं, सृजनके मूल आधारमें आयी विकृतिको वही दूर कर सकते हैं। सम्पूर्ण कथाका आधिदैविक तात्पर्य इसीमें है।

सुमेरुके शिखरपर इन्द्रादि सभी देवता और महर्षिगण ब्रह्माजीके पास उपस्थित थे। ऋषिगण जिज्ञासा लेकर आये थे। अभी सृष्टिका विस्तार नहीं हुआ था, इसलिये सृष्टिकर्ता सामान्यतः जितने व्यस्त होते हैं उतने व्तस्त नहीं थे। ऋषियोंने स्वयंभूकी स्तुति की। प्रश्न किया—'एक अविनाशी सर्वश्रेष्ठ तत्व क्या है ?'

'मैं ही वह तत्व हूँ'—ब्रह्माने उत्तर दिया—'सृष्टि, स्थिति, संहारका कारण स्वयंभू, अज, अविनाशी, सर्वभोक्ता, निरंजन मैं ही हूँ। मुझसे परे कोई तत्व नहीं है।'

अकस्मात् ही भगवान् विष्णु उसी समय वहाँ गरुड़से उतरे। उन्होंने कुछ क्रोधसे तिरस्कारपूर्वक हँसते हुए कहा—'आपको यह अहं शोभा नहीं देता। यह अज्ञता आपके उपयुक्त नहीं है। आप मेरे आदेशसे ही सृष्टि करते हैं, मेरे आधारपर ही त्रिभुवनकी स्थिति है।'

जब ब्रह्मा और विष्णुमें विवाद होने लगा, दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है, तब दोनोंने ही निर्णय किया—'सर्वत्र वेद ही प्रमाण हैं. अतः वेदोंके द्वारा ही निर्णय किया जाना चाहिए।'

ब्रह्मलोकमें वेद (वेदोंके अधिदेवता) मूर्तिमान उपस्थित रहते हैं। उनसे पूछा गया। 'सम्पूण भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, जिसमें स्थित हैं, जिसमें लीन हो जाते हैं, जिसमें सब प्रवृत्त होते हैं वही परम तत्व है, वहीं रुद्र हैं।' वेदोंने अपनी यह सम्मति सूचित कर दी।

यह मत ब्रह्मा और विष्णु दोनोंको ही स्वीकार नहीं था और जब वेदोंका मत स्वीकृत न हो, स्वभावतः ही बुद्धि भ्रान्त हो जायगी, तर्कके अंधकारमें डूब जायगी, क्योंकि केवल बौद्धिक-तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। श्रुतिको छोड़कर उसे प्रकाश प्राप्त नहीं हो सकता। सहसा ब्रह्मलोकमें

अन्धकार फैल गया। अब विष्णुने अपनेको संयत किया। ध्यान करने लगे। सत्वका अधिष्ठाता अपनेमें स्थित हो तो परम तत्व उसका अपना ही स्वरूप है। वहाँपर प्रणवको परावाणी गूंजी। उसमे फिर शब्द व्यक्त हुआ—'परमेश्वर सदाशिव स्वयं सनातन ज्योतिस्वरूप हैं। उनकी अनन्त-रूपा (आह्लादिनी) शक्ति नित्य हैं।'

इसी समय ब्रह्मा और विष्णुके मध्य एक महा ज्योति प्रकट हुई। उस ज्योतिके मध्य अत्यन्त अद्भुत पुरुष व्यक्त हुआ। उसे देखकर ब्रह्माका पंचम मुख क्रोधसे लाल हो उठा—'हम दोनोंके मध्य यह पुरुषाकार कौन ?'

अब तक ज्योतिके भीतर वह पुरुषाकृति अस्पष्ट थी, अब वह स्पष्ट हो गयी। नीललोहित, त्रिलोचन, शूलहस्त, अहिभूषण, चन्द्रमौलि शिव प्रकट हो गये।

ब्रह्माके पाँचवें सिरने तिरस्कारपूर्वक कहा 'नील लोहित ! तुम्हें तो मैं जानता हूँ। तुम मेरे भ्रूमध्यसे प्रकट हुए हो। तुम्हारे रुदनपर मैंने ही तुम्हारा नाम रुद्र रखा है। तुम्हें मेरी शरण लेनी चाहिए। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

सृष्टिकर्ताका यह उद्धत अहंकार यदि छोड़ दिया जाय, उनके सम्पूर्ण सृजनमें अहंका प्राधान्य हो जायगा। जीवोंके लिए मोक्षका मार्ग ही अवरुद्ध हो जायगा। जो प्रलयका कर्ता है, आवागमनकी अनन्त सृष्टिका प्रलय भी उसीको करना है, इसलिए प्राणियोंके परम कल्याणके लिए महेश्वरने स्रष्टाके इस अहंकारी मुखको नष्ट करना ही उचित माना। उन्हें किञ्चित् क्रोध आया और वह क्रोध उनके शरीरसे एक पुरुष बनकर प्रकट हुआ। रुद्रने उस पुरुषसे कहा—'कालभैरव ! तुम्हारा नाम कालराज हुआ। इस पद्मसम्भवका शासन करो। तुम रुष्ट होकर दुरात्माओंको नष्ट करनेमें समर्थ हो, इसलिए तुम्हारा एक नाम आमर्दव्य रहेगा। प्रलयंकर होनेसे तुम भैरव हो। भक्तोंका पाप तत्काल नाश करोगे, इसलिए तुमको पाप-भक्षण भी कहा जायगा। मेरी मोक्षदायिनी पुरी वाराणसीका नगराधिपत्य तुमको प्राप्त रहेगा। जो कोई भी वहाँ पाप करेगा, उसके दण्ड दाता तुम्हीं रहोगे।'

वरदान पाकर भैरवने अपने नखाग्र से ब्रह्माका पञ्चम मुख नोच लिया। उग्रकर्मा, प्रचण्डप्रताप भैरवके इस कृत्यसे ब्रह्मा डरकर शिव मन्त्र-

का जप करने लगे। विष्णुने शंकरकी स्तुति प्रारम्भ की। शिवने दोनोंको अभयदान दिया--'मा भैः--डरो मत।'

कर्म कोई भी प्रतिक्रियाहीन नहीं होता। कितने भी सदुद्देश्यसे जब उग्र कर्म किया जायगा, तो उसकी प्रतिक्रिया उग्र और उत्पीड़क ही होगी। ब्रह्माके सिरश्छेदनके साथ शिवसे ब्रह्म-हत्या उत्पन्न हुई और वह विकराल वेशवाली उन्मुक्तकेशा, शुष्कांगा कन्या भैरवके समीप जाकर खड़ी हो गयी। ब्रह्माका कटा हुआ मस्तक भैरवके हाथ में अब भी चिपका हुआ था। भैरवने शिवकी ओर देखा।

'तुम ब्रह्माके इस कपालको धारण करो।' रुद्रने कहा—'जब तक यह कन्या वाराणसी पहुँचे, तब तक भयंकर रूप धारण कर इसके आगे-आगे चलते जाओ। वाराणसी पहुँचकर इस कन्यासे कह देना--'इस अविमुक्त धामको छोड़कर सर्वत्र तेरा प्रवेश रहेगा। इस काशीपुरीमें प्रवेश करेगी तब तेरी भी मुक्ति हो जायगी।'

काल भैरव हाथमें ब्रह्माका कपाल लेकर तीनों लोकोंमें घूमते फिरे। ब्रह्म-हत्याने कहीं भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। कहीं भी उसके कारण वे न रुक पाते थे, न बैठ पाते थे, न विश्राम कर पाते थे। सब तीर्थोंमें घूम आये किन्तु वह अपने शरीरसे दुर्गन्ध बिखेरती, रक्त और पीपसे लथपथ वस्त्र पहने कालभैरवके पीछे लगी रही। त्रिनेत्र सर्पोंका कुण्डल बनाकर भैरव घूमते हुए रमा बैकुण्ठ पहुँचे। विष्णुने उनका स्वागत किया—'मेरा परम सौभाग्य कि आपने अपने पदार्पणसे मेरे इस धामको पवित्र किया। आपका यह भ्रमण क्यों? सर्वेश होकर भी आप भिक्षाटन क्यों कर रहे हैं?'

'नखाग्रसे ब्रह्माका सिर काटा था, उसके प्रायश्चित्तके लिए भिक्षाटन कर रहा हूँ!' कालभैरवने हँसकर कहा--'आप देख ही रहे हैं, यह कंकालिनी मेरे पीछे पड़ी है।'

'आप मुझे तो मायामोहित करो मत। इस लीलाका त्याग कर दो।' विष्णुने कहा--'देवदेव महादेव, आप स्वयं ही हो। जब आप प्रलय करेंगे तब आपको कोई हत्या लगेगी? ठीक है कि आपके कण्ठमें ब्रह्माके कपाल-

की अवशिष्ट हड्डियोंकी माला है, आपके करमें कपाल चिपका है, ब्रह्म-हत्या आपके पीछे लगी है, किन्तु सब पाप तो आपके स्मरणसे नष्ट हो जाते हैं।'

इसी समय महालक्ष्मीने भैरवको भिक्षा अर्पित की। वे वहाँसे चलने लगे तब विष्णुने ब्रह्म-हत्यासे कहा—'तू इनका पीछा छोड़ दे।'

'मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन करने में असमर्थ हूँ।' अञ्जलि बाँध-कर ब्रह्म-हत्याने उत्तर दिया—'किन्तु इसी प्रकार मैं इनकी सेवा कर रही हूँ। इनके दर्शनसे हो मेरी मुक्ति होनी है।'

भगवान् विष्णु मौन हो गये। भैरव भी प्रसन्न हुए और वहाँसे वाराणसी चले आये। जैसे ही उन्होंने वाराणसीकी सीमामें प्रवेश किया, हाहाकार करती ब्रह्म-हत्या पातालमें प्रवेश कर गयी। हाथमें चिपका हुआ ब्रह्माका सिर जो किसी भी प्रयत्नसे अब तक फेंका नहीं जा सकता था, स्वयं ही छूट करके पृथ्वीपर गिर पड़ा। जहाँपर काशीमें यह कपाल भैरवके हाथसे छूटकर गिरा उस स्थानपर कपाल-मोचन तीर्थ प्रकट हुआ।

(शिवपुराण)

द्वितीय कथा—

सृष्टिके आरम्भमें पद्मसम्भवने जब अपने भ्रूमध्यसे नीललोहित पिंगाक्ष रुद्रको उत्पन्न किया, तब अपने इस पुत्रको स्नेहवश उन्होंने अपने कंधेपर बैठा लिया। सृष्टिकी प्रथम अभिव्यक्ति ब्रह्मा थे, दूसरी अभिव्यक्ति सनत्कुमार और ये रुद्र तीसरी अभिव्यक्ति थे। रुद्र जब ब्रह्माके कंधेपर बैठ गये, ब्रह्माके पञ्चम मुखने अथर्ववेदके मन्त्रसे उनकी स्तुति प्रारम्भ की क्योंकि यह तत्काल रुद्रके भयसे छुड़ाने वाला था—

कपालिन् रुद्र बभ्रोऽथ भव कैरात सुव्रत।
पाहि विश्वं विशालाक्ष कुमार वर विक्रम॥

(वाराहपुराण, ९७. ४)

'कपालिन्, रुद्र, बभ्रु, भव, कैरात, सुव्रत, श्रेष्ठविक्रम, विशालाक्ष, कुमार विश्वकी रक्षा करो।'

इस स्तुतिमें रुद्रके वे नाम थे जो आगे पड़ने वाले थे। इसमें-से पहला नाम 'कपालिन्' सुनकर रुद्रको क्रोध आ गया, क्योंकि किसीको भी कपालिन् कहना, यह प्रशंसात्मक नहीं, निन्दात्मक ही हो सकता था। रुद्रने अपने बाएँ हाथके अंगुष्ठ नखसे ब्रह्माका पाँचवा सिर काट लिया। कटनेसे वह सिर रुद्रके वाम करमें चिपक गया। उसे फेंकनेके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। इससे चकित होकर त्रिलोचन रुद्रने ब्रह्मासे पूछा—'देव! यह कपाल मेरे हाथसे कैसे छूटेगा? मानता हूँ, मुझसे यह पाप हुआ, किन्तु इसका प्रायश्चित्त? यह कैसे नष्ट होगा?

'तुम इस कपालको लेकर कापालिक व्रत करते हुए तीर्थ यात्रा करो।'—प्रजापति ब्रह्माने प्रायश्चित्त विधान किया।

ब्रह्मलोकसे रुद्र पृथ्वीपर महेन्द्र पर्वतपर आये। वहाँ उन्होंने पापनाशन तीर्थमें स्नान करके ब्रह्माके उस कपालके तीन टुकड़े किये। उसके केशको लेकर उन्होंने यज्ञोपवीत बनाया। उसकी आँखोंको अपने कण्ठमें मणिकी भाँति पहना। इसीसे आगे रुद्राक्षकी उत्पत्ति हुई। रक्तसे भरा हुआ कपाल उनके हाथमें रहा। कपालका एक खण्ड उन्होंने अपनी जटामें लगाया। इस वेषमें वे तीर्थोंमें घूमते रहे। वस्त्रके नामपर उनके शरीरपर केवल कौपीन था। कटि मेखला क्षीण होकर टूट जानेसे वह कौपीन भी गिर गया। वे नग्न ही तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे। समुद्र स्नान करके गंगा, सरस्वती, यमुना, शतद्रू आदि नदियोंमें स्नान करते घूमते रहे। नेपालमें रुद्रमहालय (मुक्तिनाथ), हिमालयमें केदारनाथ, भारतके प्रायः तीर्थ वे अनेक वर्षों तक घूमते रहे। इस यात्रामें जब १२ वर्ष पूर्ण हो गये, वे वाराणसी आये। जब वे वहाँ गंगास्नान करने जाने लगे, गंगा-तटपर पहुँचनेसे पूर्व ही वह कपाल उनके हाथसे छूटकर गिर गया। वह स्थान कपालमोचन तीर्थ है जो मनुष्यको ब्रह्म हत्याके पापसे छुटकारा देता है।

इसी समय ब्रह्माजी वहाँ पधारे। उन्होंने रुद्रकी स्तुति की। आपका यह भ्रमण-तीर्थाटन लोकसंग्रहके लिए—लोकमंगलार्थ हुआ। अबसे आपका यह व्रत पृथ्वीपर नग्नकापालिक व्रत कहा जायगा।

(वाराह पुराण)

★

दण्डपाणि भैरव

गन्धमादन पर्वतपर रावभद्र नामका एक धर्मात्मा यक्ष रहता था। रामभद्र परम शिवभक्त था। उसकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्र गुणभद्रको युवा होनेपर भी सन्तानकी प्राप्ति नहीं हुई। उसने पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे भगवान् शंकरकी आराधना प्रारम्भ की। दीर्घकालकी आराधनाके पश्चात् शिवकी कृपासे उसे पुत्रकी प्राप्ति हुई। बालकका नाम हरिकेश रखा।

बालक हरिकेश भगवान् शंकरकी आराधनासे उत्पन्न हुआ था। वह जन्मजात परम शैव था। आठ वर्षकी आयु होनेपर खेलमें भी वह धूलिका शिवलिंग निर्मित करता और घास-पत्ते इकट्ठा करके उससे उनका पूजन करता था। उस बालकने अपने साथ खेलनेवाले बालकोंका स्वयं ही नाम-करण कर लिया था। उनके माता-पिताने उनका क्या नाम रखा था, बालक न इसको सुनता था, न इसपर ध्यान देता था। वह तो उनमें-से किसीको चन्द्रशेखर, किसीको श्रीकण्ठ, किसीको नीलकण्ठ, किसीको धूर्जटि आदि शिवके नामोंसे ही पुकारता और जानता था। निरन्तर शिव नामका ही जप करता था। शंकरजीके मन्दिरके अतिरिक्त और कहीं भी जाना उसे प्रिय नहीं था। बालक घरसे कहीं चला गया है तो माता-पिता जानते थे कि वह शिव-मन्दिर ही गया होगा। भगवान शंकरको निवेदन किये बिना उसे जल भी पिलाया नहीं जा सकता था। सर्वत्र शिवको देखना उसका जन्मजात स्वभाव था। किसी भी निमित्तके उपस्थित होनेपर उसे शंकरका स्मरण होता था। जैसे जलधारा देखकर वह सहसा गंगाधर-गंगाधर बोलने लगता था। मेघ गर्जन करते थे तो वह वृषभध्वज वृषभवाहन शिवकी स्तुतिमें तन्मय हो जाता था। स्वप्नमें बार-बार बोल उठता था— 'भगवान् महेश्वर! आप कहाँ जा रहे हैं? दो क्षण मुझ शिशुके समीप रुककर मुझे कृतार्थ करें।'

पिता बार-बार समझाते थे—'वत्स! तुम्हें अपने गृह कार्यको भी देखना चाहिए। तुम यक्ष हो। पृथ्वीकी सम्पूर्ण भूमिस्थ सम्पत्ति हम यक्षोंके संरक्षणमें रहती है। यक्षराज वैष्णवसे तुम्हें परिचय करना चाहिए। उन निधिपतिका अनुग्रह प्राप्त करना चाहिए।'

बालक हरिकेशको कुबेरके नामसे ही भगवान शंकरका स्मरण हो आता। वह पूछ बैठता—'पिताजी ! यक्षराज भगवान महेश्वरके कृपापात्र, उनके प्रधान परिकर हैं। मेरे प्राणाराध्य शिव उन्हें अपना अनुज मानते हैं। वे अलकाके स्वामी मुझे शिवके समीप ले जायँगे ?'

पिता देखते थे, उनके कुछ समझानेका बालकपर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। एक बार हरिकेश चुपचाप घरसे निकल गया, किन्तु बाहर जानेपर उसे दिग्भ्रम हो गया। मन्दराचलके उस पर्वतीय क्षेत्रमें दूसरा कहीं कोई जनपथ न होनेसे बालकको यही समझमें नहीं आता था कि वह कहाँ है और किधर जाय। अब उसने एकान्त मनसे आर्त होकर पुकारना प्रारम्भ किया—'मेरे स्वामी हर ! मैं कहाँ जाऊँ ? मुझे तो मार्गका पता नहीं है। आप ही मुझे अपने प्रिय धाम काशीपुरी पहुँचावें।'

पुकारते हुए हरिकेशके नेत्र बन्द हो गये। उसने जब फिर आँखें खोलीं, आसपास गन्धमादन या और भी किसी पर्वतीय प्रदेशका कोई चिह्न नहीं था। उसने देखा, वह एक नगरमें पहुँच गया है और उसमें आसपास चलने वाले अधिकांश लोगोंके मस्तकपर भस्म-त्रिपुण्ड, शरीरमें स्थान-स्थानपर रुद्राक्षकी मालाएँ हैं। सब 'हर-हर महादेव' इन शब्दोंमें परस्पर अभिवादन करते हैं। यों भी इन नामोंको बोलते हैं। बालकने समझ लिया, महेश्वरने कृपा करके उसे अपने अविमुक्त धाममें पहुँचा दिया है। वह मणि-कर्णिकाके समीप स्थिर बैठ गया। उसने तपस्या प्रारम्भ की।

हरिकेश आनन्दवनके मध्य अशोक वृक्षके नीचे अपनी तपस्थली परिवर्तित करके तपोलीन था। उसका शरीर स्नायुवद्ध कंकाल मात्र हो गया था। उमा-महेश्वर वृषभारूढ़ होकर अपनी पुरीके निरीक्षणके लिए निकले तो जगदम्बाने स्नेहपूर्वक इस बालक तपस्वीकी ओर देखा और अपने आराध्यसे प्रार्थना की—'स्वामी ! यह आपका भक्त परम तपस्वी है। आपमें ही चित्तको लगाकर शरीरको भी विस्मृत करके समाधिमें स्थित है। आप इसपर अनुग्रह करें।'

त्रिलोचन गंगाधर वृषभसे उतर पड़े। अपने करसे हरिकेशका उन्होंने स्पर्श किया। इस स्पर्शसे हरिकेशकी समाधि भंग हुई नेत्र खोलनेपर अपनी समाधिके परम सौभाग्यको प्रत्यक्ष देखकर हरिकेश कुछ क्षण काष्ठके समान स्तब्ध आनन्दमग्न खड़ा रह गया। फिर उसने भूमिमें पड़कर उमा-

महेश्वरके चरणोंमें मस्तक रखा। खड़ा होकर अञ्जलि बाँधकर स्तवन करने लगा।

सुप्रसन्न देव-देव महेश्वरने कहा—'वत्स ! तुम मेरे परम प्रिय हो। अब तुम मेरे समीपसे कहीं जाओ, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम मेरे इस प्रिय धामके दण्डनायक होगे। मेरे समस्त उत्कट गणोंका तुम शासन करो। काशीके भीतर जो भी आ जाते हैं, उन सबके अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता होकर यहाँ निवास करो। यहाँ मरने वाले प्राणियोंको मैं तारकका उपदेश देकर मोक्ष दान करता हूँ, इसकी व्यवस्था तुम करो। तुम यहीं अविचल निवास करो।'

हरिकेश आनन्दमग्न मस्तक झुकाए केवल सुन रहा था। भगवान शंकरने आगे आदेश दिया—'यहाँके दण्डनायक होनेके कारण लोग अबसे तुम्हें दण्डपाणि भैरव कहेंगे। जो भी काशी आकर पाप करते हैं, उन पापियोंके मनमें उद्वेग पैदा करो, उनका उच्चाटन करो जिससे जो इस धाममें मृत्यु प्राप्त करनेके अनधिकारी हैं, वे स्वयं ही यहाँसे अन्यत्र चले जाय।'

उमा-महेश्वर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। हरिकेश वैसे भी यक्षपुत्र थे। उनका शरीर देवशरीर था। शिवकी कृपा प्राप्त करके वे काशीमें वहाँके दण्डनायक होकर—आधिदैवत प्रशासक होकर रहने लगे।

(स्कन्दपुराण)

****

हरिहर

तत्व-जिज्ञासु महर्षिगण मन्दराचलपर भगवान् महेश्वरके चरणोंमें उपस्थित हुए। प्रणिपात, स्वस्त्ययन अनन्तर उन्होंने पूछा—प्रभो! आप स्वय ही अपने आपको जानते हैं। आपका स्वरूप दूसरे किसीके लिए भी अज्ञेय है, अत: आप ही अपने स्वरूपका, अपने तत्वका विस्तृत उपदेश करें।'

'मैं सदा सबका प्रेरक हूँ। परमानन्दस्वरूप होनेके कारण नित्य योगी हूँ।' शिवने ऋषियोंको एक अद्वितीय निरंजन, निराकार, स्वयंप्रकाश परम तत्वका विस्तृत उपदेश करके कहा—'नृत्यरत रहनेके कारण नटराज मेरा नित्य स्वरूप है।'

इस प्रकार कहकर अपने परम भावको व्यक्त करनेके लिए भगवान शिव नृत्य करने लगे। ऋषियोंने देखा—गगनमें परम तेजोमय महेश्वर एवं विष्णु दोनों ही नृत्य कर रहे हैं। दोनों सहस्रशीर्षा, सहस्रचरण एवं सहस्र-बाहु। जटाधारी, चन्द्रार्धकृत शेखर व्याघ्रचर्माम्बर, शूलहस्त, दण्डपाणि, सूर्य-सोम-अग्नि-त्रिनेत्र, रुद्रने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपने तेजसे आवृत कर लिया है। करालदंष्ट्रा, दुर्धर्ष, कोटिसूर्यसमप्रभ, अनल ज्वाला प्रकट करते हुए मानो वे सम्पूर्ण जगतको भस्म करना चाहते हैं। उनके इस प्रलयंकर रूप-का सबने साक्षात्कार किया। सबने देखा—प्रलयंकरका यह प्रचण्ड तेज समीप ही नृत्यरत नीलोज्वल कान्ति, सहस्रशीर्षा, किरीटमाली, पीताम्बर-परिधान, श्रीवत्सवक्षा, वनमाली, कोटिकोटि चन्द्रज्योत्सना—अमल, शीतल, स्निग्ध प्रकाशराशि स्वरूप श्रीहरिके नृत्यरत होनेसे रुद्रका तेज क्षण-क्षण शान्त-समाप्त होता जा रहा है।

वे महादेव, पशुपति, ईशान, अव्यग्रज्योतिस्वरूप पिनाकी, विशालाक्ष, भवरोगैकभेषज, कालात्मा, उमाकान्त, ज्ञानवैराग्यैकनिलय एक क्षणमें ही नारायणसे एकत्वको प्राप्त हो गये। इस सम्मिलित हरिहर मूर्तिमें दाहिनी भाग भगवान शंकरका और वाम अर्धभाग भगवान नारायणका, महर्षियोंने स्पष्ट दर्शन किया।

सनत्कुमार, सनक, सनातन, सनन्दन,—इन चारों कुमारोंने, भृगु, रैभ्य, अंगिरा, वामदेव, शुक्र, अत्रि, मरीचि आदिने प्रणिपात करके शिवका स्तवन किया।

महादेवने फिर अपने सर्वदेवमय, सर्वोपादान निमित्तकारणत्वका ऋषियोंको उपदेश किया। शिवको प्रणिपात करके, उनकी प्रदक्षिणा करके परमात्मतत्वके उपदेशसे कृतकृत्य महर्षिगण अपने लोकको विदा हुए।

(कूर्मपुराण)

—: ० :—

चक्रदान

प्रकृति परिवर्तनशीला है। प्रकृतिमें त्रिगुणकी वैषम्यावस्थाका नाम ही सृष्टि है। इसमें कोई भी एक गुण समान रूपसे प्रबल नहीं बना रह सकता। कभी सत्वगुण प्रधान होता है, कभी रजस् और कभी तमस्। गुणोंकी यह विषमता निरन्तर गतिशील न रहे तो प्रकृतिमें गतिका भी अभाव हो जायगा। गुणोंकी साम्यावस्था महाप्रलय होती है। अतः प्रत्येक युगमें अवान्तर युगके रूपमें दूसरे युगोंका भी अल्पकालीन आवर्तन-प्रत्यावर्तन होता रहता है।

सृष्टिके आदिमें ही दैत्य बलवान् हो गये। स्वभावतः आसुरी शक्ति प्रबल होगी तो धर्मका नाश होगा, देवता पीड़ित होंगे। संत्रस्त देवताओंने भगवान नारायणकी शरण ली। आर्तोंके परम शरण्य श्रीहरिने सुरोंको आश्वासन दिया।

भगवान नारायण कैलासके समीप गये। वहाँ एक कुण्ड खोदकर उसके समीप उन्होंने अग्निका स्थापन किया और शिवलिंगकी स्थापना करके स्थिर होकर शिवार्चन प्रारम्भ किया। वे शिवसहस्रनामसे भगवान शंकरकी पूजा कर रहे थे। पहलेसे ही उन्होंने एक सहस्र सम्पूर्ण खिले कमल-पुष्प अपने समीप रख लिए थे। सहस्रनामका एक नाम बोलते थे और एक कमल-पुष्प लिंगपर चढ़ा देते थे।

लीलामय रुद्रने उन कमलोंमें-से एक पुष्प अदृश्य रहकर ही धीरेसे उठा लिया। सहस्रनाम पूरा होनेको आया। अन्तिम नामके लिए वहाँ पुष्प नहीं था। विष्णुने इधर-उधर देखा। पुष्प मिला नहीं। अर्चाके बीचमें उठ सकते नहीं थे। बोलकर गरुड़को पुकार नहीं सकते थे। और कोई वहाँ था नहीं। संकल्पसे कल्पित कमल आराधनाके उपयुक्त नहीं था; क्योंकि जिस प्रकारके पार्थिव कमलोंसे आराधना हो रही थी, उनमें संकल्पनिर्मित कमल सम्मिलित करना उचित नहीं लगा। सहसा श्रीहरिने विचार किया—'मुझे श्रुति और शास्त्र पुण्डरीकाक्ष कहते हैं। मेरे नेत्र भी कमल हैं। ये सदाशिव-की अर्चामें समर्पित हों, इससे अधिक इनका और क्या उपयोग हो सकता है।' अपने नखाग्रसे उन पुण्डरीकाक्षने अपना वामनेत्र निकाला और उसे शिवलिंगपर सहस्रनामका अन्तिम नाम बोलते हुए अर्पित कर दिया।

दिशाएँ अलौकिक शतसहस्र सूर्यके प्रकाशसे भास्वर हो उठीं। उस सम्मुखके लिंगसे ही कर्पूरगौर, पञ्चमुख, त्रिनेत्र, दशभुज, धूर्जटि प्रकट हो गये। महेश्वरसे अपनी भुजासे उठाकर नारायणको वक्षसे लगा लिया। उनके करोंके स्पर्शसे हरिका नेत्र यथावत हो गया। सदाशिवने स्नेहार्द्र गद्गद कण्ठसे कहा—'आप मेरे हृदय हैं, मेरे प्राण हैं। यह अर्चाका उपक्रम आपने क्यों प्रारम्भ किया? आप क्या चाहते हैं? आपके लिए भी मेरे समीप क्या कुछ ऐसा है जिसे प्राप्त करनेको आपको कोई अर्चा, तप, आराधन आवश्यक हो?'

'इस समय दैत्य, अत्यन्त प्रबल हो गये हैं। वे सम्पूर्ण लोकोंको पीड़ा दे रहे हैं। 'नारायणने अञ्चलि बांधकर प्रार्थना की—'आपने लोकोंकी रक्षाका दायित्व मुझे अर्पित किया है। अतः असुरोंका शमन करनेके लिए मुझे कोई शक्तिसम्पन्न अस्त्र प्रदान करें।'

भगवान शंकरने अपने तेजसे ही सुदर्शन चक्रका निर्माण किया—'यह मेरा स्वरूप ही है। सर्वास्त्रधाती है, अमोघ है। सदा आपके संकल्पका अनुगमन करेगा। केवल आपके और मेरे भक्तोंके सम्मुख शान्त हो जायगा, अन्यथा मैं भी इसका प्रतिकार नहीं कर सकूँगा।'

हरिने वह चक्र अञ्जलि फैलाकर ग्रहण किया। उसे लेकर उन्होंने उससे असुरोंका संहार किया। (शिवपुराण)

✱

त्रिदेवोंका एकात्मत्व

महर्षि अगस्त्यके दीर्घकालीन यज्ञमें सन्तुष्ट होकर देवमूर्ति जनार्दन प्रकट हुए। इन्द्रादि देवता भी महर्षिके यज्ञमें सब लोकपालोंके साथ पधारे थे। भगवान वृषभध्वज नीललोहित अपने गणोंके साथ और ब्रह्माजी सनत्कुमार-नारदादि अपने सब पुत्रोंके साथ पधारे। सब यथास्थान आसीन हो गये। सबकी यथोचित अर्चा करनेके लिए महर्षि अगस्त्यने उनसे पूछा–'आप सबमें वरिष्ठ और यज्ञके द्वारा प्रथम आराध्य कौन हैं? मैं किनकी सर्वप्रथम अर्चा करूँ?'

'बहुत उत्तम प्रश्न है। सब देवता और ऋषि सावधान होकर सुनें।' भगवान धूर्जटि, नीललोहितने कहना प्रारम्भ किया—'जो यज्ञोंके द्वारा आराधित होते हैं, जिनसे यह जगत उत्पन्न हुआ है और जिनमें लीन हो जाता है, सम्पूर्ण त्रिलोकी जिनमें ही स्थित है, वे देव नारायण सर्वस्वरूप हैं। सभी देवता उन जनार्दनके ही परायण हैं। उन्होंने स्वयंको अपनेसे त्रिधा व्यक्त किया है। वे परमेश्वर स्वयं ही सत्व, रज और तम–इन तीन गुणोंको स्वीकार करके तीन रूप होते हैं।'

'सत्व गुणके आश्रयसे जलशायी नारायण वे स्वयं बने हैं। अपनो नाभिसे निकले कमलपर रजोगुणको स्वीकार करके ब्रह्माके रूपमें वही व्यक्त होते हैं और ब्रह्माके क्रोधको निमित्त बनाकर तमोगुणके आश्रयसे मुझ रुद्रका रूप भी उन्होंने ही ग्रहण किया है।'

'जो सत्वात्मक हैं; वे हरि ही परमपद हैं। सत् एवं रजस् युक्त सृष्टि-कर्ता भी वही हैं, रजस् एवं तमस् युक्त मैं भी उन्हींका स्वरूप हूँ, किन्तु श्रीहरि, ब्रह्मा और मुझमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। हम तीनों परस्पर अभिन्न हैं।'

'सत्व गुण नारायणात्मक है, इसे अपनाकर प्राणी मुक्त हो जाता है। सत्वमिश्रित रजोगुण ब्रह्मात्मक है, इससे सृजन एवं सभी उत्तम कर्म होते हैं। जो वेद-वाह्य वर्जित कर्म हैं रजसे युक्त, उन्हें तमोगुण प्रधान रौद्र कर्म

कहा जाता है। केवल तामस कर्म गर्हित हैं। वे इस लोक और परलोकमें सर्वत्र पीड़ा देने वाले, अधःपतित करने वाले, नरकको प्राप्त करानेवाले हैं।'

'यज्ञरूप भगवान नारायण हैं। सत्युगमें ये शुद्ध सूक्ष्म आत्मरूपमें उपासित होते हैं। त्रेतायुगमें यज्ञरूपमें, द्वापरमें पाञ्चरात्र आगमकी विधिसे मूर्ति रूपमें और कलियुगमें मेरे द्वारा निर्मित तन्त्रोंके रूपमें अथवा नाम-संकीर्तन आदिके द्वारा उपासित होते हैं।'

'नारायणसे परे, इनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। जो विष्णु हैं, वही ब्रह्मा हैं, जो ब्रह्मा हैं, वही शिव मैं हूँ।'

न तस्मात् परतो देवो भविता न भविष्यति।
यो विष्णुः स स्वयंब्रह्मा यो ब्रह्मा स महेश्वरः॥

(वाराहपुराण, ७०.२६)

'नारायणसे परे न कोई देवता होते हैं और न होंगे। सत्वगुणके अधिष्ठाता विष्णु ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं और ब्रह्मा ही मुझ महेश्वरके रूपमें प्रकट हैं।'

अतर्क्य अवधूत

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, देवराज इन्द्र और दूसरे भी सब देवता एकबार भगवान् शंकरके दर्शन करने कैलास पहुँचे। शिव तो लीलामय हैं। वे इन लोगोंको मार्गमें ही मिले। मिले भी एक भयंकराकार उन्मुक्त जटा-जूट दिगम्बर अवधूतके वेषमें। किसीने भी उन्हें पहिचाना नहीं। महेश्वर स्वयं ही अपनेको पहचाननेकी शक्ति न दें तो उन्हें कौन पहचान सकता है। वे अवाङ्मनस गोचर करुणावरुणालय स्वयं ही कृपा करते हैं तब प्राणी उनका परिचय प्राप्त करता है।

शक्रने पूछा—'तू कौन है ? तेरा क्या नाम है ? तू कहाँसे आया है ? कैलाससे आ रहा है ? भगवान् शंकर वहाँ हैं अथवा और कहीं परि-भ्रमण करने गये हैं ?'

अवधूत मौन मुस्कराता इन्द्रकी ओर अपलक देखता रहा। उसने देवताओंका, लोकपालोंका, इन्द्रका और सृष्टिकर्ता ब्रह्माका भी कोई सम्मान नहीं किया। किसीको प्रणाम नहीं किया। ऐसा लग रहा था जैसे उसे इनमें-से किसीकी उपस्थितिसे कुछ प्रयोजन नहीं है। उसके मुखपर मन्द-हास्य सुशोभित था। वह निश्चिन्त अविचल खड़ा था। इन्द्रके प्रश्नोंका कोई उत्तर उसने नहीं दिया।

देवराजने फिर अपने प्रश्न दुहराए। किंचित् क्रोधसे पूछा—'तू बधिर है? सुनता नहीं है? यदि तूने मौनका व्रत लिया है तो भी देवताओंके अधीश्वरके लिए, सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्माके लिए तुझे अपना व्रत समाप्त करके हमारा सम्मान करना चाहिए।'

अवधूत ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। अवश्य ही उसके नेत्र लाल हो गये। उसका तेज भयंकर हो गया, पर वह न हिला, न बोला।

देवराज इन्द्रने फिर प्रश्न किया। क्रोधके स्वरमें भर्त्सना की—'तू एक तुच्छ मर्त्य अपने तप और त्यागके अभिमानमें मेरा अपमान करता है। तू मेरे प्रश्नोंका उत्तर नहीं देगा तो तेरी आयु अभी समाप्त हो जायगी।'

अवधूतने केवल दिगन्तभेदी अट्टहास किया और फिर मौन हो गया। अब क्रुद्ध शक्रने वज्र उठाया, किन्तु उनका हाथ स्तम्भित हो गया। सहसा अवधूतके शरीरसे अत्यन्त प्रखर प्रचण्ड तेज निकलने लगा। देवगुरु बृहस्पतिने अकस्मात् अवधूतको देखा और पहचान लिया। उन्होंने दण्डवत् प्रणिपात किया। इन्द्रको सावधान किया—'साक्षात् निखिलेश्वर भगवान महेश्वर तुम्हारे सम्मुख हैं, इन्हें प्रणाम करके प्रसन्न करो।'

इन्द्रने और बृहस्पतिने शिवकी पुनः स्तुति की। प्रलयंकर प्रसन्न हुए—'बृहस्पति! तुमने इन्द्रको जीवन-दान दिया, अन्यथा यह अभी भस्म हो जाता। इसे जीवन-दान देनेके कारण अबसे तुम्हारा नाम जीव होगा।'

शिव अन्तर्धान हो गये। उस समय उनके नेत्रोंसे जो क्रोधाग्नि प्रकट हुई थी, वह समुद्रमें जाकर बाड़वाग्नि बन गयी। पीछे वही असुर जलन्धरके रूपमें प्रकट हुई। देवता वहींसे शिवका दर्शन करके अपने धामोंको लौट गये।

(शिवपुराण)

————

अरुणाचलेश्वर

सृष्टिके प्रारम्भमें ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और भगवान विष्णुमें विवाद हो जानेपर उनके मध्य जो ज्योतिर्मय अनादि अनन्त लिंग प्रकट हुआ था, उसके तेजोमय रूपको देखकर ब्रह्माने उसकी मानसिक पूजा की ; क्योंकि उस समय पूजाका पूर्व उपकरण उस प्रलय-पयोधिमें विद्यमान नहीं था। ब्रह्मा और विष्णु—दोनोंने वेदमन्त्रोंसे स्तुति की। उस ज्योतिलिङ्गसे कर्पूर-गौर, नीलकण्ठ, चन्द्रशेखर प्रकट हुए। उन चतुर्भुजके करोंमें परशु, बाल-मृग, अभय एवं विश्राम मुद्रा थी। उन्होंने प्रसन्न स्वरमें कहा—'तुम दोनोंसे मैं सन्तुष्ट हूँ। वरदान माँगो।'

'देव ! आपने अपने तेजसे समस्त अन्तराल व्याप्त कर रखा है।' ब्रह्मा और हरिने भी हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'इससे देवलोक भस्म होना चाहता है। देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि आपके तेजसे संतप्त होकर न आकाशमें ठहर पाते हैं, न इधर-उधर जानेको उन्हें मार्ग मिलता है। यह रसातलको प्राप्त हुई रसा आपके उग्र तेजसे तप्त होती हुई ऐसी होती जारही है कि सचराचरको धारण करनेमें अयोग्य हो जायगी। अतः होने वाली समस्त सृष्टिपर अनुग्रह करके आप इस तेजको समेट लें।'

इस प्रार्थनाको स्वीकार करके भगवान शिवने तेजको समेट लिया। यह घनीभूत तेज पर्वताकार हो गया। यही पर्वत अरुणाचल है। यह शिव-स्वरूप है, परमपावन है, रुद्रका तेजोलिंग है।

× × ×

पर्वतराजनन्दिनीका पाणिग्रहण करके भगवान महेश्वर स्थाणु वनमें रहने लगे थे। देवी उमा एकाग्र चित्तसे उनकी सेवा करती थीं, किन्तु महादेव कालाग्निसे कामको दग्ध कर चुके थे। वे वीतराग देवीसे भी निरपेक्ष, तटस्थ समाधिमें स्थित हो गये।

उन्हीं दिनों शुम्भ और निशुम्भने तपस्या की और ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया—'पुरुषके हाथसे मृत्यु न हो।'

भगवान शिवके समाधिमें स्थित होनेके कारण देवी पार्वती तपस्याका निश्चय करके अरुणाचलके समीप आयीं। वहाँ उन्हें एक ऋषि-आश्रम दृष्टि पड़ा जहाँ पशु भी सहज वैर त्याग करके निवास करते थे। आश्रममें प्रविष्ट होकर उमाने परमशैव महर्षि गौतमका दर्शन किया। ऋषिने उनका सत्कार किया। महर्षिकी अनुमति लेकर देवी पार्वती भी अरुणाचलपर ही एक आश्रम बनाकर तपस्या करने लगीं। उन्होंने अपने आश्रमकी रक्षाके लिए अपनी सखी सुभगाको नियुक्त कर दिया। दुर्गाको पूरे तपोवनकी रक्षाका आदेश दिया। स्वयं उमा जटा धारण करके, वल्कल वसन पहनकर त्रिकाल स्नान करने लगीं, शिवलिंगकी स्थापना करके उसकी पूजामें लग गयीं। अर्चन और व्रत—यह उनका जीवन बन गया।

उमाके इस तपोकालमें ही महिषासुर उत्पन्न हुआ। असुरोंने उसे अधिपति बना दिया। उसके सेवकोंने तपस्विनी पार्वतीको देखा और जाकर महिषासुरसे उनके सौन्दर्यकी प्रशंसा की। वह वरदान प्राप्त करके दुर्मद हो गया था। पार्वतीके पास उसने दूती भेजी। तपस्विनीका स्वरूप बनाकर दूती वहाँ आयी। उसने गिरिराजतनयासे कहा—'तुम परम सुन्दरी हो, इस भयंकर स्थानमें एकाकिनी क्यों निवास करती हो? तुम्हें इस रूपमें देखकर मुझे क्लेश होता है। तुम्हारा यह भुवनसुन्दर शरीर, दिव्याभरण एवं अंगरागोंके योग्य है। त्रिभुवनके स्वामी दैत्यराज महिष तुम्हारे योग्य हैं। तुम उनके समीप चलो।'

संकेतसे ही पार्वतीने विजयाको आदेश दे दिया। उसके साथ रहने वाली सखियोंने असुरकी दूतीको वहाँसे बलपूर्वक निकाल दिया। जाते-जाते वह बोली—'तू इतना साहस करती है। तुझे दैत्येन्द्र महिषके समीप जाना ही पड़ेगा। तेरा यह गर्व मैं नष्ट करूँगी।'

दूतीने जाकर महिषासुरको समाचार दिया। वह असुर सेनाको लेकर पार्वतीको पकड़ने आया। असुरोंका कोलाहल सुनकर उमाको आशंका हो गयी कि उनकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित होगा। उन्होंने दुर्गाको आदेश दिया—'दैत्योंका संहार करो।'

अरुणाचलकी गुफासे सिंहारूढ़ा प्रदीप्त भृकुटी अष्टभुजा दुर्गा बाहर आयीं। स्वयं अपने अंगसे योगिनियोंको प्रकट किया। उन योगिनियोंमें-से चामुण्डाने महिषके सेनापति चण्ड और मुण्डको मार दिया। महिष दुर्गाके

द्वारा मारा गया। एक हाथमें रक्तस्रावी खड्ग और दूसरेमें महिषका मस्तक लिए हुए दुर्गाने आकर भगवती पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम किया।

'विन्ध्यवासिनी। तुम्हारा यह चरित लोकपावन हो।' प्रसन्न पार्वतीने दुर्गासे कहा—'दैत्यके इस भयंकर अपवित्र मस्तकको त्याग दो और तीर्थ-स्नान करके पवित्र बनो।'

दुर्गाने वहीं अपने खड्गसे शिलाको विदीर्ण करके पापनाशन तीर्थको प्रकट किया। उसमें स्नान करते ही महिषासुरका सिर उनके हाथसे छूट करके गिर गया। महिषासुरके कण्ठमें भी नित्य शिवलिंग बँधा रहता था। उस समय वह स्वयं ही वहाँसे गिरकर जलके समीप प्रतिष्ठित हो गया।

कार्तिक पूर्णिमा आयी। अरुणाचलके शिखरपर स्वयं ही प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला प्रकट हुई। कोई ईंधन उसमें निमित्त नहीं था। पार्वतीने उस ज्योतिकी परिक्रमा की। उन्होंने स्तवन किया— मेरे स्वामी! आपकी जय हो।' स्तुति करते हुए वे उसी ज्योतिको निर्निमेष नेत्रोंसे देख रही थीं। ज्योतिमें ही उनका ध्यान एकाग्र था। इस प्रकार एकचित्ता पर्वतराज-कुमारीको देखकर वह ज्योति तिरोहित हो गयी। सहसा वहाँ अपने स्वरूपमें वृषभारूढ़ भगवान शिव प्रकट हुए। वे उमाके समीप आये। उमा आनन्द-मग्न हो गयीं। उनके शरीरसे स्वेदकी धारा बहने लगी। सम्पूर्ण रोमाञ्चित शरीर काँपने लगा, स्वरभंग हो गया। कुछ भी बोलनेमें असमर्थ वे पतिके चरणोंमें दृष्टि लगाये अङ्गस्तम्भके कारण खड़ी रह गयीं।

भगवान् चन्द्रमौलि वृषभसे उतरे। पार्वतीके समीप आकर उनका हाथ पकड़कर सस्मित बोले—'देवि! अपने चित्तको व्याकुल क्यों कर रही हो? तुम जानती हो कि हम दोनों अभिन्न हैं। सामान्य जीवके समान तुम हम दोनोंमें पार्थक्य मत देखो। हमने तो स्वेच्छासे ही ये पृथक्-पृथक् देह धारण किये हैं।'

देवदेव महादेव वहीं शिलातलपर बैठ गये। उमाको उन्होंने अपने वामभागमें बैठा लिया। लज्जाके कारण पार्वती उनके शरीरमें मानो छिपी जा रही हों, ऐसे शिवके श्रीविग्रहसे सटीं तो दोनोंके शरीर एक हो गये। शिवा और शिवका एकताको प्राप्त यह श्रीविग्रह अर्धनारीश्वर है।

'देवि ! अब तुम्हें ऐसे रोषका अवसर न मिले।' सस्मित शिवने कहा—'तुम तो दूध पीना चाहने वाले बालक कार्तिकेयको भी छोड़कर चली आयीं, इसलिए तुम्हारा नाम अपीतस्तनी पड़ा। इस नाम वाली तुमसे युक्त होकर मैं यहाँ अरुणाचलेश्वरके रूपमें स्थित रहूँगा।'

× × ×

देवराज इन्द्रने एक बार अद्‌भुत लाल रंगका फल शिवको अर्पित किया। कुमार कार्तिकेय और गणेश दोनों बालक उस फलको पानेके लिए मचलने लगे। शिवने हँसकर कहा—'तुम दोनोंमें जो पृथ्वीकी परिक्रमा करके प्रथम आवेगा, उसे यह फल प्राप्त होगा।'

कुमार कार्तिकेय मयूरपर बैठकर पृथ्वीकी परिक्रमा करने चले गये। बुद्धिके देवता गणेशजीने अरुणाचलकी परिक्रमा की और पिताके सम्मुख आकर बोले—'आप निखिल ब्रह्माण्डस्वरूप हैं। यह अरुणाचल आपका ही स्वरूप है। इसलिए मैंने न केवल पृथ्वीकी, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी परिक्रमा पूर्ण कर ली है।'

गणेशके इस चातुर्यसे उमा-महेश्वर प्रसन्न हो गये। शिवने उन्हें बहुत फल प्रदान करके कहा—'आजसे तुम सभी फलोंके अधिपति हुए।'

अरुणाचलकी परिक्रमासे अनेकोंकी उद्धार-कथाएँ पुराण-उपपुराणोंमें प्राप्त होती हैं।'

(स्कन्दपुराण)

परमशैव महर्षि दधीचि

महर्षि च्यवनके पुत्र दधीचि और ब्रह्माके पौत्र अमिततेजा राजा क्षुपमें मैत्री थी। एक बार दोनों मित्रोंमें विवाद खड़ा हो गया—क्षत्रिय श्रेष्ठ है या ब्राह्मण ? क्षुपका कहना था, इन्द्र, यम, अग्नि, निऋति, वायु, वरुण, सोम, कुबेर—इन आठों लोकपालोंका तेज राजा धारण करता है—सर्वदेवमयो नृपः। ब्राह्मणोंके आराध्य भगवान विष्णु हैं, वे भी राजा ही हैं, इसलिए तुमको मेरा सम्मान करना चाहिए।

दधीचि स्वभावसे ही उग्र थे। उन्होंने यह सुनकर अपने वाम मुष्टिसे राजाके वाम मस्तकपर प्रहार किया। क्षुप वैसे सृष्टिकर्ताके जमाईसे उत्पन्न हुए थे। उन्हें माना जाना चाहिए ब्राह्मण, किन्तु स्वेच्छासे ही उन्होंने राजत्व स्वीकार किया था। तपस्या करके उन्होंने ब्रह्मासे वज्र प्राप्त किया था। दधीचिके द्वारा अपमानित होनेपर उन्होंने उनपर वज्रसे प्रहार किया। इस प्रहारसे दधीचि भूमिपर गिर गये और मूर्छित हो गये। संज्ञा प्राप्त होनेपर उन्होंने भार्गव मुनि शुक्राचार्यका स्मरण किया। योगकी गतिसे शुक्राचार्य वहाँ आये। दधीचिका छिन्नांग संधित करके वे बोले—'तुम देवदेव महादेवकी आराधना करके सबसे अवध्य हो जा सकते हो। मैंने उनकी आराधना करके ही उनसे मृत सञ्जीवनी प्राप्त की है। अब भी इसी विद्याके प्रभावसे मैंने तुम्हारे छिन्नांगोंको संधित किया है।'

शुक्राचार्यने शिवोपासनाकी विधिका निर्देश किया। दधीचि उसके अनुसार भगवान शंकरकी आराधना करने लगे। उनकी दीर्घकालीन आराधनासे जब रुद्रने सन्तुष्ट होकर दर्शन दिया—उन्होंने वरदानके रूपमें माँगा—'वे सबके द्वारा अवध्य हों। वज्रका उनपर कोई प्रभाव न पड़े। वे कभी कहीं दीन न हों।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान शंकर अन्तर्धान हो गये।

अब दधीचिने आकर क्षुपके सिरमें पादप्रहार किया। इससे क्रुद्ध क्षुपने फिर उनके वक्षस्थलपर वज्रका आघात किया, किन्तु उससे दधीचि-पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दधीचिको अप्रभावित देखकर क्षुपको बहुत

आश्चर्य हुआ। अब उसने भगवान विष्णुकी आराधना प्रारम्भ की। जब रमाकान्त प्रसन्न होकर प्रकट हुए, उसने वरदान माँगा—'मैं दधीचिको जीतना चाहता हूँ। आप मेरी इच्छापूर्ण करें।'

'महेश्वरके शरणागत विप्रको भय नहीं हुआ करता। वह सभीसे अभय होता है। 'श्रीहरिने कहा— दधीचि परम महेश्वर हैं। अत: अब उन्हें भय तो हो ही नहीं सकता, उनसे तुम्हारी विजय सम्भव नहीं है। किन्तु मैं तुम्हारी भक्तिसे विवश हूँ। हम: दधीचिके समीप चलता हूँ, उन्हें विजित करनेका प्रयत्न करता हूँ।'

क्षुपने इसे स्वीकार कर लिया। विष्णुने ब्राह्मणका स्वरूप धारण किया। वे दधीचिके समीप पहुंचे। वहाँ उन्होंने दधीचिसे कहा—'आप परम शिवभक्त हैं। मुझे एक वरदान देनेकी कृपा करें।'

'मैंने आपको और आपके अभीष्टको देवदेव महेश्वरकी कृपासे जान लिया है।' दधीचिने हँसकर कहा—'आपसे मैं भयभीत नहीं हूँ। इस कृत्रिम विप्र वेशका त्याग कीजिये। आप क्षुपके द्वारा आराधित हुए हैं। आपकी भक्त-वत्सलता आपके ही योग्य है, किंतु मैं आपसे भयभीत नहीं हूँ।'

भगवान् विष्णु अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। बोले—'आप परम शिव-भक्तको मेरा प्रणाम। मेरी प्रार्थनासे क्षुपके प्रति आप अपने रोषको त्याग दें।'

दधीचि स्वभावसे ही उग्र थे। उन्होंने रोषपूर्वक कहा—'मैं क्षुपसे या उसके अन्य किसी भी समर्थकसे डरता नहीं हूँ।'

रोषमें आकर विष्णुने ऋषिपर चक्रका प्रहार किया, किंतु वह उनके करसे आगे चला ही नहीं। हँसकर दधीचिने कहा—'आपने अपना सुदारुण चक्र जिनसे प्राप्त किया है, वे ही मेरे आराध्य हैं, मेरे आश्रय हैं। वे मुझे कैसे आहत कर सकते हैं। यह तो उनका स्वरूप है। उन प्रलयंकरके स्वरूपभूत इस चक्रसे मुझे भय कैसे हो सकता है?'

नारायणकी सहायताके लिए उनके स्मरण करनेपर दूसरे देवता भी आ गये इसपर दधीचिने एक मुट्ठी कुश लेकर उसे त्र्यम्बकास्त्रसे अभिमंत्रित करके देवताओंकी ओर फेंक दिया। वह कुश कालाग्निके समान त्रिशूल

बन गये। देवताओं और नारायणने भी अपने आयुधोंका त्याग कर दिया। उन त्रिशूलोंको प्रणाम किया। देवता वहाँसे पलायन कर गये। विष्णुने अपने समान ही पार्षदोंको प्रकट किया, किंतु दधीचिने उन सबको भस्म कर दिया। अब विष्णुने विराट् रूप धारण किया। उनके शरीरमें सम्पूर्ण लोक स्पष्ट दीखने लगे।

दधीचिने कहा—'भगवान महेश्वरकी कृपासे यह शक्ति मुझमें भी है।' उन्होंने भी विराट रूप धारण किया। समस्त लोक अपने शरीरमें दिखला दिये। बोले—'माया तथा मन्त्र-शक्तिसे क्या लाभ ? आप इससे विरत हों।'

श्रीहरिने दधीचिको प्रणाम किया। क्षुपसे बोले—'मैं स्वयं ब्राह्मणोंका भक्त हूँ। श्रुति-शास्त्र सब मुझे ब्रह्मण्यदेव कहते हैं। ये महर्षि दधीचि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं। अतः तुम्हें इनसे क्षमा माँगनी चाहिए।'

क्षुपने दधीचिको प्रणाम करके उनसे क्षमा माँगी। दधीचिने उसे क्षमा करके कहा—'ब्राह्मण देवताओंसे और राजाओंसे भी श्रेष्ठ हैं। वे सबके द्वारा पूजनीय हैं। राजेन्द्र ! इसे भली प्रकार समझ लो। वे प्रभ-विष्णु हैं।।

यह कहकर दधीचि अपनी कुटीमें चले गये। क्षुप उनकी वन्दना करके अपने भवन चले गये। (लिंगपुराण)

महर्षि दधीचिकी पत्नी प्रातिथेयी (गर्भास्तनी) अगस्तकी पत्नी लोपामुद्राकी बहिन थी। इनके साथ महर्षि दधीचि गौतमीके तटपर आश्रम बनाकर निवास करते थे। एक दिन आदित्य, एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि आदि देवता इनके आश्रममें पधारे। देवताओंने दैत्योंको पराजित कर दिया था और बहुत प्रसन्न थे। दधीचिने सबको प्रणाम किया। सबका पूजन किया।

'आप तो पृथ्वीके कल्पवृक्ष हैं।' देवताओंने दधीचिसे प्रार्थना की—'आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हमारे अस्त्र-शस्त्र यहाँ रख लें। हम इन्हें स्वर्गमें रखेंगे तो कोई शत्रु दैत्य इनका पता लगाकर इनकी चोरी कर

लेगा। अभी इन अस्त्रों-शस्त्रोंका हमें कोई प्रयोजन नहीं है। इनको हम अपने साथ-साथ भी ढो नहीं सकते। आपके समीप दानव, दैत्योंसे कोई भय नहीं है। यह स्थान आपकी तपस्यासे सुरक्षित है। अतः हमारे आयुध आपकी रक्षामें रहेंगे।'

दधीचिने इसे स्वीकार कर लिया। देवता अपमें अस्त्र-शस्त्र वहाँ छोड़कर अमरावती चले गये। ऋषि-पत्नीने इसे सुना तो बोली—'आपने यह उचित नहीं किया। इससे दैत्य-दानवोंसे अपना अकारण विरोध होगा। आप इस पचड़ेमें न पड़ते तभी अच्छा था। इसको रखनेसे आपका तो कोई लाभ है नहीं, असुर इससे आपके विरोधी हो जायँगे। इनमें-से कोई नष्ट हो जाय या चोरी हो जाय तो देवता भी आपके विरोधी हो जायँगे। अब भी इस पराये द्रव्यका दायित्व न लें तो अच्छा है।'

दधीचिने कहा—'देवि ! मैंने देवताओंको हाँ कर दी है। अब अस्वीकार करना सम्भव नहीं है।'

देवता अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर वहाँसे चले गये थे। बहुत काल व्यतीत हो गया पर वे उन्हें लेने नहीं आये। महर्षि दधीचिको अब अपनी भूल ज्ञात हुई। उन्होंने पत्नीसे कहा--'देवि ! सचमुच तुम्हारी ही बात ठीक थी। लगता है कि देवता अपने आयुध लेना ही नहीं चाहते हैं और दैत्य मुझसे द्वेष करने लगे हैं। इन आयुधोंकी रक्षाके लिए मुझे बराबर सचिन्त रहना पड़ता है।'

पत्नीने कहा—दैत्योंमें जो वीर हैं, बली हैं, तपस्वी हैं, मायावी हैं वे इन आयुधोंको किसी भी प्रकार किसी भी समय हड़प ले सकते हैं।'

महर्षि दधीचि अब सचिन्त हुए। सोचने लगे—इन आयुधोंकी रक्षा कैसे की जाय। उन्होंने मन्त्रपूत जलसे समस्त आयुधोंको स्नान कराया। इससे आयुधोंका तेज उस जलमें आ गया। जलको दधीचि स्वयं पी गये। तेजके निकल जानेसे आयुध शक्तिहीन हो गये, अतः समय पाकर वे नष्ट हो गये।

असुरोंको पता लग गया कि देवताओंके आयुध नष्ट हो गये हैं तो उन्होंने सुरोंपर आक्रमण कर दिया। अब देवता दधीचिके पास अपने अस्त्र-शस्त्र माँगने आये। महर्षिने कहा—'आप सब इतने दीर्घकाल तक उन्हें लेने नहीं आये थे, इसलिए मैंने उनको पी लिया। अब तो मेरे शरीरमें स्थित हैं। आप सबको जो उचित लगे, वह उपाय करें।'

'हम तो इतना ही कह सकते हैं कि आप हमारे आयुध हमको प्रदान करें।' देवताओंने विनम्रतापूर्वक यह बात कही, किंतु वे आयुध पानेके लिए दृढ़ संकल्प जान पड़ते थे।

'अस्त्र मेरी हड्डियोंसे एक हो चुके हैं। अतः मेरी अस्थियाँ ले जाइये।' दधीचिने यह कहा, उस समय उनकी पत्नी वहाँ नहीं थी। वे वनमें फल समिधादि लेने गयी थीं। महर्षि दधीचिने आसन लगाकर देहका त्याग कर दिया। देवताओंने उनके शरीरकी अस्थियाँ ले लीं। विश्वकर्माने उन अस्थियोंको लेकर अस्त्रोंका निर्माण करना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कह दिया—'ब्राह्मणके शरीरका उपयोग मैं नहीं कर सकता। तब देवताओंके कहनेसे गायोंने दधीचिके शरीरको चाट करके अस्थियोंको शुष्क कर दिया। विश्वकर्माने तब वज्रका निर्माण किया। इस प्रकार परमशैव दधीचिने एक कल्पमें अपने शरीरका त्याग किया।

दूसरे कल्पमें वृत्रासुरसे हारे हुए देवता भगवान विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। विष्णुने ही उन्हें महर्षि दधीचिके पास जाकर अस्थियाँ माँगनेको कहा था। देवताओंके माँगनेपर दधीचिने समाधिके द्वारा देहका त्याग कर दिया था।

वनसे फल-पुष्प लेकर स्नान करके भगवती पार्वतीका पूजन करके देवी प्रातिथेयी लौटीं। उनके गर्भमें बालक था। आश्रममें गार्हस्पत्याग्निने उनको उनके पतिके देह-त्यागका समाचार दिया। उस तपस्विनीने कहा—'मैं देवताओंको शाप देनेमें समर्थ होकर भी ऐसी रुचि नहीं रखती। मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी।' अपने उदरको चीरकर उन्होंने अपना गर्भ बाहर निकाल दिया। दधीचिके जो केश, लोम आदि अवशेष वहाँ थे, उनको लेकरके ही उन्होंने चितामें प्रवेश किया। अपने उदरको चीर कर उन्होंने उससे निकले बालकको पीपलके वृक्षके नीचे रख दिया था। उनके देह-त्यागसे वृक्ष भी रुदन करते थे। वनस्पतियोंके राजा सोमने उस बालका रक्षण-पालन किया। उसे अमृत पिलाया।

(ब्रह्मपुराण)

इन्हीं महर्षि दधीचिने दक्षके यज्ञमें शिवका भाग न देखकर दक्षको और दूसरे देवताओंको शाप दिया था और उस यज्ञ-मण्डपसे उठकर चले गये थे।

दधीचितनय पिप्पलाद

महर्षि दधीचिके पुत्र पिप्पलाद बड़े होकर पीपलके वृक्षके फलोंसे ही अपना निर्वाह करते थे। इसीसे उनका नाम पिप्पलाद पड़ गया था। समझदार होनेपर उनके मनमें प्रश्न उठा—'मैं वृक्षोंका पुत्र हूँ, तब मानवाकार कैसे हूँ?'

वृक्षोंके अधिदेवताने उन्हें उनके पिताके देह-त्याग और माताके चितारोहणका समाचार दिया। इसे सुनकर वे शोकसे मूर्छित हो गये। सावधान होनेपर देवताओंपर उन्हें बहुत क्रोध आया। उन्होंने गोमतीके तटपर अपने पिताके आश्रमके समीप भगवान शिवके चक्रेश्वर लिंगकी आराधना प्रारम्भ की। उनकी उत्कट आराधनासे जब महेश्वर प्रकट हुए, पिप्पलादने वरदान माँगा—'अपने शत्रुओंका नाश करनेकी शक्ति दें' इससे शिवके नेत्रोंसे भयंकर कृत्या प्रकट हुई। उसका आकार बड़वा (घोड़ी) के समान था। उसने पिप्पलादसे पूछा—'मुझे क्या करना है?'

मेरे शत्रुओंको खा जाओ।' पिप्पलादने आदेश दिया। कृत्या मुखसे अग्निकी लपटें फेंकती स्वर्गकी ओर दौड़ी। देवता, गन्धर्व आदि व्याकुल हो गये। वे त्राहि-त्राहि पुकारते हुए कैलासपर भगवान शंकरकी शरणमें गये। शिवने उन्हें अभयदान दिया और पिप्पलादके समीप आये।

'वत्स! देवताओंके नाशसे भी तुम्हारे पिता लौटेंगे नहीं। इससे त्रिलोकी नष्ट हो जायगी। स्वयं तुम्हारा यह शरीर भी नष्ट हो जायगा क्योंकि शरीरके सब अङ्ग और इन्द्रियोंके अधिदेवता ये इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि ही हैं।' शिवने पिप्पलादको समझाया—'तुम्हारे पिताने देवताओंके हितके लिए ही अपना शरीर त्यागा था। तुम उनके पुत्र होकर पिताके उद्देश्यको नष्ट क्यों कर रहे हो? तुम्हारे प्रताप और भयसे आज देवता स्वर्गसे भ्रष्ट हो गये हैं। दधीचिका पुण्य और तप क्या देव-शत्रु असुरोंको बलवान बनायेगा? जिसके पिताने असुरोंको संरक्षण देनेके लिए शरीर तक दे दिया था, क्या वही अब असुरोंका समर्थक बनेगा? स्वयं असुर बन जायगा? तुम्हें अमरोंकी रक्षा करनी चाहिए।'

'प्रभो ! मुझे क्षमा करें।' पिप्पलादने प्रणत होकर भगवान शिवकी स्तुति की। —'मैं अज्ञानी हूँ। क्रोधने मुझे अन्धा कर दिया था। अमरों-पर मेरा कोई क्रोध नहीं है। यह कृत्या अब शान्त हो जाय।'

कृत्या विलीन हो गयी। भगवान शिव प्रसन्न हो करके पिप्पलादको भक्तिका वरदान देकर कैलास चले गये।

(ब्रह्मपुराण)

एक समय ये महर्षि पिप्पलाद पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करने गये थे। वहाँ उन्होंने अमरण्यकी पुत्री पद्माको देखा। वह युवती थी। उसे देखकर पिप्पलादने उससे विवाह करनेकी इच्छा की। वे उसके पिता राजा अमर-ण्यके समीप गये। राजाने उनकी पूजा की, प्रणाम किया। पिप्पलादने उनसे उनकी पुत्री माँगी। उस समय तक पिप्पलाद वृद्ध हो चुके थे, इसलिए राजा कुछ बोले नहीं। पिप्पलादने कहा—'यदि तुम मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या नहीं दोगे तो तुम्हारा पूरा राज्य भस्म हो जा सकता है।' राजा व्याकुल हो गये। मन्त्रियोंने राजाको समझाया। राजाने उन वृद्ध मुनिको अपनी कन्या प्रदान कर दी। पद्माको लेकर महर्षि पिप्पलाद अपने आश्रम-में आये। अत्यन्त वृद्ध तपस्वी पिप्पलाद क्रोधी स्वभावके थे, किन्तु पद्माने विशुद्ध भावसे उनकी सेवा की। इससे वे सन्तुष्ट हो गये। तपः प्रभावसे ही उन्होंने अपनेको युवा बना लिया और पद्मासे दस पुत्र उत्पन्न किये।

एक बार शनैश्चर पिप्पलादसे मिले। पिप्पलादने उनसे पूछा—शैशवमें ही माता-पितासे मेरा वियोग क्यों हुआ ?'

'इसलिए कि उस समय मेरी साढ़े साती तुमको चल रही थी।' शनिने अट्टहास करके कहा—'यह मेरा प्रभाव है। अब मैं फिर तुम्हारी राशिपर आया हूँ।

'मैं मर्यादा बनाता हूँ, 'जन्मसे सोलह वर्ष तक मनुष्यको शनिकी पीड़ा नहीं होगी।' पिप्पलादने हाथमें जल लेकर कहा—'यदि तुम इस मर्यादाका उल्लंघन करोगे तो भस्म हो जाओगे।' उन परम शैवकी इस मर्यादाका शनि पालन कर रहा है।

(शिवपुराण)

(–:०:–)

नन्दीश्वर

महामुनि शिलाद अन्धे थे। पितरोंने उन्हें स्वप्नमें आदेश दिया—'क्योंकि तुम्हारे कोई भाई नहीं है, हमारी तृप्तिके लिए तुम्हें पुत्र प्राप्त करना चाहिए।'

शिलाद पुत्रकी इच्छासे देवराज इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए कठोर तपस्या करने लगे। उन मुनीश्वरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए। बोले—'वरदान माँगो।'

मुनिने देवराजकी स्तुति की। उनको प्रणाम किया—'मुझे आप अयोनिज मृत्युहीन पुत्र प्रदान करें।'

'मैं तो योनिज मरणधर्मा पुत्र ही दे सकता हूँ।' इन्द्रने स्पष्ट कह दिया—'देवता भी अमर नहीं हैं। कल्पान्तमें देवताओंको भी मरना पड़ता है। जो स्वयं ही अमर नहीं हैं, वे मृत्युहीन पुत्र कैसे दे सकते हैं। अतः इस आशाका त्याग कर दें।'

'देवराज! क्या सचमुच सृष्टिमें अमरत्व कोई वस्तु नहीं है? जो असम्भव है, वह किसी प्राणीके मानसमें क्यों आता है? सर्वेश्वर जिसे कर नहीं सकते, उसे होनेकी वासना मानव-मनमें क्यों जागती है?'

'तुम्हारी बात ठीक है। मनुष्य जो कुछ सोचता या चाहता है, वह असम्भव नहीं है, किन्तु मैं अपनी शक्तिकी बात कर रहा हूँ।' शक्रने स्पष्ट अपनी असमर्थता स्वीकार करके बतलाया—'देवदेव रुद्र चाहें तो तुम्हें अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र प्रदान कर सकते हैं। वे सर्वसमर्थ किसीकी किसी भी इच्छाको पूर्ण कर सकते हैं।'

इन्द्र अदृश्य हो गये। शिलाद फिर तपस्या करने लगे। इतने दीर्घ काल तक उन्होंने तपस्या की कि उनके शरीरके माँसको दीमक चाट गये, केवल अस्थियाँ शेष रह गयीं। उन्होंने निश्चय ही कर लिया था, मुझ अन्धेके लिए जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। पितरोंकी कामना-पूर्ति

हो सकती हो तो उसे अवश्य होना चाहिए, किन्तु मैं मरणधर्मा पुत्र लेकर उसके शोकसे ग्रस्त नहीं होना चाहता हूँ ।

दीर्घ कालके तपसे भगवान शंकर सन्तुष्ट होकर प्रकट हुए । उनके करस्पर्शसे शिलादका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया । वे समाधिसे जागृत हुए । वाल्मीकिके ऊँचे टीलेसे वे अग्निके समान उठे । उन्होंने भगवान शंकरकी स्तुति की और वरदान माँगा—'मैं मरण धर्मसे रहित अयोनिज पुत्र चाहता हूँ ।'

आशुतोष उमाकान्तने वरदान दिया—'मैं ही तुम्हारे यहाँ नन्दीश्वर-के नामसे अयोनिज रूपमें प्रकट होऊँगा ।'

शिव वरदान देकर अन्तर्धान हो गये । शिलाद आश्रम लौट आये । कुछ समयके पश्चात् महामुनि शिलाद अपनी कुटियाके प्रांगणमें यज्ञ करनेके लिए कुण्ड खोद रहे थे । भगवान शंकरके करस्पर्शके कारण उन्हें जो स्वस्थ शरीर मिला था, उसमें उनके नेत्र भी स्वस्थ हो चुके थे । वे अब अन्धे नहीं थे । उस कुण्डसे प्रलयाग्निके समान एक ज्योतिर्मय पुरुष प्रकट हुआ । उसके प्रकट होते ही देवता पुष्प-वृष्टि करने लगे, आकाशमें बाद्य बजने लगे । वह पुरुष चतुर्भुज था, जटामुकुटी था, त्रिशूलधारी था । उसके करमें त्रिशूलके अतिरिक्त गदा और घण्टा थे । वह वज्रदेही, हीरककुण्डली, बालक मेघके समान ध्वनि करने लगा । शिलादने कहा— तुमने प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिए तुम्हारा नाम नन्दी होगा ।

नन्दीश्वरने मानव स्वरूप धारण किया । शालंकायन-तनय महामुनि शिलादने पुत्रका सविधि जातकर्म सम्पन्न किया । पाँच वर्षकी आयुमें ही नन्दीने सम्पूर्ण वेद-वेदांगका अध्ययन कर लिया । जब वे सात वर्षके थे, शिलादसे मिलने उनके मित्र वरुण और मित्रनामक मुनि शिलादके आश्रम-में आये । बालकको देखकर वे बोले—'तुम्हारा यह पुत्र अद्भुत है, किन्तु अब इसकी आयु केवल एक वर्ष शेष है ।'

'क्या ?' शिलाद आश्चर्य, शोक, चिन्तासे स्तब्ध रह गये । पुत्रको गोदमें लेकर वे रुदन करने लगे । मित्र और वरुण वहाँसे चले गये । बालक-ने पितासे पूछा—'आप इस प्रकार रुदन करते हुए दुःखसे क्यों काँप रहे हैं ।'

'मैं कहाँ जाऊँगा ? कौन मेरे दुःखको दूर करेगा ?' शिलाद कातर स्वरमें बोले—'तुम्हारी अल्पायुके कारण मैं स्तब्ध हूँ ।'

मेरी मृत्यु हो नहीं सकती। आप निश्चिन्त रहें। मनुष्य, यक्ष, देव, दानव और काल भी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता।' बालकने स्थिर स्वरमें कहा--'मैं यह बात शपथपूर्वक कहता हूँ। आप शोक त्याग दें।

'मित्र और वरुण सर्वज्ञ हैं। उनकी बात निराधार नहीं हो सकती।' शिलाद बोले—'तुम किस तप, ज्ञान अथवा इष्ट बलसे निश्चित मृत्युको टाल सकोगे ? मेरे दुःखको कैसे दूर करोगे ?'

'तपस्या, ज्ञान, योग या विद्या अमरत्व नहीं दे सकते--यह मैं जानता हूँ।' बालकने कहा--'तपस्वियोंको, ज्ञानियोंको, योगियोंको मरना पड़ता है— यह बात सभी समझते हैं, किन्तु आप जानते हैं, भगवान महेश्वर मृत्युञ्जय हैं। मैं उनके चरणोंका आश्रय लेकर मृत्युपर विजय प्राप्त करूँगा। आप मुझे इसके लिए प्रयत्न करनेकी आज्ञा दें।'

शिलादने अनुमति दे दी। पिताको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके नन्दीश्वर वनमें चले गये। वे वहाँ त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, दशभुज, पञ्चमुख सदाशिवका ध्यान करते हुए भगवान शंकर के मृत्युञ्जय मन्त्रका जप करने लगे। उन्होंने आहार, जल, निद्रा सब त्याग दिया था। उनकी चित्तवृत्ति अखण्डरूपसे महेश्वरमें लगी हुई थी। उनके तपसे उमा-महेश्वर सन्तुष्ट होकर प्रकट हुए। प्रभुने बालकको सप्रेम देखा। सस्नेह बोले— 'वत्स ! वरदान माँगो।'

नन्दीने प्रणिपात किया। वे उमा-महेश्वरके सम्मुख भूमिपर प्रणत हो गये। आशुतोषने दोनों हाथोंसे बालकको बलपूर्वक उठाकर खड़ा किया। वे उमाकी ओर देखकर नन्दीसे बोले--'वत्स ! तुम्हें मृत्यु भय कहाँ है ? तुम तो मेरे समान हो। मैं ही एकादशम् रुद्रके रूपमें इस तुम्हारे रूपसे व्यक्त हुआ हूँ। तुम अजर-अमर दुःखरहित मेरे प्रिय रहोगे। तुममें मेरे समान ही बल रहेगा।'

भगवान महादेवने अपनी कुशेषमयी मुण्डमाला नन्दीके गलेमें डाल दी। उसे पहनते ही नन्दी त्रिनेत्र दशभुज होगये। शिवने अपनी जटाके जलसे उनका अभिषेक किया—'आजसे तुम नन्दीश्वर हो।' [१]

---

[१] शिवके वृषभका नाम नन्दी है और ये शिलादपुत्र एकादशम् रुद्र शिवके सर्वश्रेष्ठ परिकर नन्दीश्वर हैं।

शिलादके ऊपर भगवान शंकरने अपनी जटासे निकला जो जल छिड़का था, उससे पाँच नदियोंकी उत्पत्ति हुई— जटोदका, त्रिस्तोतसा, वृषभध्वनि, स्वर्णोदका और जम्बू। वहाँ भगवान शंकर जटेश्वर लिंगके रूपमें नित्य विराजमान हैं।

सदाशिवने पार्वतीसे कहा— 'यह नन्दीश्वर आजसे मेरे समस्त गणोंमें प्रमुख हुआ। गणप्रमुख पदपर मैंने इसका अभिषेक किया।'

उमाने भगवान शंकरसे कहा— 'देवेश! मैंने आपसे कभी कुछ याचना नहीं की है। इस अवसरपर आप मुझे अपना यह प्रिय गणेश्वर प्रदान कर दें।'

आशुतोषने 'एवमस्तु' कह दिया। पार्वती बोलीं— 'आजसे यह मेरा प्रिय पुत्र होगा। उन्होंने गणोंका स्मरण किया। शंकरजीने उन सबके आनेपर उनको सूचित कर दिया— 'यह नन्दीश्वर आजसे तुम सबका अधिपति होगा। यह तुम सबका स्वामी है।' गणोंने इसे स्वीकार किया। उन्होंने और देवताओंने आकर नन्दीश्वरकी स्तुति की।

ब्रह्माकी आज्ञासे मरुतकी कन्या सुयशासे नन्दीश्वरका विवाह हुआ। महालक्ष्मीने इस अवसरपर नव-वधूको आभरण आदि प्रदान किये। उमाने अपना दिव्य कण्ठहार प्रदान किया, श्वेत वृषभ दिया और सिंह-ध्वजा दी। भगवान शंकरने भी नित्य समीप रहनेका वरदान दिया। नन्दीके पिता शिलादको भी अपना गणाध्यक्ष बनाया। भगवती पार्वतीने कहा— 'वत्स! इस अवसरपर तुम कोई वरदान माँगो।'

नन्दी— 'आपने और महेश्वरके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे।'

देवीने नन्दीश्वरकी पत्नी सुयशाको भी वरदान माँगनेको कहा— उसने कहा— 'स्त्रीका परमाराध्य पति होता है। आप यदि प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर प्रदान करें कि आपके इस पुत्रमें सर्वथा मेरी प्रीति रहे।'

(शिवपुराण)

—:०:—

गोकर्ण--शिवका मृगावतार

मन्दर पर्वतके उत्तरमें अत्यन्त मनोरम मुञ्जवान गिरि है। भगवान शंकर नित्य सन्निहित रहते हैं। एक कल्पमें त्रेतामें नन्दी नामके मुनि शिवको सन्तुष्ट करनेके लिए वहाँ दारुण तप कर रहे थे। आशुतोष उनपर सन्तुष्ट हुए। दिव्य चक्षु देकर उन्होंने उनको अपने परम स्वरूपका दर्शन दिया। सहस्रादित्य संकाश, ज्वालमालावृत, जटाजूटधारी, चन्द्रशेखर, प्रदीप्त त्रिलोचन, शतोदर, सहस्र बाहु-चरण, सहस्राक्षि, शिरोमुख, अणोरणीयान्, वृहतां बृहत्तारम्, रुद्राक्ष मालालंकृत कमण्डलु कर, सिंहचर्माम्बरधर, व्याल यज्ञोपवीत प्रभुका दर्शन करके नन्दीने उनकी स्तुति की। वरदान माँगा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी परमोत्तम भक्ति प्रदान करें और मेरी तपस्यामें विघ्न उपस्थित न हो।'

'वत्स ! अब तुम्हें तपसे क्या प्रयोजन ? अत्यन्त कठोर तप तुमने पूरा कर लिया है। मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारी तपस्यासे त्रिभुवन संक्षुब्ध है। अत: अब तपका त्याग कर दो।' भगवान शंकरने कहा—'अब तो महेन्द्र आदि देवता तुम्हारे दर्शन करने आवेंगे। तुम अजर, अमर, अधिकारी, सुरासुर सबके लिए अतर्क्य प्रभाव, मेरे समान ऐश्वर्यवान, भुवनमें सबके पूज्य हो गये। तुम्हारा शरीर जन्म-मरण रहित रहेगा। अबसे तुम्हारा नाम नन्दीश्वर हुआ। तुम मेरे गणेश्वर होकर मेरे पार्षदोंमें प्रमुख रहोगे। तुममें और मुझमें अन्तर नहीं है। कैलाशमें मेरे दक्षिण द्वारपर तुम प्रतिहारी रहोगे। वाम द्वारपर महाकाल रहेगा।'

'अब यहाँ सब इन्द्रादि देवता आने वाले हैं। उन्हें पता है कि मैं यहाँ हूँ।' लीलामय शिवने कहा—'वे मुझसे वरदान चाहते हैं। तब मैं यहाँ नहीं मिलूँगा तब वे अनेक प्रकारके साधन, नियम, संयम और तप करेंगे। ये भोगप्रिय देवता साधनमें लगें, इसलिए मैं यहाँसे अदृश्य हो रहा हूँ। आजसे तुम देवता, ऋषि, मुनि दानव, मानव मेरे सभी भक्तोंकी रक्षा करो। उनका ध्यान रखो। हिमालयके उस पार सिद्धादि सेवित श्लेष्मातक नामक पन्नगोत्तम रहता है, वह तप:दग्ध किल्विष मेरा दर्शन करना चाहता है। उसपर मुझे अनुग्रह करना चाहिए। उस बनका नाम उसीके

नामपर पड़ गया है। मैं वहाँ जा रहा हूँ, किन्तु तुम देवताओंको मेरा यह पता मत बतलाना।

भगवान शंकर अन्तर्हित हो गये। वे उस तपस्वी नागके यहाँ मृग रूप धारण करके गये और वहीं विचरने लगे। नन्दी दिव्यदेह, चतुर्भुज, त्रिनयन, सर्वकाय हो गये थे। उन्होंने त्रिशूल, परिघ, दण्ड, पिनाक और मौञ्जी मेखला धारण की थी। जब उन्होंने त्रिविक्रमके समान ब्रह्माण्डको नापनेके लिए अपना पद उठाया, तब देवता सशंक हो गये। उन्होंने इन्द्रको जाकर यह समाचार दिया। इन्द्र चिंतित हुए—'निश्चित रूपसे यह महेश्वर उमाकान्तसे वरदान प्राप्त उन्हींके समान प्रभावशाली उनके सदृश रूपवाला कोई अतुल बलशाली है। यह महासत्व अपरिमित अपराजय लगता है। अतः जब तक यह स्वर्गपर अधिकार नहीं कर लेता, उससे पूर्व ही इस महेश्वरको प्रसन्न करें।'

देवताओंसे यह कहकर इन्द्रादि सभी देवता मौञ्ज पर्वतार पहुँचे। ब्रह्मा और विष्णु भी उनके साथ थे। नन्दीश्वरने भगवान् विष्णुकी स्तुति की—'आपके दर्शनसे मैं कृतकृत्य हो गया। पापहारी, मेरे स्वामी हरने मुझे अपना गणत्व प्रदान किया है। अनेक वरदान दिये हैं। आप मुझपर अनुग्रह करें।' श्रीहरिने नन्दीश्वरको अंकमाल दी। देवताओंने पूछा—'हम उन वरद परम कृपालु कपालीका दर्शन करना चाहते हैं। आपपर प्रसन्न होकर वे यहाँ प्रकट हुए थे। अब उनके दर्शन कहाँ होंगे?'

'मुझे अपने दर्शनसे कृतार्थ करके महेश्वर यहीं अन्तर्हित हो गये।' नन्दीश्वरने कहा—'आप सब उनका अन्वेषण करें।'

इन्द्रादि देवता अपने विमानोंमें बैठकर शिवका अन्वेषण करने निकले। गणेश, नारद, तुम्बरू, कार्तिकेय भी इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, वायु आदि लोकपालोंके साथ इस अन्वेषणमें सम्मिलित हो गये। नन्दीश्वर भी साथ हो गये। उन्होंने कहा—मैंने इसी पर्वतपर शिवकी आराधना की थी। यहीं मुझपर मेरे स्वामीने अनुग्रह किया है। अब वे अदृश्य हो गये हैं। मैं भी उनके दर्शन करना चाहता हूँ। अतः मैं भी आपके साथ चल रहा हूँ।'

देवता, स्वर्ग, ब्रह्मलोक, नागलोक, पृथ्वी सब कहीं ढूँढ़ आए; उन्हें कहीं भी शिवका दर्शन नहीं हुआ। सब भयभीत हुए। भगवान ब्रह्मासे उन्होंने प्रार्थना की—'हमने त्रिलोकी देख लिया। आशुतोष गंगाधर कहाँ हैं, हमें पता नहीं लगा।

'कोई ऐसा स्थान है जो अब तक नहीं देखा गया हो ? ब्रह्माजीने पूछा।

बहुत सोचनेपर देवताओंको स्मरण आया, हम श्लेष्मातक वनमें नहीं गये हैं ।

ब्रह्माजीने कहा—'आओ, वहाँ चलें ।'

सब देवता उस वनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने विमानों और रथोंका त्यागकर दिया। ब्रह्म और इन्द्रको आगे करके सबने उसमें प्रवेश किया। कन्दराएँ, शिखर, कुञ्ज आदि ढूंढते हुए उनको मुक्ताचूर्णके समान उज्वल बालुकापर इधर-उधर घूमती हुई एक कन्या दृष्टि पड़ी। उस अचिन्त्य सुन्दरीको देखकर देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा - 'यह कौन हैं ?'

'मैं भी इसे देखकर पहले चकित हो गया था।' ब्रह्माजीने कहा— 'सृष्टिके आदिमें मैं उत्पन्न हुआ। यह मेरी रचना तो नहीं है।' तब मैंने एक मुहूर्त तप ध्यान किया। तुम लोग अपने अन्वेषणमें लगे रहे, इसलिए तुमने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया। मैंने ध्यान करके यह जाना है कि निश्चय ही ये शैलेन्द्रतनया विश्वेश्वरी उमा हैं।'

'भगवती पार्वती यहाँ हैं तो भगवान विश्वनाथको भी यहीं कहीं होना चाहिए।' देवता आश्वस्त हुए। उच्चशिखिरपर चढ़कर वे इधर-उधर देखने लगे। मृगोंके यूथके मध्य उनके रक्षकके समान एक अद्भुत मृग उनको दिखायी पड़ा। वह एकशृङ्ग, एकचरण, तप्तहाटककान्ति, सुन्दर मुख, त्रिनेत्र, दाँत, पीठपर श्वेत बिन्दु भूषित, पुष्ट बिम्बोष्ठ, रक्त-जिह्वा अद्भुत मृग देखकर देवताओंको निश्चय हो गया—'इस रूपमें लीलामय महेश्वर ही हैं।' सभी देवता उस मृगको पकड़ने दौड़े। इन्द्रने दौड़कर मृगका शृङ्गाग्र पकड़ा। ब्रह्माने एक शृङ्गका मध्य तथा केशवने शृङ्गका मूल पकड़ा। शृङ्ग टूटकर तीन टुकड़े हो गया। जिसने जो भाग पकड़ा था, उसके हाथोंमें रह गया। शृङ्ग रहित मृग अदृश्य होगया।

'देवताओ ! मुझे अब सशरीर नहीं पा सकते हो।' आकाशवाणी हुई। 'मैं तो सशरीर तुम्हारे सामने था, किंतु तुम केवल शृङ्ग पकड़कर सन्तुष्ट हो गये, अतः वंचित हो गये। अब तुम इसी मेरे सींगके टुकड़े न्याय-पूर्वक स्थापित करो। यह स्थान सर्वतीर्थमय हो जायगा। मैं फिर स्वयं

नेपालमें दीप्ततेजोमुख शरीर चतुर्मुख रूपमें प्रकट होऊँगा। वहाँ मेरा नाम शरीरेश होगा।'

तीनों शृङ्ग खण्ड वहीं स्थापित करके देवता चले गये। देवताओंके चले जानेपर भाइयों सहित वहाँ रावण आया। उसने उग्र तपस्या करके वहाँ स्थापित उन शृङ्गोंमें-से एककी आराधना की। भगवान शंकर प्रकट हुए। उनसे रावणने त्रिलोक-विजयकी प्रार्थना की।

रावणके साथ त्रिलोक-जयमें उसका पुत्र मेघनाद साथ था। वह इन्द्र द्वारा स्थापित शृङ्गाग्रको उस वनसे उखाड़कर लंकाके लिए चल पड़ा। दक्षिण समुद्र तटपर उस शृङ्ग लिंगको भूमिमें स्थापित करके स्नान-सन्ध्या करने लगा। उठनेपर पुन: वह उसको उखाड़ नहीं सका। वह वज्र सदृश वहीं जम गया। अत: मेघनाद उसको वहीं छोड़कर लंका चला गया। वह इन्द्र द्वारा गृहीत शृङ्गाग्र दक्षिणमें गोकर्ण तीर्थ है। देवताओंकी कृपासे शृङ्गका मध्य भाग जो ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित था, वहाँसे भारतमें आया। वह गोला-गोकर्णनाथमें इसी नामसे स्थापित है। भगवान हरिने भारत-भूमिमें अपने द्वारा स्थापित शृङ्गमूल जहाँ स्थापित किया वह अब शृङ्गेश्वर-नाथ कहा जाता है। यह क्षेत्र बिहारमें है।

(ब्रह्मपुराण)

—×—

लोकपाल वैश्वानर

नर्मदा तटपर नर्मपुरमें शाण्डिल्यगोत्रीय शिवभक्त विश्वानर नामके मुनि रहते थे। वे वेदज्ञ, नियमनिष्ठ, जितेन्द्रिय थे। उनकी पत्नी शुचिष्मतीने अपनी सेवासे पतिको प्रसन्न कर लिया। एक दिन विश्वानरने पत्नीसे कहा—'देवि ! विवाहके बादसे मैंने तुम्हारी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और तुमने मेरी सेवामें अपनेको सुखा डाला है, इसलिए तुम्हें जो अभीष्ट हो वह माँग लो, महेश्वरकी कृपासे तुम्हारी इच्छा मैं पूर्ण कर सकता हूँ।'

'स्वामिन् ! आपकी अनुकम्पासे मुझे सब कुछ प्राप्त है। आप प्रसन्न हैं, मेरे लिए यह स्वर्गसे भी अधिक सुखकी बात है किंतु मेरी प्रबल अभिलाषा है, मुझे भगवान महेश्वरके समान पुत्र प्राप्त हो। स्त्रीका परमाराध्य पति होता है। अतः यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह वरदान दें।'

विश्वानर स्तब्ध रह गये। सोचने लगे—'इसने तो अत्यन्त दुर्लभ वरदान माँगा है अथवा मेरे इष्टदेव भगवान आशुतोषने ही इसकी वाणीसे यह कहलाया है। उनकी इच्छा पूर्ण हो।'

पत्नीको समझाकर वे तपस्या करने गये। वाराणसी जाकर उन्होंने मणिकर्णिकापर स्नान किया, विश्वेश्वरका दर्शन किया। विनायक, गौरी, काल-भैरव आदि काशीके मुख्य देवताओंका पूजन किया। वहाँके ऋषि-मुनियोंका सत्कार किया। स्थानीय महर्षियोंसे अनुमति लेकर उनसे पूछकर पुत्रदाता वीरेश्वर लिंगका वे अर्चन करने लगे। एक वर्ष तक वे त्रिकाल पूजन करते रहे। चन्द्रकूपके जलसे स्नान करके मासमें केवल एक बार भोजन करते थे। दूसरे वर्ष उन्होंने निराहार रहकर कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। दूसरा वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन वे गंगास्नान करके वीरेश्वर लिंगका पूजन करने आये तो उन्होंने देखा कि लिंगमूर्तिके मध्यमें विशाल नेत्रोंवाला, विभूतिभूसित, अरुण अधर, पीली जटाओं वाला आठ वर्षका एक बालक हँसता हुआ देख रहा है। आनन्दके कारण मुनिके

रोमाञ्च हो आया। 'नमोस्तु' केवल इतना ही वे बार-बार चिल्लाने लगे। पीछे सम्हलनेके बाद वे भगवान शिवकी स्तुति करनेमें समर्थ हो सके।

'मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ।' बालकने कहा—'तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, माँग लो।'

'आप सर्वज्ञ हैं। अन्तर्यामी हैं।' मुनिने प्रार्थना की 'मुझे याचना करनेको क्यों विवश करते हैं। मेरे हृदयकी बात आप जानते हैं। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।'

बालक हँसा—'तुम्हें शुचिष्मतीसे निश्चय ही पुत्र प्राप्त होगा। मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा। तुम्हारे यहाँ मेरा नाम गृहपति वैश्वानर होगा। देवता भी मुझसे प्रेम करेंगे।'

विश्वानर वरदान पाकर अपने घर लौट आये। उनकी पत्नी उनकी सफलतासे आनन्दित हुई। समयपर उसे गर्भ रहा। शुभ लग्नमें चन्द्रमुख तेजोमय बालककी उत्पत्ति हुई। देवता, मुनि, गन्धर्व, ऋषि, नाग सब उसके जन्मके समय आये। विश्वानरने पुत्रका नामकरण किया। उसका नाम गृहपति रखा गया। उचित समयमें उसके सब संस्कार किये गये। चतुर्थ मास गृहपतिका निष्क्रमण संस्कार हुआ, छठे मास अन्नप्राशन हुआ। समयपर चूड़ा कर्म हुआ। श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध हुआ। पाँचवें वर्ष यज्ञोपवीत हुआ। इस बालकने जो भगवान शिवके अंशसे उत्पन्न हुआ था, एक वर्षमें सम्पूर्ण अंगोंके साथ वेदोंका अध्ययन कर लिया था। उसे सब विद्याएँ प्राप्त हो गयीं।

गृहपति नौ वर्षका था जब देवर्षि नारद विश्वानरकी पर्णशालामें पधारे। विश्वानरने देवर्षि नारदको प्रणाम किया, उनकी अर्चना की। गृहपतिने भी नारदको प्रणाम किया। देवर्षिने उसे गोदमें बैठाकर उसका हाथ देखा, जिह्वा, तालु आदि देखा। विश्वानरसे उन्होंने कहा—'तुम्हारा पुत्र अलौकिक है, किन्तु अबसे बारहवें महीने इसे अग्नि और विद्युतसे भय है।'

पत्नी सहित विश्वानर अत्यन्त व्याकुल हो गये। देवर्षि तो चले गये थे। ये दोनों हाहाकार करने लगे, किंतु गृहपति हँसा। 'आप शोक क्यों

करते हैं ? आपकी चरणधूलिसे रक्षित मुझे काल भी स्पर्श नहीं कर सकता। मैं मृत्युको पराजित करूँगा। मुझे सदाशिवकी आराधना करनेकी अनुमति दें।'

बालककी इस निष्ठा और श्रद्धासे माता-पिताको आश्वासन मिला। दोनोंकी आज्ञा लेकर उनकी प्रदक्षिणा करके गृहपति वाराणसी आ गया। शुभ दिनमें उसने भगवान शिवके लिंगमूर्तिकी स्थापना की। प्रतिदिन वह १०८ कलश गंगाजलसे उस मूर्तिका अभिषेक करता था, नील-कमलकी माला उन्हें अर्पित करता था। एक वर्ष तक वह कठोर तप करता रहा। गृहपतिकी तपस्याका १२वाँ महीना पूर्ण हो रहा था। देवर्षि नारदके वचनको सत्य करनेके लिए ऐरावतपर बैठे वज्रहस्त इन्द्र वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'वरदान माँगो।'

'देवेन्द्र ! मैं आपको जानता हूँ।' गृहपतिने विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके उनका पूजन किया। 'आप यहाँ पधारे, यह आपकी परम अनुकम्पा किंतु मुझे आपसे तो कोई वरदान नहीं लेना है। मेरे स्वामी, मेरे आराध्य भगवान महेश्वर ही मुझे वरदान देंगे।'

'मैं देवराज हूँ, त्रिभुवनका स्वामी हूँ। तुम यह लड़कपन छोड़ो। मूर्खता मत करो।' इन्द्रने कहा—'तुम्हें जो कुछ अभीष्ट हो, मुझसे माँग लो।'मुझसे श्रेष्ठ दूसरा कोई देवता नहीं है।'

'आप स्वेच्छापूर्वक अमरावती पधारें।' गृहपतिने अञ्जलि बाँधकर कहा—'भगवान उमाकान्तको छोड़कर मैं और किसीसे कोई प्रार्थना नहीं करूँगा। पाकशासन ! मैं एकमात्र महेश्वरका सेवक हूँ। दूसरे किसीकी कृपा मुझे नहीं चाहिए।'

इन्द्रके नेत्र लाल-लाल हो गये। उन्होंने बालकको भयभीत करनेके लिए वज्र उठाया। उनके वज्रसे बिजली कड़कने लगीं, ज्वाला उठने लगी। यह देखकर गृहपतिको देवर्षि नारदके वाक्य स्मरण हो आये। वे अत्यन्त व्याकुल हो गये और भयके कारण मूर्छित हो गये। इसी क्षण ऐरावत महावृषभमें बदल गया। इन्द्रके स्थानपर वहाँ शशांकशेखर चन्द्रमौलि खड़े थे। देवी पार्वती उनके समीप उपस्थित थीं। उन्होंने अपने करस्पर्शसे

बालकको सचेत किया। बोली—'वत्स ! उठो और मेरी ओर देखो। तुम्हारा कल्याण हो।'

गृहपति उठा। उसने देखा—कोटि-कोटि सूर्यसमप्रभ उमा-महेश्वर उसके सम्मुख खड़े हैं। वृषभ पीछे है। वे कर्पूरगौर गजचर्माम्बरधारी शिव सस्नेह कह रहे हैं—'बेटा ! इन्द्रके रूपमें मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली है। भय मत करो। मेरे आराधकके समीप इन्द्र या यम किसीमें भी आनेका साहस नहीं है। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ—तुम अग्निपदके भागी हो। देवताओंको भी वरदानके लिए तुम्हारी उपासना करनी होगी। तुम सब प्राणियोंके प्रणम्य रहोगे। धर्म तथा इन्द्र (दक्षिण और पूर्व) दिशाके मध्य-कोणका नाम अब तुम्हारे नामसे होगा। उसे आग्नेय कहा जायगा। तुम इसी दिशाके स्वामी हो। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग विग्रह अबसे अग्नीश्वर कहा जायगा। इसके पूजकको अग्नि, विद्युत आदिसे भय नहीं होगा।

भगवान शंकर अन्तर्हित हो गये। गृहपतिने माता-पिताको वहीं बुला लिया। देवताओंने अग्नीश्वरके पदपर दिक्पतिका अभिषेक किया। तबसे गृहपति अग्निकोणके लोकपाल वैश्वानर हुए।

(शिवपुराण–स्कन्दपुराण)

महर्षि दुर्वासा

सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके मानस पुत्र महर्षि अत्रि अपने कमलोद्भव पिता-की आज्ञासे पुत्र प्राप्तिके लिए तपस्या करने लगे थे। उनका संकल्प था—जो कोई भी सृष्टिमें इसका सर्वोपरि स्वामी हो, वह मुझे अपने समान पुत्र प्रदान करे।'

उस समय तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और बहुतसे देवता परस्पर मिलते-जुलते थे। देवताओंको भी इस बातका निश्चय नहीं हुआ था कि त्रिदेवोंमें कौन श्रेष्ठ हैं। अत्रिको तपस्यासे प्रसन्न होकर उनके सम्मुख ब्रह्मा,

विष्णु और महेश—तीनों ही प्रकट हुए। अत्रिने उनकी स्तुति की। आश्चर्यसे पूछा—'मैंने तो किसी एक सृष्टिके परमाधीश्वरकी प्राप्तिके लिए तप किया था। आप तीनों यहाँ कैसे पधारे हैं ? आपमें-से सर्वश्रेष्ठ कौन है ?'

त्रिदेवोंने कहा—'हम तीनों एक ही के तीन स्वरूप हैं। जो एक परम तत्व है, वह निर्गुण, निराकार, अव्यक्त, अचिन्त्य हैं किन्तु जब वह सगुण साकार होता है, इन तीनों रूपोंमें ही व्यक्त होता है। हम तीनोंमें श्रेष्ठ-कनिष्ठ कल्पना निराधार है, अनुचित है। आप सत्यसंकल्प हैं। आपने दीर्घकाल तक तप किया है। आपका संकल्प अन्यथा नहीं होना चाहिए, इसलिए हम तीनों यहाँ आये हैं। हम तीनोंके ही अंशसे आपको तीन पुत्र प्राप्त होंगे।'

इस वरदानके फलस्वरूप ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा. विष्णुके अंशसे दत्त, जिन्हें अत्रिपुत्र होनेके कारण दत्तात्रेय कहा जाता है अर्थात् आत्रेयदत्त और शिवके अंशसे दुर्वासा प्रकट हुए। (श्रीमद्भागवत)

द्वितीय कथा—दुर्वासाका अर्थ होता है बुरे वस्त्र वाला। मलिन, कटे-फटे वस्त्रोंमें रहनेवाला अवधूत।

ब्रह्माके मानसपुत्र अत्रि अपनी परम साध्वी पत्नी अनुसूयाके साथ एकान्तमें बैठे थे। उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'पुत्रके द्वारा मनुष्य पुण्य-लोकोंको प्राप्त करता है। गृहस्थका साफल्य पुत्र-प्राप्ति ही है। सत्पुत्र अकालमें, दीनतामें, रुग्ण होनेपर तथा वृद्धावस्थामें पिताका पालन करता है।'

देवी अनुसूयाने कहा—'आपकी आज्ञा हो तो मैं पुत्र-प्राप्तिके लिए तपस्या करूँ।'

महर्षिने देवी अनुसूयाको आज्ञा दे दी। अनुसूयाने नर्मदाके तटपर जाकर केवल पत्ते खाकर रहना प्रारम्भ किया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—तीनों एरण्डी-नर्मदा संगमपर उनकी तपस्थलीमें अनुसूयाके समीप आये।

अनुसूयाने तीनों अतिथियोंको प्रणाम किया। उनकी परिक्रमा की। बोली—'मेरा जन्म, मेरी तपस्या आज सफल हुई। आप तेजस्वी ब्राह्मणोंने यहाँ पधारकर मुझे कृतज्ञ किया। आप लोग आज कन्द, मूल, फल नैवेद्यके रूपमें ग्रहण करें।'

'हम तुम्हारे दर्शनसे ही परितृप्त है।' तीनोंने कहा—'देवि ! तुम तप क्यों कर रही हो ?'

'तपसे मनुष्यके मनोरथकी प्राप्ति होती है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है।' अनुसूयाने सविनय उनसे कहा—'मैं पतिकी आज्ञासे यहाँ तप कर रही हूँ।'

तीनों ही देवता अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—'देवि ! आप वरदान माँगें। अब आपको तप करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

अनुसूयाने माँगा - 'आप तीनों ही मेरे पुत्र होकर उत्पन्न हों।'

'देवता गर्भवास नहीं करते।'—तीनोंने कहा—'हम तुम्हारे अयोनिज पुत्र होंगे।' यह कहकर वे चले गये। अनुसूया महेन्द्र पर्वत (चित्रकूट) पर पतिके समीप चली गयीं। उन्होंने महर्शि अत्रिको, जो कुछ हुआ था, निवेदन किया। महर्षिने उनकी प्रशंसा की। वे आनन्दमें भरकर पतिके मुखकी ओर देख रही थीं। अत्रि भी उन्हींके मुखकी ओर देख रहे थे। इस परस्पर दृष्टि विनिमयसे अत्रिके ललाटसे एक शुभ्र ज्योतिर्मण्डल प्रकट हुआ। उसके मध्य पुरुष रूपधारी ब्रह्माजी प्रकट हुए। फिर दो क्षणमें प्रभामण्डलके मध्यसे महेश प्रकट हुए और अन्तमें उस ज्योतिर्मण्डलसे विष्णु प्रकट हुए। ब्रह्मा अपने अंशसे चन्द्रमा बन गये। विष्णु अपने अंशसे दत्तके रूपमें प्रकट हुए और रुद्रने दुर्वासा रूप धारण किया। (स्कन्दपुराण)

एक तीसरी कथा भी अत्रिके यहाँ त्रिदेवोंके व्यक्त होनेकी प्रसिद्ध है—

एक दिन ब्रह्म लोकमें देवी सावित्रीके समीप पार्वती और लक्ष्मी भी गयी थीं। तीनोंमें ही यह विवाद चल रहा था कि उनमें-से सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता कौन है। इसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। उन्होंने तीनोंको ही प्रणाम किया। ब्रह्माजीके मानस-पुत्र होनेके कारण तीनोंको ही वे माताका सम्मान देते थे। सहसा सावित्रीने उनसे पूछा—'वत्स ! हम तीनोंमें अथवा त्रिभुवन-में सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता कौन सी है—क्या तुम निश्चयपूर्वक इसे बतला सकते हो ?'

देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर विनम्रतापूर्वक कहा—'मातः ! आप क्षमा करें। त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता महर्षि अत्रिकी अर्धांगिनी देवी अनुसूया हैं। उनके पातिव्रत्यकी समता सम्भव नहीं है।'

देवर्षि नित्य परिव्राजक हैं। वे कहीं जमते नहीं हैं। अपनी बात कहकर वे तो चले गये, किन्तु इससे तीनों देवियोंको ही बहुत आश्चर्य हुआ। उनको यह बात बहुत अपमानजनक लगी कि उनसे बड़ी पतिव्रता उनकी कोई पुत्रवधू है। महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं, अतः अनुसूयाको वे अपनी पुत्रवधू ही मानती थीं। तीनोंने ही निश्चय किया 'इसकी परीक्षा की जानी चाहिए। इसमें कोई अनौचित्य नहीं है कि हमारे स्वामी वहाँ जाकर उसकी परीक्षा करें।'

लक्ष्मी और पार्वती अपने लोकोंको चली आयीं। तीनोंने अपने पतियोंसे आग्रह किया कि वे चित्रकूट जाकर अनुसूयाकी परीक्षा करें। तीनों ही लीलामय हैं। तीनोंको इस विनोदमें कोई बाधा नहीं दीखती थी। अतः ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों अपने लोकोंसे चले। मार्गमें ही तीनों मिल गये। ब्राह्मणके वेशमें तीनों अत्रिके आश्रममें पधारे। महर्षि अत्रि उन दिनों तपोलीन थे। देवी अनुसूया अकेली वहाँ निवास करती थीं। त्रिदेवोंने मध्याह्नकी अतिथि-बेलामें पहुंचकर अनुसूयासे कहा – 'हम क्षुधातुर हैं, किंतु हमने एक नियम बना रखा है। हमको सर्वथा निरावरण वस्त्रहीन ही भिक्षा दे सकता है। आवरणका आडम्बर व्यक्ति जिस लज्जाकी हीन मनोवृत्तिसे धारण करता है, वह उसकी भिक्षाको अशुद्ध बना देती है।'

अतिथि आये और वह भी अतिथि बेलामें आये। उन्हें निराश करके लौटाया नहीं जा सकता। गृहस्थके यहांसे अतिथि निराश लौट जाय तो उसके समस्त पुण्योंका क्षय हो जाता है। एक ओर जहाँ यह धर्म था, दूसरी ओर पतिव्रताके लिए पतिके अतिरिक्त किसी भी पुरुषके सम्मुख निरावरण उपस्थिति उसके पातिव्रत्यके किसी भी प्रकार अनुकूल नहीं हो सकती थी। इस धर्मसंकटमें अनुसूयाने अपने पतिके चरणोंका ध्यान किया। पतिव्रताके लिए पति ही परमात्मा होता है और उस परम प्रकाशसे एकीभूत मनोवृत्तिमें जो प्रकाश प्राप्त होता है उसमें ऐसी कोई समस्या त्रिभुवनमें नहीं है जिसका समाधान न प्राप्त हो सके।

अनुसूयाको प्रकाश प्राप्त हो गया। वह सस्मित बोलीं—'यदि मेरी अपने परमाराध्य पतिमें सच्ची प्रीति है तो उनके प्रभावसे आप तीनों सद्यः जात शिशु हो जायँ।'

त्रिदेव सद्योजात शिशु हो गये। अब माताके लिए नवजात बालकों-को निरावरण दुग्धपान करानेमें कोई बाधा नहीं है। महर्षि अत्रि तपोनिवृत्त

होकर जब आश्रममें आये, अनुसूयाने उनकी अर्चा करके सहास्य उन्हें सूचित कर दिया—'आपके आश्रममें ये विप्रवेशमें त्रिदेव पधारे थे। आपके चरणों-की कृपासे मैंने इन्हें पुत्र बना लिया है और अब ये तीनों आपके कुमार हैं।'

लक्ष्मी, पार्वती और सावित्री— तीनोंको ही बहुत आश्चर्य था। उनके पतियोंको लौटनेमें बहुत अधिक विलम्ब हो गया था। वे उनको ढूँढ़ने एक दूसरेके लोकोंके लिए चलीं तो मार्गमें ही आपसमें मिल गयीं। तीनों एक साथ अनुसूयाके आश्रममें आयीं। वहाँ भी शिशुवेशमें पतियोंको पहचान लेना उनके लिए कठिन था, किन्तु देवियाँ सर्वज्ञा थीं, जो कुछ हुआ था, उन्होंने ध्यान करके ही जान लिया। तीनोंने अनुसूयाके चरण पकड़े— 'देवी! अब हम तीनों आपकी पुत्रवधुएँ हैं। हमपर कृपा करके हमारे इन स्वामियोंको हमें प्रदान करें।'

अनुसूयाने त्रिदेवोंको पुनः उनके स्वरूप प्रदान किये। त्रिदेव अपने अंशोंसे वहाँ उनके पुत्र होकर रहे। इनमें-से रुद्रके अंशसे दुर्वासा, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा और विष्णुके अंशसे दत्त हुए।

महर्षि दुर्वासाने बहुत अधिक स्थानोंपर क्रोध प्रकट किया है। उन्होंने शाप देकर इन्द्रको श्रीभ्रष्ट कर दिया था। अम्बरीषपर इन्होंने कृत्याका प्रयोग किया था। भगवान श्रीरामके स्वधाम पधारनेसे पहले उनके पास जाकर उनको संकटमें डाल दिया था। श्रीकृष्णकी परीक्षा ली थी। इस प्रकार ये क्रोधकी मूर्ति कहे जाते हैं। संहारके देवता रुद्र इस रूपमें प्रकट हुए तो उन नीललोहितका क्रोध इस रूपमें अभिव्यक्त होता रहे—इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। महत्वकी बात यह है कि दुर्वासाके क्रोधने कभी किसीका अकल्याण नहीं किया है। दुर्वासाका क्रोध चाहे जैसा भयंकर हो, उसने सदा कल्याण ही किया है। इस प्रकार दुर्वासा रूपमें वे भगवान शिव प्रलयंकर होकर भी सदाशिव ही रहे हैं।

—: × :—

शुक्राचार्यको संजीवनी विद्या

अंगिरा और भृगु- दोनों ही ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। दोनोंके ही दो-दो पुत्र हुए। इनमें-से अंगिराके पुत्रका नाम बृहस्पति (जीव) और भृगुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम कवि (शुक्र) था। समयपर दोनों बालकोंका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। अंगिरा और भृगुमें मैत्री थी। दोनों महर्षियोंने परस्पर चर्चा की— 'हम दोनोंमें-से एकको इन दोनों बालकोंकी शिक्षाका दायित्व लेना चाहिए जिससे दूसरेको आराधनाका अवसर मिल जाय।'

'अच्छी बात है।' अंगिराने कहा— 'मैं कविको भी अपने पुत्रके समान ही पढ़ाऊँगा। वह मेरे पास सुखपूर्वक रहे।'

भृगुने इसे स्वीकार कर लिया। अपना पुत्र अंगिराको सौंप करके वे आराधना करने चले गये, किन्तु अंगिरा कविकी तीव्र बुद्धिसे सशंक हो गये। उन्हें शीघ्र ही पता लग गया— कवि उनके पुत्र जीवकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और प्रतिभाशाली है। इसलिए वे अपने पुत्रको पृथक् पढ़ाने लगे और कविको पृथक्। कविको वे कम पढ़ाते थे, अपने पुत्रको अधिक। यह क्रम बहुत दिनों तक चला। लेकिन विद्याका बुभुत्सु कवि इससे असन्तुष्ट होकर एक दिन अंगिरासे बोला— 'गुरुदेव! आप मुझे पढ़ानेमें वैषम्य रखते हैं। मुझे आशा नहीं रह गयी है कि आप मुझे सम्पूर्ण विद्याएँ प्रदान करेंगे। अतएव आप मुझे अन्य गुरुके पास जानेकी आज्ञा दें, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

'तुम किसी भी अन्य गुरुकी शरण ले सकते हो।' अंगिराने आज्ञा दे दी। वे समझते थे, कविको और कोई भी गुरु उतनी शिक्षा नहीं दे सकता जितनी वे अपने पुत्र बृहस्पतिको दे लेंगे। कविने निश्चय कर लिया था – पूर्ण विद्याएँ प्राप्त करके ही मैं पिताके पास जाऊँगा। उसने अंगिराको प्रणाम किया और बृहस्पतिसे विदा ली। वहाँसे चल पड़ा। लेकिन उसके मनमें यह प्रबल चिन्ता उठी— 'पूर्ण विद्यादाता गुरु कौन हैं, कौन मुझपर कृपा करेंगे?'

कवि महर्षि गौतमके आश्रमपर आये। उन्होंने महर्षिसे पूछा—'मेरे गुरु कौन हो सकते हैं? जो तीनों लोकोंके गुरु हों, मैं उन्हींके पास जाऊँगा।'

'जगद्गुरु तो भगवान शंकर हैं।' गौतमने कहा— 'तब तुम उन्हीं-की शरण लो।'

गौतमके कहनेसे कविने गौतमी (गोदावरी) के तटपर आकर भगवान शिवका पूजन किया। उनकी स्तुति करने लगे— 'देव ! मैं बालक हूँ। आपके स्वरूपको या आपकी महिमाको जानता नहीं हूँ। गुरुने मुझे त्याग दिया है, मैं असहाय हूँ। मेरा कोई सुहृद् नहीं है। आप अनाथ-नाथ हैं, अशरणशरण हैं— यह सुनकर आपकी शरणमें आया हूँ। विद्याके लिए मैंने आपकी शरण ग्रहण की है। आप मुझ अबोधपर दया करें।'

शुक्रकी निश्छल एकान्तिक भक्तिसे प्रसन्न होकर महेश्वर प्रकट हुए। बोले— 'वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार वरदान माँगो।'

अञ्जलि बाँधकर साश्रुलोचन कविने कहा— 'ब्रह्मादिक ऋषियोंको भी जो विद्या प्राप्त नहीं है, मैं ऐसी विद्याकी आपसे याचना करता हूँ। आप ही मेरे गुरुदेव एवं आराध्य हैं।'

शिवने कविको लौकिक एवं वैदिक विद्याएँ सभी प्रदान कीं। कविने पुनः अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की— 'विद्याओंके और ज्ञानके भी साक्षात् स्वरूप परमाधिष्ठान प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे लिए शेष क्या रहता है। फिर भी मैं मृत प्राणियोंको संजीवित कर देने वाली विद्या चाहता हूँ।'

महेश्वरने कविको संजीवनी विद्या प्रदान की। इसे प्राप्त करके वह पिताके पास लौट आया। दैत्योंने उन्हें अपना गुरु वरण किया। गौतमीके तटपर जहाँ शुक्रने आराधना की थी, उनकी आराधना स्थली शुक्रतीर्थ कहा जाता है। (ब्रह्मपुराण)

शिवपुराणके अनुसार शुक्राचार्यने काशीमें शिवलिंगकी स्थापना करके पाँच सहस्र वर्ष धूनि-धूम्रपान करके तप किया था। उस समय प्रसन्न होकर भगवान शंकर प्रकट हुए थे। संजीवनी विद्याके अतिरिक्त उन्होंने शुक्राचार्यको यह वरदान भी दिया था— 'आकाशमें तुम सबसे उज्वल ग्रह बनोगे। जो तुमको सम्मुख करके यात्रा करेगा, उसके कार्य नष्ट हो जायँगे। तुम्हारे उदयकालमें ही सब शुभ कार्य होंगे।'

भगवान शंकर जब असुरोंके विनाशके लिए उनसे युद्ध करने लगे, गुरुतब असुर कवि मृत असुरोंको अपनी संजीवनी विद्याके प्रभावसे जीवित

कर देते थे। यह बात गणोंने जब महेश्वरसे कही, शिवने आज्ञा दी—कविको पकड़ लाओ।' नन्दीश्वर कविको पकड़ लाये, तब शिवने उनको निगल लिया।

सहस्र वर्ष कवि शिवके उदरमें ही रहे। संजीवनीके प्रभावसे वे मरे नहीं। वहाँ भी वे शिव-मन्त्रका ही जप करते थे। इससे शिवने उन्हें अपनी लघुशंकाके साथ बाहर कर दिया। बाहर आकर जब वे स्तुति करने लगे, शिवने कहा—'तुम मेरे शुक्रमार्गसे प्रकट हुए हो। अबसे तुम्हारा नाम शुक्र हुआ। तबसे ये असुरगुरु कवि शुक्राचार्य कहे जाने लगे।

महर्षि लोमश

किसी कल्पमें एक अत्यन्त दरिद्र हीन शूद्र था। उसका कहीं घर-द्वार नहीं था। कोई परिवार नहीं था। क्षुधा-पीड़ित भटकता रहता था। ऐसे भटकते हुए एक दिन एक सरोवरके मध्यमें उसे एक विशाल शिवलिंग दिखायी पड़ा। सरोवरमें कमल-पुष्प भरे हुए थे। शूद्रने उस सरोवरमें स्नान किया, जल पिया और कमल-पुष्पोंके द्वारा उसने शिवलिंगकी पूजा की। कई दिनोंकी क्षुधाके पश्चात् उसने सरोवरके जलसे ही अपनी भूख मिटायी थी। वहाँसे जब वह आगे चल रहा था, उसकी मृत्यु हो गयी।

मृत्युका अन्तिम काल मनुष्यके लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। मरते समयकी मूर्छासे पूर्वके क्षणोंमें उसने जो कुछ किया हो, उसीके अनुसार उसे गति प्राप्त होती है। शूद्रने अन्तिम समयमें शिवलिंगका पूजन किया था। सरोवरसे चलनेपर भी उसे उस लिंगकी याद आती थी। इसलिए दूसरे जन्ममें उसने ब्राह्मणके घरमें जन्म लिया। इस जन्ममें उसे अपने पूर्व जन्मकी स्मृति बनी रही। बाल्यकालमें ही उसमें विवेक जागृत हो गया। वह सोचता था, सत्यके समान प्रतीक होने वाला यह संसार सचमुच मिथ्या है, दुःखमय है। अविद्यासे ही जीव इसे सत्य मानकर इसमें संसक्त हो गया है।

इसके पिताने भगवान शंकरकी आराधना करके बुढ़ापेमें यह पुत्र पाया था। फलतः पुत्रमें पिताका बहुत मोह था, लेकिन यह जातिस्मर बालक अपनेको गूँगा दिखलाता था। पिताने बहुत उपचार कराया, मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग किया, लेकिन रोग अच्छा हुआ नहीं। जो जान-बूझकर गूँगा

बना है उसको मन्त्र-तन्त्र अथवा औषधि कैसे अच्छा कर सकते थे ? युवा होनेपर यह बालक रातमें चुपचाप उठ करके घरसे बाहर चला जाता था। उसने कमल पुष्पोंसे भरा एक सरोवर ढूढ़ लिया था। वहाँ कमल लेकर वह रातमें शिवलिंगार्चन करता और लौटकर सो जाता। अपनी आराधना उसने सभीसे छिपा रखी थी।

काल तो किसीकी प्रतीक्षा करता नहीं। पिताकी समयपर मृत्यु हो गयी। सगे-सम्बन्धियोंने गूँगा समझकर इस ब्राह्मण युवकको त्याग दिया। इससे इसको बहुत प्रसन्नता हुई। केवल फल और पत्ते अथवा कमल-बीज, कमल कन्द या दूर्वांकुर इसके आहार थे। एक ही व्यसन था— कमलपुष्पोंको एकत्र करना और उनसे लिंगार्चन करना। जितने अधिक पुष्प पाये जा सकें, वह एक ही प्रयत्न करता था। बहुत दिनों तक वह इस प्रकार दिन भर और रात्रिमें भी शिवार्चन करता रहा। इसकी पूजासे प्रसन्न होकर जब भगवान शंकर प्रकट हुए और वरदान माँगनेको कहा, तब इसने माँगा— 'प्रभो ! जरा और मृत्युसे मुझे मुक्त कर दीजिये।'

शंकरने कहा— 'जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु होती ही है। जन्म धारण करने वाला कालसे रहित होकर अजर-अमर नहीं हो सकता, अतः तुम अपने जीवनकी कोई सीमा निश्चित करो।'

कुछ क्षण गम्भीर रहनेके पश्चात् उस ब्राह्मण युवकने माँगा— 'प्रत्येक कल्पके अन्तमें इस शरीरका एक रोम टूटकर गिर जाय। जब मेरे सब रोम गिर जायँ, तब मेरी मृत्यु हो। मृत्युके पश्चात् मैं आपका सान्निध्य आपका गण होकर प्राप्त करूँ।'

उसके सम्पूर्ण शरीरमें बड़े-बड़े रोम थे। भगवान शंकर हँसे। उन्होंने 'एवमस्तु' कह दिया। दिव्य शरीर प्राप्त होनेसे पहले बड़े रोम होनेके कारण पहले भी लोग उसे लोमश कहते थे। उसका वह शरीर दिव्य हो गया। 'एवमस्तु' कहकर भगवान शंकर अदृश्य हो गये। लोमशको इच्छानुसार कहीं भी जानेकी शक्ति प्राप्त हो गयी। जब कल्पका अन्त होता है, अर्थात् ब्रह्माका एक दिन व्यतीत होता है, लोमशके बायें घुटनेके ऊपरका एक रोम गिर पड़ता है। कहते हैं, उनके बाएँ घुटनेके मध्यका भाग अब तक रोम रहित हुआ है। (स्कन्द पुराण)

श्रीरामचरितमानसमें काकभुशुण्डिको जब वे ब्राह्मण थे शाप देकर समझानेको ही काकदेह दिया था। फिर कृपा करके इन्होंने भुशुण्डिको दीक्षा दी, उन्हें श्रीरामकी उपासना बतलायी तथा रामचरित सुनाया। ये काकभुशुण्डिके गुरुदेव हैं।

व्याघ्रपाद

मनुष्यकी प्रकृति कैसी होगी,इसका कोई अनुमान नहीं किया जा सकता; क्योंकि चौरासी लक्ष योनियोंमें भटकता हुआ जीव मानव योनि प्राप्त करता है। यह भी पता नहीं होता कि उनमें-से किस योनिमें वह कितनी बार रहा है। अनेक बार जीव बहुत-सी मनुष्य योनियोंमें ही होता हुआ मानव बनता है। प्रायः साधकके साथ ऐसा ही होता है क्योंकि साधना एक जीवनमें कदाचित् ही पूर्ण हो पाती है। उसके परिपाकके लिए जीवको शतशः जन्म लेना पड़ता है। आश्वासन यही है कि साधनके पथसे चलता हुआ प्राणी प्रायः पुनः साधनका अवसर प्राप्त करता ही है। इसलिए अनेक बालकोंमें जन्मसे ही स्वाभाविक तीव्रतम साधनाकी प्रेरणा होती है।

सत्‌युगमें स्वभावसे ही लोग साधनोन्मुख थे, तपस्या उनकी सहज प्रवृत्ति थी। इसलिए जब एक ब्राह्मण कुमार युवा होते ही ऋषिकुलसे लौटकर गृहस्थ बननेके स्थानपर अपनी साधनाके उपयुक्त वन ढूँढ़ने चल पड़ा,तब किसीने आश्चर्य नहीं किया, किसीने रोका भी नहीं। उस युगमें स्वजनोंमें वैसा मोह नहीं था जैसा आज सामान्य हो गया है। माता-पिताने पुत्रके लिए यह परम श्रेयस्कर माना। वह कुमार ढूँढ़ता हुआ एक पर्वतके नीचे हरे-भरे वनमें पहुँचा। वहाँ कमलोंसे भरा हुआ एक सरोवर था। निश्चय ही वह और किसी तपस्वीका प्राचीन तपोवन होगा क्योंकि सरोवरके समीप ही एक प्राचीन शिवलिंग भी था। उस विप्रकुमारको स्थान उपयुक्त लगा। वह वहीं बस गया। कोई कुटिया नहीं बनानी थी, वृक्षोंकी छाया ही उसका आश्रय था। वनमें पर्याप्त फल-कन्द थे। उसने त्रिकाल स्नान, संध्या और उस शिवलिंगका पूजन प्रारम्भ किया। उपवास, जप, स्तवन—इन सबकी अपेक्षा उस कुमारको शिवलिंगका पूजन प्रिय लगा था। वह नाना प्रकारके पुष्पोंसे भगवान शंकरका पूजन करना चाहता था, केवल कमल-पुष्पोंकी पूजासे ही उसे संतोष नहीं होता था, लेकिन उस वनमें दूसरा कोई पुष्प नहीं था, लताएं थीं नहीं और वृक्षोंमें फल आ चुके थे।

पर्वतके शिखरपर नाना प्रकारके सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी लताएं लहरा रही थीं। नीचेसे उनके पुष्प देखे जा सकते थे, किंतु पर्वतपर चढ़ना कठिन था। इसमें समय भी बहुत लगता, लेकिन उत्कण्ठा तीव्र थी, इस-लिए वह कुमार एक दिन रात्रि रहते ही उठा, पर्वतके उस दुर्गम शिखरपर पहुँच गया। उसने सोचा था, वह लताओंसे पुष्प-चयन करके पूजाके समय तक लौट आवेगा। अनभ्यस्त व्यक्ति पर्वतकी चढ़ाईमें भ्रान्त अनुमान प्रायः कर लेता है। उस कुमारको भी शिखर तक पहुँचनेमें बहुत समय लगा। वह जब पुष्पोंको लेकर उतरने लगा, नीचे आते-आते मध्याह्न हो गया। उत्साहके अतिरेकमें उसने देखा ही नहीं कि जिन पुष्पोंको लेकर वह आ रहा है, वे मार्गमें ही म्लान हो गये हैं। ग्रीष्मके दिनोंमें सुकुमार सुमन इतना ताप सह नहीं सकते थे।

विप्रकुमारने नीचे पहुँचकर सरोवरमें स्नान किया। वह जब उन पुष्पोंको लेकर अर्चाके लिए बढ़ा, उसने देखा कि वे अब शोभाहीन शुष्क-प्राय हो गये हैं, उनसे पूजा नहीं की जा सकती। बहुत दुःख हुआ उस ब्राह्मण-पुत्रको। अनेक दिनोंकी योजनाके पश्चात् वह उनको लाने गया था। बड़ा उत्साह था, आज वह अपने आराध्यके चरणोंमें इतने पुष्पोंकी अञ्जलि देगा। म्लान कुसुमोंको देखकर उसे बहुत आन्तरिक पीड़ा हुई—'मैं इतना भाग्यहीन कि अपने प्रभुको इच्छानुसार सुमन भी समर्पित नहीं कर सकता। अवश्य ही मैं ऐसा पापी हूँ कि प्रभुको मेरे द्वारा अर्पित पुष्प स्वीकार नहीं हैं।'

शोककी अधिकता, अपनेमें पापकी कल्पनाने इतनी पीड़ा दी कि वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। आशुतोष भगवान महेश्वरको संतुष्ट करनेके लिए इतना बहुत है। वे देवदेव प्रकट हुए। उन्होंने उन म्लान पुष्पोंको स्वयं ग्रहण कर लिया, अपनी जटाओंमें लगा लिया। पुष्प भले ही सूख गये हों, उनको ले आने वालेमें जो उज्वल भावना थी वह परम पावन भावना भगवान शिवको अत्यन्त आह्लादित कर रही थी। उन्होंने अपने अमृतस्यन्दी करोंसे विप्रपुत्रको उठाया। इन चिद्घन वपु परमेश्वरका स्पर्श पाते ही ब्राह्मणकुमार सचेत हो गया। उसने नेत्र खोले। शत-शत चन्द्रोज्वल गंगाधर उसके सम्मुख थे और उसके द्वारा लाये हुए पुष्पों—म्लान पुष्पोंसे उन्होंने अपनी जटाको सजा रखा था। कण्ठ गद्गद हो गया शरीरमें रोमाञ्च हो गया। वह उनके श्रीचरणोंपर गिरा और अपनी अश्रु-धारासे ही उसने उन जगदात्माके चारु-चरणोंका प्रक्षालन किया।

भगवान शिव बार-बार उसे उठाते थे और वह बार-बार उनके श्रीचरणोंमें गिर जाता था। आशुतोषने उसे किसी प्रकार किंचित् आश्वस्त किया। बोले—'वत्स ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे ये पुष्प मुझे अपने ललाटपर शोभित शशिसे भी अधिक प्रिय हैं। तुमको जो अभीष्ट हो, माँग लो।'

मेरे स्वामी इस प्रकार मुझे क्यों प्रलुब्ध कर रहे हैं ? मेरे मनमें कोई कामना अवश्य कहीं होगी।' विप्रकुमार थोड़ा गम्भीर हो गया। उसने प्रार्थना की—'दयामय ! मैं अज्ञानी हूँ, अल्पप्राण हूँ। प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है। आपके श्रीचरण ही मेरे आश्रय हैं। आप मुझे वरदानका प्रलोभन क्यों दे रहे हैं ? मेरे तो आप ही संरक्षक हैं। इस संसारमें और स्वर्गादि लोकोंमें भी मुझे कुछ नहीं चाहिए। पूर्वकृत अपने कर्मोंका जो भी भोग मुझे प्राप्त होता हो—वह अनुकूल हो या प्रतिकूल—मैं जन्म-जन्मान्तर तक उनको भोगता रहूँ। उनके अनुसार जिस किसी भी योनिमें जाना हो, मैं जाऊँ ; किन्तु मेरा मन सर्वदा आपके श्रीचरणोंमें लगा रहे—यह आशीर्वाद आप मुझे दें।'

'तुममें मेरी नित्यवर्धिनी भक्ति निवास करे।' भगवान विश्वनाथने आशीर्वाद देकर पुनः कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिए तुम कुछ और माँगो।'

'मैं इन पर्वतोंपर स्थित सुन्दर लताओंके सुकुमार, सुरभित, सुरंग शरीर सुमनोंसे आपकी नित्य अर्चा करना चाहता हूँ, किन्तु ऐसा करनेमें मेरा समर्थ नहीं है।' ब्राह्मण-कुमारने तनिक सोचकर वरदान माँगा—'मेरे पंजे व्याघ्रकी भाँति हो जायँ, जिससे मैं पर्वतपर शीघ्रतासे चढ़ सकूँ। मेरे नेत्रोंमें व्याघ्रकी भाँति अन्धकारमें देखनेकी शक्ति हो, उनकी संख्या छः हो जाय, इससे मैं रात्रिके अंधकारमें पर्वतपर चढ़कर पुष्प ला सकूँगा और आपकी अर्चा कर सकूँगा।'

'ऐसा ही हो।' भगवान शंकर यह वरदान देकर अन्तर्हित हो गये। उन ब्राह्मणकुमारके छः नेत्र हो गये। उनके पंजे व्याघ्रकी भाँति होनेके कारण उनका नाम व्याघ्रपाद हो गया। वहाँपर जो शिवलिंग था, उसका नाम व्याघ्रेश्वर हो गया। (शिवपुराण)

———

उपमन्यु

महर्षि व्याघ्रपादने समयपर गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। उनके एक पुत्र हुआ। स्वभावसे विरक्त व्याघ्रपाद पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् पुत्र और पत्नीको उसके पिताके घर छोड़कर फिर तपस्या करने चले गये। उनकी पत्नीको अपने भाईके ही आश्रममें रहना पड़ा। व्याघ्रपाद-तनय उपमन्यु मामाके घर पले और बढ़े। उनके मामा भी विरक्त ब्राह्मण ही थे। वनमें कुटिया बनाकर रहते थे। बहनके लिए उन्होंने समीपमें एक पृथक् कुटी बना दी थी। अत्यन्त दरिद्र थे, वनके कन्द-मूलसे ही निर्वाह करते थे। एक होमधेनु थी। उसका दूध पूजन आदिमें प्रयुक्त होता था। थोड़ा बचता था तो वह उपमन्युके मामाकी पत्नी अपने छोटे अबोध शिशुको पिला देती थी। एक दिन सबेरे उपमन्यु अपने मामाकी कुटीमें थे, अतः मामीने अपने पुत्रके साथ उनको भी थोड़ा-सा दूध दे दिया। अब तक उपमन्युको यही पता नहीं था कि बालकको माताके दूधके अतिरिक्त भी दूध उपलब्ध हो सकता है। दूधका स्वाद उनको प्रिय लगा। अपनी माताके पास आकर उन्होंने बार-बार दूध माँगना प्रारम्भ किया, मचलने और रुदन करने लगे। माताने भिक्षामें मिले चावलके कणोंको पानीमें पीसकर उन्हें दे दिया।

'यह दूध नहीं है। मुझे सचमुचका दूध दो।' बालकने दूध पी लिया था, उसे दूधके स्वादका पता था। चावल पिसे सफेद पानीको उसने मुँहमें लगाते ही थूक दिया और पृथ्वीपर लोट-पोट होने लगा।

'मेरे बच्चे ! हम बहुत निर्धन हैं। हमारे पास कोई गौ नहीं है।'— दुःखिनी माताने आँखोंमें अश्रु भरकर कहा—'भगवान शंकरकी कृपाके बिना दूध कहाँसे मिले। ब्राह्मणको संतोषी होना चाहिए। भिक्षामें किसीसे भी—अपने भाईसे भी—वस्तुविशेषकी याचना करना उचित नहीं है। जब प्रभु कृपा करेंगे, तुमको उनकी कृपासे ही दूध प्राप्त हो सकेगा।'

'मैं अपने पुत्रको थोड़ा-सा दूध देनेमें भी असमर्थ हूँ'—इस भावनासे वे ऋषिपत्नी रो पड़ीं।

'माँ ! तू रो मत।' बालक उपमन्युने अपने नन्हें करोंसे माताके आँसू पोंछे। 'तू कहती है न कि भगवान शिव दूध दे सकते हैं। मैं उन्हें प्रसन्न करके उनसे दूधका समुद्र माँग लूँगा। मुझे उनको प्रसन्न करनेके लिए क्या करना चाहिए, यह उपदेश कर।'

महर्षि व्याघ्रपादकी पत्नी पुत्रके इस उत्साहसे प्रसन्न हुई। उन्होंने उपमन्युको शिवके पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश किया। बालकको समझाया--'उसे अपने पिताके समान वनमें जाकर तपस्या करनी चाहिए।' अल्पवयस्क बालक उपमन्यु मातासे आज्ञा लेकर हिमालयके नीचेके एक वनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक छोटा-सा शिवलिंग बनाया। वर्षा होने लगी। बालकने सोचा—मैं भले भीग जाऊँ, मेरे आराध्य इन शंकरजीको जलसे नहीं भीगना चाहिए।' उसने पत्थरके आठ टुकड़े इकट्ठा करके उस मृत्तकासे बने लिंगपर छोटा-सा मन्दिर बना दिया। माताके द्वारा उपदिष्ट पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वह आसन लगाकर स्थिर बैठ गया। उसने समस्त आहार और जलका भी त्यागकर दिया था। शिशुप्राय उपमन्युकी इस तपस्यासे भगवान विश्वनाथ समाधिस्थ नहीं रह सके। पार्वतीके साथ वे वृषभारूढ़ पधारे, किन्तु उन्होंने इन्द्रका रूप ग्रहण कर लिया था। देवी उमा शचीके समान दीखने लगीं। नन्दी ऐरावत बन गये। उपमन्युके समीप आकर उन इन्द्ररूपधारीने कहा—'विप्रकुमार ! मैं सन्तुष्ट हूँ। वर माँगो।'

'देवदेव महादेवमें मेरी अविचल भक्ति हो।' उपमन्युने नेत्र खोलकर वज्रपाणि इन्द्रको देखा, पृथ्वीमें मस्तक रखकर प्रणाम किया, किन्तु देवराजसे उसे दूसरा कुछ लेना नहीं था।

'यह तो मेरा तिरस्कार है।' इन्द्रने कहा—'मैं देवताओंका स्वामी हूँ। तुम मेरी भक्ति करो। मैं तुम्हारे समस्त अभीष्ट पूर्ण कर दूँगा। शिव तो भूतनाथ हैं। उसकी भक्ति करके तू पिशाच बनेगा।'

'देवराज ! शिव-निन्दाका पाप मत करो।' उपमन्युने रोषपूर्वक इन्द्रकी ओर देखा—'उन महेश्वरसे परे कोई तत्व नहीं है। मैं वरदान तो उन सर्वेश्वरसे माँगूँगा। मुझे आपसे या और किसीसे कोई वरदान नहीं लेना है।'

'तुम बालक हो, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।' इन्द्रने रोषके स्वरमें कहा—'शिव दक्षके शापसे पिशाच हो गया है।

'सुराधम ! तूने शिव-निन्दा की है और मैंने उसे सुना है, इसलिए तुझे मारकर मैं भी देहत्याग करूँगा।' उपमन्युने इन्द्रको मारनेके लिए हाथमें भस्म ली और अघोर मन्त्र पढ़कर उसे इन्द्रपर फेंका। उस भस्मसे अत्यन्त भयंकर तेज प्रकट हुआ, बड़ा भयानक शब्द हुआ। परिणाम क्या हुआ, यह देखे बिना ही उपमन्युने नेत्र बन्द कर लिया और योगधारणा करके अपने शरीरको भस्म करनेका प्रयत्न करनेका प्रयत्न करने लगे।

वृषभ नन्दीने उस मन्त्रपूत भस्मको बीचमें ही ले लिया था। उमा-महेश्वर अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। भगवान शंकरने वृषभसे कूदकर उपमन्युको उठाया—'वत्स ! मैं सन्तुष्ट हूँ। अबसे यह पार्वती तुम्हारी माँ हैं। तुम मेरे पुत्र हो। दिव्य जगतमें जो दूध, दही, शहद, घृतके सागर हैं, तुम सबके अधीश्वर हुए। जिस क्षीरसागरमें भगवान नारायण स्वयं शयन करते हैं, वह क्षीरसागर अबसे तुम्हारा हुआ। तुम जरा-मृत्युहीन यशस्वी और परम ज्ञानी हो। तुमको ब्रह्मविद्या तथा योगेश्वरत्व प्राप्त हो।'

भगवती उमाने उपमन्युके मस्तकपर अपना हस्तकमल रखा। उपमन्युने उमा-महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'मुझे अपनी दिव्य भक्ति प्रदान करें।'

'हम लोग तुम्हारे आश्रमके समीप नित्य निवास करेंगे।' यह वरदान देकर उमा-महेश्वर अन्तर्हित हो गये।

(शिव पुराण)

मृत्युञ्जय

[१]

भगवान शंकरके स्मरणसे मरणधर्मा मनुष्य मृत्युके आसन्न सङ्कटसे त्राण पाता है। यह एक अनुभूत सत्य है कि महामृत्युञ्जय मन्त्रका सविधि जप निश्चित मृत्युको भी टाल दिया करता है।

महर्षि मार्कण्डेयकी तपस्यासे जब भगवान नारायण प्रसन्न हुए, आराध्यसे उन्होंने माया-दर्शनका वरदान माँगा। इस वरदानके फलस्वरूप उन्होंने प्रलयका दर्शन किया। उस प्रलय-सिन्धुमें समुद्रकी तरंगोंमें भटकते फिरे। वट-पत्रशायी बालमुकुन्दके दर्शन हुए और उनके श्वाससे खिंचकर उनके उदरमें चले गये। युगों तक वहाँ घूमते रहे, अनेक ब्रह्माण्डोंके दर्शन हुए। श्वासके साथ ही वे बाहर आये। यह सब सृष्टि-प्रलय माया है-- यह समझानेके लिए ही मार्कण्डेयको यह दर्शन हुआ था। उन्हें जो अनेक युगव्यापी समय प्रतीत होता था, केवल कुछ क्षण ही था। अब माया-दर्शनसे श्रान्त मार्कण्डेय अपने आराध्यके ध्यानमें समाधिस्थ हो गये।

उधरसे उमा-महेश्वर निकले। दयामयी जगदम्बाको दया आयी। उन्होंने शिवसे अनुरोध किया—'इस तपस्वीकी तपस्या सफल करें।'

शिव—'यह तो सर्वथा निष्काम है, फिर भी इसका सत्संग मुझे भी प्रसन्न करेगा।'

भगवान शंकर समीप आये, किन्तु मार्कण्डेय तो समाधिस्थ थे। शिवने उनके हृदयमें प्रवेश किया। त्रिनयन, दशभुज, महेश्वरको अन्तःकरणमें देखकर ऋषि जगे। उन्होंने उठकर प्रणिपात किया, स्तुति की। जब महेश्वरने वरदान माँगनेको कहा, बोले—'मैं अपने आराध्यका अखण्ड ध्यान कर सकूँ। मृत्यु इस शरीरको छीनकर मुझे बाधा न दे और आपमें मेरी प्रीति रहे।'

शिव—'मृत्युके आनेपर आप मेरा स्मरण करो, मैं आपकी रक्षा करूँगा।'

जन्मके साथ मृत्यु तो लगी ही है। मार्कण्डेयका भी मृत्यु-काल समीप आया। यमदूत उन्हें लेने आये, किन्तु उनके तेजके कारण ही जलने लगे। दूतोंसे समाचार पाकर संयमिनीके स्वामी स्वयं आये। उन महिषवाहनको पाश लिए हुए आते देखकर मार्कण्डेयको मृत्युञ्जयका स्मरण हुआ। उन्होंने कुछ रोषपूर्वक आक्षेप किया-- 'शिव तो पिशाच-सहचर हैं, कहीं श्मशानमें विषके नशेमें पड़े होंगे। उन्हें क्या कि किस पर क्या आपत्ति आती है।'

जो सर्वव्यापी नहीं होगा, शिव कैसे होगा ? महेश्वरको कहीं अन्यत्रसे आना नहीं था। जैसे ही यमराजने मार्कण्डेयको मारनेके लिए कालदण्ड उठाया, उन्हें अपने सम्मुख त्रिशूल उठाए प्रलयंकर प्रत्यक्ष दिखायी पड़े। दण्ड फेंककर धर्मराजने महिषसे कूदकर वृषभवाहनके चरणोंमें प्रणिपात किया, नम्रतासे स्तुति करने लगे। प्रभुने कहा—'मैंने ऋषिको अभय दिया है, आप उन्हें नहीं ले जा सकते हैं।'

यमराज लौट गये। मार्कण्डेयने शिवके चरण पकड़े। अपने आक्षेपके लिए क्षमा माँगी। लीलामय आशुतोष बोले—'मैं तो तुम्हारी प्रेमभरी रुष्ट वाणी सुननेके लिए जान-बूझकर अदृश्य था। तुम्हारे आक्षेपमें मुझे स्तुतिसे भी अधिक आनन्द आया, लेकिन मृत्युलोककी मर्यादा है कि यहाँ कोई अमर नहीं रहता। तुम मेरे समीप कैलाशपर चलो। धरापर इच्छानुसार आनेकी स्वतन्त्रता तुम्हें रहेगी। इस प्रकार तुम आकल्पान्त अमर रहोगे।'

(श्रीमद्भागवत एवं शिवपुराण)

[२]

दशार्ण देशके राजा भद्रवाहुके बहुत-सी पत्नियाँ थीं, किन्तु पुत्र किसीके भी नहीं था। सौभाग्यसे महारानी सुमति गर्भवती हुई तो ईर्ष्यावश सपत्नियोंने उन्हें विष दे दिया। विषके प्रभावसे रानीके समस्त शरीरमें घाव हो गये। गर्भपात तो नहीं हुआ, पर जो बच्चा हुआ उसका शरीर भी घावोंसे भरा था। राजाने बहुत चिकित्सा करायी, किन्तु कोई लाभ न हुआ। दूसरी रानियोंने राजासे कहा—'सुमतिका रोग संक्रामक है, आपको भी लग सकता है। उसे पुत्रके साथ दूर वनमें छोड़ देना ठीक होगा। राजभवन या प्रजाके मध्यमें इसका संक्रामक रोग संक्रमण करे—यह उचित नहीं होगा।'

पुत्रकी चिकित्सासे निराश राजाने सेवकके द्वारा रानी सुमतिको उसके पुत्रके साथ वनमें भेज दिया। वहाँ उसका पुत्र विषके प्रभावसे मर गया। अकेली पुत्रहीना रानी व्याकुल होकर भगवान आशुतोषको पुकारने लगी। आर्तकी पुकार वे अनाथनाथ अनसुनी नहीं करते। एक योगीके वेशमें शिव प्रकट हुए। अपनी झोलीसे निकालकर भस्म उन्होंने मृत बालकके शरीरपर डाला, वह जीवित होकर उठ बैठा। उसके शरीरके घाव मिट गये। योगीकी भस्मके प्रभावसे सुमतिका शरीर भी स्वस्थ हो गया। योगीने ही बालकका नाम भद्रायु रखा। उनको मृत्युञ्जय मन्त्रकी दीक्षा दी और अदृश्य हो गये। सुमतिने वनमें ही फूसकी कुटी बनायी। पुत्रके साथ वहाँ रहने लगी। दूसरी ओर राजा वज्रबाहुपर शत्रुने चढ़ायी कर दी। वे पराजित हुए और अपनी रानियोंके साथ बन्दी बनाकर कारागारमें डाल दिये गये।

भद्रायु वनमें बड़े हुए। वे मृत्युञ्जय मन्त्रका जप किया करते थे। उनको जीवन-दान देने वाले योगिराज पुनः पधारे। उन्होंने भद्रायुको एक खड्ग दिया और उसको चलाना सिखलाया। अन्तमें आदेश दिया—'पिताके राज्यको अधिकृत करो! शत्रुकी पराजय तुम्हें सहज प्राप्त होगी।'

भगवान विश्वनाथका वरदान भद्रायुकी रक्षा कर रहा था। भद्रायुने पिताकी पुरीपर आक्रमण किया। शत्रुओंकी विशाल वाहिनी पराजित हुई। कारागारमें पड़े पिता तथा उनकी रानियोंको इस निर्वासित पुत्रने मुक्त किया। लेकिन लज्जाके कारण कारागार मुक्त राजा भद्रायुको राज देकरके तपस्या करने अपनी शेष रानियोंके साथ वनमें चले गये। सुमति राजमाता हुई। (शिवपुराण)

[३]

भारतके भद्रभाल कश्मीरमें अनेक शिव-भक्त हो चुके हैं। भगवान अमरनाथके सान्निध्यने इस भूमिको सदा पवित्र रखा। प्राचीन कालमें यहाँके राजा भद्रसेन थे। वे स्वयं शिव-भक्त थे और पिताके समान ही नैष्ठिक शिव-भक्त थे उनके पुत्र सुधन्वा। अपने गुणके कारण सुधन्वा पिता और प्रजा सबके प्रिय थे। वे रुद्राक्षोंको आभूषण मानते थे। भस्म ही उनका अंगराग था।

महामुनि पराशर एक दिन पधारे। राजाने उनका सत्कार किया। राजकुमारने उनकी चरण-वन्दना की। किन्तु राजकुमारके मुखपर दृष्टि जाते ही मुनि गम्भीर हो गये। जब राजाने मुनिकी इस उदासीका

कारण पूछा बोले—'यह बालक अल्पायु है। इसकी अकाल मृत्यु होने वाली है।'

सभी लोग यह सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गये। पराशरजीने उन्हें आश्वासन दिया—'आकुल होनेसे कुछ होगा नहीं। मृत्युको टालनेमें भगवान शंकर ही समर्थ हैं। मेरी समझसे दश सहस्र रुद्रार्चनसे शिव-लिंगका अभिषेक कुमारकी अकालमृत्यु टाल सकता है।'

राजाने अत्यन्त विह्वल होकर ऋषिके चरण पकड़े—'आप ही इस अनुष्ठानको सम्पन्न करावें।'

महर्षि पराशरने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। सहस्र मन गोदुग्ध और शेष सामग्री एकत्र हुई। शतशः वेदज्ञ ब्राह्मण बुलाए गये। महर्षि पराशरकी अध्यक्षतामें रुद्रावर्तन अभिषेक प्रारम्भ हुआ। राजकुमार मन्दिरमें मूर्तिके समीप ही बैठाए गये थे। वह समय आया जो मुनिने राजकुमारकी मृत्युके लिए सूचित किया था। राजकुमार पहलेसे ही भयभीत था। सहसा वह मूर्तिके समीप ही लेट गया। उसका मुख तेजोहीन हो गया। राजाने पुत्रके शरीरपर हाथ रखा और उसे प्राणहीन पाकर आर्त-क्रन्दन करने लगे।

मुनिने राजाका हाथ पकड़ा। उन्होंने सावधान रहनेका संकेत किया और अनुष्ठानमें लगे रहे। अनुष्ठान सविधि पूर्ण हुआ। अब महर्षिने अभिषेकका दुग्ध कुण्डसे उठाकर कुमारके शरीरपर छिड़का। सबने देखा, मृत कुमारके शरीरमें तेज आ गया है और निःश्वास चलने लगा है। महर्षिने जैसे ही रुद्राक्षके द्वारा अभिषिक्त करके वह दूध राजकुमारके मुखमें डाला, कुमारने नेत्र खोल दिये। उठकर बैठ गया।

पूछनेपर कुमारने बतलाया—'कोई भयंकर पुरुष रस्सी लेकर आता दीख पड़ा था, किन्तु वह मन्दिरके द्वारसे ही लौट गया। कुछ देर बाद एक कृष्ण वर्ण बहुत बलवान पुरुष भैंसेपर बैठा रस्सी लिए अकेले आया। शिवलिंगको प्रणाम करके वह मन्दिरमें आगया। मुझे उसने बाँध लिया और लेकर चल पड़ा। थोड़ी दूर जानेपर एक ओरसे बहुत सुन्दर त्रिनेत्र, पीली जटावाला गौरपुरुष आता दीख पड़ा। उन्हें देखते ही काले पुरुषने मुझे छोड़ दिया और उनकी स्तुति करने लगा। इतनेमें ही कानोंमें मन्त्रोच्चारणकी ध्वनि पड़ी और मैं जाग गया।'

राजाने पुत्रके साथ फिर भगवान शंकरका पूजन किया। महर्षिका पूजन करके उनका सत्कार करके विदा किया। इस प्रकार प्रभुका पूजन करके मृत्युञ्जयके सहारे राजकुमार मृत्युपाशसे मुक्त हुआ।

गंगावतरण

वैवस्वत मनुके पुत्र महाराज इक्ष्वाकुके कुलमें सगर इतने प्रताप-शाली नरेश हुए हैं कि उनके द्वारा स्थापित मर्यादाओंमें-से अधिकांश अब तक पृथ्वीपर प्रचलित हैं। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया। जब वे म्लेच्छ मात्रका विनाश करनेको उद्यत थे, गुरुने उन्हें इस विनाशकारी हिंसासे वारित किया। सगरने पृथ्वीकी विभिन्न म्लेच्छ जातियोंके लिए वेश निर्धारित कर दिया। किन्हींके लिए सिरपर पूरी शिखा रखना अनिवार्य कर दिया, किन्हींके लिए मर्यादा बना दी कि वे शिखा नहीं रखेंगे। किन्हीं-के लिए केवल कौपीन धारणका विधान किया, और किन्हींके लिए बिना नीचे किसी वस्त्रको पहने केवल मुक्तकच्छ (लुंगी) पहननेकी व्यवस्था की। ये सब बातें वैदिक व्यक्तिके लिए निषिद्ध थीं, किन्तु विश्वमें अनेक स्थानों-पर अब भी प्रचलित हैं।

महाराज सगरकी दो पत्नियोंमें-से एकसे उनके साठ हजार पुत्र थे, दूसरीसे केवल एक ही पुत्र था असमंजस। असमंजस जन्मजात योगी थे। जान-बूझकर ऐसे काम किये कि महाराजने उन्हें निर्वासित कर दिया। वे चाहते थे कि इस प्रकार पिताकी अवज्ञा किये बिना उन्हें राज्यके भारसे छुटकारा मिल जाय। जब यह मिल गया, वे वनमें चले गये। असमंजसके पुत्रका नाम था अंशुमान। यही सगरका वंशधर बना।

महाराज सगरने अश्वमेध यज्ञोंकी परम्परा प्रारम्भ कर दी। लेकिन देवराज इन्द्रको इसमें अपनी यश-हानि प्रतीत हुई, क्योंकि वे शतक्रतु ही इसलिए कहे जाते हैं कि कभी उन्होंने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं। तेजोद्वेषके कारण इन्द्रने सगरके सौवें अश्वमेध यज्ञमें अश्वका हरण किया और उसे ले जाकर भूमिके भीतर तपोनिरत महर्षि कपिलके समीप बाँध दिया।

सगरके साठ हजार पुत्र पिताकी आज्ञासे अश्वका अन्वेषण करने निकले। पृथ्वीपर और ऊपरके लोकोंमें भी जब अश्वकी प्राप्ति नहीं हुई, देवर्षि नारदने महाराजको बतलाया—'आपका यज्ञीय अश्व धराके भीतर है।'

देवर्षि अनेक बार गुप्त सूक्ति बोल जाते हैं। सगरके पुत्रोंको देवर्षिकी बातने यह समझाया कि उन्हें भूमि खोदकर अश्वका अन्वेषण करना चाहिए। उन्होंने जम्बू द्वीपके उत्तरी भागसे पृथ्वीको खोदना प्रारम्भ कर दिया। सागरका वह तटीय भाग जो महाद्वीपके पासका है, सगर-पुत्रों द्वारा खोदा हुआ है। इसीलिए उसे सागर कहते हैं, अन्यथा सिन्धु अथवा समुद्र नाम है नैसर्गिक महोदधिका। सगर-पुत्र बहुत अधिक भूमि खोद चुके थे। भारतके दक्षिणी भागको खोदते हुए वे आग्नेय कोणमें पहुँचे और कपिलाश्रम पहुँच गये। इस पूरे भागको आज बंगालकी खाड़ी कहा जाता है।

'यही चोर है, इसे मार दो!' महर्षि कपिलको ध्यानस्थ देखकर और यह देखकर कि पिताका यज्ञीय अश्व उनके समीप बँधा हुआ है, सगर-पुत्रोंको भ्रम हुआ और वे चिल्लाते हुए कपिलको मारने दौड़े। भगवान कपिलकी रोषाग्निमें वे दग्ध हो गये।

अश्व लौटा नहीं। साठ हजार पुत्रोंमें-से कोई नहीं लौटा। देवर्षि नारदने फिर सहायता की। अश्व कहाँ है और सगर-पुत्रोंका क्या हुआ, यह उन्होंने महाराज सगरको बतला दिया। सगरने अपने पौत्र अंशुमानको भेजा। अंशुमानने जाकर कपिलकी स्तुति की। उन्हें प्रसन्न किया। भगवान कपिलने कहा—'अपने पितामहका यज्ञीय अश्व ले जाओ। उसे यहाँ इन्द्रने लाकर छिपा लिया था।'

'मेरे इन पितृव्य गणोंकी मुक्ति कैसे होगी?' अंशुमानने विनम्रतापूर्वक पूछा।

'ब्रह्म-कोपसे दग्ध इनके उद्धारके लिए आवश्यक है कि विष्णुपदी गंगाका जल इनकी भस्मका स्पर्श करे।' कपिलने बतलाया।

अंशुमान अश्व लेकर लौट आये। सगरने यज्ञ पूरा किया। पौत्रको राज्य देकर वे वनमें चले गये। अंशुमानका पुत्र दिलीप जब युवा हुआ, उसे राज्य देकर अंशुमानने भगवती गंगाके अवतरणके लिए तपस्या की और तपस्या करते हुए ही उनका शरीर पूरा हो गया। यही अवस्था अंशुमानके पुत्र दिलीपकी हुई। दिलीपके पुत्र थे भगीरथ। पिता-पितामहके समान ये भी पुत्रको राज्य देकर गंगाको धरापर लानेके लिए तपस्या करने गये। इनके कठोर तपसे प्रसन्न होकर भगवती गंगाने दर्शन दिया। जब इन्होंने उनके अवतरणकी प्रार्थना की, गंगाने कहा—'राजन्! मेरे वेगको धारण कौन करेगा? यदि कोई उसको धारण नहीं कर पाता है तो मैं

भूमिका भेदन करके रसातल चली जाऊँगी। एक बात और है—पृथ्वीके पापी प्राणी मुझमें स्नान करेंगे। उनके कल्मष मुझे निरन्तर म्लान करते रहेंगे। कोई भी पाप और उसके परिणाम दुःखको स्वीकार करना नहीं चाहता, मैं ही क्यों स्वीकार करूँ ? इसके निवारणका उपाय सोच लो।'

'देवि ! ऐसे सन्त, भगवद्भक्त आपमें स्नान करेंगे जिनके अन्तः-करणमें श्रीहरि स्वयं विराजमान रहते हैं। उनका स्पर्श आपको पवित्र करता रहेगा और आपका वेग विश्वात्मा भगवान शिव धारण करेंगे।' भगीरथने गंगाको आश्वस्त किया और भगवान् शंकरको सन्तुष्ट करनेके लिए पुनः तपस्या करने लगे।'

भगवान आशुतोष भगीरथपर शीघ्र सन्तुष्ट हो गये। भगीरथने उनसे प्रार्थना की—'आपने अपनी जटाओंमें श्रीहरिके चरणोंसे निकली गंगाको आधिदैवत रूपसे धारण किया है। अब ब्रह्मलोकसे उतरती उनके वेगको भी आप धारण करें। उनके जलके स्पर्शसे मेरे पितरोंका उद्धार सम्भव है।'

शिवने स्वीकार कर लिया। भगीरथकी प्रार्थनापर गंगाजी ब्रह्मलोक-से उतरीं। उनका वेग कोई धारण नहीं कर सकता, यह गर्व था उनके मनमें। कैलासके शिखरपर जटा बिखेरे भगवान धूर्जटि स्थिर खड़े थे। गंगाका सम्पूर्ण जल उनकी जटामें लुप्त हो गया। गंगाको मार्ग नहीं मिला कि वे उन जटाओंसे बाहर निकल सकें।

भगीरथने पुनः भगवान शंकरकी स्तुति की—'देव ! महामुनि कपिलके शापसे भस्म होकर मेरे पितर दुर्गतिमें पड़े हैं। आपकी जटाओंमें सरिद्वरा विष्णुपदी अन्तर्हित हैं। आप उन्हें प्रदान करें जिससे मेरे पितरोंका उद्धार हो।'

शिवने प्रसन्न होकर जटा निचोड़कर भगीरथको गंगा प्रदान की। भगीरथने पुनः गंगासे प्रार्थना की—'देवि ! आप कपिलाश्रम तक चलकर मेरे पितरोंको पवित्र करें।'

गँगाने स्वीकार कर लिया। भगीरथ आगे अपने रथसे चले और गंगाने उनका अनुगमन किया। इस प्रकार कपिलाश्रम (गंगासागर संगम) पहुँचकर गंगाने सगरके पुत्रोंको अपने स्पर्शसे पावन बनाया।

(श्रीमद्भागवत और ब्रह्मपुराण)

——

नर्मदाका अवतरण

कल्प-कल्पके सतयुगमें भूतलपर नर्मदा अवतरण भिन्न-भिन्न रूपसे होता है। यहाँ चार कल्पोंके साक्षात् अवतरणकी कथा दी जा रही है।

चन्द्रवंशने पुरुरवासे भी पूर्व राजा हिरण्यतेजा हुए थे। वे धर्मात्मा सम्पूर्ण पृथ्वीके सम्राट् थे। उनकी राजधानी चन्द्रपुरी थी। उस समय उस कल्पमें जम्बूद्वीपमें तब तक कोई सरिता नहीं थी। बावली, कूप, सरोवर मात्र थे। सरिताके बिना देव-पितरोंका तर्पण-पूजन भली प्रकार नहीं हो पाता था। एक बार राजाने विपुल दान किया, पितरोंका श्राद्ध किया, तर्पण किया। पितर प्रत्यक्ष हुए। राजाने पूछा—'आप सब कौन हैं ? कैसे पवित्र हो सकते हैं ?

राजाका यह प्रश्न उचित था क्योंकि जो पार्थिव शरीर प्राणी नहीं हैं, वे यदि तेजोमय देह न हों, देवता नहीं हो सकते और उनके अतिरिक्त जो भी प्राणी हैं वे या तो प्रेत आदि यातना-देहस्थ हैं अथवा प्रतीक्षारत पितर हैं। उन्हें भी—पितरोंको भी क्षुधा-पिपासाकी निवृत्तिके लिए पृथ्वीके अपने सुयोग्य संतानकी जलाञ्जलि तथा पिण्डदानपर ही आश्रित रहना पड़ता है। प्रत्यक्ष हुए पितरोंने कहा—'हम तो पितरगण हैं, किन्तु इस समय देवता भी दुःखी हैं। सरिता न होनेसे पर्वोंका सामूहिक स्नान, धर्म-कर्म अत्यल्प हो गये हैं। इस द्वीपमें यदि किसी प्रकार शिवकी जटामें स्थित नर्मदा उतर आवें तो हम सबकी मुक्ति हो जायगी।'

'पितरोंका उद्धार सन्तानका प्रथम कर्तव्य है।' राजा हिरण्यतेजाने निर्णय किया—'यदि मैं पितरोंको तृप्त नहीं कर सका, जीवन व्यर्थ गया।' वे शिवोपासना करते हुए कठोर तप करने लगे।

साम्बशिव प्रकट हुए। राजाने उनकी परिक्रमा की, प्रणाम किया, स्तुति की। आशुतोषने जब वरदान माँगनेको कहा—राजाने प्रार्थना की—'कल्पों तक प्रवाहित होने वाली नर्मदा देवीको आप मर्त्य लोकमें उतारें। मेरे पितर अतृप्त हैं, दुःखी हैं, उनकी तृप्ति हो, उनका उद्धार हो।'

'तुम कोई दूसरा वरदान माँग लो।' शिवने कहा—'नर्मदाका मर्त्य लोकमें अवतरण बहुत कठिन है।'

'आपके लिए भी त्रिकालमें कहीं कुछ असाध्य है, मैं इसपर विश्वास नहीं कर सकता।' राजाने कहा—मुझे भले सहस्रों जन्म लेना पड़े, आपकी ही आराधना करूँगा, आपके सेवकोंका सेवक ही रहूँगा, किन्तु मुझे दूसरा वरदान नहीं चाहिए।'

शिवने नर्मदाका स्मरण किया। वे मकरासना चतुर्भुजा गौरी प्रकट हुईं। उमा-महेश्वरको प्रणाम करके उन्होंने पूछा—'मुझे कोई आज्ञा है ?'

'मैं हिरण्यतेजाकी भक्ति तथा दीर्घकालीन तपसे विवश हूँ।' भगवान महेश्वर बोले—'अतः तुम इनकी इच्छानुसार पृथ्वीपर पदार्पण करो, सबके पितरोंका उद्धार करो।'

नर्मदा—'देव ! मैं बिना किसी आधारके जम्बू द्वीपमें कैसे जाऊँगी ?'

उस समय तक पर्वत पक्षधर थे। वे कहीं भी जा सकते थे। विश्वनाथने उन सबको आज्ञा दी—'तुम सब अचल हो जाओ जिससे रेवा भूतलपर पधार सके।'

पर्वतोंने प्रार्थना की—'हम नर्मदाके धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं। केवल उदयगिरि उन्हें धारण कर सकता है।'

उदयाचलने यह कार्य स्वीकार कर लिया। नर्मदा आकाशसे उसके शिखरपर चरण रखकर पृथ्वीपर उतरीं। उनका वेग बड़ा प्रचण्ड था। भयंकर नाद करती हुई जब वे उतरने लगीं, त्रिलोकीमें हाहाकार मचा, जैसे वे सब लोगोंको प्रवाहित कर देंगी। भूतल तो ध्वस्त ही हो जायगा, ऐसी आशंका होने लगी। उसी समय एक प्रज्वलित तेजोमय लिंग पातालसे प्रकट हुआ। उसने हुँकार की—'नर्मदे ! मर्यादा धारण करो। तुम्हें धारण करनेके लिए देवदेव महेश्वरने तीन पर्वत निर्मित किये हैं—मेरु, कैलास और हिमवान। चौथा विन्ध्य भी तुम्हारे धारणमें समर्थ है। उसकी दीर्घ काया एवं विस्तारमें तुम खो जा सकती हो। गर्वका त्याग करो।'

नर्मदा संकुचित हो गयीं। राजाने प्रार्थना की—'देवि ! आपने मुझपर असीम अनुग्रह किया।'

नर्मदा—'राजन् ! तुम्हारे तथा तुमसे सम्बन्धित सभी स्त्री-पुरुषोंके सब पितरोंका उद्धार हो गया। तुम्हारे माता-पिता, पत्नियों एवं उनके वंशधर लोग भी महेश्वरके लोकमें चले जायँगे।'

राजाने नर्मदामें स्नान करके विधिपूर्वक देव-पितरोंका तर्पण किया।

नर्मदाका यह अवतरण स्वायम्भू मन्वन्तरमें हुआ था। दूसरा अवतरण दक्ष- सावर्ण्य मन्वन्तरमें हुआ। तीसरा राजा पुरुरवाके द्वारा वैष्णव मन्वन्तरमें। पिछले दो अवतरणोंकी कथामें कोई वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं होता।

नर्मदाका चतुर्थ अवतरण जब हुआ, राजा पुरुकुत्सने एक सहस्र वर्ष तक महादेवकी आराधना की। शिवने जब उनसे वरदान माँगनेको कहा—राजाने माँगा—'परम सौभाग्यशालिनी नर्मदा नामकी सरिता भूतलपर उतारें।'

भगवान शिवने उनसे भी कहा था—'तुम दूसरा कुछ माँग लो,' किन्तु यह सुनते ही पुरुकुत्स मूर्छित होकर गिर पड़े। दयाधाम सदाशिवने आतुरतापूर्वक उन्हें उठाया, आश्वासन दिया,—'राजन्! व्याकुल मत बनो। नर्मदा मर्त्यलोकमें जायगी।'

शिवाज्ञासे इस मन्वन्तरमें पर्यंक पर्वतने नर्मदाके वेगका धारण स्वीकार किया। पृथ्वीपर आकर राजा एवं देवताओंके साथ नर्मदा वेग-पूर्वक चलीं। पर्यङ्क पर्वतकी चोटीसे उतरकर वह वहाँ पहुँचीं जहाँ पहले आदिराजा पृथुने अश्वमेध यज्ञ किया था। वहींपर एक बाँसकी जड़से महानदी नर्मदा जलधाराके रूपमें भूतलपर प्रकट हुईं। देवता, गन्धर्व, यज्ञ, किन्नर, नाग, राक्षस, पिशाच, ऋषि, मुनि सब वहाँ एकत्र हुए। सबने स्तुति की—'देवि! तुम्हारे दर्शन कर संसार कृतार्थ हुआ। हमें अपने जल-स्पर्शका अधिकार दो जिससे हम पवित्र हों।'

नर्मदाका जल तब तक इतना तेजोमय एवं असह्य था कि उसे कोई स्पर्श नहीं कर सकता था। नर्मदाने कहा—'मैं अब तक कुमारी हूँ। अतः कोई पुरुष देव या दैत्य मेरा स्पर्श नहीं कर सकता।'

देवता चिन्तित हुए—'तुम्हारे समान रूप-गुण सम्पन्न उत्तम वर हम कहाँसे ले आवें? जिसने तुम्हें इस लोकमें प्रकट किया है, वे ही तुम्हारे पति होंगे, क्योंकि समुद्र ही समस्त सरिताओंका पति है और सृष्टिकर्ताने पहले समुद्रको मानव होनेका शाप दिया था, इसलिए वे नदीपति ही राजा पुरुकुत्सके रूपमें अवतरित हुए हैं। वही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ वर हैं।'

नर्मदा—'भगवान स्वायम्भूके मानस पुत्रोंके समान धर्मिष्ठ राजा पुरुकुत्सको मैं पति रूपमें स्वीकार करती हूँ।'

नर्मदाको पत्नी मानकर राजाने आज्ञा दी—'तुम देवनदी हो, अतः मेरे पितरोंको स्वर्ग पहुँचा दो।'

रेवाने राजाकी आज्ञा स्वीकार की। पर्यंक पर्वतमें बाँसके मूलसे निकलकर वे पश्चिम समुद्रकी ओर चलीं और सागरमें मिलीं। उनके डेढ़ सौ स्रोत कहे गये हैं। वर्तमान कालमें इसी रूपमें नर्मदा विद्यमान हैं। उनका जल गंगाके समान ही पावनकारी है। (स्कन्दपुराण)

—×—

सत्यवत्सल

वैवस्वत (श्राद्धदेव) मनुके पुत्र हुए महाराज नभग। इनके पुत्र थे नाभाग जिनसे परमभागवत अम्बरीषका जन्म हुआ था। ये नाभाग जब बालक थे, ऋषिकुलमें विद्याध्ययन करने चले गये। ये ऋषिकुलमें ही थे कि इनके भाईने सम्पत्तिका परस्पर बटवारा कर लिया। उन्होंने नाभागके लिए कुछ भी अवशेष नहीं रखा। समावर्तन-संस्कार सम्पन्न होनेपर जब नाभाग भवन लौटे, उन्होंने भाईसे पूछा—'आप सबने मेरी क्या व्यवस्था की है? पिताके पास अब कोई सम्पत्ति रही नहीं है। मेरा भाग आपने क्या निश्चित किया है?'

भाइयोंने एक साथ कहा—'तुम स्वभावसे ही सन्तोष करने वाले हो। तुम्हें लौकिक सम्पत्तिसे क्या प्रयोजन है? तुम्हारे भागमें हमने पिताजीको ही छोड़ रखा है।'

नाभागने जाकर पिताको प्रणाम किया—'भाइयोंने आपको मेरा स्वत्व बनाया है।'

वृद्ध नभग हँसे। 'तुम्हारे भाई धूर्त हैं। उन्होंने तुमको वञ्चित किया है। उनकी बातपर विश्वास मत करो।'

नाभाग बोले—'पिता! वे मेरे अग्रज हैं, पूज्य हैं। मैं उनका अपमान नहीं करूँगा, उनसे विवाद नहीं करूँगा। मुझे उनकी आज्ञापालन करना चाहिए। उन्होंने आपको मेरा भाग बनाया है। इसका अर्थ ही है कि मैं आपकी सेवा करूँ। आप इसका अनुमोदन करें।'

'अर्थके बिना सेवा और संसार दोनों नहीं चलाए जा सकते।' महाराज नभगने कहा—'इसलिए तुम्हें अर्थकी आवश्यकता है। यहाँसे

थोड़ी दूर अंगिरस गोत्रके ब्राह्मण स्वर्ग जानेकी कामनासे यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञमें प्रति छठे दिन कुछ विशेष कर्म करना पड़ता है और वे बतलाते रहते हैं। इसलिए यज्ञव्यस्त ब्राह्मणोंको स्मरण नहीं रहता कि उनका इस बार क्या करना चाहिए। तुम वहाँ चले जाओ और उनके इस षष्ठम् दिनके कर्मका स्मरण करवा दिया करो। यज्ञ पूर्ण होनेपर वे सब स्वर्गादि चले जायँगे और यज्ञमें बचा हुआ सम्पूर्ण धन तुम्हें दे देंगे। छठे-छठे दिन उन्हें वैश्वदेव सूक्त बतलाना है जिसे तुम जानते हो।'

नाभागने पिताकी आज्ञाका पालन किया। उनके इस निर्देशनसे ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। स्वर्ग जाते समय वे यज्ञशेष सम्पूर्ण धन उनको देकर स्वर्ग चले गये, किन्तु जब नाभाग वहाँसे धनको लाने लगे, एक कृष्णवर्ण (नीललोहित) त्रिनेत्र पुरुष सहसा उपस्थित हुआ। उसने कहा—'यह सब धन मेरा है। तुम इसे क्यों उठा रहे हो ?'

'स्वर्ग जाते हुए यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंने मुझे दिया है।' नाभागने नम्रतापूर्वक कहा।

'नहीं। यह धन मेरा है। तुम्हें इसमें सन्देह है तो जाकर अपने पितासे पूछो।' उस पुरुषने कहा।'

नाभाग अपने पिताके पास लौट आये। उनकी बात सुनकर पिताने कहा—'ऋषियों और देवताओंने बहुत पहले यह विधान किया है कि यज्ञका सम्पूर्ण शेषांश रुद्रका भाग होता है। यदि वे भगवान त्रिलोचन अपना भाग लेना चाहते हैं तो वह उन्हींका है। तुम्हें उनसे विवाद नहीं करना चाहिए।'

नाभाग लौट आये। उन्होंने अञ्जलि बाँधकर रुद्रको प्रणाम किया। बोले—'भगवत् ! आप मेरे अपराधको क्षमा करें। मैं बालक हूँ। मेरे पिताने कहा है, यह धन वस्तुतः आपका ही है। मुझे इसे लेनेकी धृष्टता नहीं करनी चाहिए।'

'वत्स ! तुम्हारे पिता सत्यवादी हैं।' प्रसन्न होकर रुद्र बोले—'वे वृद्ध हैं, उनके पुत्रोंने उन्हें त्याग दिया है। उनको तुम्हारे भागमें दे दिया है। वे स्वयं कुछ करनेमें असमर्थ हैं और तुम निर्धन हो। इतने पर भी उन्होंने लोभपर विजय पा ली है और सत्य निर्णय दिया है। तुम स्वयं धन पाना चाहते हो। उत्तराधिकारमें तुमको कुछ मिला नहीं है। साधन-हीन हो। फिर भी तुमने बिना किसी लोभके सत्यको स्वीकार किया है। इसलिए मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मेरे भागका इस यज्ञमें बचा यह सब धन मैं

तुम्हें देता हूँ। इसे स्वीकार करो। मुझसे जब कोई अर्थ, धर्म, कामकी वाञ्छा करता है, मुझे प्रसन्नता नहीं होती। मैं, वह जो चाहता है, दे तो देता हूँ, किन्तु मेरी प्रसन्नता तो त्रिवर्ग देकर जन्म-मरणके चक्रमें ही चलाने वाली नहीं है। मैं प्रसन्न हूँ, इसलिए आवागमनसे निवृत करने वाला परम ज्ञान भी तुमको प्रदान करता हूँ।'

भगवान शिवने नाभागको तत्वज्ञानका उपदेश किया। इस प्रकार उन सत्यवत्सलने न केवल नाभागको यज्ञ-शेष सम्पत्ति देकर सम्पन्न बना दिया, ज्ञान दान करके परम सम्पत्तिसे भी सम्पन्न बनाया।

(शिवपुराण)

त्रिपुरारि-त्रिपुर-संहार

कुमार कार्तिकेयने तारकासुरको मार दिया और देवताओंका सेना-पतित्व स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् तारकके तीन पुत्र — तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष पृथ्वीपर आकर तपस्या करने लगे। क्योंकि स्वर्ग और पातालके लोक कर्मलोक नही हैं। इन लोकोंमें किये हुए कर्मोंका कर्ताको कोई फल नहीं मिलता। कर्मलोक धरा ही है।

तीनों असुरोंने बहुत दिनों तक कठिन तपस्या की। फलतः हंसवाहन भगवान ब्रह्मा उनके समीप वरदान देने पधारे। जब उन्होंने वरदान माँगनेको कहा, तीनोंने माँगा— 'हम सभी प्राणियोंसे अबध्य हो जायँ। अजर-अमर रहें। रोग और मृत्यु किसी भी प्रकार हमारा स्पर्श न करें। हम चाहे जिसका वध कर सकें।'

'प्रकृतिके राज्यमें अमरत्व संभव नहीं है। जन्मके साथ मृत्यु लगी है, वह अवश्यम्भावी है।' ब्रह्माने कहा— 'अतः ऐसा कोई वरदान दिया नहीं जा सकता।'

तीनोंने परस्पर विचार किया। फिर माँगा— 'हमारे पास इस समय निवासके लिए कोई स्थान नहीं है। हमारे पिताका स्थान स्वर्ग देवताओंने हमसे छीन लिया। नीचेके लोकोंमें पहलेसे ही दैत्य, दानव, नाग

आदि आधिपत्य किये हैं। अतः आप हमको कोई ऐसा स्थान प्रदान करें जिनमें शत्रुओंका प्रवेश न हो। आप हमको तीन नगर दीजिये जिनमें सब प्रकारकी सम्पत्ति हो, देवता जिनका धर्षण न करें।'

तारकाक्षने स्वर्णनिर्मित नगरकी इच्छा प्रकट की, कमलाक्षने रौप्य-निर्मित और विद्युन्मालीने लौहनिर्मित नगर माँगा। तीनोंने कहा— 'जब ये तीनों नगर एक सहस्र वर्ष पश्चात् मध्याह्नमें एक स्थानपर एकत्र हों, चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रमें हो, आकाशमें नीले पुष्करावर्त मेघ हों, उस समय हमारे नगर परस्पर मिलें। उसी समय यदि भगवान शिव असम्भव जैसे रथमें बैठकर असम्भावना जैसे शस्त्रसे प्रहार करें, तभी हमारे नगर नष्ट हों।'

ब्रह्माजीने उनको 'एवमस्तु' कह दिया और दानव शिल्पी मयको ऐसे तीन नगर निर्माण करके इनको प्रदान करनेकी आज्ञा दी।

दानवेन्द्र मयसे ऐसे तीन पुर निर्मित किये जिनमें-से स्वर्णपुर स्वर्गादि लोकोंमें, रजतपुर अन्तरिक्षमें और लौहपुर पृथ्वीपर इच्छानुसार घूमता रहता था। स्वयं दानवेन्द्र मय भी उन्हीं पुरोंमें बारी-बारीसे रहने लगे। वे पुर बहुत सम्पन्न थे। उन पुरोंमें प्रत्येक घरमें शिव-मन्दिर थे, यज्ञशालाएँ थीं, शास्त्रज्ञ ब्राह्मण निवास करते थे। बावलियाँ, कूप, सरोवर, उद्यान, क्रीड़ा स्थान, अध्ययनशालाएँ– सभी कुछ उनमें थे। तीनों ही पुर स्वेच्छा-नुसार चाहे जहाँ ले जाये जा सकते थे। उनमें निवास करने वाले दैत्य श्रौत-स्मार्त यज्ञ करते थे। सुन्दर ऊँचे कदके बृहद्बाहु-वक्ष, युद्धकुशल थे। मयने छाँट-छाँट कर दैत्य, दानव, राक्षसादि लाकर उनमें बसाये। उनकी पत्नियाँ पतिव्रता थीं और वे सब दैत्य-दानव तारकके पुत्रोंके पूर्ण अनुशासन-में उनके अनुयायी होकर रहते थे।

इन त्रिपुरनिवासी दैत्योंके कारण त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया था, क्योंकि स्वर्गमें देवताओंके नगर-उद्यान, अन्तरिक्षमें रहने वाले भूत-प्रेत-गन्धर्वादिके स्थान और पृथ्वीके प्राणियोंके आवास कहीं भी सुरक्षित नहीं थे। ये नगर चाहे जब, चाहे जहाँ उतर जाते थे; बिना यह देखे कि वहाँ पहलेसे क्या है। जो कुछ वहाँ हो, उसे ध्वस्त कर देते थे। क्योंकि ये नगर अभेद्य थे, स्वर्गमें, भूमिपर या कहीं भी चलने लगते थे। कभी-कभी धरापर बहुत थोड़ी ऊँचाईपर चलते थे और इस प्रकार जनपदोंको ध्वस्त करते

जाते थे। त्रिलोकीमें इन्होंने प्रायः प्रलय मचा रखी थी। दैत्योंके तेज और बलसे देवता कान्तिहीन हो गये थे। पृथ्वी और अन्तरिक्षके प्राणी तो करते ही क्या, आधिदैविक शक्तियोंके लिए भी इनका तेज असह्य हो गया था। महामारी, भूकम्प, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कोई उपद्रव इन पुरोंका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते थे। ऐसी स्थितिमें देवताओंने सृष्टिकर्ता-की शरण ली। ब्रह्माजीने स्पष्ट कह दिया— 'ये पुर और तारकके तीनों पुत्र अपने स्वजन-परिकरोंके साथ मेरे द्वारा अवध्य हैं। भगवान शिव ही इनसे त्रिभुवनको परित्राण दे सकते हैं।'

देवता कैलाशपर पहुँचे। उन्होंने शिवका स्तवन किया, अपना कष्ट निवेदन किया। उसमें सबसे प्रमुख बात थी— 'तारकके ये पुत्र और उनके अनुगामी असुर स्वयं यज्ञादि करते हैं, किन्तु पृथ्वीपर ऋषियोंको या अन्य किसीको भी यज्ञ, तप, धर्मादि नहीं करने देते।'

असुरोंकी यह नीति थी कि— 'जब धर्म, यज्ञ, तप आदिसे शक्ति प्राप्त होती है तो वह हमको ही होनी चाहिए। दूसरे किसीको भी शक्ति प्राप्त करनेके लिए इन कर्मोंमें लगनेका अवसर नहीं देना चाहिए। भगवान शंकरने सुरोंकी प्रार्थना सुनकर कहा— 'तुम सबकी बात ठीक है; किन्तु जो धर्मके पथपर स्थित है, उसे पराभव नहीं दिया जा सकता। धर्मका आश्रय लेकर दूसरोंको उत्पीड़ित करने वाला और दूसरोंको धर्माचरणसे बलात् निषेध करने वाला भी जब तक धर्म-विमुख नहीं हो जाता, उसका संहार नहीं किया जा सकता। त्रिपुरके निवासी पुण्यात्मा हैं। वे मेरी उपा-सनामें तत्पर हैं। अतः जब तक वे मेरी भक्ति करते हैं, धर्ममें स्थित हैं, यज्ञ और तपमें निष्ठा रखते हैं, उनका संहार नहीं किया जा सकता। उन्होंने ऋषियों और ब्राह्मणोंको पृथ्वीपर स्वतन्त्र यज्ञ, तप करनेसे रोका है, किन्तु किसी भी ब्राह्मण और ऋषिको अपने पुरमें आकर निवास करनेसे और यज्ञादि करनेसे रोका नहीं है। उन्होंने ऋषियों और ब्राह्मणोंका पूरा सम्मान किया है, उनको सुविधाएँ देते हैं, उनका पालन करते हैं, अतः केवल इसलिए कि वे किसी क्षेत्रविशेषमें यज्ञादि नहीं करने देते, उनका संहार नहीं किया जा सकता।'

देवता निराश हो गये। वे पुनः सृष्टिकर्ताके समीप गये। भगवान ब्रह्मा उन सबको लेकर वैकुण्ठमें नारायणके पास पहुँचे। उन्होंने नारायणसे प्रार्थना की— 'आप सृष्टिके पालक हैं। आप उन त्रिपुराध्यक्षोंके उत्पातसे त्रिलोकीकी रक्षा करें।'

'यह सत्य है कि जहाँ धर्म है, वहाँ दुःख और विनाश नहीं आ सकते ।' नारायणने देवताओंको कोई आश्वासन नहीं दिया ।

'आप किसी भी प्रकार हमारी रक्षा करें ।' देवताओंने पुनः प्रार्थना की— 'वे स्वयं धर्ममें लगे हैं, यह सत्य होनेपर भी वे दूसरोंको धर्म नहीं करने देते— यह अधर्म तो उनमें है ही ।'

भगवान विष्णुने देवताओंको अभिचार यज्ञ करनेका आदेश दिया । देवता पृथ्वीपर आये । यहाँ उन्होंने किसी प्रकार एक महायज्ञ किया । उस यज्ञकुण्डसे अत्यन्त दीर्घकाय शूल-गदा हाथमें लिए सहस्रों भूत प्रकट हुए । देवताओंने उनको आज्ञा दी— 'त्रिपुरको नष्ट कर दो और फिर जहाँ चाहो जाओ ।'

सभी भूत त्रिपुरका नाश करने गये; किन्तु वे किसी भी पुरमें प्रवेश नहीं कर सके । पुरोंके समीप पहुँचते ही जैसे अग्निमें शलभ भस्म हो जाते हैं, भस्म हो गये । जो बचे थे, वे भागकर श्रीहरिके पास पहुँचे । उन्होंने निवेदन किया— 'इन पुरोंका तेज असह्य है, हममें-से कोई इनमें प्रवेश नहीं कर सकता ।'

'धर्मात्माका अभिचारसे नाश नहीं किया जा सकता ।' श्रीहरिने सोचा— 'जब तक त्रिपुरके असुर धर्म-विमुख नहीं होंगे, तब तक मारे नहीं जा सकेंगे ।' देवताओंको नारायणने आश्वासन देकर विदा किया । फिर अपने शरीरसे ही अपनी मायासे एक मायापुरुषको प्रकट किया । उसका सिर मुण्डित था, वस्त्र मैले थे, उसके हाथमें काष्ठपात्र था, वह 'घर्म-धर्म' कहता था । विष्णुने उसे सोलह सहस्र श्लोकोंके एक शास्त्र-निर्माणकी आज्ञा दी जिसमें श्रुति-स्मृतिका खण्डन हो और केवल कर्मवादका ही प्रतिपादन हो । जब उसने इस ग्रन्थका निर्माण कर लिया, श्रीहरिने उसे आज्ञा दी— 'त्रिपुरोंमें जाओ और दैत्योंको सम्मोहित करो ।'

उस मायापुरुषने अपने शरीरसे अपने ही समान चार शिष्य प्रकट किये और उन्हें वह मायामय शास्त्र पढ़ाया । अब वे पाँचों एक साथ उन त्रिपुरोंमें घूमने लगे । किसीसे भी मिलनेपर बिना प्रणाम ही उसे आशीर्वाद देते थे— 'धर्मलाभ हो ।'

भगवान विष्णुने नारदजीको इस मायापुरुषके समीप भेजा । वहाँ उन्होंने उस पुरुषसे दीक्षा ग्रहण कर ली । फिर वे बारी-बारीसे त्रिपुरोंके

अधीश्वरोंके पास जाकर मायापुरुषकी प्रशंसा करने लगे— 'हमने बहुत धर्म देखे, बहुत धर्माचार्य और साधु देखे, किन्तु ऋषि-मुनि भी देखे, इस प्रकारका प्रभावशाली महात्मा नहीं देखा। तुम्हें उनके दर्शन करना चहिए और दीक्षा लेनी चाहिए।'

देवर्षि नारदके वचनोंपर सुर-असुर सभी श्रद्धा करते हैं। त्रिपुरोंके अध्यक्ष उस मायापुरुषके पास गये, उससे प्रभावित हुए और उससे उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। अध्यक्षने दीक्षा ग्रहण कर ली, इसलिए उनके आश्रयमें पुरोंमें रहने वाले दैत्य, दानव, राक्षसादि भी मायापुरुषके शिष्य हो गये।

'ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु भी देहधारी ही हैं, अतः उनकी पूजा व्यर्थ है। सभी शरीरधारी तत्वतः समान हैं, इसलिए सबको कालसे भय है।' उस मायापुरुषका उपदेश था— 'सब जीवोंपर दया करो, हिंसाका सर्वथा त्याग कर दो, किसीभी प्राणीको मत मारो, किसीको कष्ट मत दो। अहिंसा ही परम धर्म है, इसीसे प्राणी पवित्र होता है।'

प्रत्यक्ष ही यह उपदेश प्रभावकारी था, किन्तु वह मायापुरुष कहता था— 'पराधीन न होना ही मुक्ति है। ईप्सित भोगोंकी प्राप्ति ही स्वर्ग है। हिंसासे जीव नरक जाता है। सबको अभयदान देना श्रेष्ठ दान है। तुम सबको अभयदान दो। किसीको भयभीत मत करो। औषधिदान करो, विद्यादान करो, अन्नदान दो। इनमें भी अभयदान सबसे श्रेष्ठ है।'

उस मायापुरुषने धर्म और भोगके उपदेशोंको इस प्रकार मिलाया जिससे बुद्धिमानकी बुद्धि भी भ्रममें पड़ जाय। उसने कहा— 'मणि, मन्त्र और औषधियोंका उपयोग धनोपार्जनमें है। पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि— ये बारह स्थान ही पूज्य हैं। इनकी तृप्ति ही इनकी पूजा है। वस्तुतः स्वर्ग, नरक कहीं नहीं हैं। सुख स्वर्ग है और दुःख नरक है। वासना सहित सब क्लेशोंका नाश ही निर्वाण है। सब मनुष्य समान हैं, अतः उनमें वर्णकी कल्पना असत् है। जाति-भेद पाखण्ड है। अग्निमें पदार्थोंको भस्म करनेसे कोई लाभ नहीं होता। तीर्थ और श्राद्ध व्यर्थ हैं, क्योंकि सब भूमि समान है, इसमें कहीं कोई पवित्र-अपवित्र नहीं है। मृत पुरुषको कुछ खिलाया या पिलाया नहीं जा सकता। मन्दिरोंमें धातु-पाषाणकी मूर्तियोंकी पूजा मूर्ख करते हैं, उनसे कोई लाभ नहीं है। इन्द्रिय-संयम कापुरुषको

वस्तु है। सबल-सशक्त व्यक्ति उपलब्ध भोगोंका सेवन करे और यहीं स्वर्ग-का सुख ले। पातिव्रतका उपदेश स्त्रियोंको पराधीन बनानेके लिए पाखण्डियोंने किया है। पुरुषोंके समान स्त्रियोंको भी अनेक पुरुषके सेवनसे कोई दोष प्राप्त नहीं होता।'

उस मायापुरुषने मणि, मन्त्र, औषधि, ज्योतिष आदिके विचित्र-विचित्र चमत्कार प्रकट किये। इनका प्रयोग सार्वजनिक रूपमें असुरोंको सिखलाया। स्त्री-पुरुष वशीकरण, आकर्षण आदिके प्रयोगोंके सार्वजनिक प्रचारसे स्त्रियोंकी पवित्रता नष्ट हो गयी। पुरुष विलासी हो गये। इस प्रकार त्रिपुर निवासियोंकी आस्था, सदाचार, धर्मका नाश हो गया। जब वे धर्मविमुख हो गये, वहाँसे श्री विदा हो गयी। अलक्ष्मी—ज्येष्ठा और माया-ने वहाँ अपना आवास बना लिया।

मायापुरुषने जाकर नारायणको अपनी सफलताका समाचार दिया। भगवान विष्णु-ब्रह्मा और देवताओंको लेकर भगवान शंकरके समीप कैलास पहुँचे। उन्होंने शिवकी स्तुति की। वृषभारूढ़ नीलकण्ठ प्रकट हुए। बोले-- 'मैंने देवताओंका कार्य जान लिया है। विष्णु और नारदकी माया बहुत प्रबल है। दैत्य धर्मविमुख हो गये हैं, अधर्मनिष्ठ हो गये हैं, अतः मैं अब त्रिपुरका नाश कर दूँगा। मेरे लिए उपयुक्त रथ और अस्त्र प्रकट करो।'

विश्वकर्माने दिव्य रथकी कल्पना की। सूर्य और चन्द्र उस रथके दक्षिण और वाम चक्र थे, ऋतुएँ रथनेमि थीं, मन्दराचल रथनीड़ था, पुष्कर अन्तरिक्ष आदि पर्वत उसमें जुए बने। संवत्सर ही उसके वेग हुए। इस प्रकार कालचक्र स्वरूप ही वह रथ था। ब्रह्मा उस रथके सारथी हुए। देवताओंने रश्मि धारण किया। प्रणव तोत्र (क्रोड़ा) बना। मेरु पर्वतको धनुषकी कल्पना की गयी। शेष ज्या बने। स्वयं विष्णुने वाणका स्वरूप धारण किया। ब्रह्माण्डकी समस्त वस्तुओंका उस रथमें उपयोग हुआ था। शिव उमाके साथ उस रथपर आरूढ़ हुए। समस्त देवता और शिवगण भी उनके साथ सायुध चले। (शिवपुराण)

भगवान शंकरने वाणका प्रहार किया। सूर्य-मण्डलसे सूर्यकी रश्मियाँ विषैले वाण बनकर त्रिपुरोंमें उनके निवासियोंको भस्म करने लगीं, किन्तु मयने स्वर्णपुरमें औषधियोंसे एक अमृत-कूपका निर्माण किया था।

जो भी दैत्य, दानव, राक्षस मरते थे, उनका अमृत-कूपके रसका सिंचन कर देता था, मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो जाता था और उसके क्षत एवं भग्न अङ्ग पहले जैसे पूर्ण एवं सशक्त हो जाते थे। असुरोंकी इस क्षतिपूर्तिको देखकर भगवान शंकर खिन्न हो गये। इस समय विष्णुने उनको आश्वस्त किया।

विष्णने ब्रह्माको बहुत सुन्दर श्वेत कपिला गऊ बनाया और स्वयं उसके बछड़े बन गये। दोनों ही उस स्वर्णपुरीमें प्रविष्ट हुए। सीधे उस अमृत-कूपकी ओर चले। कूप-रक्षक असुरोंने इस गाय और बछड़ेको देखा; किन्तु मायापुरुषके उपदेशसे वे तो परम अहिंसक हो गये थे। जब तक कोई आक्रमण न करे, उसे मारना नहीं चाहिए—यह बात भी लगभग वे भूल गये थे। रक्षकका दायित्व क्या है, इसपर ध्यान देनेकी अपेक्षा उन्हें गाय और बछड़ेके साथ सद्व्यवहार करना चाहिए, यही बात ध्यानमें थी। उन्होंने बछड़े सहित गायको रोका नहीं। गायने और बछड़ेने भी कूपके अमृतको पीना प्रारम्भ कर दिया। रक्षक समझते थे, ये दोनों पशु कितना रस पी लेंगे। वे समीप भी नहीं गये। इतनी सुन्दर गौ और बछड़ा कभी काहेको देखा होगा। वे उनके स्वरूपपर ही मुग्ध थे। गाय और बछड़ेने कूपका समस्त रस इस प्रकार पी लिया कि उसमें एक बूंद भी रस नहीं छोड़ा। बछड़ा कूपमें कूद गया और उसने पूरे कूपको चाट-चाटकर स्वच्छ कर दिया। इतना करके वह गौ और बछड़ा भी वहीं अदृश्य हो गये।

कूप-रक्षक चौंके। अब कुछ भी करना उनके हाथमें नहीं था। दानवेन्द्र मयको उन्होंने इस घटनाको जाकर सुनाया। मयने सिर पीट लिया—'औषधियोंसे निर्मित अमृत इतना शीघ्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। भगवान महेश्वरकी इच्छा पूर्ण हो।' (श्रीमद्भागवत)

भगवान शंकर उस दिव्य रथमें धनुष चढ़ाकर बहुत दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करते रहे। उन्होंने यह ध्यान ही नहीं दिया कि उनके अंगुष्ठाग्रमें स्थिर होकर गणेश विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। बार-बार अंगुष्ठमें खाज होती थी और लक्ष्य स्थिर नहीं हो पाता था। आकाशवाणी हुई—'देव! आप अपने विघ्नेश्वरको पहले संतुष्ट करें।'

भगवान शंकरने भद्रकालीको समीप बुलाया। उसे आदेश दे दिया—'तुम गणेशका पूजन कर लो।'

गणपतिका पूजन हुआ, उसी समय सहस्र वर्षके उपरान्त तीनों पुर एक हुए। प्रलयंकरके धनुषपर वाण चढ़ाकर उसे पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अकस्मात् संकेतसे उन्होंने वीरभद्रको समीप बुलाया। आदेश दिया—'दानवेन्द्र मय मुझे बहुत प्रिय है, वह मेरा अनन्य भक्त है। जाकर उसे सूचित कर दो—मेरी आज्ञा है, अब वह इस पुरका त्याग करके अतल चला जाय।'

वीरभद्रने इस आज्ञाका पालन किया। मयने अपने आराध्यका संदेश सुना। मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और अपने आराध्य शिवलिंग हाटकेश्वरको लेकर अतल चला गया।

भगवान शंकरने धनुषको खींचा और वाणको छोड़ दिया। महा-भयंकर शब्द हुआ, सम्पूर्ण पृथ्वी कांपने लगी, समुद्र खौल उठा। त्रिपुर भस्म हो गये। उनमें युवा, वृद्ध, बालक स्त्री, पुरुष कोई नहीं बचा। देवताओंने विष्णुके साथ भगवान शंकरकी स्तुति की। इसी समय दानवेन्द्र मय भी आया। उसे देखते ही भगवान शिवने कहा—'वत्स! तुम शोक मत करो, वरदान माँगो।'

देवता भयभीत हो गये। पता नहीं, मय अब क्या माँगने वाला है; किन्तु उस परमोदारने अपने आराध्यसे माँगा 'प्रभो! आपके श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति निरन्तर बढ़ती रहे। आपका मुझपर ऐसा ही स्नेह बना रहे।'

मय प्रार्थना करके अतल चला गया। देवता अपने लोकोंको गये और उमा-महेश्वर भी वहाँसे कैलास चले गये।   (शिवपुराण)

द्वितीय कथा—दैत्येन्द्र प्रह्लादके पौत्र बलि त्रिलोकविख्यात हैं। उन बलिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था वाण। अपनी सहस्र भुजाओंके कारण वह भी प्रख्यात है। उसने बहुत समय तक कठिन तप करके महेश्वरको संतुष्ट किया। शिवके वरदान माँगनेको कहनेपर उसने माँगा—'मेरा नगर दिव्य एवं अजेय हो। आपके अतिरिक्त दूसरे किसी भी देवताका वहाँ प्रवेश पाना कठिन हो। नगर सर्वथा मेरे मनोनुकूल सब समय रहे। जब जैसा चाहूँ, वैसा हो जाया करे। मेरे स्थिर रहनेपर स्थिर रहे और मेरे चलनेपर साथ-साथ चले।'

भगवान शंकरने 'एवमस्तु' कह दिया। वाणासुर वरदान प्राप्त करके उत्साहमें भरा अपने पिता बलिके समीप सुतल पहुँचा। वहाँ उसने पिताको

अपने वरदान-प्राप्तिकी बात सुनायी। वहाँ उपस्थित भगवान वामनने कहा—'देवदेव महेश्वरने तुम्हें एक पुर तुम्हारे मनोनुरूप दिया है तो मैं भी तुम्हें वैसा ही दूसरा पुर देता हूँ। अब तुम ब्रह्माजीके पास ब्रह्मलोक चले जाओ।'

वाणासुरने ब्रह्मलोक जाकर सृष्टिकर्ताको साष्टांग प्रणिपात किया। यह सुनकर कि उसे श्रीहरिने भेजा है, ब्रह्माजीने हृदयसे लगाया। उसकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—'वत्स! जब हर और हरिनें तुम्हें एक-एक पुर दिया है, तब मैं भी वैसा ही पुर तुम्हें दे रहा हूँ।'

इन तीन पुरोंको प्राप्तकर वाणासुर त्रिपुर नामसे विख्यात हो गया। सहस्रभुज वह पहले ही था। अजेय पुरोंको प्राप्त कर अत्यन्त दुर्मद हो गया। उसने देवता, यज्ञ, विद्याधर, गन्धर्व आदि देव शत्रुवर्ग ही नहीं, राक्षस, दानवादिके स्थान भी नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्रकी पुरी अमरावती तो उसने उजाड़ ही दी। अब इस अत्याचारसे पीडित देवता और दानव भी भगवान शंकरके समीप कैलास पहुँचे। सबने प्रार्थना की—'प्रभो! आपने, श्रीहरिने और पितामह ब्रह्माने भी वाणासुरको दुर्भेद्य पुर देकर उसे अजेय बना दिया है। उसके साथ युद्ध करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। जो उसका सामना करेगा, उसे वह भस्म कर देगा।'

लीलामय रुद्रने कहा—'तुम लोग तीस कोटि देवता हो। दानव और राक्षस भी तुम्हारे साथ हैं। तुम बलवान हो। अमृत-पान करके अमर भी हो चुके हो। संगठित होकर त्रिपुरोंको ध्वस्त कर दो। मैं अथवा हरि सहस्रवाहुको संरक्षण नहीं देंगे।'

देवता, दानव अस्त्र-शस्त्र लेकर त्रिपुरके पास गये, किन्तु वाणासुरने उन्हें सरलतासे पराजित कर दिया। उनके अस्त्र-शस्त्र छीन लिए। सब हतोत्साह होकर भागे। भगवान महेश्वरके समीप जानेके अतिरिक्त उनके पास और कोई उपाय नहीं था। रुद्रने उन्हें आश्वासन दिया।

भगवती उमाको लेकर महादेव कैलाससे वृषभारूढ़ चले। पूर्णद, चण्डेश्वर, नन्दीश्वर, भृंगी, रिटि आदि पन्द्रह गणेश्वर उनके साथ थे। श्रीशैलपर पहुँचकर शिवने उसे अपना प्रधान निवास बनाया। यहाँ विराट रूप धारण करके उन्होंने पिनाकको हाथमें लिया। वाण चढ़ाकर अघोरास्त्रसे उसे अभिमंत्रित किया। इस वाणने तीनों पुरोंको दग्ध कर दिया। वे पुर

तीन खण्ड होकर नर्मदाके जलमें गिरे। नर्मदाके उद्गमके समीप जहाँ ये गिरे वहाँ जालेश्वर तीर्थ प्रकट हुआ। अघोरास्त्रसे छूटा वाण-जाल ही वहाँ गिरे जालेश्वर लिंग बन गया।

तीनों पुरोंके दग्ध हो जानेपर भयभीत वाणासुरने भगवान शंकरकी स्तुति की। आशुतोष प्रसन्न हुए—'दैत्यराज ! वरदान माँगो।'

'मैं सपरिवार इसी शरीरसे आपका परमधाम प्राप्त करूँ।' वाणने वरदान माँगा।

शिवने 'एवमस्तु' कहा। वाणासुर विमानमें बैठकर सपरिवार शिव-धाम चला गया। (स्कन्दपुराण)

—××—

जलन्धर वध

'अतर्क्य अवधूत' अध्यायमें यह बतलाया जा चुका है कि उस अवधूतको मारनेके लिए इन्द्रने वज्र उठाया था और तब वे अवधूत वेषमें शिव प्रज्वलित हो उठे थे। देवगुरु बृहस्पतिने उनको पहचान लिया था। उनकी प्रेरणासे इन्द्र जब शरणागत हुए, शिवने अपनी उस नेत्रज्वालाको क्षार समुद्रमें निक्षेप कर दिया। इन्द्रको तो अभय प्राप्त हो गया, किन्तु शिवके नेत्रोंसे प्रकट वह अग्नि गंगासागर संगमपर बालक बन गया और उच्च स्वरसे रुदन करने लगा। उसके अतर्क्य उच्चस्वर रुदनसे पृथ्वी कम्पित होने लगी, लोकपाल व्याकुल हो गये, क्योंकि उसकी यह रुदन-ध्वनि सृष्टिमें किसी भी कल्पित उच्चतम ध्वनिसे भी उच्च थी। सृष्टिके संचालनकी व्यवस्था जिन देवताओंपर है, वे सृष्टिकर्ताके पास पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया—'कोई अज्ञात शिशु इस प्रकार रुदन कर रहा है कि पृथ्वीपर कोई भी प्राणी अपने किसी भी काममें लग नहीं पाता। ऐसी ही अवस्था रही तो संसारके प्राणी बहुत शीघ्र इस प्रचण्ड ध्वनिसे उन्मत्त हो जायँगे अथवा मर जायँगे।'

स्वयं सृष्टिकर्ता भी उस ध्वनिके कारण संत्रस्तप्राय हो उठे थे। वे अपने हंसपर विराजमान हुए। जहाँसे वह ध्वनि उठ रही थी, वहाँ पधारे। उन्होंने समुद्रसे ही पूछा—'यह किसका पुत्र है ?'

समुद्र—'मुझे यह अनजानमें मिला है। गंगासागर संगममें अकस्मात् प्रकट हुआ। आप इसका जातकर्म कर दें।'

समुद्रने शिशुको ब्रह्माकी गोदमें डाल दिया। उस बालकने ब्रह्माके गलेमें हाथ डाला। उन्हें खींचने लगा। इस प्रकार कण्ठ दबनेसे ब्रह्माजीके नेत्रोंसे जल टपक पड़ा। बहुत प्रयत्न पूर्वक बल लगाकर उन्होंने शिशुसे अपना कण्ठ छुड़ाया। बोले—'इसके कारण मेरे नेत्रोंसे जल निकला है, अतः इसका नाम जलन्धर होगा।'

शुक्राचार्यको बुलाकर उन्होंने वह कुमार आचार्य शुक्रको दे दिया—'आप इसका रक्षण एवं शिक्षण करें।'

आचार्य शुक्रने उस बालकका दैत्येन्द्र पदपर अभिषेक किया। समुद्रने कालनेमिकी कन्या वृन्दासे उसका विवाह कर दिया। अब जो दैत्य देवताओंसे हारकर पाताल आदि लोकोंमें चले गये थे, वे जलन्धरसे रक्षित होकर सागरद्वीपमें रहने लगे।

जलन्धर-दैत्य-दानव सभामें बैठा हुआ था। आचार्य शुक्र पधारे। उसने उनको प्रणाम किया, उनका पूजन किया। फिर दैत्योंकी ओर देखकर आचार्यसे बोला—'यह राहु सिर मात्र क्यों है? इसे किसने काटा है?'

शुक्राचार्यने समुद्र-मन्थनकी कथा सुना दी। उसे सुनकर जलन्धर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने घस्मर नामक दूत इन्द्रके पास भेजा। अमरावतीकी सुधर्मा सभामें पहुँचकर घस्मरने देवराज इन्द्रसे कहा—'मैं दैत्यराज जलन्धरका दूत हूँ। आचार्य शुक्र उनके सहायक तथा संरक्षक हैं। दैत्यराजकी आज्ञा सर्वत्र अनिरुद्ध है। तुम देवाधमने उनके पिता सागरके सब रत्नोंको समुद्र-मन्थन करके ले लिया—यह अच्छा नहीं किया। अब शीघ्र वे सब रत्न दैत्येन्द्रको लौटा दो। देवताओंके साथ उनकी शरण ग्रहण करो, अन्यथा तुम्हें बड़ा भय प्राप्त होगा।'

इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ और क्रोध आया—'जब पर्वत मेरे भयसे भागने लगे, तब सागरने उनमें-से कईको शरण दे दी। वह मेरे शत्रु दैत्योंकी रक्षा करता है। अतः मैंने उसके रत्न छीन लिए। मुझसे द्रोह करके कोई सुखी नहीं रह सकता। सागर-पुत्र शंख भी इस जलन्धरके समान ही दुष्ट था। उसे मेरे अनुज उपेन्द्रने मार दिया। अब जाकर जलन्धरसे कह दो–वह शान्त रहे तो सकुशल रहेगा।'

दूत लौट आया। घस्मरके द्वारा इन्द्रका सन्देश सुनकर जलन्धर क्रोधसे भर गया। उसने दैत्य-सेना सज्जित की और स्वर्गपर चढ़ाई कर दी। नन्दनवनमें उसने अपना सैनिक शिविर स्थापित किया। देवताओं और दैत्योंका भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। युद्धमें जो दैत्य मारे जाते थे, शुक्र उन्हें अपनी संजीवनी विद्यासे जीवित कर देते थे। जो देवता मारे जाते थे, उन्हें जीवित करनेके लिए देवगुरु बृहस्पतिको द्रोणाचलसे औषधि मँगाकर जीवित करना पड़ता था। यह देखकर शुक्रने जलन्धरसे कहा–'तुम द्रोणाचलको उखाड़कर यदि समुद्रमें डाल दो तो इस युद्धमें आहत और हत देवताओंको पुनर्जीवित बनानेका कोई साधन बृहस्पतिके पास नहीं रह जायगा।'

जलन्धरके लिए यह काम कठिन नहीं था। उसने द्रोणाचलको उस स्थानसे उखाड़कर समुद्रमें डाल दिया। देवगुरु बृहस्पतिने देखा कि अब मृत एवं आहत देवताओंको जीवित करनेका कोई उपाय नहीं है तो उन्होंने देवताओंसे कहा–'तुम सब अमरावती त्यागकर भाग जाओ, कहीं अन्यत्र शरण ग्रहण करो। जब तक काल तुम्हारे अनुकुल नहीं होता, बलके द्वारा असुरोंको अभी पराजित नहीं किया जा सकता।'

देवताओंने भागकर मेरुकी गुफाओंमें आश्रय ग्रहण किया। जलन्धरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया, किन्तु उसके अनुचर मेरुकी गुफाओंमें भी देवताओंका पीछा करते थे, वहाँ भी उनको कहीं शान्तिसे बैठने नहीं देते थे। अब देवताओंने भगवान विष्णुकी शरण ली। वे बैकुण्ठनाथ देवताओंकी प्रार्थनासे द्रवित हुए, किन्तु जब गरुड़पर बैठकर जलन्धरके विनाशके लिए चलने लगे, सिन्धुसुताने अपने कमललोचनोंमें अश्रु भरकर कहा—'आप मेरे भाईको मारें नहीं, एकको तो आपने मार ही दिया। वह अब शंख बनकर आपके करोंका आभूषण हुआ . . . . .।

'देवि ! देवताओंपर संकट है, अतः मुझे जलन्धरसे युद्ध करना पड़ेगा।' विष्णुने रमाको आश्वासन दिया—'तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे भाईको अपने हाथसे नहीं मारूँगा।'

भगवान विष्णु युद्धमें आ गये। देवता भी सहायता करने लगे। बहुत समय तक युद्ध चला। अन्ततः विष्णुने जलन्धरसे कहा—दैत्य ! तुम धन्य हो। हमने इन्हीं अस्त्रोंसे अनेक सुरासुर अजेय दैत्योंको मारा है, किन्तु

तुम्हारे जैसा वीर मुझे अब तक नहीं मिला। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वरदान माँग लो!'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी बहिन श्रीके साथ मेरे यहाँ निवास करें।' जलन्धरने हँसकर कहा—'आप मेरी बहिनके पति हैं। आपके साथ युद्ध करना मेरे लिए कष्टकी बात है। मैं विजयी भी हो जाता तो भी मुझे पश्चात्ताप और दुःख ही मिलता।'

भगवान विष्णुको जलन्धरका वरदान सखेद स्वीकार करना पड़ा। अब वे रमाके साथ जलन्धरके सागरद्वीपमें रहने लगे। जलन्धरको विष्णुका आश्रय प्राप्त हो गया। इससे उसने त्रिलोकीको जीत लिया। जहाँ जो भी श्रेष्ठ रत्न आदि थे, उनको उसने छीन लिया। देवता दुःखी हो गये। उन्होंने भगवान शंकरकी शरण ली। शंकरजीने देवर्षि नारदको जलन्धरके पास भेजा। देवर्षिको देखकर जलन्धर उठा। उसने उनको प्रणाम किया, उनकी पूजा की—'आप कहाँसे पधारे हैं?'

'मैं कैलाससे आ रहा हूँ। वहाँ योजनोंमें लगा कल्पवृक्षका वन है। शत-शत कामधेनुएँ हैं। चिन्तामणियोंका सम्पूर्ण प्रांगण है। गिरिराज तनया पार्वतीके साथ शिवको देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।' नारदजीने जलन्धरको सुनाया—'मैं सोचने लगा—त्रिभुवनमें ऐसी समृद्धि कहीं है भी या नहीं। तब मुझे तुम्हारी समृद्धिका ध्यान आया और मैं उसे देखने तुम्हारे पास आ गया; किन्तु तुम लोग तो कैलासकी उस सम्पत्तिके सम्मुख कंगाल हो। केवल एक कल्पवृक्ष है तुम्हारे समीप। विष्णुके होनेसे एक चिन्तामणि है। यह सब हो तो भी सब व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे समीप कोई स्त्रीरत्न नहीं है।'

'त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ जाया रत्न कहाँ है?' देवर्षि नारदके उभाड़नेका प्रभाव हुआ। जलन्धरने उत्सुक होकर कहा—'जहाँ भी वह स्त्रीरत्न होगा, मैं उसे ले आऊँगा।'

'एक तो श्री हैं, पर वे तो तुम्हारी बहिन ही हैं।' देवर्षिने हँसकर कहा—'दूसरी कैलासमें योगी दिगम्बर शिवके पास उनकी भार्या हैं। इन दोनोंके समान रूप त्रिभुवनमें और कहीं नहीं है। इसीसे कामारि होकर भी शिव पार्वतीके वशमें हैं।'

देवर्षि इतना कहकर चले गये। दैत्येन्द्रने सैंहिकेय राहुको अपना दूत बनाकर शिवके पास भेजा। राहुने जाकर भगवान शंकरसे कहा—'तुम वनमें अथवा श्मशानमें भूत-प्रेतोंके साथ रहते हो, स्त्रीसे तुम्हें क्या प्रयोजन है? अतः यह जायारत्न हमारे स्वामीको दे दो। वे त्रिलोकीके अधीश्वर ही सर्वरत्नभोक्ता हैं।'

नन्दीश्वरने राहुको भगवान शिवके समीप जानेसे रोका नहीं था, क्योंकि राहुको पहले शिवने अपने शरीरमें कण्ठाभरण बना लिया था। उस रूपमें वह अब भी उनकी मुण्डमालामें था। अब उसकी यह धृष्टता देखकर नन्दीश्वरको क्रोध आया। उन शूलपाणिके भ्रूमध्यसे वज्रके समान भयंकर नाद करनेवाला एक पुरुष प्रकट हुआ। वह सिंहके समान मुँह फाड़कर जिह्वा चलाता, प्रज्वलित नेत्र, ऊर्ध्व केश, शुष्क देह, महाकाय, तालबाहु, तालजंघ राहुकी ओर झपटा। राहु भागा, किन्तु उसने राहुको पकड़ लिया। पकड़े जानेपर राहु चिल्लाया—'देवदेव! मैं आपकी शरण हूँ। मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो दूत हूँ। मैंने अपना कर्तव्य ही पालन किया है। आपका यह भयंकर सेवक मुझे खा जाना चाहता है, मेरी रक्षा करें।'

'यह दूत ब्राह्मण है, शरणागत है। इसकी रक्षा करना योग्य है।' भगवान आशुतोषने उस गणसे कहा—'इसे छोड़ दो।'

गणने राहुको छोड़ दिया; किंतु हाथ जोड़कर बोला—'दयामय! आपने मेरा भक्ष्य मुझसे छुड़ा दिया। मैं बहुत क्षुधित हूँ।'

'तू अपने हाथ-पैरका मांस भक्षण कर ले।' हँसकर शशांकशेखरने कहा। उस गणने अपना हाथ-पैर और शरीर भी खा लिया। वह भी राहुके समान सिर ही रह गया। इससे प्रसन्न होकर महेश्वर बोले—'तुम धन्य हो। तुम्हारा आज्ञापालन अद्वितीय है। आजसे तुम्हारा नाम कीर्तिमुख हुआ। तुम मेरे द्वारपाल रहोगे। मेरे सब गण तुम्हारी पूजा करेंगे। दुष्टोंके लिए तुम भयप्रद रहोगे। तुम्हारे पूजनके बिना मेरी अर्चा अपूर्ण रहेगी।'

राहु छूटकर धीरे-धीरे जलंधरके पास गया। जो कुछ हुआ था, उसने निवेदन कर दिया। क्रोधमें भरकर जलन्धरने सेना सज्जित की। शुक्राचार्य और राहुको आगे करके वह कैलासकी ओर चला।

'हम जलन्धरके भयसे संत्रस्त हैं। हमने श्रीहरिकी शरण ली थी, किंतु जलन्धर तो उनका स्यालक है। लक्ष्मीसहित हरि उसके यहाँ निवास

करने लगे हैं। उनकी आज्ञासे हम भी अब वहीं रहनेको विवश हैं। जलन्धरने हमें सेवक बना लिया है।' देवताओंने भगवान शंकरसे जाकर प्रार्थना की—'हम सब बहुत दु:खी हो गये हैं। विष्णुने हमको गुप्त रूपसे भेजा है। उन्होंने कहलाया है—जलन्धर आपका अंश है और लक्ष्मीका भाई है, अतः इसे हरि नहीं मार सकते। आप ही उसका वध करें।

देवता कैलाससे विदा भी नहीं हुए थे कि जलन्धर सेना लिए आ पहुँचा। उसने कैलासपर घेरा डाल दिया। भगवान शंकरने अपने गणोंको उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। युद्धमें जो दैत्य मारे जाते थे, शुक्राचार्य उनको जिला देते थे। यह बात जब रुद्रके गणोंने अपने स्वामीसे कही, वे प्रलयंकर क्रुद्ध हो गये। उन्होंने एक कृत्या प्रकट कर दी। वह असुरोंको पकड़कर भक्षण करने लगी। शुक्राचार्यके पास जाकर उन्हें उठाकर वह आकाशमें चली गयी और अन्तर्धान हो गयी।

शिवगणोंका दैत्योंसे भयंकर युद्ध हो रहा था। कार्तिकेय, गणेश, नन्दीश्वर, वीरभद्र आदि जलन्धरके आघातसे मूर्छित हो गये थे। शिवगण युद्धसे भाग खड़े हुए, तब भगवान शङ्कर युद्धमें आये। जलन्धरका धनुष, रथ, गदादि उन्होंने ध्वस्त कर दिया। दैत्य मूर्छित हो गया, किंतु सावधान होनेपर उसने माया प्रकट की। मायासे प्रकट अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व गाने लगे, विद्याधर मृदङ्ग आदि वाद्य बजाने लगे। इस संगीतसे मोहित रुद्रके हाथसे धनुष छूटकर गिर गया।

रुद्रको मायासे मोहित करके असुर जलन्धरने मायासे ही पञ्चमुख, दसभुज, त्रिनेत्र, जटाधारी रूप बनाया। वह नीलकण्ठ, चन्द्रमौलि महा-वृषभारूढ़ होकर पार्वतीके समीप पहुँचा। पार्वतीने समझा, भगवान महेश्वर आये हैं। वे सखियोंके मध्यसे स्वागत करने उठीं; किंतु उनके भुवनमोहन रूपको देखकर दैत्यका रेतस्खलन हो गया। उसका सम्पूर्ण शरीर जड़की तरह स्तम्भित हो गया। देवीने समझ लिया, यह तो दैत्य है। अन्तर्धान होकर वे मानसमें चली गयीं।

दैत्य विद्युल्लताके समान उमाको अदृश्य हुआ देखकर युद्धस्थलमें आ गया। मानसरोवरमें स्थित उमाने विष्णुका स्मरण किया। वे पधारे। पार्वतीने पूछा—'आपके सालेने मेरे साथ जो छल करना चाहा था, वह आपसे अविदित है?'

'देवि ! मैं उमे जान गया।' अत्यन्त लज्जित हरिने बद्धाञ्जलि मस्तक झुकाकर नम्रतापूर्वक कहा—'आप मुझे आज्ञा दें।'

'दैत्यने जो मार्ग स्वयं दर्शित किया है, उसके लिए वही उचित मार्ग है।' उमाने रुष्ट स्थिर स्वरमें कहा—'वह अपनी पत्नीके पातिव्रतके कारण अजेय है, अतः तुम उसका प्रदर्शित मार्ग पकड़ो।'

दैत्यराजकी जलन्धरकी पत्नी वृन्दाने अमरावतीमें दुःस्वप्न देखा। उसने देखा, 'जलन्धर तेल लगाये हुए नंगा भैंसेपर बैठा, काले पुष्पोंकी माला पहने दक्षिणकी ओर जा रहा है।' फिर उसने देखा—'उसके पतिका केवल सिर भूमिमें पड़ा है। गीदड़ और भेड़ियोंसे घिरा वह सिर दक्षिण जा रहा है।' व्याकुल होकर वह चौंक उठी। रुदन करने लगी। उद्विग्न होकर वनमें घूमने लगी। वहाँ नन्दनकाननमें सिंहमुख भयंकर दाढ़वाले दो राक्षस उसकी ओर आते दीख पड़े। वहाँसे भी व्याकुल होकर वह भागी।

उस उद्यानके एक कोनेमें एक तपस्वी अपने शिष्यके साथ दीख पड़ा। भयसे भागती वृन्दा वनमें दौड़कर उस मुनिके पैर पकड़ लिए—'मैं आपकी शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

मुनिने हुँकार करके राक्षसोंको भगा दिया। वृन्दासे बोले—'तुम भय त्याग दो।' अब वृन्दा आश्वस्त हुई। उसने उस मुनिको प्रणिपात किया—'हे दयामय ! मेरा स्वामी युद्ध करने गया है, उसकी क्या दशा है ?'

मुनि मौन होकर ऊपर देखने लगे। तब तक दो वानरोंने आकर उनको प्रणाम किया। आँखोंसे ही मुनिने उन वानरोंको कोई संकेत किया। इससे वे आकाशमें उछल गये। कुछ क्षणमें ही वे जलन्धरका सिर और कबन्ध ले आये। अपने स्वामीकी यह दशा देखकर वृन्दा मूर्छित हो गयी। चेतना आनेपर विलाप करने लगी। मुनिसे उसने अत्यन्त कातर होकर कहा—'आप दयालु हैं, सर्वसमर्थ हैं। मेरे स्वामीको जीवन प्रदान करें।

'संग्राममें रुद्रके द्वारा मारा गया कभी जीता नहीं।' मुनिने कहा—'फिर भी मैं इसे जिला देता हूँ; क्योंकि शरणागतकी रक्षा करना धर्म है।'

जलन्धरको जीवित करके मुनि अन्तर्धान हो गये। वृन्दाने पतिका आलिंगन किया। दोनों प्रसन्न हो गये। एक साथ वहीं रहने लगे। अचानक जब वह जलन्धर विष्णुके रूपमें प्रकट हो गया, वृन्दाको बड़ा क्रोध आया।

उसने शाप दिया—'तुमने माया करके मेरे सतीत्वका नाश किया है। मायासे तुमने जो राक्षस दिखलाये, वे ही तुम्हारी पत्नीका हरण करेंगे। तुम पत्नीके निमित्त दुःखी होगे। तुमने मायासे वानर दिखलाये थे, वे तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम्हारे जो शिष्य बने थे, वे शेष भी तुम्हारे साथ रहेंगे।' यह शाप देकर वृन्दाने अग्निमें प्रवेश कर लिया।

जलन्धर जब युद्धमें लौट आया, उसकी माया लुप्त हो गयी। शिव सावधान हुए। बड़ा भयानक युद्ध हुआ, किन्तु अब दैत्य पत्नीके पातिव्रतसे सुरक्षित नहीं था। शिवने उसका मस्तक काट दिया। उसका तेज शिवमें ही लीन हो गया। देवता महेश्वरकी स्तुति करने लगे।

(शिवपुराण)

शंखचूड-शमन

प्रजापति महर्षि कश्यपकी पत्नी थीं दनु। दानव इन्हींके वंशज हैं। दनुके ज्येष्ठ पुत्र विप्रचित्तिका पुत्र दम्भ बहुत धार्मिक जितेन्द्रिय विष्णुभक्त था। उसके कोई पुत्र नहीं था। आचार्य शुक्रसे श्रीकृष्ण मन्त्रकी दीक्षा लेकर वह पुष्करमें महानुष्ठान करने लगा। अनुष्ठान सफल हुआ। भगवान विष्णुने प्रकट होकर कहा—'वरदान माँगो।'

दम्भने प्रणाम करके नारायणकी स्तुति की। वरदान मांगो–'प्रभो ! यदि आप प्र सन्न हैं तो मुझे ऐसा पुत्र दें जो आपका भक्त हो, पराक्रमी हो त्रिलोकजयी हो, जिसे देवता भी जीत न सकें।'

श्रीहरिने 'एवमस्तु' कह दिया। अन्तर्हित हो गये। दम्भ अपने भवन लौट आया।

गोलोकमें श्रीराधाने श्रीकृष्ण-पार्षद श्रीदामाको असुर होनेका शाप दिया था। दम्भकी पत्नीके गर्भमें वही आये। जन्म होनेके पश्चात् दम्भने पुत्रका नाम शंखचूड रखा। दैत्य, दानव, राक्षस, भी वानर, ऋक्ष, नाग, यक्ष आदिके समान उपदेवता ही हैं। इनकी स्त्रियोंको इच्छानुसार गर्भ धारण करनेकी और चाहे जब प्रसवकी शक्ति प्राप्त होती है। इनके शिशु उत्पन्न होते ही तरुणावस्थाके आकारमें हो जाते हैं, कामरूप होते हैं।

शंखचूडने पिताके आदेशसे मुनि जैगीषव्यसे दीक्षा ली और अपने पिताकी तपस्थली पुष्करमें आकर दीर्घकाल तक तपस्या करता रहा। तपसे प्रसन्न होकर जब ब्रह्माजी वरदान देने आये, उसने मांगा—'मुझे देवता पराजित न कर सकें।'

सृष्टिकर्ताने उसे श्रीकृष्ण-कवच प्रदान किया और बदरिकाश्रम जानेकी आज्ञा दी। बदरीवनमें महाराज धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तपस्या कर रही थी। शंखचूडका वहाँ तुलसीसे परिचय हुआ। ब्रह्माजीने आकर दोनोंका विवाह करा दिया।

दैत्य दानवोंमें एक स्वस्थ परम्परा है—जो शक्तिशाली बलवान होता है, जिसके पास तपःशक्ति होती है, उसे वे अपना अधिपति बना देते हैं। यद्यपि शुक्राचार्य मृत दैत्योंको संजीवनी विद्यासे पुनः जीवित कर लेते हैं, किन्तु इस प्रकार मृत असुरकी पूर्व शक्ति, तपस्यासे पूर्व प्राप्त वरदानोंका प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस प्रकार पुनर्जीवन प्राप्त किये पहली शक्तिसे रहित जो दैत्य त्रिभुवन विजयी भी रहे हैं, वे भी नये अधिपतिकी अधीनस्थता स्वीकार करनेमें संकोच नहीं करते हैं। दैत्य-दानव कठोर अनुशासनका पालन करते हैं। शुक्राचार्यके कहनेसे दैत्य-दानवोंने शंखचूडको अपना अधिपति बना लिया।

असुरोंकी सेना लेकर शंखचूडने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। देवता युद्धमें पराजित हो गये। दैत्य त्रिलोकेश हो गया। स्वयं यज्ञभागका आहरण करने लगा। सब लोकपालोंका काम उसने स्वयं सम्हाल लिया। इससे त्रिभुवन सुखी हुआ। विलासी देवताओंका प्रसाद समाप्त हो गया। सम्पूर्ण सृष्टिमें से आधि-व्याधि विदा हो गये। कहीं महामारी, उपद्रव, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, नहीं होती थी। भूकम्प ज्वालामुखी नहीं आते थे। बिना जोते पृथ्वी अन्न देती थी। पर्वतोंपर मणियाँ प्रकट हो गयी थीं। समुद्र तट मोतियोंसे भरा रहता था। वृक्ष सदा फले-फूले रहते थे। नदियोंमें स्वच्छ जल प्रवाहित होता था। सब जीव सुखी थे। सब मनुष्य धर्मरत थे क्योंकि शंखचूडको धोखा देना सम्भव नहीं था। सबके स्वार्थ स्वयं पूर्ण हो रहे थे। किसीको भी अधर्म करनेकी आवश्यकता नहीं थी। शंखचूडकी कृष्ण-भक्तिके कारण प्रजा भी कृष्ण-भक्त हो गयी थी। केवल पद-वंचित, निर्वासित देवता दुःखी थे।

देवता भगवान ब्रह्माके समीप गये। ब्रह्माजी उनको लेकर वैकुण्ठ गये। उन्होंने नारायणकी स्तुति की। श्रीहरि प्रकट हुए। उन्होंने कहा— 'शंखचूड मेरा भक्त है, सदाचारी है, सब प्राणियोंको उसने सुखी किया है। वह श्रीकृष्ण-पार्षद अपने अनुरूप ही कर्म कर रहा है। अतः देवताओंको उसने उनके स्वत्वसे वंचित किया है, केवल इतने अपराधपर उसका वध मैं नहीं कर सकता। भगवान रुद्रके त्रिशूलसे ही उसकी मृत्युका विधान है, अतः आप सब शिवके पास जायँ।'

देवता इस बार कैलास न जाकर शिवलोक गये। शिवलोकके पन्द्रह द्वारोंको पार करके ब्रह्माजी देवताओंके साथ सोलहवें द्वारपर पहुँचे। नन्दीश्वरसे आज्ञा लेकर भीतर गये। वहाँ सब शिवपार्षद पञ्चमुख, दशभुज, त्रिनेत्र, किन्तु श्वेतकण्ठ, चन्द्रभाल, रुद्राक्षभस्मधारी थे। देवताओंने महादेवकी स्तुति की।

शिवने देवताओंको आश्वासन दिया, आदेश दिया—'पृथ्वीपर रुद्र मेरे ही स्वरूप हैं। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है, इसलिए सब सुरोंको कैलास जाना चाहिए।'

देवता कैलास आये। उनके स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान रुद्रने उन्हें आश्वासन दिया और चित्ररथ गन्धर्वराजको दूत बनाकर शंखचूडके समीप भेजा। शंखचूडके नगरमें बारह द्वार थे। सबपर द्वारपाल नियुक्त थे। उनकी अनुमति लेकर दूत राजसभामें पहुँचा। उसने दानवेन्द्रसे कहा— 'मैं रुद्रका संदेशवाहक चित्ररथ नामका गन्धर्व हूँ। भगवान प्रलयंकरने संदेश भेजा है कि तुम देवताओंका राज्य तथा अधिकार उनको लौटा दो। मैंने देवताओंको अभयदान किया है। यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो मेरे साथ युद्ध करो, मैं तुम्हारा वध करूँगा।'

'पृथ्वी वीरभोग्या है।' शंखचूड संदेश सुनकर खुलकर हँसा—'रुद्रको युद्ध चाहिए तो वह उन्हें मिलेगा। मैं उनपर पहले चढ़ाई करूँगा।'

दूत लौट गया। रुद्रने अपने गणोंको युद्धका आदेश दिया। वसु, आदित्य आदि देवता भी इस युद्धमें सम्मिलित होने अपनी सेनाके साथ आये।

दूतके लौट जानेपर शंखचूडने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त किया। पत्नीको समझाया। बोला—'युद्ध मैंने स्वीकार कर लिया है। अब तुम अनुमति दो! भगवान तुम्हारी रक्षा करें।

पुष्पभद्रा नदीके तटपर गोमन्तक पर्वतके समीप दोनों सेनाएँ मिलीं। शंकरजीने पहले शंखचूडके पास फिर दूत भेजा, किन्तु अब संदेश व्यर्थ था। शिव और शंखचूडका अकल्पनीय भयंकर युद्ध सौ वर्षों तक चलता रहा। अन्तमें जब शिवने अपना त्रिशूल उठाया, आकाशवाणी हुई— 'देव-देव! आप प्रलयंकर हैं, सर्वसमर्थ हैं, किन्तु आपको मर्यादाको रक्षा करनी चाहिए। श्रुतिकी मर्यादाको नष्ट मत करें। जब तक शंखचूडके पास हरिका कवच है और जब तक इसकी पत्नी पतिव्रता है, तब तक जरा और मृत्यु इसका स्पर्श नहीं कर सकते।'

रुद्रने त्रिशूल रोक लिया। विष्णुका स्मरण किया। हरिके आनेपर बोले— 'आपने यह दायित्व मेरे सिर डाल दिया है। आपने ही सुरोंको मेरे समीप भेजा है। अब इसके पास आपका कवच है, यह आपका भक्त है और मैंने सुरोंको अभय दे दिया है। अतः आपको मेरी सहायता करनी चाहिए।'

श्रीहरिने कहा— 'यह मेरा पार्षद है। इसके शापका समय समाप्त हो चुका। इसे अब असुर योनिमें न रहकर गोलोकमें ही रहना चाहिए। यह तो श्रीकृष्णका अपना ही स्वरूप है, उनका परिकर है, इसलिए इसको अपने धाम भेजनेकी व्यवस्था मैं करूँगा।'

एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप बनाकर विष्णु दानवेन्द्रके समीप गये। उन्होंने पहुँचते ही 'भिक्षां देहि' पुकार की। दानवेन्द्रने कहा— 'विप्रवर! आपको जो चाहिए, मांग लो।'

'मुझे देनेके पहले प्रतिज्ञा कर लो तब मांगूँगा।' ब्राह्मणने कहा।

दानवेन्द्र उदारता पूर्वक बोले— 'आप मुझसे मेरा सिर भी मांगेंगे तो मैं प्रसन्नतापूर्वक दे दूँगा। आपकी मांग पूर्ण करनेकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'तब आप अपना कवच दे दें।'

'श्रीकृष्णकी इच्छा पूर्ण हो।' दानवेन्द्रने यह कहकर प्राणोंसे प्रिय अपना वह कवच उतारकर ब्राह्मणको दे दिया।

विष्णु अब शंखचूडका वेष बनाकर तुलसीके समीप गये। तुलसीने उन्हें अपना पति ही समझा। उनका स्वागत किया। वे उस भवनमें उसी

रूपमें रहने लगे । तुलसीने रात्रिमें अचानक अनुभव किया, उसके साथ यह उसका पति नहीं है । रुष्ट होकर पूछा— 'तू कौन है ? मेरे साथ यह छल करनेका साहस तूने कैसे किया ?'

श्रीहरि अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये । यह देखकर तुलसी रो पड़ी । उसने क्रोधपूर्वक शाप दिया— 'तुममें दया नहीं है । तुमने छलसे मेरा पातिव्रत नष्ट करके मेरे स्वामीका वध कराया होगा । तुम्हारा हृदय पाषाण-के समान है, अतः तुम पाषाण हो जाओ ।'

हरिने कहा— 'देवि ! तुम मेरी नित्यप्रिया हो । यह असुर मेरा स्वरूप ही था । शापवश हो असुरयोनिमें आया था । उसे स्वधाम प्राप्त करनेका अवसर आ गया था । भ्रमवश ही तुम उसे असुर मानकर उपासना करती थी । फिर भी तुम्हारा शाप मैं स्वीकार करता हूँ । पाषाण रूपमें भी मैं तुम्हारी पूजाके बिना सन्तुष्ट नहीं होऊँगा । तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदी होगा, उसीमें मेरा आविर्भाव होगा और तुम्हारा एक रूप तुलसी वीरुध होगा । उसके दलोंके बिना मेरे पाषाण रूप शालिग्रामकी पूजा पूर्ण नहीं होगी ।'

युद्धमें रुद्रने अपना विजय नामक त्रिशूल उठाया । दिशाएँ उसके प्रकाशसे प्रज्वलित होने लगीं । रुद्रका यह त्रिशूल प्रलयाग्निके समान दुर्निवार, दुर्धर्ष और ब्रह्माण्डको नष्ट करनेमें समर्थ है । उसकी ज्वालामें शंखचूड भस्म हो गया । उसका देह भस्म हो गया और वह श्रीदामाके रूपमें गोलोक पहुँच गया । उसकी अस्थिसे शंख प्रकट हुआ जिसका जल शिवको छोड़कर सभी देवताओंको प्रिय है । देवताओंने रुद्रकी स्तुति की । वे अपने गणोंके साथ कैलास चले गये ।

(शिवपुराण)

अन्धकोद्धार

एक समय शिव-पार्वती गणोंके साथ काशी पधारे। वहाँ उन्होंने भैरवको अपना नगर-रक्षक नियुक्त किया। कुछ समय वहाँ रहे। वहाँसे फिर वे मन्दराचलपर पहुँचे। वहाँ एक दिन पार्वतीने हँसीमें शिवके नेत्रोंको अपने करोंसे बन्द कर दिया। महेश्वरके स्पर्शसे शिवाके करोंमें स्वेद आया और उनके करस्पर्शसे शिवको भी स्वेद-बिन्दु झलमला आये। उमा-महेश्वरके इस स्वेद-बिन्दुओंके मिलनसे एक बहुत बड़ा करालमुख, भयंकर, क्रोधी, अन्धा, विरूप, जटाधर, कृष्णवर्ण, बहुत रोमवाला पुरुष उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही गाने लगा, नाचने लगा। कभी-कभी रोने लगता था, जीभ चाटता था। उसकी इन उन्मादपूर्ण चेष्टाओंको देखकर और भयंकर रूपको देखकर पार्वती भयभीत हो गयीं। भगवान शिवने कहा— 'तुमने जो मेरे नेत्र बन्द किये थे, उसके फलसे अब डरती क्यों हो?' यह सुनकर पार्वतीने नेत्रोंसे हाथ हटा लिया।

पार्वतीने जिज्ञासा की— 'यह कौन है?'

'तुमने ही इसे रचा है। यह अन्धक नामका तुम्हारा ही पुत्र है। इसपर दया करो।'

पार्वतीने सखियोंको उसकी रक्षाका भार दे दिया। यह महेश्वरका पुत्र गिरिजाकी सखियोंके द्वारा पालित होने लगा।

हिरण्याक्ष अपने बड़े भाई हिरण्यकशिपुको पुत्रवान् देखकर पुत्रकी कामनासे वनमें आकर तपस्या करनेलगा। उसके कठोर तपसे भगवान शंकर प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने कहा— 'वरदान माँगो।'

'मैं अपुत्र हूँ।' हिरण्याक्षने कहा— 'दैत्य कुलके अनुरूप वीर्यवान पुत्र प्रदान करें।'

'दैत्येन्द्र! तुम्हारे भाग्यमें तुम्हारे वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अभी नहीं है।' शिवने कहा— 'मेरा एक अन्धा पुत्र है। बल और वीर्यमें मेरे ही समान है। यदि तुम उसकी इच्छा करते हो तो लेलो। उसके बाद तुम्हारे पुत्र होंगे।'

हिरण्याक्षने उसे स्वीकार कर लिया। शंकरने उसको दे दिया। अब उसे लेकर हिरण्याक्ष दैत्यपुरीमें आया। अन्धक दूसरे दैत्य बालकोंके साथ खेलने लग गया। हिरण्याक्षके और भी पुत्र पीछे हुए। एक बार खेलमें लगे चचेरे भाइयोंने अन्धकसे कहा— 'अन्ध! अब तुम्हें राज्यसे क्या प्रयोजन? तुम्हारा पिता मूर्ख था जो तप करके शिवसे तुम्हारे जैसा कराल कुरूप पुत्र लेआया। तुम उसके और सभी दैत्योंके अनुरूप नहीं हो। हिरण्याक्षके तुम औरस पुत्र भी नहीं हो। तुम्हें राज्य नहीं मिलेगा।'

हिरण्यकशिपुके पुत्रोंकी यह बात सुनकर अन्धक बहुत दुःखी हुआ। वह रात्रिमें ही निर्जन वनमें चला गया। एक पैरसे खड़े होकर दोनों भुजाएँ उठाकर निराहार रहते हुए उसने तपस्या प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनोंके तपसे दैत्य उद्विग्न हो गया। उसने अग्नि जलायी और अपने माँसको काट-काटकर उसमें हवन करने लगा। जब उसे इसमें भी सफलता होती नहीं दीखी, वह स्वयं ही अग्निमें कूदने लगा। हंस-वाहन ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्होंने उसे पकड़ लिया और बोले— 'वरदान माँगो।'

अन्धक— 'मेरा राज्य छीनने वाले भाई मेरे भृत्य हों। मेरे दिव्य नेत्र हो जायँ। मेरी किसीसे भी मृत्यु न हो। हरि तथा हरसे भी मैं अवध्य रहूँ।'

ब्रह्मा— 'और सब तो ठीक है। तुम्हारे नेत्र दिव्य होजायँगे। तुम हरि और हरसे भी अवध्य रहोगे। तुम्हारे सब भाई तुम्हारे भृत्य होजायँगे। तुम विनाशका कोई हेतु ग्रहण करो, क्योंकि कालसे कोई अछूता नहीं रह सकता।'

अन्ध— 'जो नारी शिरोमणि मेरी जननी हो, जब मैं उसीको पत्नी बनाना चाहूँ तब स्वयंभू प्रभु द्वारा मेरी मृत्यु हो।'

अन्धकको वरदान देकरके ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये। अन्धकने एक वरदान और भी ब्रह्माजीसे जाते-जाते मांग लिया— 'मेरे देहपर लगे आघातसे गिरे रक्तकी बूँदोंसे मेरे रूप पराक्रम वाले ही वीर उत्पन्न हों। मैं धराका स्पर्श होनेपर मरूँ नहीं।'

अन्धक ब्रह्माजीके कर-स्पर्शसे पुष्ट देह, नेत्रवान हो गया था। वह दैत्यपुरीमें लौट आया। दैत्योंने स्वयं ही उसको अपना अधिपति बना लिया।

बलसे गर्वित वरदानप्राप्त उस महादैत्यने नाग, राक्षस, गन्धर्व यक्ष, देव सबको जीत लिया। वह बहुत कामुक था। जहाँ भी सुन्दरी रमणी दीखती थी, वहाँसे उसे जैसे भी मिले, छीन लाता था। अहंकारी था, दुष्ट था और दुष्टोंका उसे संग प्राप्त था। वेद और ब्राह्मण सबका तिरस्कार करता था। सुरोंका वह शत्रु था। अन्धकके द्वारा उत्पीड़ित देवता, गन्धर्व आदि भगवान ब्रह्माके समीप गये। ब्रह्माजीके पास भी कोई उपाय नहीं था। उन्होंने देवताओंके साथ प्रस्थान किया और कैलासपर जाकर भगवान शंकरकी स्तुति करने लगे। भगवान शिव प्रसन्न हुए। उन्होंने आश्वासन दिया। देवता आश्वस्त होकर विदा हुए।

अन्धक एक बार सेनाके सहित मन्दराचलपर गया। वहाँपर उसने अपने नगरका निर्माण कर लिया और वहीं रहने लगा। उसके मन्त्री थे दुर्योधन, वैधस और हस्ती। ये तीनों ही एक बार पर्वतपर भ्रमण करने लगे। वहाँ उन्होंने शिवाको देखा। लौटकर उन्होंने अन्धकसे कहा—'पर्वतपर एक सर्प लपेटे, कपालमाली, जटाधारी, त्रिशूल लिए, चन्द्रभाल, व्याघ्राम्बर मुनि बैठा है। उसके समीप एक भयानक मुख वानरके समान आकारका खर्वकाय पुरुष खड़ा है। वह सूखे हाथों वाला है और त्रिशूल लिए उस मुनिका रक्षक है। एक वृद्ध श्वेत बैल वहाँ बँधा है। उस तपस्वीके समीप एक परमसुन्दरी स्त्री बैठी है। वैसी सुन्दरी हमने कहीं देखी-सुनी नहीं है। आप अवश्य उसे देखो।'

दैत्यने अपने मन्त्रियोंको भेजा। उसने स्वयं जानेकी आवश्यकता नहीं मानी। मन्त्रियोंने दैत्यका संदेश जाकर भगवान रुद्रको सुनाया। उन्होंने कहा—'हम दैत्याधिप अन्धकके दूत हैं। हिरण्याक्षके पुत्र दैत्याधिप अन्धक त्रिलोकेश हैं। वे यहाँ आये हैं। हम सब उनके मन्त्री हैं। हे मुनीन्द्र। तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? यहाँ क्यों बैठे हो? यह सुन्दरी कौन है? यह तो दैत्यराजके योग्य है। तुम क्या इसके योग्य हो? अतः शान्तिपूर्वक इसे दे दो। तुम्हें तप करना है तो स्त्रीको क्यों साथ रखते हो? तुममें सब बातें असंगत और अयोग्य हैं। अतः शस्त्रका त्याग करके तपस्या करो। यह मुझ त्रिलोकेशकी आज्ञा है। इसे नहीं मानोगे तो तुम्हारा शरीर नष्ट होगा।'

शिव—'मुझे अपने माता-पिताका स्मरण नहीं है। यह मेरी पत्नी है। अतः तुझे जो ठीक लगे सो कर। यह सन्देश अपने दैत्यपतिको जाकर सुना देना।'

दूत लौटे । अन्धकको उन्होंने ये सब बातें सुनायीं । इसको सुनकर दैत्य क्रोधसे जल उठा । उसने सेनासहित आक्रमण कर दिया । शिवगणोंने प्रत्याक्रमण किया । देवता, रुद्रगण और दैत्योंका युद्ध होने लगा । अन्धकका सेनापति नील नामक दैत्य हाथी बनकर देवसेनाको रोंदने लगा । नन्दीने वीरभद्रको ललकारा । वीरभद्रने सिंह रूप धारणकर उसे मार दिया और उसका चर्म जो अत्यन्त काला था, महेशको अर्पण किया । तबसे शिव वह गजचर्म पहनने लगे । उनका नाम कृत्तिवास होगया ।

नन्दीने इस युद्धमें अन्धकको पराजित करदिया, इससे दैत्य वहाँसे भागा । भगवान शिव दैत्यके भागनेपर पाशुपत व्रत करने लगे । जब भगवान शिव व्रत लेकर तपस्या करने लगे, देवी मन्दराचलकी गुफामें विरहसे व्यथित होकर स्थित हुईं । शिवके गण उनके द्वारपर उनकी रक्षा करने लगे । दैत्य अन्धक फिर आया । वह अपने साथ योधाओंको लेकर आया था । नन्दीश्वरने पाँच सौ दिन-रात उससे युद्ध किया । दैत्यके साथ युद्धमें नन्दीश्वर मूर्छित होगये । देवर्षि नारदने यह समाचार भगवान नारायण को दिया । वे करुणासिन्धु देवताओंके सहायक होकर और सब देवताओंको लेकर आये; किन्तु देवता इस युद्धमें असुरसे पराजित होगये । देवताओंने और नारायणने भी अपने अंशसे स्त्रियाँ प्रकट कीं, किन्तु इससे भी कोई काम नहीं बना । वे भी सब असुरसे हार गयीं । इसके बाद नन्दीने चैतन्य प्राप्त करके असुरको युद्धमें रोका । सहसा भगवान शंकर वहाँ अपना व्रत समाप्त करके पधारे । अन्धकने फिर दूत भेजा । दूतने आकर शिवसे कहा–'स्त्रीको देकर भजन करो । तुम तपस्वी नहीं हो, धूर्त हो, अतः या तो स्त्रीको दे दो या युद्ध करो ।'

शिवको क्रोध आ गया । उन्होंने दूतसे कहा—'जा कह, जो चाहे सो करे ।'

इसी समय नन्दीश्वरने आकर भगवान शंकरसे कहा—'प्रभो ! युद्धमें दैत्योंके सेनापति विघसने सब सेना निगल ली है । मैं अकेला ही शेष हूँ । दैत्येन्द्र अजेय है ।'

इतना कहकर नन्दी फिर युद्धमें पधारे । विघसने नन्दीको भी निगल लिया । तब भगवान शंकर युद्धमें आये । उन्होंने मन्त्रप्रेरित वाणसे विघसपर प्रहार किया, इससे विघस अत्यन्त व्याकुल हुआ । उसने निगले हुए सभी गण, देवताओंको उगल दिया । अब रुद्र और अन्धकका युद्ध

प्रारम्भ हुआ। भगवान् शंकर त्रिशूलसे अन्धकपर प्रहार करते थे तो उस दैत्यके शरीरसे गिरे हुए रक्तकी प्रत्येक बूंदसे एक अन्धक उठ खड़ा होता था। इस तरह अन्धकके रूप और बलके समान बहुतसे दैत्य प्रकट होगये और वे सब युद्ध करने लगे। इससे भगवान शंकरको बहुत क्रोध आया।

शुक्राचार्य इस समय युद्धमें मारे गये दैत्योंको संजीवनीके प्रभावसे जिला देते थे—यह बात जब गणोंने भगवान शिवसे कहा, शिवने गणोंको आज्ञा दी—उसे बाँध लो। गणोंने शुक्राचार्यको बाँधकर भगवान शिवके समीप उपस्थित किया। उन त्रिपुरारिने शुक्रको निगल लिया। इससे अब युद्धमें मारे गये दैत्य पुनः जीवित नहीं होते थे, वे क्षीण होगये। दैत्य साहसहीन होकर दिशाओंमें पलायन कर गये। अन्धककी सम्पूर्ण सेना या नष्ट होगयी या भाग गयी। लेकिन वह दैत्य युद्धमें डटा रहा। उसने अपने ऊपर प्रहार किये गये सभी शस्त्र निगल लिए। उसके शरीरपर जो आघात लगता था, उससे गिरी रक्तकी बूँदोंसे अनन्त-अनन्त अन्धक उत्पन्न होरहे थे। इससे देवता बहुत व्याकुल हो गये थे। अनेक अन्धक जो वहाँ उत्पन्न होगये थे, उनको भगवान विष्णुने अपने चक्रसे मार दिया, किन्तु अन्धकके रक्तसे उत्पन्न सहस्रों अन्धक बढ़ते ही जारहे थे। इससे रुद्र रोषान्वित होगये। उनके मुखसे महाज्वाला उत्पन्न हुई जिसने स्वरूप धारण किया। उसे योगेश्वरी कहते हैं। वह देवी अत्यन्त विकृतमुखी थीं, क्षुधातुरा थीं। दैत्य-सेनाका वह रक्तपान करने लगीं। उसी समय विष्णु, ब्रह्मा, कार्तिक, इन्द्र, यमके शरीरसे भी शक्तियाँ प्रकट हुईं और इन शक्तियोंने भी अन्धकके रक्तसे उत्पन्न उन असुरोंको चाट लेना प्रारम्भ कर दिया। इन शक्तियोंको अष्टमातृका कहते हैं। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, पिशुनता, असूया आदि दोष ही इन शक्तियोंके रूप हैं। ये अष्ट मातृकाएँ इन दोषोंकी अधिदेवता हैं।

कामकी अधिदेवता हैं योगेश्वरी, क्रोधकी माहेश्वरी, लोभकी वैष्णवी, मदकी ब्रह्माणी, मोहकी कौमारी, मात्सर्यकी इन्द्रजा, पिशुनताकी यमात्मजा और असूयाकी वाराही।

इन मातृकाओंने अन्धकके देहसे गिरती रक्तधारा पान कर लिया। अन्धक रक्तहीन होगया। भगवान शिवने अन्धकका हृदय अपने त्रिशूलसे बिद्ध कर दिया और उसे त्रिशूलपर ऊपर उठा लिया। उसके शरीरसे गिरती हुई रक्तधारा मातृकाओंने पान कर लिया था। अब युद्ध शान्त होगया।

अन्धकका रक्तहीन शरीर सूर्यकी किरणोंसे सूखता रहा, जर्जर होगया, वर्षा और आतप उसे पीड़ित करते रहे; किन्तु दैत्य मरा नहीं। वहीं लटका हुआ भगवान शिवका स्तवन करने लगा। देवता भगवान शिवकी स्तुति करके, उनकी पूजा करके वहाँसे विदा होगये। अन्धक शिवके त्रिशूलपर लटका हुआ उन्हींका ध्यान कररहा था, तब शिवने उसे उतारा, उसपर अमृत छिड़का। दैत्य कुछ स्वस्थ होकर खड़ा हुआ। उसने अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया। भगवान शिवने कहा—'वरदान मांगो।'

दैत्यने प्रार्थना की—'प्रभो ! मेरे पहले वचनों, अपराधोंको क्षमा करें। जगज्जननी पार्वती मुझ दुःखीपर तुष्ट हों। मैं तो दीन हूँ। आप दोनोंमें मेरी भक्ति हो। देवताओंके साथ मेरा वैर न हो। मैं आपकी सेवामें रहूँ। आगे दैत्यभाव मुझमें जागृत न हो। मैं कभी भी अपकर्म न करूँ।'

अन्धककी इस विनीत प्रार्थनासे उमा-महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे अपना गण बना लिया। पार्वतीने उसे अपना वात्सल्य प्रदान किया।

(शिवपुराण)

द्वितीय कथा—

एक कल्पमें उज्जयिनीमें अन्धक नामक दानव राज्य करता था। उसके पुत्र कनक दानवने स्वर्ग जाकर इन्द्रको युद्धके लिए ललकारा। इन्द्रने युद्धमें उसका वध किया, किन्तु अन्धकसे वे भयभीत हुए। कैलास जाकर उन्होंने भगवान शंकरसे प्रार्थना की—'हे अभयद ! हे शरणागत रक्षक ! अन्धकासुरसे मुझे अभय दीजिये।'

'डरो मत।' भगवान शिवने शरणागत महेन्द्रको अभयदान किया। उन्होंने कहा—'महेन्द्र ! तुमको अन्धकसे भय नहीं है।' फिर भयानक रौद्र रूप धारणकर उन्होंने अपना एक चरण पृथ्वीपर रखा। जहाँ वह पद पड़ा, वह सर्वदेववन्दित कुण्ड 'शिवपद' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

दानव अन्धकने अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुना। क्रोधोन्मत्त होकर सेनासहित उसने देवताओंपर आक्रमण कर दिया। देवता भगवान शङ्करकी शरण गये। महाकालने देवताओंको अभय दिया। वे त्रिशूल लेकर खड़े हो गये। रुद्रके कुपित होनेसे सारा गगनमण्डल अग्निज्वालासे व्याप्त हो गया। अन्धक प्रमत्त नहीं था। उसने बाणोंकी झड़ी लगादी। पिनाकधारी महेश्वरने उसके अस्त्र-शस्त्र टुकड़े-टुकड़े करदिये। असुर

घायल हो गया। उसे शिवने अपने शरोंसे आच्छादित करदिया। वह शिथिल होगया। शिवगणोंने युद्ध करके असुर-सेनाको मार डाला।

सेना मृत होगयी। स्वयं आहत अन्धकने अब तामसी मायाका आश्रय लिया। मायासे अन्धकार फैलाकर वह अदृश्य होगया और उत्तरकी ओर चल पड़ा। शिवने उसका पीछा किया। कुछ दूर जाकर असुर गरजा। शिव भी उसी प्रकार गर्जना करते हुए बोले। उसी समय अर्जुन द्वारा स्थापित नरादित्य मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने मायान्धकार नष्ट करदिया। इससे दैत्य दृष्टि पड़ा, तब महेश्वरने त्रिशूलसे उसे विदीर्ण करडाला। देवताओंने जयध्वनि की। हरिने शङ्खनाद किया।

अन्धकासुरके विदीर्ण होनेपर एक विशेष प्रकारकी ध्वनि हुई। वही प्रणव ध्वनि थी। वही ध्वनि साकार होकर वहाँ ओंकारेश्वर लिंगका प्रादुर्भाव हुआ।

अन्धकासुरको विदीर्ण कर भगवान शिवका वह त्रिशूल पाताल चला गया। उसी त्रिशूल मार्गसे पातालवासी हाटकेश्वर भूमिपर पधारे। अतः उनका नाम शूलेश्वर हुआ। उधर अन्धकासुरके रक्तसे सहस्रों दैत्य उत्पन्न होकर युद्धोद्यत होगये थे। शिवने सिंहनाद किया। इससे वे सब मूर्छित होकर गिर पड़े।

अन्धकको चेतना प्राप्त हुई। प्राणरक्षाका अन्य उपाय न देख उसने भगवान शिवका स्तवन किया।—'मेरा ऐश्वर्य, मेरा अहंकार नष्ट होगया। मैं चराचरके स्वामी आपके शरणागत हूँ। हे प्रभो! आप मेरी रक्षा करें।'

शिवने कहा—'वत्स! मैं प्रसन्न हूँ। तुम अब निर्मल होगये।'

असुर—'मैं अन्धा हूँ। आपके दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ। मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ।'

मैं तुम्हें दिव्य लोचन देता हूँ।' भगवान शङ्करने कहा। असुरको दिव्य नेत्र प्राप्त हुए। अब उसने प्रार्थना की—'मैं आपका गण होकर रहूँ।'

'तुम मेरे गणोंके अध्यक्ष रहोगे। मेरे प्रिय हो, सब सिद्धियाँ तुम्हें प्राप्त होंगी।' अन्धकको वरदान देकर उसे साथ लेकर भगवान शङ्कर अपने अन्य गणोंके साथ अन्तर्हित होगये। देवता भी निर्भय हुए।

(स्कन्दपुराण)

तृतीय कथा—

समुद्रमें एक अन्धक नामका दैत्य रहता था। वह न केवल देवताओंको, सम्पूर्ण त्रिलोकीको उत्पीड़ित करता था। समुद्रमें-से निकलकर वह उत्पात करता था। प्राणियोंका विनाश करता था और फिर सागरके गर्भमें छिप जाता था।

देवताओंने भगवान शङ्करकी शरण ली। भगवान महेश्वरने त्रिलोकीमें आतङ्क देखकर देवताओंको आश्वासन दिया और उस असुरकी हिंसा-उत्पीड़नसे सबको परित्राण देनेका आश्वासन दिया।

भगवान शङ्करके साथ देवता भी असुरकी समुद्रस्थ गुफामें प्रविष्ट हुए। युद्ध होना ही था। जब दैत्य शिथिल होने लगा, उसने शिवकी स्तुति की। सहजकृपा-स्वरूप भगवान शिवने जब प्रसन्न होकर वरदान माँगनेको कहा, उसने माँगा—'यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें और यहाँ मेरे ऊपर ही स्थित हों। मैं चाहता हूँ, मेरे शरीरपर आपके श्रीचरण सदा विराजमान रहें।'

शिवने असुरको उसी गर्तमें डाल दिया और उसके ऊपर लिंग-विग्रहके रूपसे स्थित होगये। इस स्वयंभू लिंगको अन्धकेश्वर कहा जाता है। (शिवपुराण)

—×—

लगता है, यह अन्धक नामका दूसरा असुर था जो सागर गर्भमें रहता था। नाम-साम्य होनेके कारण दोनों अन्धक एक हैं ऐसा नहीं मानना चाहिए।

गजासुर-वध

देवीके द्वारा महिषासुरके मार दिये जानेपर उसके पुत्र गजासुरको देवताओंपर बहुत रोष आया। उसने सुरोंसे प्रतिशोध लेनेका निश्चय किया। इस प्रतिशोधकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए वह वनमें जाकर अत्युग्र तप करने लगा।

तपस्वीका संकल्प कुछ भी हो, यदि वह सम्यक् तपमें लगा हुआ है, सृष्टिकर्ता विवश हैं उसको वरदान देकर तपोनिवृत्त करनेके लिए ; क्योंकि यदि वे ऐसा नहीं करते, दृढ़निश्चयी तपस्वीकी तपस्या बढ़ती हुई सृष्टिके सत्वगुणका केन्द्रीकरण कर लेगी, फलतः सृष्टिमें प्रलय हो जायगी। गजासुरकी तपस्यासे विवश जब भगवान हंसवाहन वरदान देने पधारे, असुरने मांगा—'कामके वशीभूत हुए समस्त स्त्री-पुरुषोंसे मैं अवध्य होऊँ। लोकपालोंकी समस्त सम्पत्ति मेरी भोग्य हो।'

असुरके लिए यह समझना ही कठिन था कि त्रिभुवनमें कोई कामजयी हो सकता है। उसके पिताको पार्वतीने मार दिया था और अब वह समझता था कि पिताने तपस्याके पश्चात् वरदान मांगनेमें जो भूल की थी, मैंने उसे दूर कर दिया है। ब्रह्माजी वरदान देकर ब्रह्मलोक चले गये।

गजासुर सम्पूर्ण लोकपालोंको जीतकर त्रिलोकेश हो गया। वह अजितेन्द्रिय तो था ही, भोगी होकर मर्यादाओंका उल्लंघन करने लगा। तपस्वी और ब्राह्मणोंको क्लेश देने लगा। प्रायः पर्वताकार गजके स्वरूपमें आश्रमोंमें जाकर उटजोंको, वृक्षोंको अपने शरीरके धक्केसे गिरा देता था, प्राणियोंको रौंद डालता था। इसी क्रममें वह वाराणसी पहुँचा। उसे देखकर वहाँके लोगोंमें हाहाकार मच गया। वे चीत्कार करने लगे—'भगवान महेश्वर ! रक्षा करो। अन्य कोई भी इस असुरसे त्राण देनेवाला नहीं है।'

देवता गजासुरसे पहले ही उत्पीड़ित थे। इन्द्रादि भी आकर भगवान् रुद्रका स्तवन करने लगे। उन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो ! समाधिका त्याग करो। गजासुर आपके आश्रित, आपके जनोंको संत्रस्त कर रहा है। वह आपकी पुरीमें भवनोंको ध्वस्त करनेमें लगा है, अपने भक्तोंकी रक्षा करो।'

भक्तवत्सल आर्त-परित्राता भगवान महेश्वर समाधिसे उठे। उन भक्तभयहारीने गणोंको भी साथ नहीं लिया। वृषभ और देवता सब पीछे छूट गये। त्रिशूल उठाए वे प्रलयंकर गजासुरके समीप पहुँचे और उन्होंने अपने त्रिशूलसे बिद्ध करके उस अकल्पनीय बृहदाकार असुर हाथीको ऊपर उठा लिया।

पहले दैत्यने गर्जन किया, छटपटाया ; किन्तु उसकी शक्ति शिथिल होती गयी। अन्ततः वह त्रिशूलपर टंगा हुआ ही स्तुति करने लगा—'मदनान्तक ! प्रभो ! आपके करोंसे मेरा वध भी मेरे लिए मंगलकारी है। त्रिभुवनवन्द्य महेश्वर ! यद्यपि आप सबसे ऊपर विराजमान हैं, किन्तु आपने अपने त्रिशूलसे बिद्ध करके मुझे अपनेसे भी ऊपर अपने मस्तकका छत्र बना लिया है, इससे मैं अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। मेरा इस मृत्युमें भी परम कल्याण है।'

'मैं प्रसन्न हुआ।' आशुतोषने कहा—'तुम कोई अनुकूल वरदान मांग लो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप दिगम्बर मेरे शरीरके चर्मको अपना वस्त्र बना लें।' गजासुरने प्रार्थना की—'आपके त्रिशूलकी अग्निसे यह पवित्र हो चुका है। यह चर्म सदा कोमल बना रहे, कभी मलिन हो। इससे उत्तम गन्ध निकलती रहे। त्रिशूलकी अग्नि ज्वालामें भी यह भस्म नहीं हुआ है, पुण्यगन्धयुक्त हो गया है। अतः इसे धारण करके आप कृत्ति-वास बन जायँ।'

'एवमस्तु !' भगवान शंकरने वरदान दिया—'तुम्हारा शरीर अबसे इस क्षेत्रमें सबको मुक्ति देने वाला मेरा लिंगविग्रह हो जायगा। इसका नाम 'कृत्तिवासेश्वर' होगा। मैं इसमें सदा निवास करूँगा।'

गजासुरका चर्म स्वतः उसके शरीरसे पृथक् हो गया। उसका शरीर, अस्थि, स्नायु आदि सब लुप्त हो करके शिवलिंग बन गया। शरीरसे पृथक् हुए उसके चर्मको भगवान शंकरने अपने शरीरका आच्छादन बना लिया। तभीसे वे कृत्तिवास कहे जाते हैं। (शिवपुराण एवं स्कन्दपुराण)

—: × :—

रुरु-वध

धर्माचरण और तपस्यासे शक्ति प्राप्त होती है, सन्देह नहीं है; किंतु यदि उस शक्तिका दुरुपयोग किया जाय, निश्चय ही वह प्रयोक्ताके लिए ही अनर्थकारी होती है।

रुरु नामका असुर मन्दराचलपर घूम रहा था। सहसा उसकी दृष्टि शैलाधिराज-तनयापर पड़ी। वह उनके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध हो गया; किंतु जानता था, प्रलयंकरकी भार्याके साथ धृष्टताका परिणाम क्या हो सकता है। असुरने निश्चय किया, मैं अवश्य इनको प्राप्त करूँगा।

छल या बलसे उमाको प्राप्त करना सम्भव नहीं है, यह बात रुरु समझता था। उसने तप करना प्रारम्भ किया। सोचता था, तप-बलसे जब ब्रह्मा सृष्टि कर सकते हैं, शिव प्रलय कर सकते हैं, विष्णु जगतका पालन कर सकते हैं, तब तपके द्वारा गौरीको पत्नी बनाना क्यों सम्भव नहीं है।

भगवान ब्रह्माने रुरुको आकर बहुत समझाया, किन्तु दैत्य अपने दुराग्रहपर अड़ा रहा। दूसरा कोई वरदान लेनेको प्रस्तुत नहीं था। वह जो चाहता था उसे पूर्ण करना ब्रह्माके वशकी बात नहीं थी। वे लौट गये।

असुरकी तपस्या उग्रसे उग्रतर होती चली गयी। उसका उद्देश्य दूषित न होता, अवश्य ही वह योगेन्द्र हो जाता। उसकी दृढ़ता प्रशंसनीय थी, किंतु जगतके सभी कापुरुष, चोर, डाकू, हत्यारे अपने कार्य-सिद्धिमें अत्यन्त दृढ़, दुस्साहसी होते हैं। रुरुकी तपस्याके तेजसे संसार भस्म होने लगा, उसके प्रकाण्ड तपःतेजने विश्वको व्याकुल कर दिया।

भगवान विश्वनाथ सम्पूर्ण सृष्टिकी इस स्थितिसे क्षुब्ध हुए। उन्होंने उमासे कहा—'देखो! समस्त प्रजा तुम्हारी सन्तान है और रुरुके तेजसे उसका नाश सन्निकट है। वह तुम्हें प्राप्त करनेके लिए तप कर रहा है, अतः तुम्हीं उसका उपशम करो।'

जगदम्बा पार्वतीका मुख अरुण हो गया। उसकी भृकुटि कठोर हो गयी। उन्होंने अट्टहास करके कहा—'वह दुष्ट मुझे प्राप्त करना चाहता है तो मैं अवश्य उसे प्राप्त होऊँगी।'

क्षणार्धमें पार्वती भयंकर स्वरूपा चण्डी हो गयीं। वे महाशक्ति हैं। जब श्रद्धा, भक्तिके साथ उनके श्रीचरण पानेकी कामना की जाती है, वे त्रिपुरा वात्सल्यमयी होती हैं। रक्षिका और पोषिका होती हैं, किन्तु जब कोई वासना-समन्वित उनकी आराधना करता है, उन्हें चामुण्डा नृमुण्ड-मालिनी प्रलयंकारी होनेमें कितना विलम्ब लगेगा।

करवाल-खट्वांगधरा, मुक्तकेशा, भुवन-भयंकरी, महाकालिका असुरके समीप पहुँचीं। बोलीं 'दुष्ट दैत्य! तू जिसे प्राप्त करनेके लिए इतनी उग्र तपस्या कर रहा है, वह मैं तेरे सम्मुख उपस्थित हूँ। मेरा यह खड्ग तेरा कण्ठालिंगन करेगा।'

रुरुने तो सोचा ही नहीं था कि भुवनमोहिनी गौरीका यह भी स्वरूप है। वासनान्ध प्राणी कभी भी वासनाके अपने आश्रयके पीछे जो विनाश और विकृति है, उसे देख नहीं पाता। भयकम्पित रुरु भाग जाना चाहता था, पर अवसर बीत चुका था। देवीके खड्गने उसका सिर धड़से पृथक् कर दिया।

जैसे जगदम्बा उमा महाकाली हैं, आशुतोष शिव भी महाकाल प्रलयंकर हैं। वे महाभैरव रूपसे वहीं प्रकट हो गये। किन्तु दैत्यने दुर्भावसे ही सही, देवीका निरन्तर चिन्तन किया था, उनका ध्यान किया था, उसका जीव उन आदिशक्तिमें लीन हो गया। उसे उनकी प्राप्ति हुई और उसके सिरको महाकालने अपनी मुण्डमालामें स्थान दिया। शिवने उसके शरीरके चर्मको अपना वस्त्र बनाया। इस प्रकार असुरकी तपस्या अन्ततः धन्य हुई। (स्कन्दपुराण)

—×—

पराशरकी भक्ति

विश्वामित्रकी प्रेरणासे रुरु नामके राक्षसने महर्षि वशिष्ठके सभी सौ पुत्रोंको भक्षण कर लिया। महर्षि वशिष्ठ और उनकी भार्या देवी अरुन्धती अत्यन्त शोकार्त थे। वशिष्ठने तो प्राणोत्सर्गका प्रयत्न भी किया, किन्तु तभी उनके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिकी पत्नी अदृश्यन्तीने आश्वासन दिया—'मेरे गर्भमें आपका पौत्र है। आप अपनी रक्षा करके मेरी और उसकी भी रक्षा करेंगे!'

उसी समय ऋग्वेदके मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण सुनायी पड़ा। वशिष्ठ सोचने लगे—'ऋचाका उच्चारण किसने किया?'

वशिष्ठके अतिरिक्त वहाँ कोई पुरुष नहीं था और नारी वेद-मन्त्रका उच्चारण कर नहीं सकती थी। वे चिन्तित हुए—'क्या असुरोंके समान देवता भी मेरे शत्रु हो गये हैं? अदृश्य रहकर वे मन्त्रोच्चारण भी करते हैं और मुझे भ्रममें भी डालते हैं?'

इसी समय भगवान विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने महर्षिसे कहा—'देवता आपके सदा शुभ-चिन्तक हैं। इस समय ऋचाका उच्चारण माताके गर्भमें स्थित आपके पौत्रने किया है।'

विष्णु भगवान इतना कहकर अदृश्य हो गये। पत्नी और पुत्रवधूको समझाकर उनके साथ महर्षि आश्रम लौटे। समयपर अदृश्यन्तीने जो पुत्र उत्पन्न किया, उनका नाम पराशर पड़ा। महर्षि वशिष्ठका यह पौत्र अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी था। कुछ बड़ा होनेपर एक दिन उसने मातासे पूछा—'माँ! मेरे पिता कहाँ हैं? तुम इस प्रकार आभरणहीना, खिन्ना क्यों रहती हो? पितामही (अरुधन्ती) भालपर सिन्दूर-बिन्दु धारण करती हैं, तुम क्यों धारण नहीं करती हो?'

'तुम्हारे पिताको राक्षसने भक्षण कर लिया।' अदृश्यन्तीने अश्रु-वर्षण करते हुए कहा—'विधवा, पतिहीना नारी सिन्दूर अथवा आभरण धारण नहीं करती।'

बालक पराशर क्रुद्ध हो गये—'मैं प्रलयंकरकी आराधना करूँगा। अपने पिताको प्रकट करूँगा अथवा इन सम्पूर्ण लोकोंको नष्ट कर दूँगा।'

महर्षि वशिष्ठने समझाया—'वत्स ! सम्पूर्ण लोकोंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? निरपराध लोगोंकी हिंसा महापाप है। लोकोंको नष्ट करनेका संकल्प त्याग कर दो। तुम्हें बहुत क्रोध है तो उसे राक्षस कुल तक सीमित रखो।'

पराशरने शिव-लिंगकी स्थापना की। उसका अर्चन करते हुए वे प्रायः क्रन्दन करते थे—'मेरे स्वामी ! नरेश्वर ! जगदम्बे पार्वती। मुझ पितृहीनपर कृपा कर मेरी पुकार सुनो। आपके अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं है। मुझे कोई शरण देने वाला नहीं है।'

भगवती पार्वती द्रवित हुईं। उनकी प्रेरणासे भगवान वृषभध्वज गणोंके साथ पधारे। पराशरने उनको प्रणाम किया, उनकी वन्दना की।

'तुम अपने पिताका दर्शन चाहते हो ?' भगवान महेश्वरने कहा। उनके संकल्प करते ही पितृलोकसे पराशरके पिता शक्ति वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने वशिष्ठ और अरुधन्तीको प्रणाम किया। पराशरकी प्रशंसा की। उन्हें आदेश दिया—'वत्स। देहका बन्धन कर्मके अनुसार ही रहता है। तुम मेरे बन्धनका निमित्त मत बनो ! अपनी माता, पितामह और पितामहीकी सेवा करो ! उनकी आज्ञाका अनुवर्तन करो !

शक्ति अपने पुत्र पराशरको समझाकर पितृलोक चले गये। भगवान शिवने अपारतेजा होनेका पराशरको वरदान दिया। वे अन्तर्हित हो गये अब पराशर अपने संकल्पसे राक्षस-कुलको भस्म करने लगे।

वशिष्ठने पौत्रको रोका–'वत्स ! क्रोध पापका स्वरूप है। ऋषिपुत्रके लिए क्रोध उचित नहीं है। क्षमा हमारा आभूषण है। अब शान्त हो जाओ। समस्त राक्षस-कुलने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है।'

पितामहकी आज्ञा स्वीकार करके जब पराशर शान्त हो गये, राक्षसोंके आदिपुरुष महर्षि पुलस्त्य पधारे। उन्होंने पराशरकी प्रशंसा की। वरदान दिया—'तुम पुराणोंके कर्ता होंगे।'

महर्षि पराशर पीछे विष्णुपुराणके वक्ता हुए।

(लिंग पुराण)

———

कालभीतिपर अनुग्रह

पूर्व कालमें वाराणसीमें माण्डि नामके महायशस्वी एक ब्राह्मण रहते थे। वे निरन्तर शिव मन्त्रका जप करते थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। पुत्रकी प्राप्तिकी इच्छासे उन्होंने भगवान शंकरकी आराधना की। आशुतोषने उन्हें वरदान दिया— 'तुम्हें कुलोद्धारक बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा।'

माण्डिकी पत्नी गर्भवती हो गयीं, किन्तु चार वर्ष बीत जानेपर भी बालक गर्भसे बाहर नहीं आया। पिताने गर्भस्थ पुत्रसे कहा— 'बेटा ! सब योनियोंमें पड़े जीव मनुष्य योनि प्राप्त करना चाहते हैं। यहाँ इस योनिमें अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष भी सुलभ हो जाते हैं। यहाँ आकर धर्म सफल होता है, देवता और पितरोंका तोषण सम्भव होता है। भगवदाराधन करके मनुष्य आवागमनसे मुक्त हो सकता है। तुम इस परम दुर्लभ योनिको प्राप्त करके इसका तिरस्कार क्यों कर रहे हो ? गर्भसे बाहर आओ।'

'मैं जानता हूँ कि मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है।' —गर्भस्थ शिशुने कहा, 'किन्तु मुझे कालसे अत्यन्त भय लगता है। कालके प्रभावसे मानवका मन भी दूषित हो जाता है। वह अधर्ममें लग जाता है और मनुष्य योनि प्राप्त करके नरक तथा तिर्यक् योनियोंमें जानेके साधन ही एकत्र करता है। इसलिए जब तक यह निश्चय न हो जाय कि मुझपर कालका प्रभाव नहीं पड़ेगा, तब तक मैं जन्म ग्रहण नहीं करूँगा। मैं यहाँ गर्भमें साधन कर सकता हूँ, भगवानका स्मरण कर सकता हूँ, बाहर आकर मेरी ऐसी बुद्धि रहेगी या नहीं, इसका क्या भरोसा है ?'

माण्डिने फिरसे भगवान शंकरकी शरण ली। प्रार्थना की— 'देव ! आप मेरी रक्षा करें। आपके वरदानसे ही मुझे पुत्र प्राप्त हुआ, किन्तु वह तो गर्भका त्याग करके बाहर ही नहीं आना चाहता।'

भगवान नीलकण्ठने ज्ञान, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य, अनैश्वर– इनके देवताओंको उस गर्भस्थ शिशुके समीप भेजा। आदेश दिया— 'उसे बाहर आनेके लिए प्रस्तुत करो।'

वे आठों अधिदेवता माण्डिके भवनमें आये। ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्यके देवताओंने कहा— 'हम तुम्हारे मनका कभी त्याग नहीं करेंगे। तुमको त्यागकर हम कभी जायेंगे नहीं, अतः तुम गर्भसे बाहर आओ।'

अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यके देवताओंने वचन दिया— 'तुम बाहर आओ। हम कभी तुम्हारे समीप नहीं आवेंगे। तुम्हें हमसे कोई भय नहीं है। हम तुम्हारी छायाका भी स्पर्श नहीं करेंगे।'

आश्वासन पाकर बालक गर्भसे बाहर आया। बाहर आकर वह रुदन करने लगा तब उन आठ विभूतियोंने कहा— 'यह बालक बाहर आकर भी कालके भयसे यहाँ रोता है, काँपता है, अतः इसका नाम कालभीति होगा।' इतना कहकर वे आठों वहीं तिरोहित हो गये।

बड़े होकर उस बालकने पाशुपत मन्त्रकी दीक्षा ली। तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की। महीसागर संगम तीर्थका माहात्म्य सुनकर वह वहाँ पहुँचा। धर्मारण्यके उस महातीर्थमें स्नान करके वह ध्यान करने बैठ गया। फिर उसी तीर्थमें बिल्व वृक्षके नीचे एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करने लगा। केवल एक बूँद जल वह प्रतिदिन मुखमें डालता था। इस प्रकार बहुत अधिक समय बीत गया, वह वहाँ एक मनुष्य एक घट जल लेकर उपस्थित हुआ। उसने कहा— 'कालभीति! आपका नियम पूर्ण हो गया। आप यह जल ग्रहण करें।'

'आपका वर्ण क्या है?' कालभीतिने पूछा— 'आपका आचार-व्यवहार क्या है?'

'मैं अपने माता-पिताको नहीं जानता।' उस आगन्तुकने कहा— 'आचार और धर्मसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।'

'जिसके कुलका ज्ञान न हो, जिसमें वीर्य शुद्ध न हो, सदाचार न हो, उसका अन्न या जल ग्रहण करके व्यक्तिकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।' कालभीतिने स्वगत कहा—'मैं आपके द्वारा लाया जल ग्रहण नहीं करूँगा।'

'समस्त प्राणियोंमें भगवान शंकरका निवास है।' उस व्यक्तिने तर्क किया— 'यह घट मिट्टीका बना हुआ है। घटके भीतर जल है। इसमें अपवित्र क्या है?'

'आपका तर्क ठीक हो सकता है।' कालभीति बोले— 'किन्तु व्यवहारमें तर्क काम नहीं देता। तर्कसे धर्मका ज्ञान नहीं होता, न तर्कके द्वारा

धर्मका निर्णय होता है। वेदशास्त्रके द्वारा निर्दिष्ट मान्यताएँ ही धर्मकी निर्णायिका हैं, तर्क नहीं। अतः मैं शास्त्रके द्वारा गर्हित जल स्वीकार नहीं करूँगा।'

उस मनुष्यने अपने दाहिने पादांगुष्ठसे वहीं एक गड्ढा बना दिया। उसमें घटका जल भर दिया। फिर अपने पैरोंसे ही कुरेद कर उसने उस गड्ढेको सरोवरका रूप दे दिया। वह सरोवर जलसे पूर्ण हो गया। किंतु यह चमत्कार देखकर भी कालभीतिने अपनेको स्थिर रखा। वे चमत्कारसे प्रभावित नहीं हुए। उस सरोवरका जल भी स्वीकार करनेको उद्यत न हुए। तब उस व्यक्तिने कहा— 'कूप और सरोवरका जल ग्रहण करनेमें दोष नहीं है— यह तो शास्त्र भी कहते हैं।'

'आपकी बात सत्य है।' कालभीति बोले— 'किन्तु मेरे सामने ही आपने इसे घटसे भरा है। मैं इस जलको कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।

वह पुरुष हँसा और अन्तर्धान हो गया। सहसा विल्व वृक्षके नीचे एक सुन्दर शिवलिंग प्रकट हो गया। वह शिवलिंग ज्योतिर्मय था। गगनसे देवता उसपर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे। कालभीतिने प्रणिपात करके भगवान शंकरका स्तवन प्रारम्भ किया। चन्द्रशेखर धूर्जटि प्रकट हो गये। बोले-- 'ब्रह्मन्! तुमपर मैं परम सन्तुष्ट हूँ। काल तुमपर शासन नहीं कर सकेगा। अभी यहाँ जो मनुष्य था, उसके रूपमें मैं तुम्हें जल देने आया था। मैंने ही यहाँ इस गड्ढेको जल पूर्ण किया है। यह परम पवित्र तीर्थ तुम्हारे लिए है।'

कालभीतिने प्रार्थना की-- 'प्रभो! अब आप यहीं निवास करें।' इस प्रार्थनाको स्वीकार करके भगवान शंकर वहाँ उस दिव्य स्वयम्भू लिंग रूपसे स्थित हुए। उस लिंगका नाम कालभीतीश्वर है।

(स्कन्द पुराण)

महामुनि श्वेतकी रक्षा

कालञ्जरमें श्वेत नामके परम शैव राजा थे। वे धर्मात्मा, प्रजाको सुख देने वाले, सत्यवादी और शिव-भक्त थे। आराधनामें ही उन्होंने अपनी लगभग पूरी आयु समाप्त कर दी। उनका राज्य निरुपद्रव था। प्रजा निर्भय थी। उनकी भक्तिके प्रतापसे बिना जोते-बोये ही अन्न उत्पन्न होता था। राज्यके ब्राह्मण तपस्वी और सन्तोषी थे। सर्वत्र मंगल था। व्यापारी ईमानदार थे। सेवक प्रमाद नहीं करते थे। किसीको भी रोग नहीं होता था, चिन्ता नहीं होती थी, अकालमें कोई मरता नहीं था। राज्यमें कोई दरिद्र नहीं था। रोग या महामारी नहीं आती थी। श्वेत जब वृद्ध हुए, राज्य पुत्रको देकर वे पर्वतकी एक गुफामें शिवलिंगकी स्थापना करके वहीं भगवान शंकरकी पूजा करने लगे। जब राजा श्वेतकी आयु पूरी हुई, यमदूत उनको लेने आये। उस समय श्वेत पूजामें लगे थे। यमके दूतोंने जब उस गुफामें प्रवेश करनेका प्रयत्न किया, उनके अङ्ग निश्चेष्ट हो गये। वे द्वारपर ही खड़े रह गये। दूतोंके न लौटनेपर स्वयं यमराज आये। किन्तु उन्होंने जब श्वेतको मारनेके लिए यमदण्ड उठाया, श्वेतकी दृष्टि पड़ते ही उन्हें देहस्तम्भ हो गया। अत्यन्त व्याकुल हुए और द्वारपर ही खड़े रह गये। अन्तमें काल आया। उसने गुफाके द्वारपर यमराज और उनके दूतोंको खड़े देखकर पूछा—'धर्मराज! तुम और तुम्हारे दूत भी यहींपर खड़े हैं। अब तक इस राजाको ले क्यों नहीं आये। तुम लोग भयभीत क्यों लग रहे हो?'

यम—'राजा श्वेत अब राजा नही हैं, महामुनि हैं, शिव-भक्त हैं। इनका उल्लंघन हमारे लिए भी अत्यन्त कठिन है। देवदेव महादेवके ये परम भक्त हैं। उन सदाशिवके प्रतापसे हमारे अंग स्तम्भित हो गये हैं। हम इन मुनिके समीप जानेमें असमर्थ हैं।'

काल क्रुद्ध हो गया। वह गुफामें प्रविष्ट हुआ। श्वेतने उसे देखा। उसमें भी शिवकी भावना करके उसको नमस्कार किया। बोले—'मृत्युदेव! आप यहाँ क्यों पधारे हैं? मेरे स्वामी प्रलयंकर मेरे रक्षक हैं। आप यहाँ क्या करेंगे?'

लोक-भयंकर काल बोला—'श्वेत ! मेरे साथ चलो । इन विरोधोंसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होना है । मुझसे ग्रस्त प्राणीको रुद्र, ब्रह्मा, विष्णुमें-से कोई भी कैसे बचा सकता है । मैं तुम्हें यमलोक ले जाने आया हूँ ।'

'रुद्र महेश्वर आशुतोष मेरी रक्षा करें ।' श्वेतने भगवानशंकरसे प्रार्थना की । फिर कालसे बोले—'काल ! यदि वृषभध्वज मेरे समीप हैं तो तुमसे मुझे क्या भय है ? समस्त देवताओंके आदिकारण शिव इस लिंगमूर्तिमें विद्यमान हैं । वे सर्वसमर्थ अपने भक्तोंके रक्षक हैं । अतः जैसे तुम आये हो, वैसे ही सुखपूर्वक यहाँसे वापिस लौट जाओ ।'

तीक्ष्णदंष्ट्रा, भयंकर कृष्णवर्ण, कृष्णमृगचर्मधारी दीप्तत्रिशूलहस्त काल क्रुद्ध हो गया । हाथमें पाश लेकर बार-बार सिंहनाद किया । उसने अपने पाशसे श्वेतको बाँध लिया । बोला—'देखो ! मैंने तुमको बाँध लिया है । रुद्रने तुम्हारी क्या रक्षाकी ? तुम्हारे आराध्य कहाँ हैं ? कहाँ है तुम्हारी भक्ति या पूजा, अथवा उस पूजाका फल ही कहाँ है ? मुझे उनसे क्या भय है ? तुम कहते हो कि महेश्वर रुद्र इस लिंगमें हैं, पर यह तो निश्चेष्ट है । तब यह कैसे पूज्य है ?'

इसी समय उस लिंगमूर्तिसे एक अत्यन्त तीव्र प्रकाश प्रकट हुआ जैसे गुफामें सूर्योदय हो गया हो । उस प्रकाशके मध्यमें जगदम्बा पार्वतीके साथ भगवान् शिव प्रकट हो गये । नन्दीश्वर आदि गण उनके साथ थे । शिवने क्रोधपूर्वक कालकी ओर देखा । उनकी दृष्टिमात्रसे काल मृत होकर गिर पड़ा । देवताओंने पुष्प-वर्षा की । भगवान शंकरकी स्तुति करने लगे ।

नन्दीश्वरने अपने स्वामीसे प्रार्थना की—'प्रभो ! यह काल बाल-बुद्धि है, किन्तु यह आपका सेवक है । आपका ही कार्य सृष्टिमें करता है । आप इसपर प्रसन्न हों ।' नन्दीश्वरकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर शिवने कालको जीवित कर दिया । श्वेत भगवान महेश्वरकी कृपा प्राप्त करके धन्य हो गये ।

(लिंगपुराण)

कूर्मपुराणकी कथामें थोड़ा-सा ही अन्तर है । थोड़ा-सा ही अन्तर स्कन्दपुराणकी इस कथामें भी है । स्कन्दपुराणके अनुसार जब काल वहाँ पहुँचा, श्वेत समाधिस्थ थे । कालने क्रोधमें आकर जब श्वेतको बाँधना चाहा, भगवान शंकर प्रकट हुए । उनकी नेत्रज्वालामें काल भस्म हो गया । इसी समय श्वेतकी समाधि टूटी । कालको जलता हुआ देखकर उन्होंने शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो ! आप तो सर्वतापहारी हैं, सबके दुःखको दूर

करने वाले हैं, शान्तस्वरूप हैं, यह मेरे सम्मुख मेरी तपस्थलीमें किसको भस्म कर दिया है अथवा आपके मन्दिरमें किसी अन्यने यह अपकर्म किया है।'

'तुम्हारी रक्षाके लिए मैंने ही इस सर्वसत्वभयद कालको भस्म कर दिया है।' शिवने कहा–'यह संसारके प्राणियोंका भक्षक है। तुम्हारे वधार्थ यह आया था। अब इसकी आशंकासे सभी मुक्त हो गये।'

'यह तो आपका ही सेवक है। आपकी ही आज्ञानुसार सबका नियन्त्रण करता है।' श्वेतने प्रार्थना की—'इसके भयसे ही प्राणी पुण्यरत होते हैं, आपकी आराधनामें लगते हैं। इसका भय नहीं रहेगा तो प्राणी कुमार्गगामी हो जायेंगे। अतः इसे शीघ्र जीवन दें।'

शिवने कालको जीवित कर दिया। कालने भगवान रुद्रकी स्तुति की। फिर श्वेतसे बोला—'राजन् ! सम्पूर्ण लोकोंमें मुझ अजेयको भी तुमने जीत लिया। अबसे मैं तुम्हारा अनुगामी हूँ। तुम रुद्रकी ओरसे मुझे अभय दो।'

भक्त विनम्रताकी मूर्ति होता है। श्वेतने अञ्जलि बाँधकर कालसे कहा—'आप तो साक्षात् शिवके स्वरूप हैं। सबके नियन्ता हैं, अतः मेरे भी पूजनीय हैं। आपके भयसे ही सत्पुरुष परमात्माकी शरण लेते हैं।'

काल, यम आदि श्वेतको प्रणाम करके वहाँसे लौट गये। शिवने श्वेतको अपने गणोंका अधिप बना दिया।

एक कथा और श्वेतकी ब्रह्मपुराणमें है। जब श्वेतकी आयु पूरी हो गयी, उनको लानेके लिए यमराजने अपने दूत भेजे। वे दूत श्वेतके घरमें प्रवेश नहीं कर सके। श्वेत ब्राह्मण थे इस कल्पमें। वे गौतमीके तटपर महर्षि गौतमके समीप कुटिया बनाकर रहते थे। यमदूतोंको जब लौटनेमें देर हुई, चित्रकेतुने मृत्युसे पूछा—'मृत्यु ! श्वेतकी आयु समाप्त हो गयी है। वह अब तक यहाँ क्यों नहीं आया है ? तुम्हारे दूत भी नहीं लौटे हैं। ऐसी अनियमितता उचित नहीं है।'

क्रोधमें भरे हुए मृत्यु जब वहाँ स्वयं गये, दूत घरसे बाहर खड़े थे। उन्होंने दूतोंसे पूछा—'क्या बात है ?'

दूत—'श्वेत भगवान शिवसे संरक्षित हैं। हम उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी असमर्थ हैं।' मृत्यु पाश लेकर उस घरमें प्रविष्ट हुए।

उस समय श्वेत भगवान शङ्करकी पूजामें लगे हुए थे। उनके समीप ही शिवकी आज्ञासे भैरव खड़े थे। पाशहस्त मृत्युको पास आते देखकर भैरवको विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—'मृत्यु! यहाँ क्या देखते हो?'

'मैं श्वेतको लेने आया हूँ। इन्हींको देख रहा हूँ।' मृत्युने कहा।

'लौट जाओ।' भैरवने चेतावनी दी।

मृत्युने इस चेतावनीकी उपेक्षा की और श्वेतपर अपना पाश फेंका। क्रुद्ध होकर भैरवने दण्डसे प्रहार किया। इससे पाश लिए हुए ही मृत्यु देव गिर पड़े। निष्प्राण हो गये। उनके दूत भाग खड़े हुए। मृत्युका वध सुन करके महिषवाहन यमराज क्रोधमें भरे हुए वहाँ आये। उनके साथ चित्रगुप्त, आधि-व्याधिके देवता सभी थे। यहाँपर यमराज तथा शिवके पार्षदोंमें युद्ध प्रारम्भ हो गया। कुमार कार्तिकेयने शक्ति उठायी और उससे यमदूतोंको विदीर्ण कर दिया। उन्होंने अपनी अमोघ शक्तिसे यमको भी मार दिया। मरनेसे बचे हुए यमदूतोंने भगवान सूर्यके पास जाकर यह समाचार दिया।

सूर्य दूसरे सब देवता तथा लोकपालोंको लेकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने नारायणको भी साथ ले लिया। वे सब वहाँ आये, जहाँ गोदावरी तटपर यम अपनी सेनाके साथ मरे पड़े थे। देवताओंने शिवकी स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर शिव प्रकट हुए। बोले—'क्या चाहते हो?'

देवता—'प्रभो! आप समस्त देहधारियोंके नियन्त्रक सूर्यनन्दनको जीवित कर दें। आपने ही इनकी धर्माधर्म व्यवस्थाके नियन्त्रकके रूपमें नियुक्ति की है। इनका वध नहीं होना चाहिए। इनके बिना सृष्टिका कार्य असम्भव हो जायगा। ये तो आप प्रलयंकरके ही परिकर हैं। अतः सेना-सहित इनको जीवनदान कीजिये।'

'तथास्तु।' शिवने कहा—'लेकिन जो मेरे और श्रीहरिके भक्त हैं, उनपर मृत्युका कोई अधिकार नहीं है। यमराजको और उनके दूतोंको उनकी ओर देखना ही नहीं चाहिए। अपने भक्तोंके हम दोनों ही स्वामी हैं। आधि-व्याधि कोई उनका पराभव नहीं कर सकते।'

देवताओंने इसे स्वीकार कर लिया। शिवकी आज्ञासे नन्दीश्वरने गौतमीका जल लाकर यम तथा उनके सैनिकोंपर डाला। वे सब जीवित हो गये। गौतमीके तटपर वहाँ मृत्युञ्जय तीर्थ है।

राजा श्वेतकी शिव-भक्ति-निष्ठाकी एक कथा ब्रह्मपुराणमें ही और आती है। जब ये राज्य कर रहे थे, कपाल गौतम नामके ऋषिका इकलौता पुत्र दाँत निकलनेके पहले ही मर गया। पुत्रके शवको लेकर ऋषि राजाके पास आये—'यह किसके पापसे मरा है? मैंने कोई पाप नहीं किया है। पिछले जन्मका भी मेरा कोई पाप नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं आश्वस्त हूँ।'

'निश्चय ही यह मेरा ही प्रमाद होना चाहिए।' श्वेतने विनम्रता-पूर्वक प्रार्थना की—'आप इस बालकके शवको सुरक्षित कर दें। यदि मैं सात दिनके भीतर इसे जीवित नहीं कर सका तो चितामें प्रवेश कर लूँगा।'

श्वेतने महामृत्युञ्जय मन्त्रका निराहार रहकर जप प्रारम्भ किया। नीलकमलोंके द्वारा वे भगवान शंकरकी अखण्ड अर्चा करने लगे। उनकी आराधनासे शरच्चन्द्रकान्ति भस्मभूषित व्याघ्रचर्माम्बर चन्द्रशेखर उमाके साथ प्रकट हुए। उन्होंने राजाको वरदान मांगनेको कहा—राजाने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो ब्राह्मणका बालक जीवित हो जाय।'

रुद्रने कालको आज्ञा दी—'बालकको जीवित कर दो।'

कालने महेश्वरकी आज्ञा स्वीकार करके बालको जीवित कर दिया।

भस्मासुर भस्म

दैत्यराज शकुनिका पुत्र बृक बहुत महत्वाकांक्षी था। एक दिन अकस्मात् उसे देवर्षि नारद मिल गये। असुरने अभिवादन करके पूछा—'ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनोंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है ? चाहे जितना कठोर तप करना हो, मैं कर लूँगा, किन्तु बहुत दिनों तक तप एवं साधन करनेका धैर्य मुझमें नहीं है, इसलिए आप मुझे जो शीघ्र सन्तुष्ट होते हों उनका नाम बतला दीजिये।'

देवर्षिने कहा—'भगवान शिवका तो नाम ही आशुतोष है। वे शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं, किन्तु स्मरण रखना, वे प्रलयंकर हैं और थोड़ेसे अपराधपर क्रुद्ध भी हो जाते हैं।'

'मैं ध्यान रखूँगा।' बृकासुरने कह दिया। देवर्षि चले गये। असुरने अपने ढंगसे तप करनेका निश्चय किया। वह भी हिमालयपर आया। केदार क्षेत्रमें उसने अग्नि प्रज्वलित की और अपने शरीरका मांस काट-काटकर शिव-मन्त्रसे आहुति देने लगा।

बृकासुरका यज्ञ अखण्ड चल रहा था, क्योंकि अपने शरीरको ही काट-काटकर आहुति देने वालेको विश्रामके लिए शान्ति नहीं मिल सकती। छः दिन बीत गये। आसपासकी पृथ्वी रक्तसे लथपथ हो गयी। बृकासुरके शरीरमें केवल कंकाल बच रहा ; किन्तु उसमें वेदना एवं शिथिलता नहीं आयी। सातवें दिन उसने खड्ग उठाया। अग्नि कुण्डकी ओर कुछ झुका जिससे मस्तक काटे तो वह अग्निमें ही गिरे क्योंकि अब उसके शरीरमें मांस नहीं रह गया था।

सहसा यज्ञकुण्डसे ही प्रकट होकर भगवान शिवने उसका हाथ पकड़ लिया। पर्वतराज नन्दिनी उनके पार्श्वमें उपस्थित थीं। शिवके स्पर्श मात्रसे बृकासुरका शरीर पहलेसे भी अधिक पुष्ट, बलशाली, स्वस्थ एवं सुन्दर हो गया।

वृषभध्वज बोले—'दानव ! मैं तो बिल्वपत्र और अञ्जलि भर जलसे ही सन्तुष्ट हो जाता हूँ। तुमने अपने आपको व्यर्थ इतना कष्ट दिया। तुम्हारा जो अभीष्ट हो माँग लो।'

अब तक बृकासुरने यह सोचा ही नहीं था कि शिवके प्रकट होनेपर वह क्या मांगेगा। अमरत्व और त्रिलोकजयी होनेका उसे लोभ था, किन्तु भुवनमोहिनी देवी पार्वतीको देखकर उनको प्राप्त करनेकी कलुषित इच्छा उसके मनमें उदय हुई। उसने सोचा—'मांगनेपर कोई भी अपनी भार्या नहीं दे सकता। यदि शिवको मार दिया जा सके, यह रमणीरत्न मुझे प्राप्त हो जायगा।' उसने मांगा—'मैं जिस किसीके भी सिरपर हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाय।'

'शिव प्रलयंकर हैं। वे थोड़ेसे अपराधपर रुष्ट हो जाते हैं।' देवर्षि-की यह वाणी असुरको स्मरण थी। उसने यह भी सोचा था—'पत्नी मांगने-पर शिव रुष्ट हो जायँगे। मैं यह वरदान न भी मांगू तो भी कभी मेरे किसी कृत्यसे ये भूतनाथ रुष्ट होकर मुझे मार दे सकते हैं। इसलिए इनको समाप्त कर देना ही निरापद होनेका मार्ग है।'

भगवान शंकर सर्वज्ञ हैं। सर्वसमर्थ हैं, किन्तु अतिशय उदार हैं। देनेको कहकर अस्वीकार कर देना उनके स्वरूपमें नहीं है। यद्यपि उन्हें खेद हुआ, किन्तु शिथिलप्राय स्वरमें उन्होंने 'एवमस्तु' कह दिया। विश्वके लिए इतना भयप्रद वरदान देनेमें किसीको भी उल्लास कैसे हो सकता है?

दुष्ट असुर इस 'एवमस्तु' सुननेकी प्रतीक्षामें ही था। उसने मनमें पूरी योजना बना ली थी। तत्काल हाथ उठाकर शिवजीके ही सिरपर रखनेके लिए झपटा। जिनकी नयनज्वालामें प्रलयके समय त्रिलोकी शुष्क काष्ठके समान भस्म हो जाती है, वे प्रलयंकर प्रभु अपने ही वरदानकी रक्षा-के लिए भाग खड़े हुए। सरलतासे त्रिशूल उठाकर वे भस्मासुरको मार दे सकते थे। बृकासुर मरेगा नहीं, या उसे मारा नहीं जा सकता, ऐसा कोई भी आशीर्वाद उन्होंने उसे नहीं दिया था। किन्तु अपने ही आराधकको अपने ही हाथों मार देना उन्हें प्रिय नहीं था, फिर वह कितनी भी मूर्खता या दुष्टता क्यों न करे।

भगवान शंकर भागे जा रहे थे। बृकासुर उनके पीछे लगा दौड़ रहा था। देवता स्तब्ध देख रहे थे। किसीको कुछ उपाय नहीं सूझता था। शिव अनेक स्थानोंमें, अनेक लोकोंमें गये, किन्तु असुरने उनका पीछा नहीं छोड़ा। दूसरा कोई सहायता करनेका मार्ग नहीं पा रहा था।

श्रीहरिका दिव्यधाम इसीलिए बैकुण्ठ कहा जाता है कि वहाँ कुण्ठाका, भयका, शोकका प्रवेश नहीं है। भगवान शंकर जब दौड़ते हुए वैकुण्ठ पहुँचे,

बृकासुर बहुत पीछे छूट गया था। श्रीहरिको अपने धामकी मर्यादा रक्षा करनी थी और अपनेसे अभिन्न महेश्वरको भी सन्तुष्ट करना था। वे परम सुन्दर ब्रह्मचारीका वेश बनाकर पलाशदण्ड और कमण्डलु लिए कौपीन लगाये बृकासुरको बैकुण्ठ पहुँचनेसे पूर्व ही मार्गमें मिल गये।

'दानवेन्द्र ! आपका मंगल हो। शकुनिनन्दन ! आप तो जगतमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार तुच्छके समान, आतुरके समान आप क्यों दौड़ रहे हैं ?' उस माया ब्रह्मचारीने हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—'सभीको अपना शरीर प्यारा होता है। समस्त भोग इस शरीरके लिए ही प्राप्त किये जाते हैं। लगता है, आप दूरसे दौड़े आ रहे हैं, श्रान्त हो गये हैं। क्षण भर विश्राम कर लें। सुनने योग्य हो तो मुझे अपनी इस भाग-दौड़का कारण बतला दें। हो सकता है, मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ।'

ब्रह्मचारी बहुत सुन्दर था। उसकी विनम्र वाणी जैसे श्रवणोंमें सुधा-सिञ्चन करती थी। असुर खड़ा हो गया। उसे लगा, अकेले दौड़नेकी अपेक्षा एक सहायक मिल जाय तो उत्तम होगा। वह उसकी सहायतासे शिवको शीघ्र पकड़ सकेगा। उसने अपने वरदान-प्राप्तिका वर्णन करके दौड़नेका कारण बतला दिया।

'मैं तो समझता था, आप बहुत बुद्धिमान हैं। आप भी किसी उन्मत्तके बहकावेमें आ सकते हैं, ऐसी आशा मुझे आपसे तो नहीं थी।' ब्रह्मचारीने खुलकर अट्टहास किया और बोला—'आप इतना भी नहीं जानते कि शिव भूत-प्रेतोंका स्वामी है, उन्मत्त है और उन्मादग्रस्त क्या ठीक-ठिकानेकी बात कर सकता है ? आपने शिवकी बातपर विश्वास कर लिया और इतना परिश्रम कर रहे हैं ? बुद्धिमानीकी, समझनेकी बात है कि यह वरदान ऐसा है कि इसके परीक्षणके लिए कहीं जानेकी आवश्यकता ही नहीं है। यदि आपको शिवके वरदानपर विश्वास है तो उसकी अभी परीक्षा कर लीजिये। अपना हाथ अपने मस्तकपर रखिये। धीरे-धीरे रखिये। थोड़ी-बहुत उष्णता प्रतीत हो तो हटा लीजिये। लेकिन रखिये ! देखिये तो सही कि यह वरदान सच भी है या नहीं अथवा ऐसे ही जीवन भर दौड़ते रहेंगे एक उन्मत्तके पीछे ? एक बात और यदि शिवका यह वरदान झूठा निकलता है, मुझे तो लगता है कि निकलना ही चाहिए, तब मैं आपके साथ उस पागलको पकड़नेमें सहायता कर दूंगा। उसे पकड़कर

इतना कठोर दण्ड दीजिये कि फिर कभी वह किसीको इस प्रकार भ्रममें डालनेका साहस न करें ।'

'अच्छा !' ब्रह्मचारीकी बात बहुत लुभावनी थी। असुर बातोंके भुलावेमें आ गया। उसे भी लगा, परीक्षणके पश्चात् ही श्रम करना चाहिए। उसने अपना हाथ अपने सिरपर रख लिया। बात समाप्त हो गयी। असुरके शरीरसे प्रकट अग्नि ज्वालाने उसे भस्म कर दिया।

(श्रीमद्भागवत)

द्वितीय कथा—कल्पान्तरमें भगवान श्रीहरि मोहिनी रूप धारण करके बृकासुरके सम्मुख आये। उनके अकल्पनीय सौन्दर्यको देखकर बृकासुर मार्गमें ही खड़ा हो गया। एकटक उन्हें घूरने लगा। पार्वतीका तो उसे स्मरण भी नहीं रह गया। मोहिनीने ही मुस्कराते हुए कहा—'ओह ! आप देवेन्द्र हैं ! आप जैसा परम सुन्दर और विश्वका सर्वश्रेष्ठ वर इस प्रकार प्राप्त होगा, ऐसी तो आशा मुझे नहीं थी।'

बृकासुर व्याकुल हो गया था। वह मोहिनीसे पूरी बात भी नहीं कर पा रहा था। उसने कुछ कहना चाहा—'तुम.... ...'

मोहिनीने बीचमें ही कटाक्ष करके हँसते हुए कहा—'मैं तो स्वयं आपके समीप आ रह हूँ, लेकिन मैं केवल उसे स्वीकार करूँगी जो मेरे साथ मेरे ही समान नृत्य कर सकता हो। आपको नृत्य करना आता है ?'

असुरने नाचना स्वीकार किया। यदि केवल नाचनेसे यह परम सुन्दरी नारी मिल सकती है तो वह नाचेगा। मोहिनीके साथ वह उसी प्रकार नृत्य करने लगा। हाथकी जो मुद्रा मोहिनी बनाती थी, असुर भी उसका अनुकरण करता था। सहसा मोहिनीने अपना दाहिना हाथ अपने सिरपर रख लिया। मोहिनीके सम्मोहन और नृत्यके आवेशमें बृकासुर वरदानकी तो बात ही भूल गया था। उसने भी अपना दाहिना हाथ सिर-पर रख लिया और भस्म हो गया।

श्रीहरिने भगवान शंकरका अब स्वागत किया—'देव ! यह पापिष्ठ तो अपने पापोंसे ही भस्म हो गया।' (स्कन्द पुराण)

———

नागोद्धार

शेष नागका पुत्र महाबल नामका नाग भगवान शंकरके हाथका कंकड़ बना रहता था। उमा-महेश्वर एकान्तमें बैठे थे। देवी पार्वतीकी किसी बातपर भगवान शंकर खिलखिला कर हँसे। इससे वह नाग भी हँस पड़ा। रुद्रने रुष्ट होकर कहा— 'आभूषणको निर्विकार रहना चाहिए। तू सेवककी मर्यादा नहीं जानता। मेरा कराभरण होकर भी तू अपने सर्पत्व-को विस्मृत नहीं कर सका है, इसलिए मनुष्य लोकमें सर्पयोनि धारण कर।'

नाग महाबलने प्रभुके चरणोंका स्पर्श किया। स्तुति की— 'आप इस अज्ञानीपर अनुग्रह करें।'

आशुतोष प्रसन्न होकर बोले— 'तुम पृथ्वीपर उत्पन्न होकर भी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकोगे। यह जो तुम्हारी पत्नी है यह भोग-वती ही वहाँ तुम्हारी मानवी पत्नी बनेगी। इसके साथ गौतमी (गोदावरी) के तटपर मेरा पूजन करके तुम शापमुक्त हो सकोगे।'

प्रतिष्ठानपुरके चन्द्रवंशी राजा शूरसेनकी महारानीने जब प्रसव किया, उनके गर्भसे भयानक आकारके सर्पका जन्म हुआ। किन्तु वह जन्मके समय ही मनुष्यकी भाषामें बोल सकता था। उसने माताको आश्वस्त किया। नरेश और महारानीने भी उसको छिपाकर रखा। उसका नाम नागेश्वर पड़ा।

राजा शूरसेनके और कोई पुत्र नहीं था। मनुष्य भाषा बोलने वाले इस सर्पपुत्रसे ही उनका वात्सल्य सन्तुष्ट हो रहा था। वह विनयी था। माता-पिताका सम्मान करता था। पिताने उसको पर्देमें रखकर ही उसका चूड़ाकर्म, उपनयन आदि सब कर्म सम्पन्न कराया।

बंग नरेश विजयकी बहिन भोगवतीके विवाहके लिए ब्राह्मण नारि-यल लेकर प्रतिष्ठानपुर आया। राजा शूरसेनने अपने पुत्रके लिए वह नारि-यल स्वीकार कर लिया, किन्तु ब्राह्मणसे कहा— 'हमारे कुलमें शस्त्र-प्रति-निधिके द्वारा विवाह होता है, राजकुमार विवाह करने जाया नहीं करते।'

बहुत पीछे तक भी तलवारको भेजकर विवाह करनेकी यह प्रथा राजपूत नरेशोंमें रही है। उस समय भी किसीने इसपर ध्यान नहीं दिया।

शत्र प्रतिनिधिके माध्यमसे भोगवतीका विवाह उस भयंकर नागसे हो गया। राजकन्या पतिगृह आयी। अन्ततः पतिसे उसका साक्षात्कार हुआ। उस पतिव्रताने पतिको आश्वासन दिया। उसके पातिव्रत्यके कारण नागको अपने पूर्व जन्म और शापका स्मरण हुआ। दोनों प्रतिष्ठानपुरसे गोदावरी तटपर पहुँचे। वहाँ भगवान शिवका पूजन करके वे शापमुक्त हो गये। (ब्रह्मपुराण)

—※—

वाराणसीसे निर्वासन

मर्यादा बहुत निष्ठुर होती है। उसका सम्मान करनेके कारण देव-देव महादेवको भी अपनी परमप्रिय पुरी वाराणसीसे निर्वासित हो जाना पड़ा।

मनुवंशमें उत्पन्न राजर्षि श्रेष्ठ रिपुञ्जय वाराणसीमें तपस्या कर रहे थे। उन महाभागको संसारके किसी व्यवहारमें रुचि नहीं थी, किन्तु प्रजापति ब्रह्मा स्वयं ही उनके आश्रममें पधारे और उन्हें आदेश दिया—'महामते! तुम समुद्रपर्यन्त वन, पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करो। मेरे प्रभावसे तुम्हें अतुलनीय सामर्थ्य प्राप्त होगी। नागराज वासुकि नागकन्या अनंगमोहिनीसे तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं, उसे तुम स्वीकार करो। देवता तुम्हें स्वर्गीय रत्न एवं पुष्प प्रदान करते रहेंगे।'

'दिवो दास्यन्ति'—ब्रह्माजीके यह कहनेके कारण रिपुञ्जयका नाम दिवोदास हो गया। तपःप्रिय, बीतराग रिपुञ्जयने कहा— 'पितामह! भूतल तो मनुष्योंसे भरपूर है। पृथ्वीपर बहुत पराक्रमी क्षत्रियकुमार हैं, शतशः राजा हैं, फिर आप मुझे ही ऐसी आज्ञा क्यों कर रहे हैं?'

'राजन्! तुम धर्मात्मा हो। तुम शासन करोगे तो देवता सानुकूल रहेंगे।' ब्रह्माजीने कहा—'शासक धर्मात्मा होता है तो वृष्टि उत्तम होती है, ईति-भीति प्रजाको संत्रस्त नहीं करती, प्रजा सुखी रहती है। कोई स्वार्थी भोगपरायण पापी नरेश शासक हो जायगा तो प्रजा कष्ट पायेगी।'

'मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ।' रिपुञ्जय बोले—'किन्तु आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें, तब मैं ठीक शासन करनेमें सफल हो सकूँगा।'

'क्या कहना है तुम्हें ?' ब्रह्माजीने पूछा।

'मैं मनुष्य हूँ। देवता, असुर, नाग आदि उपदेवताओंका भी मनुष्य शासन नहीं कर सकता।' रिपुञ्जयने प्रार्थना की—'मैं शासक होता हूँ तो देवताओंको देवलोकमें और असुर, नाग आदिको पातालमें ही रहना चाहिए।'

ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मलोक चले गये। दिवोदासने भेरी-घोषके साथ घोषणा करवा दी—'देवताओंको पृथ्वीका त्याग करके अपने लोकमें चले जाना चाहिए। असुर और नाग भी कोई यहाँ आनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें देवता स्वर्गमें, असुर और नाग पातालमें तथा मनुष्य, पशु आदि पृथ्वीपर निवास करते हुए सुखी रहें। कोई भी दूसरेके लोकमें बिना अनुमतिके प्रवेश न करे। वहाँ आवास कभी न बनावे। इस आज्ञाका उल्लंघन सृष्टिकर्ताकी वाणीका उल्लंघन माना जायगा।'

मन्दराचलने बहुत तपस्या की थी कि भगवान शंकर उसके ऊपर निवास करें। ब्रह्माजीके वरदानके गौरवकी रक्षाके लिए भगवान शंकर अपने गणोंके साथ मन्दराचलपर चले गये। सब देवता भी उनके साथ ही गये। यहाँ तक कि भगवान विष्णु भी वैष्णव तीर्थोंका त्याग करके शिवके समीप मन्दराचलपर ही जाकर रहने लगे।

दिवोदास परम धार्मिक थे। अत्यन्त पराक्रमी थे। देवताओंको, असुरोंको, दानवोंको—सभीको कर्मलोक धरा आकर्षित करती थी, किन्तु असह्य तेजा दिवोदासका अतिक्रमण करनेका साहस किसीमें नहीं था। दानव भी मानवाकृति धारण करके उनकी सेवा करनेके निमित्त ही पृथ्वी-पर उनके समीप आ पाते थे। यक्षेश्वर कुबेरने अपने गुप्तचर गुह्यकोंको पृथ्वीपर भेजा; किंतु दिवोदासके राज्यमें कोई पथभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट, परद्वेषी था ही नहीं, और जहाँ भी धर्मात्मा हों, किसी प्रकारके उपद्रव करनेका साहस न देवता कर सकते हैं और न असुर। सम्पूर्ण प्रजा ईति-भीति अर्थात् चूहे, टिड्डी, तोते, कीड़े आदि प्राणियोंके उपद्रवोंसे तथा अनावृष्टि, अति-वृष्टि, ओला, पाला, महामारी आदि उपद्रवोंसे रहित थी। प्रजा सुखी थी,

स्वतन्त्र थी, समान थी। इन्द्रादि देवताओंने अनेक बार विघ्न करनेका प्रयत्न किया, किन्तु वे दिवोदासके धर्मबलके सम्मुख असफल रहे।

भगवान महेश्वरका मन अपनी पुरी वाराणसीके लिए व्याकुल रहता था। उन्होंने ६४ योगिनियोंको वाराणसी यह देखने भेजा कि यदि दिवोदासके धर्माचरणमें किंचित् भी छिद्र मिल सके, उसे पृथ्वीसे हटानेका प्रबंध किया जाय। वे योगिनियाँ वाराणसी आयीं। बारह महीने अहर्निश सचेष्ट रहीं, किन्तु दिवोदासमें कहीं किंचित् भी कोई त्रुटि नहीं थी। योगिनियाँ नरेशपर अपना कोई भी प्रभाव डालनेमें असमर्थ रहीं। अततः वे महाराजके सम्मुख गयीं। उन्होंने प्रार्थना की—'आप सबके आश्रयदाता हैं। हम आपसे आश्रयकी याचना करती हैं।'

दिवोदासने अनुमति दे दी। योगिनियाँ वाराणसीमें ही बस गयीं। बहुत दिनों तक जब वे नहीं लौटीं, भगवान शंकरने सूर्यको आदेश दिया—'सप्ताश्ववाहन! वाराणसी जाओ। कुछ ऐसा करो जिससे राजा दिवोदास कुछ धर्मविरुद्ध कार्य करे, तब उस क्षेत्रको उसके अनुचरोंसे रिक्त किया जा सकेगा। किन्तु प्रमादवश नरेशका अनादर मत करना। धर्ममें स्थित सत्पुरुषका अपमान अपने लिए ही अनर्थकारी होता है। दिवोदासमें काम, क्रोध, ईर्ष्या, मोह, अहंकारका सर्वथा अभाव है, अतः देवता भी उन्हें जीत नहीं सकते। मैं प्रतीक्षा कर लेता यदि उनकी आयुकी सीमा होती, किन्तु वे तो अपने धर्मके कारण ही कालजयी हैं। यदि तुम्हारे किसी प्रयत्नसे उनके द्वारा कुछ थोड़ा भी प्रमाद हो तो तुम अपनी किरणोंके द्वारा वहाँका रस शोषण करके अकाल उपस्थित कर सकते हो।'

भगवान भास्कर अपने देवता रूपसे वाराणसी नहीं आ सकते थे। उन्होंने अनेक रूप धारण किए। वाराणसीमें वे कई वर्ष रहे, किंतु दिवोदासमें किंचित् भी प्रमाद, धर्मका तनिक भी व्यतिक्रम देखनेमें वे असमर्थ हो गये। सूर्यने एक कूट प्रयत्न किया। वे अतिथि बनकर दिवोदासके सम्मुख गये। सोचा था, कोई दुर्लभ वस्तु माँगेंगे और अतिथिको असन्तुष्ट करनेका अपराध दिवोदासपर आरोपित हो जायगा। यह प्रयत्न भी असफल रहा। जिसमें धर्म सम्पूर्ण रूपसे स्थित है, उसके संकल्पके सम्मुख दुर्लभ कुछ हुआ नहीं करता। सूर्यने दानीका वेश ग्रहण किया, किन्तु उन्हें कोई प्रतिग्रह स्वीकार करने वाला नहीं मिला। याचक बने, कहींसे भी उनकी याचना असफल नहीं लौटी। ज्योतिषी बने, किन्तु किसीको कोई

भविष्य जानना नहीं था। प्रत्यक्षवादी तार्किक बने, किन्तु प्रजामें इतनी धर्मनिष्ठा थी कि उनके तर्क सुनकर लोग हँस देते थे। कह देते थे—'आस्था तर्कसे बड़ी है।' जटाधारी दिगम्बर बने, जनतासे श्रद्धा प्राप्त हुई, लेकिन प्रजाका एक भी व्यक्ति उनका शिष्य न बन सका। सँपेरे बने, कथावाचक बने, अनेक रूप धारण किये—अद्भुत थी दिवोदासकी प्रजा, कोई तर्क, कोई भविष्यवाणी, कोई चमत्कार उसकी निष्ठामें किंचित् भी अन्तर डालनेमें असमर्थ था। स्त्रियाँ सत्पथसे न हटीं। अन्ततः भगवान भास्कर भी पराजित हो गये। उन्होंने भी योगिनियोंके समान आश्रयकी याचना की और वाराणसीमें बस गये।

'सूर्य भी नहीं लौटे, तब त्रिपुराग्नि ने ब्रह्माको भेजा। वे वृद्ध ब्राह्मण बनकर राजासे मिलने वाराणसी आये। हाथमें जल, अक्षत लेकर उन्होंने दिवोदासके लिए स्वस्ति पाठ किया। सृष्टिके कर्ता, सम्पूर्ण ऋषियोंके आदि-पुरुष भगवान् ब्रह्माके करोंका स्वस्ति-सीकर दिवोदासका ही सौभाग्य था। राजाने उनका सत्कार किया। आगमनका कारण पूछा—वृद्ध विप्रवेश धारी ब्रह्माने कहा—'राजन्! मैं आपकी इस परम पावन पुरीमें यज्ञ करना चाहता हूँ। आप उदार हैं, धर्मात्मा हैं, मैं अकिञ्चन् ब्राह्मण हूँ, आप मेरी सहायता करें।'

'मेरा परम सौभाग्य!' राजाने स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजीने दश अश्वमेध यज्ञ किये। वाराणसीमें जहाँ रुद्र सरोवर था वहाँ दश अश्वमेघ यज्ञ होनेके कारण उस स्थलका नाम दशाश्वमेध हो गया। पीछे जब गंगाजी आयीं, उस सरोवरको उन्होंने अपने भीतर अन्तर्हित कर लिया। यज्ञ पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीने राजासे आवासकी याचना की। राजाने उनके लिए एक ब्रह्मशाला बनवा दी। वे भी वाराणसीमें निवास करने लगे।

सूर्य नहीं लौटे, ब्रह्माजी भी नहीं लौटे। अब शिवने अपने पुत्र बुद्धिके देवता गणेशको भेजा। वे वृद्ध ज्योतिषी ब्राह्मण बनकर नगरमें पधारे। घर-घर जाकर लोगोंका भविष्य सूचित करने लगे। उनकी ख्याति दिवोदासके अन्तःपुरमें भी पहुँची। महारानी लीलावतीने महाराजसे निवेदन किया—'नगरमें एक वृद्ध ज्योतिषी आये सुने जाते हैं। कहा जाता है, वे वेदोंकी साक्षात् मूर्ति हैं। उन आप्तकामको शासनसे अथवा सम्पन्न व्यक्तियोंसे कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है। हमें भी उनके दर्शन करना चाहिए।'

महाराज दिवोदासने आदरपूर्वक वृद्ध ज्योतिषीको राज-सदन आमन्त्रित किया। उन्होंने ज्योतिषीसे पूछा—'भगवान ब्रह्माने मेरे ऊपर यह प्रजाकी व्यवस्थाका भार डाल दिया। उनकी आज्ञा स्वीकार करके मुझे यह कर्तव्य पालन करना पड़ा, किन्तु मेरा मन प्रारम्भसे ही सब कर्मोंसे विरक्त है। आप भविष्यके अन्धकारमें देख सकते हो। मेरे लिए इन कर्मोंसे उपरत होकर भगवच्चरणोंके ही स्मरणका कोई सुयोग है?'

गणेशजीको तो यह अभीष्ट ही था। उन्होंने भविष्य निर्दिष्ट किया—'आजसे १८ वें दिन उत्तर दिशाकी ओरसे आया कोई ब्राह्मण तुम्हें उपदेश करेगा। बिना हिचकके उसके प्रत्येक वचनका पालन करो, उससे तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

अठारहवें दिन किसी दूसरे ब्राह्मणको नहीं आना था। दूसरे ब्राह्मण-का रूप बनाकर स्वयं गणेश ही राजाके पास आये। उन्होंने भी वाराणसीमें अपने लिए स्थानकी याचना की। राजाने अनुमति दे दी। गणेश भी वाराणसीमें गणपति क्षेत्रमें निवास करने लगे।

महादेवने देखा, गणनायक भी नहीं लौटे। अब उन्होंने भगवान विष्णुसे कहा—'माधव! आप वाराणसी पधारो; किन्तु वैसा ही मत करना जैसा पहले गये लोगोंने किया है।'

श्रीहरिने आकर गंगा और वरुणाके संगमपर अपने चरण धोये। इससे वहाँ पादोदक तीर्थ प्रकट हुआ। भगवान विष्णुने विद्वान् ब्राह्मणका स्वरूप बनाया था। हाथमें पुस्तक ले रखी थी। गरुड़ उनके पीछे शिष्यके रूपमें चल रहे थे। श्रीहरि अपना नाम हरि ही बतलाते थे। शिष्यने अपना नाम विनयकीर्ति बतलाया था। सार्वजनिक स्थानपर बैठकर वे अपने शिष्यको उपदेश करने लगे। लोगोंने वह उपदेश सुना तो वहाँ श्रोताओंकी भीड़ बढ़ने लगी।

गणेशजीने दिवोदासके चित्तको विरक्त बना दिया था। पण्डितके रूपमें श्रीहरि जब उनके द्वारपर आये तो उन्होंने उनका पूरा सत्कार किया। जब वे विराजमान हो गये, राजाने प्रार्थना की—'राज्यके भारसे मैं श्रान्त हो गया हूँ। संसारके भोगोंसे मेरा मन विरक्त हो उठा है। मुझे क्या करना चाहिए? कहाँ जाऊँ? मुझे शान्ति कैसे प्राप्त हो? यह राज्य तो पीसेको पीसनेके समान है। इस प्रवृत्तिसे क्या लाभ? आप कोई ऐसा मार्ग बतलावें कि कर्म-बन्धनका नाश हो।'

'मुझे जो कहना था, वह सब तुम्हींने कह दिया। तुम तो कृतार्थ हो।' श्रीहरिने कहा—'तपस्याके द्वारा तुमने इन्द्रिय मलको धो डाला है। अतः तुममें मुमुक्षा जागृत ही होनी चाहिए थी। मेरी समझसे तुम्हारा एक ही अपराध है कि तुमने विश्वनाथको वाराणसीसे दूर किया है। इस अपराधकी शान्तिके लिए तुम प्रयत्नपूर्वक शिवलिंगकी स्थापना करके उनका अर्चन करो। इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे। आजसे सातवें दिन एक विमान आवेगा, वह तुम्हें लेकर शिवके परमलोकमें ले जावेगा। वाराणसी सेवनका यही फल है।'

दिवोदास इससे प्रसन्न हो गये। ब्राह्मणने राजासे उस पुरीमें निवास करनेकी आज्ञा ली। पञ्चनद कुण्ड (पञ्चगंगा) पर वे बस गये।

राजाने सब प्रजाको, मन्त्रियोंको, अपने पुत्रोंको, प्रजाप्रधानोंको एकत्र किया। सबके सम्मुख वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुना दी—'मुझे इस लोकमें केवल सात दिन और रहना है।'

बड़े राजकुमार समरञ्जयका राजाने राज-तिलक किया। गंगा-तटपर विशाल शिवमन्दिर बनवाया। उसमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति लगा दी। इस प्रकार दिवोदासेश्वर शिवलिंगकी उन्होंने स्थापना की। सातवें दिन वे उस लिंगका पूजन करके प्रणिपातके अनन्तर स्तुति कर रहे थे, तभी आकाशसे दिव्य विमान उतरा। शूलखट्वांगधारी शिव-पार्षद उस विमानसे उतरकर राजाके समीप आये। उन्होंने दिव्य मालाओंसे, दिव्य गन्धसे, वस्त्राभरणसे राजाको अलंकृत करके विमानमें बैठाया। दिवोदास शिवधाम चले गये।

श्रीहरिने गरुड़को मन्दराचलपर भेजा। भगवान शंकर पार्वतीके साथ वृषभारूढ़ होकर सब गणोंको साथ लिए वाराणसी आये। हरि, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश आदि स्वागतार्थ आगे आये। ब्रह्माजीने स्वस्ति पाठ किया। गणेशजीने चरण-वन्दना की। शिवने हरि तथा ब्रह्माको अपने समीप ही बैठा लिया। ब्रह्मा, सूर्य और योगिनियोंने क्षमा मांगी—'हम काशी आकर लौट नहीं सके। दिवोदास सर्वथा निर्दोष थे। हम उनके विरुद्ध कुछ भी करनेमें असमर्थ रहे और वाराणसीका प्रलोभन हमें यहाँसे कहीं भी जाने नहीं देता था। आप हमारे अपराधको क्षमा करें।'

नन्दीश्वरकी प्रार्थनापर उमा-महेश्वर दिव्य रथमें आरूढ़ होकर नगरमें प्रविष्ट हुए। नगरमें ब्राह्मणोंने भगवान शंकरकी स्तुति की—'हमारे परम सौभाग्यसे आपके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। अब आप इस पुरीका कभी

परित्याग न करें। यहाँ जो आपके लिंगोंकी स्थापना हुई है, उनमें आपका निरन्तर निवास हो।'

शिवने ब्राह्मणोंको 'एवमस्तु' कह दिया। तबसे उन्होंने मर्यादा-स्थापना की, काशी पृथ्वीका अंश नहीं मानी जायेगी। पृथ्वीका भाग दीखते हुए भी यह पृथ्वीसे पृथक रहेगी। महाप्रलयमें भी इसका विनाश नहीं होगा। मैं इसे अपने त्रिशूलपर धारण करूँगा।'

इस प्रकार वाराणसीसे विश्वनाथका निर्बासन समाप्त हुआ।

(स्कन्दपुराण)

दुन्दुभि निर्ह्राद-वध

जब भगवान महेश्वर वाराणसीसे मन्दराचलपर चले गये, वाराणसी-के ब्राह्मण निराश्रय हो गये। उन्होंने क्षेत्र संन्यास ग्रहण करके वाराणसीसे दूर न जानेका व्रत ले रखा था। प्रतिग्रहका त्याग कर दिया था, अपने दण्ड-के अग्रभागसे भूमि खोदकर कन्द, मूल आदि निकालकर जीवन-निर्वाह करते थे। उनके इस प्रकार भूमि खोदनेसे एक पुष्करिणी बन गयी। उसका नाम दण्डखात तीर्थ पड़ा। वहाँ उन लोगोंने अनेक शिवलिंगोंकी स्थापना की और तपस्या करने लगे।

प्रह्लादके मामा दुन्दुभि निर्ह्रादको हिरण्याक्षके वधसे बहुत दुःख हुआ था। वह सोचने लगा था— 'देवताओंको सुगमतापूर्वक कैसे जीता जा सकता है।' उसके मनमें विचार आया— 'ब्राह्मण ही यज्ञ करके देवताओं-को पुष्ट करते हैं, ब्राह्मण नष्ट हो जायँ तो वेद नष्ट हो जायँगे। वेद नष्ट हो जायँ तो यज्ञ नहीं हो सकेंगे। यज्ञ न हों तो देवता अपने आप नष्ट हो जायँगे। वे इतने दुर्बल हो जायँगे कि उन्हें सुगमतापूर्वक जीता जा सकेगा। देवताओंको पराजित करके मैं त्रिलोकीका सम्राट हो जाऊँगा, क्योंकि पातालके असुर मेरे बान्धव हैं और धराके मनुष्य हीनसत्व हैं।'

इस प्रकारका निश्चय करके असुर वाराणसी आया क्योंकि वाराणसी शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंका सदासे प्रमुख केन्द्र रहा है। जब ब्राह्मण कुश, समिधा आदि लेने वनमें जाते थे, तब वह व्याघ्र बनकर उन्हें खा लेता था। प्राय अदृश्य रहता था। देवता भी उसे देख नहीं पाते थे। वनमें कभी भील बनः

करके घूमता था। जलमें जलजन्तु बन करके विचरण करता था और इन रूपोंमें भी ब्राह्मणोंको मारता रहता था। दिनमें मुनिका वेश बना कर मुनियोंके मध्यमें ध्यान लगाकर बैठ जाता। अवसर पाकर उनकी पर्णशाला-में प्रवेश कर जाता। इस प्रकार दिनमें पर्णशालासे कैसे और कहाँसे भागा जा सकता है— यह देख लिया करता था। रात्रिमें व्याघ्रके रूपमें कुटियामें आ जाता और किसी न किसीको मारकर भोजन कर लेता। बहुतसे ब्राह्मणोंको उसने इस प्रकार खा लिया।

शिवरात्रिका दिन था। एक शिवभक्तने लिंगार्चन किया और ध्यानस्थ होकर बैठ गये। दैत्य व्याघ्रका रूप धारण करके वहाँ आया, किन्तु अंग-न्यास, करन्यास, मन्त्रन्यास तथा कवचसे रक्षित उस ब्राह्मणके समीप पहुँचे हुए दैत्यका अंग मानो जलने लगा था। वह प्रतीक्षामें वहाँ बैठ गया कि जब यह ब्राह्मण आसनका त्याग करके उठेगा, न्यासादिका प्रभाव समाप्त हो जायगा, तब मैं इसपर आक्रमण करूँगा।

शिवरात्रिका दिन था। ब्राह्मणको आसनसे उठना ही नहीं था। वह द्वितीय प्रहरकी पूजा करके पुनः ध्यानस्थ हो गया। इससे दैत्यका धैर्य समाप्त हो गया। अब वह बलपूर्वक उस ब्राह्मणको पकड़नेके लिए आगे बढ़ा। सहसा भयंकर शब्द हुआ। सम्पूर्ण मन्दिर प्रचण्ड प्रकाशसे व्याप्त हो गया। शिवलिंगसे भक्तरक्षार्थ भगवान शंकर प्रकट हो गये। इससे दैत्य हताश नहीं हुआ। उसने बहुत विशाल शरीर धारण कर लिया और महेश्वरपर झपटा, किन्तु शिवने उसे पकड़कर अपनी बगलमें दबा लिया। उस दबावसे ही दैत्यकी हड्डियाँ टूट गयीं। भयंकर आर्तनाद करता हुआ वह मर गया।

दैत्यके उस आर्तनादसे ध्यानस्थ ब्राह्मणका ध्यान टूटा। दूसरे भी आस-पासके ब्राह्मण वहाँ दौड़ आये। प्रत्यक्ष भगवान शंकरको विशाल असुर व्याघ्रको अपनी कुक्षिमें दबाये हुए देखकर ब्राह्मण जय-जयकार करने लगे। सबने स्तुति करके प्रार्थना की— 'प्रभो! आपने हमपर कृपा की तो अब यहीं निवास करें।'

'ऐसा ही हो।' यह वरदान देकर भगवान शंकर वहीं उस लिंग रूपमें ही वास करने लगे। तबसे उस लिंगका नाम व्याघ्रेश्वर पड़ा।

(शिवपुराण-स्कन्दपुराण)

★

मुनि जैगीषव्यपर अनुग्रह

जिस दिन भगवान विश्वनाथ वाराणसीका त्याग करके मन्दराचल-पर गये, उसी दिन मुनि जैगीषव्यने निश्चय किया— 'जब यहाँ भगवान' सदाशिवके चरणारविन्दोंका दर्शन होगा, तभी मैं जल ग्रहण करूँगा। अन्न-जल त्याग करके वे समाधिमें स्थित हो गये।

वाराणसीमें जैसे ही लौटकर भगवान शिव पहुँचे, सबसे पहले जैगी-षव्यके समीप पधारे। वहाँ उन्होंने नन्दीश्वरसे कहा— 'शिलादपुत्र! यह बहुत मनोहर गुफा है। शीघ्र इसमें प्रवेश करो। यहाँ मेरे परम भक्त तपो-धन मुनि जैगीषव्य मेरे दर्शनार्थ कठोर व्रत किये हुए बैठे हैं, उनको बाहर निकाल ले आओ। उनके अंग शुष्क हो चुके हैं। मेरा यह लीलाकमल लो। यह अमृतके समान पोषक है। इससे उनके अंगोंका स्पर्श कराना। उनके अंग पुष्ट हो जायँगे और वे बाहर आनेमें समर्थ होंगे।'

नन्दीश्वर वह कमल लेकर गुफामें प्रविष्ट हुए। गुफामें उन्होंने देखा, मुनिका शरीर अस्थियोंपर लिपटे हुए चर्मसे ऐसा लगता है जैसे शुष्क काष्ठको शशक-चर्मसे बहुत दिनोंसे लपेटा हो। कमलका स्पर्श कराया उन्होंने। तत्काल मुनिका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया। वे समाधिसे उठे नन्दीश्वरको उन्होंने प्रणाम किया। बोले— 'आप पधारे! आपका परम अनुग्रह, किन्तु मैं अपने आराध्यके दर्शन करके ही जल ग्रहणकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।'

स्मितपूर्वक नन्दीश्वरने कहा— 'भगवान उमा-महेश्वर गुफाके बाहर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

जैगीषव्य गुफासे बाहर आये। देवी पार्वतीके साथ वृषभध्वजको देख-कर आनन्दमग्न वे नृत्य करने लगे। प्रणिपात करके स्तुति की। विश्वनाथने कहा— 'मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। जो अभीष्ट हो, माँग लो।'

'आपके चरणारविन्दोंसे मैं कभी दूर न होऊँ।' जैगीषव्यने केवल यही माँगा।

भगवान शिवने 'एवमस्तु' कहकर उनको योगशास्त्र प्रदान किया और उनको योगाचार्य बनाया। जरा-मृत्युसे रहित करके उनको अपना पार्षद स्वीकार किया। (स्कन्द पुराण)

****

द्वादश ज्योर्तिलिग

प्रथम — सोमनाथ

प्रजापति दक्षने अश्विनी आदि अपनी २७ कन्याओंका विवाह चन्द्रमासे किया था। ये नक्षत्रोंकी अधिष्ठात्री देवता हैं। इन्हींके नामपर नक्षत्रोंके नाम हैं, लेकिन चन्द्रमाका इनमें-से रोहिणीपर विशेष अनुराग था। फलत: उनकी शेष पत्नियाँ दु:खी होकर पिताके पास गयीं। दक्षने आकर चन्द्रमाको समझाया— 'सबके साथ समान व्यवहार करो, पत्नियोंमें वैमनस्य उचित नहीं है।'

दक्ष चला गया, किन्तु चन्द्रमाके व्यवहारमें अन्तर नहीं आया। अन्तर आया भी तो यह कि वह अन्य पत्नियोंसे रुष्ट होकर उनके प्रति उदासीन हो गया। उन सबने फिर जाकर पितासे कहा। दक्षने आकर चन्द्रमाको फिर समझाया, किन्तु जब इसका भी प्रभाव चन्द्रमापर नहीं पड़ा, दक्षने शाप दे दिया— 'तुम क्षयको प्राप्त हो।'

चन्द्रमाकी किरणोंसे ही देवता और पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं। शशिके क्षय होनेसे सब देवता-पितरोंमें हाहाकार मचा। चन्द्रमाका अमृत ही सबका पोषक है। सबने ब्रह्माजीकी शरण ली, क्योंकि सब जानते थे— दक्ष अत्यन्त क्रोधी है, वह किसीके अनुनयसे द्रवित नहीं होगा।

ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा— 'चन्द्रमाको प्रभासमें जा करके पावन तीर्थमें पृथ्वीपर शिवकी आराधना करनी चाहिए। आरोग्य आशुतोषका प्रसाद होता है असाध्य रोग उन मृत्युञ्जयकी कृपासे ही दूर होते हैं।'

देवताओंकी प्रार्थनापर ब्रह्माजीने चन्द्रमाके द्वारा प्रभासमें शिवलिंगकी स्थापना करायी। मृत्युञ्जय मन्त्रका उपदेश करके ब्रह्माजी देवताओंके साथ चले गये। चन्द्रमाने छ: महीने तक उपवास करते हुए निश्चल ध्यानमें अपने मनको लगाया। मन्त्र-जप और आराधना— यही उनका जीवन बन गया। इससे प्रसन्न होकर जब भगवान शंकर प्रकट हुए, चन्द्रमाने वरदान माँगा— 'यदि आप प्रसन्न हैं तो, इस लिंगमें नित्य निवास करें और मेरे क्षयको दूर कर दें।'

दक्षका शाप उचित था। तुमने दण्डके योग्य कार्य किया था, इसलिए वह शाप सम्पूर्ण नष्ट नहीं होगा। एक पक्षमें तुम्हारी कला क्रमशः बढ़ेगी और पूर्ण होनेके पश्चात् दूसरे पक्षमें तुम क्रमशः क्षीण होते रहोगे।'

चन्द्रमाकी वृद्धि-ह्रासका क्रम उसी समयसे चलने लगा। प्रभासमें स्थापित कुक्कुटाण्ड उज्वल और आकारमें उतना ही बड़ा वह दिव्य सोमनाथलिंग मानवके लिए अस्पृश्य है। वहाँ भविष्यमें जो कुछ होगा, इसको जानने वाले ब्रह्माजीने उस लिंगको बहुत विस्तीर्ण शिलासे आच्छादित कर दिया। उस भूमिको वरदान दिया— 'इस शिलाके ऊपर सोमेश्वरलिंग जहाँ है, वहाँ जो भी शिवलिंग स्थापित होगा, उसकी महिमा और प्रभाव सोमनाथलिंगके समान ही रहेगी।' हम जानते हैं, इस प्रकार वहाँ स्थापित सोमनाथलिंग कई बार ध्वस्त हुआ और पुनः-पुनः स्थापित हुआ है।

(स्कन्द पुराण)

द्वितीय— मल्लिकार्जुन

स्वामी कार्तिकेय माता-पितासे रूठकर क्रौञ्च पर्वतपर चले गये। यह कथा पहले आ चुकी है। पार्वतीजी पुत्रके वियोगसे बहुत दुःखी हुईं। शिवने उमाको समझाया और देवर्षिको कुमारके समीप भेजा। नारदजीने कुमार कार्तिकेयसे प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने कैलास लौटना स्वीकार नहीं किया। निराश देवर्षि लौट आये।

देवी पार्वती और अधिक दुःखी हो गयीं। फलतः उनको लेकर भगवान शंकर कुमार कार्तिकेयके पास गये। माता-पिताका आगमन सुनकर उस स्थानसे कुमार और तीन योजन दूर चले गये।

उसी पर्वतपर भगवान शंकर ज्योतिर्लिंग रूपसे स्थित हुए। देवी पार्वतीका नाम वहाँ मल्लिका हुआ। तबसे उस पर्वतको श्रीशैल कहते हैं।

वहाँसे तीन योजन दूर जिस पर्वतपर कुमार कार्तिकेय निवास करते हैं, उसका नाम कुमार गिरि हो गया। अमावस्याको शिव और पूर्णिमाको पार्वतीजी पुत्रके दर्शनार्थ वहाँ जाती हैं।

तृतीय— महाकाल

अवन्तिका पुरी (उज्जैन) भगवान शंकरकी प्रिय पुरी है। वहाँ सतयुगमें वेदज्ञ, कर्मनिष्ठ, शिवभक्त एक ब्राह्मण रहते थे। वे नित्य पार्थिव पूजन करते थे। उनके चार पुत्र थे— देवप्रिय, मेधाप्रिय, सुकृत और सुव्रत। चारों ही माता-पिताके भक्त तथा शिवार्चक थे।

उसी समय रत्नमाल पर्वतपर धर्मद्रोही दूषण नामका दैत्य निवास करता था। ब्रह्माके वरदानसे दर्पित होकर उसने देवताओंको जीतकर स्वर्गसे उनको निष्काषित कर दिया। पृथ्वीपर उसके भयसे वेद-पाठ, यज्ञ और धर्माचरण लगभग बन्द हो गये।

एक बार वह अपनी सेनाके साथ तीर्थोंको नष्ट करता हुआ अवन्ती पहुँचा। अपनी सेनाके चारों सेनानायकोंको उसने आदेश दिया— 'यहाँके ब्राह्मणोंसे कह दो,यदि उनकी जीवित रहनेकी इच्छा हो तो वेदाध्ययन, यज्ञ और शिवार्चन त्याग दें, अन्यथा वे दण्डभागी होंगे।'

चारों सेनापतियोंने नगरको घेर लिया। दैत्यकी आज्ञा घोषित की, किन्तु उज्जयिनीके शिव-भक्तोंने उस आज्ञाको महत्वपूर्ण नहीं माना। नगरके दूसरे नागरिक व्याकुल होकर ब्राह्मणोंके समीप आये— 'क्या करना चाहिए ?'

ब्राह्मणोंने कहा— 'हमारे पास न दैत्यके समान बल है और न अस्त्र-शस्त्र हैं, किन्तु हम भगवान महेश्वरके आश्रित हैं। सामान्य जन भी अपने आश्रितकी रक्षा करता है, वे त्रिपुरारि तो सर्वेश्वर हैं, निश्चय ही इस दुष्टसे वे हमारी रक्षा करेंगे।'

'उज्जयिनीके ब्राह्मण पार्थिव-पूजनमें ध्यानसे तत्पर हैं, उनका वेद-पाठ और शिवार्चन चल रहा है' —यह समाचार जब दूषणको मिला, उसने ब्राह्मणोंको मार देनेकी आज्ञा दे दी। उसी समय वहाँ बड़ा भयानक शब्द हुआ। पृथ्वी फटी और उसमें विशाल गर्त हो गया। उस गर्तमें-से विराट् रूप महाकाल प्रकट हुए। उनके हुङ्कारसे ही दैत्य दूषण भस्म हो गया। जो बचे, वे दिशाओंमें भाग गये। देवताओंने प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि की, स्तुति करने लगे। ब्राह्मणोंने एकत्र होकर शिवकी स्तुति की— 'प्रभो ! आप हम सबको इस संसार-सागरसे मुक्त करें। धर्म, वेद एवं उपासनाकी रक्षार्थ अब आप यहीं विराजें।'

उसी गर्तमें लिंग रूपसे शिव स्थित हुए। वह महाकालेश्वर लिंग कहा जाता है।

बहुत पीछे वहाँ उज्जयिनीमें शिव-भक्त राजा चन्द्रसेन हुए। महेश्वर-के मुख्य गण मणिभद्रसे उनकी मैत्री थी। उस गणने प्रसन्न होकर राजाको चिन्तामणि प्रदान की। वह मणि सूर्यके समान प्रकाशमान थी। उसके

दर्शन ही नहीं, स्मरणसे भी लोगोंका कल्याण होता था। उसका स्पर्श करके समस्त धातुएँ स्वर्ण हो जाती थीं।

चन्द्रसेन उसे कण्ठमें धारण करके देवलोक चले जाते थे। पृथ्वीके दूसरे नरेश उस मणिको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगे। अनेकोंने चन्द्रसेनसे उसे मांगा, किन्तु चन्द्रसेनने स्वीकार नहीं किया। स्वार्थके ऐक्यके कारण राजाओंने अपना संगठन बनाया। सबने मिलकर उज्जयिनीको घेर लिया। यह समाचार जब राजा चन्द्रसेनको मिला, उन्होंने कहा— 'यह मणि मुझे मेरे मित्र भगवान शिवके सेवकने प्रदान की है। अपने सेवकके प्रसादकी रक्षा उन आशुतोषको करनी है तो वे स्वयं करें।'

राजाने युद्धका कोई उद्योग नहीं किया। वे निराहार रहकर एकाग्र चित्तसे महाकालेश्वर लिंगकी अखण्ड अहर्निश अर्चामें लग गये।

उज्जयिनीमें उन दिनों एक विधवा गोपी रहती थी। पाँच वर्षका उसका बालक था। वह महाकालका दर्शन करने आयी और दर्शन-पूजन करके शिवलिंगको प्रणाम करके घर लौटी। उसके बालकको भी यह पूजा बहुत प्रिय लगी। उसने सोचा कि मैं भी इसी प्रकार पूजन करूँगा। शिप्राके तटसे उसने एक सुन्दर पाषाण उठा लिया। घर जाकर जल चढ़ाकर बिल्व-पत्र, पुष्प, धूप, दीपसे उसने उसका पूजन किया। कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगा। बालक इसमें तन्मय हो गया। मध्याह्नमें माताने पुत्रको भोजन करनेके लिए बुलाया, पर वह गया नहीं। माता उसके पास पहुँची तो वह कीर्तनमें तन्मय था। फिर वह ध्यान करने बैठ गया। माताने हाथ पकड़कर खींचा। बालक उठा नहीं। इससे झल्लाकर माताने वह पाषाण उठाकर दूर फेंक दिया। पूजा नष्ट हो गयी। झल्लाकर वह चली गयी।

अबोध बालक माताके द्वारा अपनी मूर्ति फेंक दिये जानेसे बहुत व्याकुल हो गया। 'हे नाथ! हे शम्भो!' कहकर वह चिल्लाने लगा, भूमिपर गिरा और मूर्छित हो गया। उसकी मूर्छा दूर हुई तो देखता है कि सम्मुख रत्नकपाट लगा स्वर्ण द्वार है। बन्दनवारोंसे सजा है। उसमें अन्दर नीलमणिकी वेदियाँ हैं, स्वर्ण कलश हैं, मणि-स्तम्भ हैं। उस मन्दिरमें सिंहासनपर रत्न-पीठके ऊपर उसके द्वारा पूजित वही शिवलिंग प्रतिष्ठित है। बालक चकित हो गया। आनन्द मग्न हो गया। स्तुति करने लगा।

उस बालकको पता नहीं था कि यह सब करते कितना समय व्यतीत हो गया। पूरा दिन व्यतीत हो गया था, सूर्यास्त हुआ, अन्धकार फैलने लगा तब वह माताके समीप गया। उसने देखा, उसकी झोंपड़ीके स्थानपर इन्द्रके समान विशाल भवन खड़ा हुआ है, जिसमें स्वर्णके स्तम्भ हैं, मणियोंकी झालरें लगी हुई हैं। भवनके भीतर प्रविष्ट हुआ तो रत्नाभरण भूषिता देववधूके समान उसकी माता सोयी हुई मिलीं। उसने माताको जगाया। माताने भी चकित होकर इधर-उधर देखा और विभोर होकरके पुत्रको गोदमें खींच लिया। दोनों साश्रु-नेत्र, गद्‌गद-कण्ठ भगवान शंकरकी स्तुति करने लगे।

सम्पूर्ण नगरमें यह समाचार तत्काल फैल गया। राजा चन्द्रसेनने भी सुना। वे वहाँ गये और उस बालकका उन्होंने सत्कार किया। वह रात्रि नागरिकोंके साथ कीर्तन करते हुए नरेशने व्यतीत की।

यह समाचार उन नरेशोंके पास भी पहुँचा जिन्होंने सेनाके साथ नगरको घेर रखा था। अविलम्ब सब एकत्र हुए उन्होंने विचार किया— 'चन्द्रसेन दृढ़ शिव-भक्त है, इस नगरपर आक्रमण करनेपर बहुत बड़ा भय उपस्थित हो सकता है। जहाँका सामान्य गोप बालक इतना प्रभाव रखता है, वहाँके नरेशका प्रभाव कैसा होगा ? उनका विरोध करके तो हम सब विनष्ट हो जायँगे।'

सबने युद्धकी योजना त्याग दी। अपने सैनिकोंको नगरका घेरा उठाकर शिविरमें जानेकी आज्ञा दे दी। चन्द्रसेनके पास सन्देश भेजा—'हम सब आपके मित्र हैं। यहाँ महाकालका पूजन करने आये हैं। हमें महाकाल-की अर्चाका अवसर दें। नगरमें प्रवेश करने दें।'

चन्द्रसेनने यह प्रार्थना स्वीकार करली। नरेशगण जब नगरमें आये, चन्द्रसेनने उनका स्वागत किया। सबने राजाका पूजन किया। महाकालका पूजन किया। उस बालकके गृहमें गये और वहाँ भी शिवालयमें शिवलिंग-की पूजा की।

सबके सम्मुख ही वहाँ हनुमानजी प्रकट हुए। उन्होंने उस गोप-कुमारका आलिंगन किया। सबसे बोले— 'इस बालकको देखो। यह शिव-भक्तिकी कृपासे एक ही दिनमें सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न हो गया है। अन्तमें इसे मोक्षकी प्राप्ति होगी। द्वापरमें इसीके वंशमें महायशस्वी नन्दराय उत्पन्न

होंगे। साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र जिनके पुत्र बनेंगे। आजसे यह कुमार श्रीकर नामसे विख्यात होगा।

हनुमानजीने उस गोपकुमारको सविधि शिवार्चनका उपदेश दिया और अन्तर्धान होगये। सब नरेशोंने उस कुमार तथा राजा चन्द्रसेनका सत्कार किया। उनसे आज्ञा लेकर विदा हुए।

चतुर्थ ओंकारेश्वर

विन्ध्य पर्वतको यह अहंकार था कि मुझमें कोई न्यूनता नहीं है। देवर्षि नारद एक बार विन्ध्याचलके समीप पहुँचे और उसे देखकर उन्होंने दीर्घ श्वास किया।

विन्ध्य— 'आपने मुझमें क्या न्यूनता देखी कि निःश्वास लिया ?'

नारद 'तुममें गुण तो सब हैं, किन्तु सुमेरु तुमसे बहुत ऊँचा है और उसकी देवताओंमें गणना है। तुम तो सामान्य पर्वत मात्र हो।'

देवर्षि इतना कहकर चले गये, किन्तु विन्ध्य बड़ा दुःखी हुआ। उसने सोचा–'मेरे जीवनको धिक्कार है यदि मैं सुमेरुसे भी श्रेष्ठ नहीं बनता।'

शिवोपासनाका निश्चय करके अपने आधिदैवत रूपसे मान्धाता द्वीपमें जाकर नर्मदाके उस मध्य द्वीपमें उसने पार्थिवलिंगकी स्थापना की और आराधना करने लगा। पूरे छः महीने उसकी तन्मयामें इस प्रकार बीत गये जैसे कुछ क्षण व्यतीत हुए हों। भगवान शंकर प्रकट हुए। बोले— 'वरदान माँगो।'

विन्ध्य—'मुझे मेरा कार्य सिद्ध करनेवाली शक्ति और बुद्धि प्रदान करें।'

शिवने सोचा—'यह तो दूसरोंको कष्ट देना चाहता है' किन्तु वरदान देनेको कह चुके थे। बोले—'पर्वतराज ! तुम इच्छानुसार प्रयत्न करो।'

देवताओंने प्रार्थना की—'प्रभो ! आप यहीं स्थित हों।'

भगवान शंकरने विन्ध्यके द्वारा स्थापित लिंगमें अपना निवास बनाया और देवताओंके द्वारा प्रार्थित होनेके कारण भी एक रूपसे स्थिर हुए। इस प्रकार वहाँ पार्थिवलिंग अमलेश्वर (परमेश्वर) तथा दिव्यलिंग ओंकारेश्वर हुआ। ये दोनों अभिन्न माने गये हैं।

पंचम—केदारेश्वर—

धर्मकी पत्नी मूर्तिसे भगवान नर-नारायणने अवतार ग्रहण किया। वे दोनों बदरिकाश्रममें जाकर तपस्या करने लगे। उनकी यह तपस्या कल्पपर्यन्त चलने वाली है। दोनोंकी प्रार्थनासे भगवान शिव वहाँ पार्थिव लिंगमें विराजित थे। उनका पूजन करते हुए दीर्घ काल व्यतीत हो गया। एक बार प्रसन्न होकरके शिवने उनसे वरदान माँगनेको कहा। नर-नारायणने प्रार्थना की—'यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ अपने स्वरूपसे हमारी पूजाके लिए स्थित हों।' तबसे महेश्वर वहाँ ज्योतिर्लिंगमें स्थित हुए। उन्हें केदारनाथ कहा जाता है।

जब पाण्डव इस क्षेत्रमें पहुंचे, शिवने यहाँ महिष रूप धारण किया और लीलापूर्वक भागे। भीमसेनने दौड़कर उनकी पूँछ पकड़ ली। इससे महिषने अपना सिर नीचा कर लिया। इसी महिषके पृष्ठ रूपसे केदारेश्वर-लिंग है। महिषका शिरोभाग नेपालमें प्रकट हुआ जिसे पशुपतिनाथ कहते हैं। पाण्डवोंने यहाँ केदारेश्वरका पूजन किया। (शिवपुराण)

द्वितीय कथा—स्वायम्भू मन्वन्तरके प्रारम्भमें दैत्य हिरण्याक्ष तपस्याके कारण दुर्जय हो गया था। वह महाबलशाली, पराक्रमी, तेजस्वी दूसरे दैत्योंको साथ लेकर स्वर्गपर अधिकार करने जब चला, देवता उसका सामना नहीं कर सके। उनको उसने स्वर्गसे निकाल दिया, क्योंकि तपस्या करके ब्रह्मासे उसने वरदान माँगा ही था—केवल चतुष्पादसे मेरी मृत्यु हो।

स्वर्गसे निर्वासित इन्द्रादि देवता गंगाद्वारसे आगे केदार क्षेत्रमें तपस्या करने लगे। उनके तपसे सन्तुष्ट होकर रुद्रने महिष रूप धारण किया। वे पृथ्वी तलसे ही वहाँ प्रकट हुए। इन्द्रसे उन्होंने कहा—'सुर-श्रेष्ठ! शीघ्र कहो, मैं इस रूपसे किन-किन दैत्योंको विदीर्ण कर डालूँ?—के दारयामि।' रुद्रके यह कहनेसे उनका नाम केदारेश पड़ गया।

इन्द्रने प्रार्थना की—'हिरण्याक्ष, सुबाहु, वक्रकन्धर, विशृङ्ग तथा रोहिताक्ष—इन पाँचका आप संहार कर दें। इनके मरनेपर शेष दैत्य मृतक तुल्य हो जायँगे। उन दुर्बल, दीन दैत्योंके वधसे क्या लाभ?'

शिवने हुंकार करते हुए स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया। दैत्य और दानवोंने उस भयानक भैंसेपर डण्डों और पत्थरोंकी बौछार प्रारम्भ कर

दी, किन्तु उसे वह आघात पुष्पवर्षाके समान प्रतीत होता था। महिष रूप-धारी रुद्रने हिरण्याक्षको उसके चारों मुख्य नायकोंके साथ अपने सिर और सींगकी टक्करसे मार दिया। पाँचोंको मारकर उसी रूपमें रुद्र इन्द्रके पास लौट आये।—'तुमने जिन दैत्योंका नाम लिया था, मैंने उनको मार दिया है। त्रिलोकीका राज्य करो। कोई और वरदान मांगो।'

इन्द्रने प्रार्थना की — 'त्रिभुवनकी रक्षा तथा कल्याणके लिए इसी रूपमें आप यहाँ निवास करें।'

शिवने इसे स्वीकार किया। वहाँ एक कुण्ड प्रकट हुआ और वे स्वयं वहाँ स्थित हो गये।

इन्द्र—'मैं स्वर्गसे प्रतिदिन आकर इस कुण्डके जलसे आपकी पूजा करूँगा।' इन्द्रने वहाँ मन्दिरका निर्माण कर दिया।

प्रतिदिन देवराज वहाँ पूजा करने आते थे। एक दिन शीतकालमें आए तो वह कुण्ड और अर्चा-विग्रह दोनों हिमाच्छादित मिले। अत्यन्त दुखी होकर प्रणाम करके लौट गये। वे प्रतिदिन आते थे और प्रणाम करके लौट जाते थे। जब चार महीने बीत गये, हिम गला, मन्दिर और शिव-लिंगके दर्शन हुए, इन्द्रने देवताओंके साथ बड़ा उत्सव मनाया, बड़े समारोहसे पूजन किया। भगवान शंकरने प्रसन्न होकर इन्द्रको वरदा माँगनेको कहा।

इन्द्र—'यह स्थान वृश्चिक संक्रान्तिसे कुम्भ संक्रान्ति तक मेरे लिए भी अगम्य हो जाता है, अतः इन चार महीनोंमें आप इसी रूपमें अन्यत्र कहीं निवास करें।'

शिव—'आनर्त देशमें हाटकेश्वर क्षेत्र है। मैं वहाँ इन चार महीनोंमें निवास करूँगा।'

इन्द्रने वहाँ भी मन्दिर बना दिया। चार महीने शीतकालमें भगवानी केदार वहाँ निवास करते हैं। वर्तमान समयमें इस हाटकेश्वर स्थानक बस्तीका नाम बड़नगर है। (स्कन्द पुराण)

तृतीय कथा—उमाके साथ भगवान् महेश्वर बदरिकाश्रममें उसी गुफा मन्दिरमें निवास करते थे जहाँ कि श्रीबदरीनाथ विराजमान हैं। एक

दिन उमा-महेश्वर अलकनन्दाके किनारे निकले तो वहाँ एक बहुत छोटा शिशु भूमिमें पड़ा रुदन करता दीख पड़ा। उस इन्द्रनीलमणिके समान शिशुको देखकर भगवतीमें वात्सल्य जागृत हुआ। उन्होंने कहा—'यह शिशु अनाथ है, संरक्षकहीन है, हमें इसका पालन करना चाहिए।'

शिव–'तुम इसकी चिन्ता मत करो। यही सबका पालन करता है।'

पार्वतीने इतने छोटे शिशुको भूमिमें यों ही छोड़ देना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उसे गोदमें उठा लिया। विश्वनाथ हँसे। दोनों मन्दिरमें आ गये। रात्रिविश्रामके पश्चात् जब दोनों उठे, देखा कि वहाँ मुख्यपीठ-पर ध्यानस्थ चतुर्भुज नारायण विराजमान हैं। शिवने पार्वतीसे कहा—मेरे मना करनेपर भी तुम उस शिशुको उठा लायी। अब उसने यहाँ अधिकार कर लिया है, और अधिकार करके स्थान-त्याग इसके स्वभावमें नहीं है।'

पार्वती—'हमने स्वयं ही जब इसे अपना यह स्थान दिया है, निकाल भी कैसे सकते हैं ?'

तबसे उमा-महेश्वर वहाँसे केदारक्षेत्र चले गये और वहीं निवास करने लगे।

(उत्तराखण्ड स्थल माहात्म्य)

षष्ठ— भीमशंकर

यह ज्योतिर्लिंग दो स्थानोंपर कहा जाता है। एक पूनासे ७६ मील दूर, पूना-बम्बई सड़कके पूनासे ३८ मील पड़ने वाले स्थानसे ठीक ३८ मील दूर पर्वतमें, जहाँसे कृष्णा नदीका प्रादुर्भाव होता है। दूसरा स्थान असममें गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर है।

ननीतालके उज्जन नामक स्थानके विशाल मन्दिरके शिवलिंगको भी कुछ लोग भीमशंकर कहते हैं, किन्तु इसे बहुत महत्व प्राप्त नहीं है।

जहाँ तक कथाकी बात है, कथा एक ही है और वह गोहाटीके समीप ब्रह्मपुर पर्वतपर जो शिवलिंग है उसकी ओर संकेत करती जान पड़ती है।

डाकिन्यां भीमशंकरम्'- ज्योतिर्लिंगोंके वर्णनमें यह वाक्य आता है। यह डाकिनी पर्वत या स्थान कहाँ है, निर्णय करना कठिन है।

महाराष्ट्रमें स्थित भीमशंकरको और असममें स्थित भीमशंकरको भी डाकिनी पर्वतपर कहनेमें कठिनाई नहीं लगती।

डाकिनी पर्वतपर कर्कटी नामकी राक्षसीका निवास था। इसके पुत्र भीमने मातासे पूछा—'तुम अकेले यहाँ क्यों रहती हो? मेरे पिता कौन हैं? कहाँ रहते हैं?'

कर्कटीने बतलाया—'मेरे पिताका नाम कर्कट है और माताका नाम पुष्कसी। मेरा विवाह विराधसे हुआ था, किन्तु मेरे उस स्वामीको रामने मार दिया। स्वामीके मरनेपर मैं माता-पिताके पास रहने लगी। मेरे पिता अगस्त्यके एक शिष्यको भक्षण कर गये, तब उस ऋषिने तपोबलसे उन्हें भस्म कर दिया। उस समयसे मैं अकेली हो गयी क्योंकि मेरी माता भी पिताके साथ ही गयी थी और पिताके साथ ही वह भी भस्म हो गयी थी। मैं उन दिनों माता-पिताके वियोगसे दुःखी सह्य पर्वतपर चली गयी थी जब रावणका भाई कुम्भकर्ण उधरसे घूमता हुआ निकला। मुझे अकेली पाकर उसने मेरे साथ बलात्कार किया और लंका चला गया। मेरे गर्भसे इस प्रकार तुम कुम्भकर्णके औरस पुत्र हो। तुम्हारे इस पिताको भी रामने लंकापर अपने आक्रमणके समय मार दिया।'

माताकी बात सुनकर भीम बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने निश्चय किया—'मैं हरिसे बदला लूँगा। उसने मेरे पिताको और विराधको भी मारा है।'

भीम तपस्या करने लगा। भुजा उठाये एक पैरपर खड़े होकर सूर्यमें दृष्टि लगाये सहस्र वर्ष तक कठोर तप करता रहा। उसकी तपस्यासे देवता व्याकुल हो उठे। ब्रह्माजी उसके पास वरदान देने पधारे। उसने मांगा—'मुझे असीम बल दो।'

ब्रह्मा वरदान देकर अपने लोक चले गये। इस बलसे दर्पित राक्षस भीम इन्द्रादि देवताओंको पराजित करके स्वर्गमें रहने लगा। पातालके भी दैत्य-दानवोंको जीतकर वह त्रिलोकेश्वर हो गया। उसने पृथ्वीपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेका निश्चय किया। कामरूप नरेशको पराजित करके, बांधकर उसने बन्दीगृहमें डाल दिया। उनका सर्वस्व छीन लिया। उन्हें बहुत प्रकारसे ताड़ित किया।

कामरूप देशके वे नरेश शिव-भक्त थे। कारागारमें भी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करते थे। पंचाक्षर मन्त्रका जप करते थे। उनकी पत्नी भी उनके ही समीप कारागारमें थी। वे भी शिवार्चनमें लगी रहती थीं।

राक्षसने पूरी पृथ्वीको जीत लिया। ऋषि, ब्राह्मण तथा दूसरे भी तपस्वियोंको कष्ट देने लगा। यज्ञ तथा धर्मका नाश करने लगा। देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुके साथ कैलास जाकर भगवान शंकरकी स्तुतिकी। दैत्योंके त्राससे संसारको परित्राण देनेकी प्रार्थना की। शंकरजीने उन्हें आश्वासन दिया। देवताओंने कामरूपके राजाको स्वप्नमें दर्शन देकर आश्वासन दिया।

एक दिन वे परम शैव नरेश कारागारमें पार्थिवलिंगका पूजन करके उसके समीप बैठे ध्यान कर रहे थे। कारागार-रक्षकने भीमको यह समाचार दिया, क्योंकि वह उस दिन कारागार-निरीक्षणके लिए आया था। क्रुद्ध भीम तलवार लिए राजाके पास पहुँचा। उग्र स्वरमें बोला—'दुष्टात्मा ! तू यह क्या कर रहा है ?'

राजाने मन ही मन प्रार्थना की—'प्रभो ! आप सर्वसमर्थ हैं। मैं आपकी शरण हूं। इस सेवकके सम्बन्धमें जो आपकी इच्छा हो, वह पूर्ण हो।'

राक्षससे राजाने कहा—'मैं भक्तभयहारी, जनवत्सल, चराचरके स्वामी शिवकी अर्चा कर रहा हूँ।'

भीम—'मैं तेरे शिवको जानता हूँ। वह श्मशानवासी कंगाल मेरा क्या कर लेगा ? उसे तो मेरे ताऊ रावणने दास बनाकर रखा था। तू यह मूर्ति फेंक दे, नहीं तो मैं तुझे मार दूँगा।'

राजा—'मैं शिव-पूजन नहीं छोड़ूँगा। मुझे विश्वास है, मेरे स्वामी मुझ शरणागतका त्याग नहीं करेंगे।'

भीम—'तू समझता है कि वह उन्मत्त इस मूर्तिमें है ? तब हट, मैं उससे युद्ध करूँगा।'

'मैं हटूँगा नहीं।' राजाने कहा—'तू बलवान है, हटादे।'

राक्षसने हाथकी तलवार उस पार्थिवलिंगपर चलानेके लिए उठायी, उसी समय शिवलिंगसे भगवान महेश्वर प्रकट हुए। उनके हाथमें चढ़ा हुआ धनुष पिनाक था। राक्षसकी तलवार उन्होंने काट दी। राक्षसने जो भी अस्त्र चलाये, उसे शिव काटते गये। भीमके सेवक दूसरे राक्षस भी अस्त्र-शस्त्र लेकर आये। शिवगणोंने उन्हें रोकना चाहा, किन्तु इसी समय प्रलयंकरने हुंकार की। उनके हुँकारसे जो अग्नि प्रकट हुई, उसमें भीम अपने अनुचरोंके साथ भस्म हो गया। वहाँ राक्षसोंके शरीर-भस्मसे अनेक औषधियाँ प्रकट हुईं।

देवताओंके स्तवन-प्रार्थनासे सन्तुष्ट शिवसे राजाने वहाँ स्थित होनेकी प्रार्थना की। अतः शिव वहाँ ज्योतिर्लिंग रूपसे स्थित हुए।

महाराष्ट्रमें जो भीमशंकर नामका ज्योतिर्लिंग है, उससे कृष्णा नदी पैदा हुई है। ज्योतिर्लिंगसे बहुत निकट १०-१५ गज दूरीपर कुण्ड है। कहा जाता है कि लिंगसे स्रवित जल इस कुण्डमें आता है और कुण्ड ही कृष्णाका उद्‌गम है।

(शिव पुराण)

सप्तम विश्वेश्वर (विश्वनाथ) :

सृष्टिके आदिमें शिव ही पुरुष रूपसे प्रकट हुए और प्रकृति स्त्री रूपसे प्रकट हुई। इनके कोई माता-पिता नहीं थे। आकाशवाणीने दोनोंको तप करनेका आदेश दिया। दोनोंने प्रार्थना की—'स्थान तो है ही नहीं, तपस्या कहाँ करें ?'

शिवने इस प्रार्थनाके फलस्वरूप पञ्चकोस विस्तृत नगर प्रकट किया। वहीं स्थित होकर उस पुरुष अर्थात् विष्णुने दीर्घकाल तक तप किया। उनके श्रमसे जलकी धारा उनके शरीरसे प्रकट हुई जिनसे समस्त शून्य व्याप्त हो गया। यह देखकर विष्णुने आश्चर्यसे अपना सिर कम्पित किया। इस कम्पनके समय उनके कानके कर्णभूषणसे एक मणि गिर पड़ी। जहाँ वह मणि गिरी, वह क्षेत्र मणिकर्णिका कहा गया। अत्र वह मणि-कर्णिका सहित पञ्चकोसका नगर विष्णुके शरीरसे उत्पन्न स्वेद जलके ऊपर बहने लगा। तब शिवने उसे अपने त्रिशूलपर धारण किया। उस जलमें विष्णुने रमा सहित शेष-शय्यापर शयन किया। उनकी नाभिसे कमलोद्भव हुआ, जिससे ब्रह्मा प्रकट हुए। ब्रह्माने तपस्या करके सृष्टि उत्पन्न की। चतुर्दश भुवनोंको बनाया।

ब्रह्माके द्वारा पृथ्वीपर सृष्टि हो जानेपर शिवने त्रिशूलसे उतारकर उस पञ्चकोश नगरको पृथ्वीपर स्थापित किया। शिवकी यह पुरी कर्मपाश-नाशिनी, मुक्तिदायिनी है। स्वयं शिव यहाँ ज्योतिर्लिंग रूपसे स्थित हुए, इसलिए वह विश्वेश्वरलिंग कहा गया। ब्रह्माका दिनान्त होनेपर भी इस पुरीका नाश नहीं होता। प्रलयके समय शिव इसे अपने त्रिशूलपर धारण करते हैं और नवीन सृष्टि होनेपर पुनः इसे पृथ्वीपर स्थापित करते हैं। इस पुरीमें मरने वाले प्राणीको शिव-सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इस

आनन्द वन अविमुक्त क्षेत्रमें स्थित शिवका ज्योतिर्लिंग विश्वनाथ कहलाता है।

अष्टम्–त्र्यम्बकेश्वर—

महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहल्याके साथ ब्रह्म पर्वतके ऊपर तपस्या कर रहे थे। दस सहस्र वर्ष तक उन्होंने तपस्या की।

एक बार उस प्रान्तमें अनावृष्टिने सौ वर्षों तक लगातार अकाल रखा। गीलेपनका कहीं नाम नहीं रह गया। एक भी हरा तृण कहीं बचा नहीं। वहाँके ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी सब अन्यत्र चले गये। गौतमने वरुणको प्रसन्न करनेके लिए छः मास तक तपस्या की। जब वरदान देनेके लिए वरुण आये, गौतमने वृष्टिकी प्रार्थना की। वरुणने कहा—'मैं देवाज्ञा तोड़कर वर्षा कैसे कर सकता हूँ ? अतः तुम कुछ और वरदान मांगो।'

गौतम—'आप जलाधिदेव हैं। मुझे जल प्रदान करें।'

वरुण—'एक गड्ढा खोदो।'

गौतमने हाथभर लम्बा-चौड़ा गड्ढा खोदा। वरुणने उसे जलपूर्ण करके कहा–'यह गर्त अक्षय जलाशय रहेगा। तुम्हारे नामसे प्रख्यात होगा। यहाँ किये हुए दान, धर्म, तप तथा श्राद्ध अक्षय होंगे।'

वरुण अपने लोक चले गये। गौतमने उस गर्तके समीप हवन तथा जीवन निर्वाहके लिए धानके पौधे रोपे। वृक्ष भी लगाये। उस कुण्डसे बराबर जल प्रवाहित होता था। इससे गौतमने जलका सहारा पाकर बहुत-से वृक्ष लगाये, जबकि सम्पूर्ण प्रदेश सूखा पड़ा था, वहाँ हरियाली हो गयी। पशु-पक्षी भी स्वतः आ गये। वह परम मनोरम तपोवन बन गया। अकालपीड़ित सहस्रों ऋषि-मुनि और ब्राह्मण वहाँ आकर बस गये।

एक बार गौतमने अपने शिष्योंको जल लानेके लिए भेजा। वे कमण्डलु लेकर उस गर्तपर गये। उसी समय वहाँ अनेक ऋषि-पत्नियाँ जल लेने आयी थीं। उन्होंने गौतमके शिष्योंको निषेध किया—'जब तक हम यहाँ जल लेती हैं, तुम दूर रहो।'

वे ब्रह्मचारी लौट आये क्योंकि वे जानते थे, जल लेनेका ऋषि-पत्नियोंका यह क्रम दिन भर समाप्त नहीं हुआ करता। उन्होंने अपनी गुरुमाता अहल्यासे निवेदन किया। अहल्या स्वयं जल लेनेके लिए गयीं।

जल तो लाकर महर्षि गौतमको उन्होंने दे दिया, किन्तु उनको भी ऋषि-पत्नियोंने डाँटा था। अपने स्वामियोंसे लौटकर ऋषि-पत्नियोंने अहल्याकी निन्दा की थी—'गौतमकी पत्नीको बहुत गर्व है, वह गर्तमें-से जल लेनेमें हमें बाधा देती है।'

अब उन ब्राह्मणोंने गौतमके तपमें विघ्नकी उपस्थितिके लिए गणेशका पूजन प्रारम्भ किया। जब गणेश प्रकट हुए, उन्होंने वरदान मांगा—'ऋषियोंसे तिरस्कृत होकर गौतम यहाँसे निकल जायँ।'

गणेशने उन ब्राह्मणोंको समझाया—'यह उचित नहीं है। बिना अपराधके क्रोध करनेसे हानि होती है। अनावृष्टिके समय गौतमने तुम सबका उपकार किया है, तुम्हें यहाँ आश्रय दिया है। अब तुम उनको दुःख देना चाहते हो, इससे तुम्हारा ही नाश होगा।'

ब्राह्मण अड़े रहे—'इस समय कहीं भी जानेकी स्थिति नहीं है। गौतमकी पत्नी हमारी पत्नियोंको जल लेनेमें बाधा देती है, इसलिए सपत्नीक गौतमको यहाँसे निकल ही जाना चाहिए।'

गणेशजीने उनको फिर समझाया, किन्तु वे जब माननेको प्रस्तुत नहीं हुए, वरदान देकर गणेश विवश हो चुके थे। खिन्न मनसे उन्होंने ब्राह्मणोंकी बात स्वीकार की।

गणनायक एक दुर्बल गौ बनकरके वहाँ आये जहाँ गौतमने धान बोए थे। संयोगवश जब यह गाय धान चरने लगी, गौतम वहाँ आ गये। धानका ही तृण लेकर गौतमने उस गायको दूर हाँका तो वह गाय तृणके स्पर्श मात्रसे पृथ्वीपर गिरी और मर गयी। वहाँ जो ब्राह्मण थे, अपनी पत्नियोंके साथ पहले वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने पुकार की—'गौतमको गोहत्या लगी।'

महर्षि गौतम बड़े दुःखी हुए। अहल्याको बुलाकर उन्होंने कहा—'मुझे गोहत्या लग गयी है, इसका उचित प्रायश्चित्त करना चाहिए।'

अब वे मुनि और उनकी पत्नियाँ अहल्या तथा गौतमको भी दुर्वचन कहने लगीं—'तुम्हारा मुख देखनेमें भी पाप है। तुम दोनों यहाँसे चले जाओ। जब तक तुम यहाँ रहोगे, देवता और पितर हमारे हव्य-कव्य स्वीकार नहीं करेंगे। यहाँसे परिवार सहित दूर जाओ।'

गौतम दुःखी होकर वहाँसे एक कोस दूर जाकर परिवार सहित रहने लगे। उनको सबसे बड़ा क्लेश यह था कि हमको देवार्चन तथा पितृ-

श्राद्ध करनेका अधिकार नहीं रहा। जब आधा माह बीत गया, मुनियोंके पास आकर दूरसे प्रणाम करके विनयपूर्वक उन्होंने प्रार्थना की—'आप सब मुझपर कृपा करें। इस पापसे मुक्त होनेका उपाय बतलावें।'

उन लोगोंने कहा— 'प्रायश्चित्तके बिना तुम कदापि शुद्ध नहीं हो सकते। अपने पापको प्रकट करते हुए तीन बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करो। इसके पश्चात् यहाँ आकर एक मास व्रत करो और इस ब्रह्म पर्वतकी सौ परिक्रमा करो, तब शुद्ध होओगे।'

गौतमने प्रार्थना की—'पृथ्वीकी तीन प्रदक्षिणा एक व्यक्ति पूरे जीवनमें भी कर सके, अशक्यप्राय है। अतः शक्य प्रायश्चित्तका निर्देश करें।'

मुनियोंने कहा—'तुम तपस्वी हो। तपस्या करके गंगाको यहाँ प्रकट करो। उनमें स्नान करके कोटि पार्थिवलिंगोंका पूजन करो। तब शुद्ध होओगे। गंगाको प्रकट करनेपर भी पहले इस पर्वतकी सौ प्रदक्षिणा करो और तब गंगास्नानसे पवित्र होकर सौ घटोंसे शिवलिंग अभिषेक करके पापसे निष्कृति पाओगे।'

महर्षि गौतमने ब्रह्मगिरिकी सौ परिक्रमा की। पार्थिवलिंग बनाकर अहल्याके साथ उसका पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर गणोंके साथ प्रकट हुए। उनके वरदान मांगनेको कहनेपर महर्षि गौतमने प्रार्थना की—'आप मुझे पापरहित कर दें।'

शिव—'तुम सर्वथा निष्पाप हो। जिन्होंने तुम्हें तिरस्कृत किया है, वे पापी हैं। कृतघ्न हैं। उनके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।'

गौतम—'देव! वे तो मेरे उपकारी हैं। यह उनका ही उपकार है कि उनकी कृपासे मुझे आपके दर्शन हुए। वे धन्य हैं।'

गौतमके इस विनयसे भगवान महेश्वर बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने पुनः उनसे वरदान मांगनेका आग्रह किया। महर्षि गौतम बोले—'प्रभो! आपकी वाणी सत्य है, किन्तु जो शब्द ब्राह्मणोंके मुखसे निकले हैं, उन्हें भी आप सत्य होने दें। आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगा प्रदान करें। इससे संसारका भी उपकार होगा।'

महर्षि गौतमने शिवके चरण पकड़ लिए। तब धूर्जटिने ब्रह्म पर्वतपर अपनी जटा फटकारी और उनको निचोड़ दिया। पहले गंगा स्त्रीके रूपमें प्रकट हुईं। महर्षि गौतमने उनकी स्तुति की और शिवने उन्हें आज्ञा दी।

गंगा—'मैं मुनिको सपरिवार पवित्र करके चली जाऊँगी।'

शिव—'देवी ! कलिके अन्त तक आप यहीं रहें।'

गंगा—'यदि आप गणों सहित मेरे तटपर यहाँ निवास करें तो मैं रहूँगी।'

शिवने इसे स्वीकार कर लिया। वहाँ गंगा जलरूपसे प्रकट हुईं। गौतमके द्वारा प्रकट होनेके कारण उन्हें गौतमी कहा गया। उनका दूसरा नाम गोदावरी हुआ। महर्षि गौतमने सपरिवार-गंगास्नान किया। देवताओंने भी वहाँ स्नान किया और गौतमको वरदान दिया—'हम सब बृहस्पतिके सिंह राशिमें रहनेपर यहाँ आवेंगे और वर्ष भर यहाँ निवास करेंगे।'

भगवान शंकर वहाँ गोदावरी उद्‌गमके समीप त्र्यम्बकेश्वर नामसे स्थित हुए। (शिवपुराण)

द्वितीय कथा—महर्षि गौतम एक बार कैलास पर्वतपर पधारे। उन्होंने मौन धारण करके कुश आसनपर बैठ कर एकाग्र चित्तसे शिवकी स्तुति की। साम्ब शिव प्रकट हुए। बोले—'मैं तुम्हारी भक्तिसे सन्तुष्ट हूँ, वरदान मांगो।'

गौतम—'समस्त लोकोंको पावन करने वाली जो जल रूपा देवी आपकी जटामें निवास करती हैं, आपको परमप्रिय हैं, इन्हें ब्रह्मगिरिपर छोड़ दीजिये। समुद्रमें मिलने तक ये सबके लिए तीर्थ रूपमें रहें। इनमें स्नान करनेसे महापाप भी नष्ट हो जायँ। इनके तटसे दस योजन दूर तककी भूमिमें भी जो पापी आ जायँ, बिना स्नान किये भी मृत्युको प्राप्त हों वे भी मुक्तिके भागी हों।'

शिव—'मैंने अपनी जटामें स्थित यह गंगा तुम्हें दी। अब यह गोदावरी और तुम्हारे नामसे गौतमी कही जायगी। पृथ्वीपर यह महातीर्थ होगी।'

ऐसा कहकर भगवान शिव जटाका वहीं त्याग करके तिरोहित हो गये। महर्षि गौतम उस जटामें स्थित गंगाको ब्रह्मगिरिपर ले आये। वहाँ महर्षियोंने, देवताओंने भी गौतमकी प्रशंसा की। उस जटाको गौतमने ब्रह्मगिरिके शिखरपर रखा और शंकरका स्मरण करके हाथ जोड़कर गंगासे प्रार्थना की—'मातः ! आप त्रिलोचन धूर्जटिकी जटामें निवास करने वाली

लोकपावनी दयामयी हैं। मेरा अपराध क्षमा करके अब अपनेको प्रवाह रूपमें प्रकट करें। इससे सब लोकोंका कल्याण होगा। भगवान शिवने इसी उद्देश्यसे आपको दिया है।'

गंगा प्रवाह रूपमें प्रकट हुई। वहाँसे समुद्रकी ओर प्रवाहित हुईं। गौतमने उस गोदावरीमें स्नान करके शिवका पूजन किया। दयामय शंकर प्रकट हुए। महर्षिने स्तुति करके उनसे वहीं निवास करनेकी प्रार्थना की। इससे शिव वहाँ त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके रूपमें स्थित हुए। वस्तुतः यह ज्योतिर्लिंग लगभग सुपारीके बराबर तीन हैं और उनसे बराबर जल स्रवित होता रहता है। कहा जाता है, यही जल गोदावरी बनता है।

(ब्रह्मपुराण)

तृतीय कथा—अतिथि वत्सल महर्षि गौतमने दण्डकारण्यमें घोर तपस्या करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट किया। जब ब्रह्माजी प्रकट हुए, उनसे वरदान मांगा—'मुझे अक्षय धान्यक्षेत्र प्रदान करें।'

ब्रह्माजीके वरदानस्वरूप शतशृङ्ग पर्वतके समीप उनका आश्रम धान्यपंक्तिसे परिपूर्ण हो गया। वे प्रतिदिन प्रातः धान्य काट लेते थे। वह दोपहर तक ही पक जाता था। उससे गौतम अतिथियोंका परम पावन सत्कार करते थे।

अचानक देशमें बारह वर्षव्यापी अनावृष्टि प्रारम्भ हुई। सर्वत्र पृथ्वी सूख गयी। वृक्ष सूख गये, तृणका नाम नहीं रहा, लेकिन गौतमके धानके खेत ब्रह्माने वरदानसे सबेरे पके धानसे लहराते रहते थे। क्षुधा-पीड़ित ऋषि-मुनि तथा दूसरे भी वनवासी वहाँ आ गये। महर्षि गौतमने आदरपूर्वक सबके लिए धानके पुआलोंसे वहाँ आवास बनवा दिया। सबको बड़ी प्रीति और उल्लाससे वे भोजन देते थे। इस प्रकार दीर्घ काल व्यतीत हो गया।

बारह वर्षके पश्चात् वर्षा हो गयी। अब मुनियोंके मनमें तीर्थ-यात्राकी इच्छा हुई। उनमें-से मारीच नामके मुनिने गौतमके पुत्र शाण्डिल्य-से कहा—'तुम्हारे पिता महान् हैं, उनकी अनुमति लिए बिना हम अपने तपोवनोंको नहीं जा पाते हैं। हमें स्वतंत्र आश्रममें तपस्या करनी चाहिए, किन्तु संकोचवश ही हम यहाँ रुके हुए हैं।'

दूसरे मुनियोंने कहा—'इनका अन्न खानेके कारण क्या हमने इन्हें अपना शरीर बेच दिया।'

ये ईर्ष्यालु ब्राह्मण गौतमको तिरस्कृत करनेके लिए प्रयत्नशील हुए। मायासे उन्होंने एक गाय निर्मित की और उसे गौतमकी कुटीमें हाँक दिया। अपनी कुटीके आँगनमें गायको धान खाते देखकर गौतमने हाथसे जल लेकर गायके ऊपर फेंका जिससे वह वहाँसे हट जाय, किन्तु जलके छींटें पड़नेसे वह गाय मरकर वहीं गिर पड़ी।

गायको इस प्रकार मरी हुई देखकर उन सब मुनियोंने अपना आसन समेटा, कमण्डलु हाथमें लिया और वहाँसे चलनेको उद्यत हो गये। यह देखकर गौतमने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—'मुझसे क्या अपराध हुआ कि आप सब एक साथ मेरा त्यागकर अकस्मात् यहाँसे जा रहे हैं ?'

उन लोगोंने कहा—'तुमने गोहत्या की है। हम तुम्हारा अन्न कैसे खा सकते हैं ? या तुम्हारे पास कैसे रह सकते हैं ?'

गौतम—'आप सब तपोधन हैं। इस गौ-वधका प्रायश्चित्त निर्दिष्ट करें।'

उन लोगोंने कहा—'यह गौ मरी नहीं है, मूर्छित है। इसके ऊपर गंगाजल डालें तो निस्संदेह उठ जायगी। प्रायश्चित्त तो मरी गायका होता है, मूर्छितका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।' यह कहकर वे लोग वहाँसे चले गये।

महर्षि गौतम हिमालयपर जाकर तपस्या करने लगे। उनके दीर्घकालीन कठोर तपसे जब रुद्र सन्तुष्ट हुए, गौतमने उनसे मांगा—'आप अपनी जटामें स्थित गंगा मुझे दें और वे मेरे साथ जायँ।'

रुद्रने अपनी जटाका एक भाग ऋषिको दे दिया। उसे लेकर वे जहाँ गाय मूर्छित थी, आये। उस जटासे प्रकट गंगाके जलने जब उस गौका स्पर्श किया, वह गाय उठी और अदृश्य हो गयी। वह जल-प्रवाह सरिता बन गया। सप्तर्षि वहाँ पधारे। उन्होंने गौतमकी प्रशंसा की—'तुमने दण्डकारण्यमें जाह्नवीको प्रकट किया। अबसे इसका नाम गोदावरी होगा और तुम्हारे नामसे यह गौतमी कही जायगी।'

गायको अदृश्य होते देखकर गौतम चकित हो गये थे—'यह क्या हुआ ? ध्यान करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके आश्रममें शरण लेने वाले ब्राह्मणोंने मायासे गायका निर्माण किया था। अतः उन्होंने उन सबको

शाप दिया—'वे सब जटा-भस्मधारी मिथ्याव्रत-परायण, वेदवाह्य वैदिक-कर्म वहिष्कृत हो जायँ।'

सप्तर्षियोंने उन्हें रोका—'तुम्हारा यह शाप सर्वकालिक न बने। सबके लिए मत दो। ये अपकारी भी तुम्हारे उपकारी ही हैं क्योंकि इन्हींके कारण गंगा यहाँ आयी हैं। इनसे तुम्हें अक्षय यश प्राप्त हो रहा है।'

गौतम—'मेरा शाप केवल कलियुगमें प्रभावकारी होगा। उस समय इनके वंशज शापमोहित हो जायँगे।'

गौतमकी प्रार्थनापर भगवान शिव वहाँ ज्योतिर्लिंग रूपसे प्रकट हुए। यही त्र्यम्बकेश्वरलिंग है।

(वाराह पुराण)

नवम—वैद्यनाथ :

वैद्यनाथं चिता भूमौ– रावणने कैलासपर भक्तिपूर्वक शिवोपासना प्रारम्भ की। जब उससे कोई परिणाम निकलता उसे दीर्घकाल तक नहीं दीखा, उसने हिमालयके दक्षिणमें गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि स्थापन किया। दीर्घकाल तक तपस्या करता रहा। अपने सिरोंको काट-काटकर हवन करता रहा। जब नौ सिरोंका हवन कर चुका, दसवाँ सिर काटने लगा तो भगवान शंकरने प्रकट होकर उसे रोक दिया।[1] अनेक वरदान दिये। दशग्रीवके सिरोंको यथावत कर दिया।

रावणने प्रार्थना की—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो लंका पधारें और वहींपर विराजें।'

कुछ खिन्न होकर भगवान शंकरने कहा—'राक्षसेश्वर! मेरा ज्योतिर्लिंग ले जाओ, किन्तु यदि बीचमें इसे भूमिपर रखोगे तो यह वहीं स्थिर हो जायगा।'

वह ज्योतिर्लिंग लेकर रावण कैलाससे चला। मार्गमें जब लघु-शंकाका वेग रोकनेमें असमर्थ हो गया, उसे भूमिपर खड़ा एक गोप दिखायी पड़ा। आकाशसे दशग्रीव सामान्य मानव वेशमें नीचे आया। उसने उस गोपसे प्रार्थना की—'मेरे पास यह देवमूर्ति है। कृपा करके जब तक मैं लघुशंका करके हाथ स्वच्छ कर लूँ, आप इसे लेकर खड़े रहें।'

गोपने इसे स्वीकार कर लिया। रावणको पता नहीं था कि उसके मूत्राशयमें वरुणने जलका संचार कर दिया है। पूरा मुहूर्त भर भी वह

---

१. यह कथा 'रावणकी शिवोपासना' शीर्षकमें इसी पुस्तकमें दी जा रही है।

उठनेमें समर्थ नहीं हो सका। उधर ज्योतिर्लिंग भारी हो रहा था। वह गोप उसे लिए रहनेमें समर्थ नहीं था। बहुत देर प्रतीक्षाको हो गए। उसने उसे वहाँ भूमिपर रखा और चला गया।

रावणने जब लघुशंका समाप्तकी, हाथ स्वच्छ करके इधर-उधर देखा। गोपका कहीं पता नहीं था। उस ज्योतिर्लिंगको प्रयत्न करके भी वह पुनः उठा नहीं सका। झल्लाकर अपने अंगूठेसे उसे दबाकर लंका चला गया।

पुराणके अनुसार यह वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग चिता भूमिमें है। चिता भूमि कौन-सी, इस सम्बन्धमें मतभेद है। मुगलसराय-कलकत्ता लाइनपर जसीडीह जंक्शनसे कुछ दूर वैद्यनाथ धाममें यह ज्योतिर्लिंग कहा जाता है। इसकी यहाँ प्रसिद्धि भी है।

वर्तमान कर्नाटक राज्यमें पुरली वैजनाथमें जो शिवलिंग है, उधरके लोग उसे ज्योतिर्लिंग मानते हैं।

कांगड़ा जिलेमें भी पठानकोट-जोगेन्द्रनगरके बीचमें वैजनाथ मन्दिर है, पर्वतोंमें उस मन्दिरको ज्योतिर्लिंग कहा जाता है।

दशम—नागेश्वर :

'नागेशं दारुका वने।'

दारुका नामकी एक राक्षसी भगवती पार्वतीसे वरदान प्राप्त करके दर्पिता हो गयी। उसके पतिका नाम था दारुक। यह राक्षस दम्पति लोकोंको उत्पीड़ित करने लगा, यज्ञ और धर्मका नाश करने लगा। इनका निवासभूत वन सोलह योजन विस्तीर्ण था। यह वन भगवती उमाने दारुकाको दिया था।

ऋषि-मुनि लोग इस राक्षस दम्पतिसे पीड़ित होकर महर्षि और्वकी शरण गये—'हम दुष्ट राक्षसोंसे संत्रस्त हैं। आप ही इनसे हमारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। हमें शरण दें।'

और्व—'यदि राक्षस भूमिपर किसीको भी मारेगा तो वह स्वयं मर जायगा।'

महर्षि और्व यह शाप देकर तपोलीन हो गये। देवताओंने दारुकपर आक्रमण कर दिया। दारुकने अपने अनुचरोंसे मन्त्रणा की—'हम प्रशप्त हैं,

युद्ध कर नहीं सकते और न करें तो देवता हमको मारेंगे। फिर हम तो प्राणि-भक्षी हैं, खायेंगे क्या ?'

दारुककी पत्नी राक्षसी दारुका बोली—'माता भगवतीने मुझे वरदान दिया है कि तू अपने स्वजनों सहित अपने वनको लेकर इच्छानुसार स्थानपर जा सकती है।'

सब राक्षस उसके वनमें आ गये। वनको लेकर राक्षसी दारुका समुद्रके मध्यमें जाकर निवास करने लगी। राक्षस सब वहाँ निर्भय हो गये। किन्तु महर्षि और्वके शाप भयसे कोई भी उनमें-से भूमिपर नहीं आता था। अवश्य ही जो लोग नौकापर अथवा जलयानोंपर समुद्रमें निकलते थे, ये राक्षस उनको बन्दी बना लेते थे, उनके यान डुबा देते थे और बन्दियोंको खा लेते थे।

एक वार बहुत-सी नौकाओंको एकत्र देखकर राक्षस उनपर टूट पड़े। बहुतोंको उन्होंने बन्दी बनाया, अपने यहाँ लाकर उन लोगोंको कारागारमें डाल दिया, इसलिए कि वे सुविधापूर्वक उनका आहार कर सकें। इन बन्दियोंमें परम शिव-भक्त सुप्रिय नामक वैश्य थे। शिवार्चन किये बिना वे आहार नहीं ग्रहण करते थे। कारागारमें भी उनकी पूजा चलती रहती थी। उन्होंने दूसरे बन्दियोंको भी इस संकटसे परित्राण पानेके लिए पार्थिव पूजन एवं पञ्चाक्षर जप करनेको कहा। सब बन्दी इस प्रकार पूजन, जप तथा ध्यानमें लग गये।

दारुकके सेवकोंने छः मास बाद जब कारागारमें प्रवेश किया, बन्दियोंको शिवार्चन करते देखा। जाकर दारुकको समाचार दिया। दारुक वहाँ आया। उसने पूछा—'तू किसका ध्यान कर रहा है ?'

सुप्रिय मौन रहे। दारुकने उनको मार देनेको राक्षसोंको आदेश दिया। जब शस्त्र उठा राक्षस समीप आये, सुप्रियने नेत्र बन्द कर लिए। वे पुकारने लगे—'शिव ! हर ! शरणागतवत्सल आशुतोष ! रक्षा करो।'

उस कारागारमें ही चार द्वार वाला उत्तम भवन प्रकट हो गया। उसमें ज्योतिर्मय सिंहासनपर विराजमान भगवान शंकर प्रकट हुए। राक्षसोंको उन्होंने मार दिया। सुप्रियको वरदान मांगनेको कहा।

सुप्रियने मांगा—'आप यहीं निवास करें।' साथमें यह भी मांगा—'यहाँ धर्मतत्पर चतुर्वर्णके लोग निवास करें।'

राक्षसके वधसे दु:खी राक्षसी दारुका देवी पार्वतीकी प्रार्थना कर रही थी। उसने कहा—'आप मेरे वंशकी रक्षा करें।'

भगवती पार्वतीने शंकरजीको राक्षसोंको नि:शेष करनेसे रोक दिया। दारुकाको उन्होंने वरदान दिया—'सृष्टिके अन्तिम समयमें भगवान शिवका यह वरदान सत्य होगा। तब तक यहाँ तामसी सृष्टिके तुम्हारे कुलोद्भव लोग रहेंगे।'

शंकरजीने कहा—'ऐसी अवस्थामें मैं भी तब तक अपने भक्तोंकी रक्षामें यहाँ रहूँगा।'

उस कल्पमें इस प्रकार नागेश्वर ज्योतिर्लिंग वहाँ स्थित हुआ।

उस कल्पके प्रलयके अन्तमें दूसरे कल्पमें राजा महासेनके पुत्र वीरसेन निषध नरेश थे। उन्होंने कठोर तपस्या की। नियम पूर्वक दीर्घ काल तक पार्थिव पूजनमें लगे रहे। भगवान महेश्वरने उनको प्रसन्न होकर धातुसंलेपनयुक्त एक काष्ठकी मछली बनाकर दी। उस मत्स्य नौकामें अपने अनुचरोंके साथ बैठकर वीरसेनने जम्बूद्वीपमें स्थित विवरमें प्रवेश किया। विवर मार्गसे वे समुद्रमें वहाँ पहुँचे जहाँ नागेश्वर ज्योतिर्लिंग था। दारुका-के वंशजात राक्षसोंका उन्होंने पाशुपतास्त्रसे विनाश कर दिया। तबसे वहाँ धर्मतत्पर चतुर्वर्णके लोग रहने लगे।

यह नागेश्वर ज्योतिर्लिंग कहाँ है, इसमें अनेक विवाद हैं। ओखा बन्दरगाहसे थोड़ी दूर द्वारिका आनेके पैदल मार्गमें एक नागेश्वर मन्दिर है। बहुतसे लोग इसे ज्योतिर्लिंग मानते हैं, किन्तु यहाँ किसी वनका कोई चिह्न नहीं मिलता। समीप चतुर्वर्णके लोग भी नहीं रहते हैं। कालान्तरमें वन एवं बस्तीका लोप हो गया हो, यह सम्भव है।

कर्नाटक राज्यमें अवढ़ा नागनाथ रेलवे स्टेशन है। स्टेशनसे थोड़ी दूर नागेश्वर ज्योतिर्लिंग है। यहाँ आसपास वन तो है, किन्तु यह स्थान समुद्रके मध्य कभी रहा हो इसकी सम्भावना कम है। इसे भी वहाँके लोग ज्योतिर्लिंग कहते हैं।

देशमें एक-दो और स्थानोंपर नागेश्वर ज्योतिर्लिंग कहा जाता है, किन्तु ऊपर शिवपुराणकी जो कथा दी गयी है उसके अनुसार यह ज्योति-र्लिंग कहीं भी ऐसे स्थानपर होना चाहिए जहाँ पहले समुद्र रहा हो या अब भी हो और वन भी होनेकी सम्भावना हो।

एकादशम्— रामेश्वर

भगवान रामने जब लंकापर आक्रमण किया, समुद्रपर उनके अनुचर नल-नीलने पर्वत सेतुका निर्माण किया। सेतु बननेके पश्चात् श्रीरामने वहाँ रामेश्वरकी स्थापना की—यह कथा रामायणमें प्रसिद्ध है।

स्कन्दपुराणमें रामेश्वर-स्थापनाकी एक दूसरी कथा है। भगवान राम जब लंका-विजय करके पुष्पकारूढ़ होकर चले, विभीषणने प्रार्थना की—'अपने द्वारा निर्मित सेतुको आप ही भग्न कर दें, क्योंकि यदि सेतु बना रहा, मनुष्य सरलतासे लंका आ सकेंगे और मेरे अनुचर जिस स्वभाव-के हैं, आप जानते ही हैं। सेतु न रहे तो राक्षसोंको पृथ्वीपर जानेसे मैं रोक सकूँगा।'

पुष्पकसे समुद्र पार करके रघुनाथजीने अपने धनुषकी नोंकसे सेतुको भग्न कर दिया। उनके संकल्पसे ही सेतु टूट गया। उसके पाषाण समुद्रमें लीन हो गये। वहीं श्रीरामने कहा—'मैंने रावणको मारकर यद्यपि राक्षस-को मारा है, किन्तु इस प्रकार ब्रह्महत्याके दोषसे मैं वंचित नहीं हूँ। रावणके कुलको राक्षस कह करके उसके ब्राह्मण होनेकी बात अस्वीकार नहीं की जा सकती। वह वेदज्ञ था, अतः मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए।'

ऋषियोंकी सम्मतिसे शिवलिंगकी स्थापना करके शिवार्चन पर्याप्त प्रायश्चित्त है, ऐसा निश्चय किया। श्रीरामने हनुमानजीको भगवान शंकरसे लिंग-विग्रह मांगकर लानेकी आज्ञा दी। हनुमानजी कैलास पहुँचे, किन्तु उन्हें वहाँ शिव-दर्शन नहीं हुआ, इसलिए तपस्या करने लगे। जब शंकरजी-ने दर्शन दिया, वहाँसे दो शिवलिंग लेकर हनुमानजी लौटे– एक श्रीरामके लिए और दूसरा अपने लिए।

समुद्रके तटपर ऋषियोंने श्रीरघुनाथजीसे कहा—'मुहूर्त व्यतीत हो रहा है, अतः लिंग स्थापना अभी होनी चाहिए।' श्रीजानकीने एक बालुका लिंगका निर्माण किया और उसीकी स्थापना करके ऋषियोंने पूजन करा दिया।

हनुमानजी जब शिवलिङ्ग लेकर लौटे, यहाँ पूजित श्रीरामके द्वारा शिवलिङ्गको देखकर उन्हें बहुत खेद हुआ। उनको खिन्न देखकर श्रीरघु-नाथजीने कहा—'मुहूर्त व्यतीत हो रहा था, इसलिए मुझे यह करना पड़ा।'

हनुमान—'मैं भगवान् शंकरसे शिवलिंग लेकर पूरे वेगसे आया हूँ। जो बिलम्ब हुआ है, वह स्वयं महेश्वरने किया है। उनके दर्शनमें ही देर हुई।'

हनुमानजीको बहुत खिन्न देखकर श्रीरामने कहा—'यदि तुम इस स्थापित लिंगको यहाँसे हटा दो तो तुम्हारे द्वारा लाये हुए लिंगकी स्थापना कर दी जायगी।'

हनुमानजीने अपने द्वारा लाया हुआ शिवलिंग अलग रख दिया। वे स्थापित शिवलिंगको पूँछमें लपेटकर उखाड़ने लगे। इस प्रयत्नमें उनके पैर पृथ्वीमें घुटनों तक धँस गये। पैरोंको निकालकर जब पूँछ लपेटकर उन्होंने फिर प्रयत्न किया, पूँछका कुछ हिस्सा टूट गया। वे दूर जाकर गिरे और चोट लगनेसे मूर्छित हो गये।

भगवती सीताने जाकर हनुमानजीके मुखपर जल छिड़का। उनको सावधान किया। श्रीरघुनाथने कहा—'हनुमान! जिस शिवलिङ्गको अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड निर्मातृ जानकीने अपने करोंसे निर्मित किया है, स्वयं मैंने जिसकी स्थापनाकी है, उसे हिलाया नहीं जा सकता, यह तुम्हें समझना चाहिए। तुम खेद मत करो। जो लिङ्ग तुम मेरे लिए लाए हो, उसे यहीं रहने दो। दूसरे कल्पमें उसकी प्रतिष्ठा होगी। जो लिङ्ग तुम अपने लिए लाए हो, उसकी स्थापना करो। उसे हनुमदीश्वर कहा जायगा। उसके दर्शन एवं पूजनके बिना रामेश्वर दर्शन-पूजनका फल पूर्ण नहीं होगा।'

श्रीहनुमानजीने एक लिङ्गकी स्थापना कर दी।

श्रीरामेश्वरधाममें भगवान रामके द्वारा पूजित-स्थापित ज्योतिर्लिंग रामेश्वर है और हनुमानजीके द्वारा स्थापित हनुमदीश्वर है। विश्वनाथ नामका एक लिंग रामेश्वरके समीप ही छोटेसे मन्दिरमें है, उसकी पूजा नहीं होती। *

द्वादशम्—घुश्मेश

स्थानीय लोग इसे धृष्णेश भी कहते हैं।

देवपर्वतके समीप भारद्वाजगोत्रीय वेदज्ञ सुधर्मा नामके ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी सुदेहा शिव-भक्ता थीं, पतिव्रता थीं। बहुत काल व्यतीत

* 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में यह चरित आया है।

होनेपर भी जब उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई, बहुत दुःखी हुई। बार-बार पतिसे प्रार्थना करने लगीं, 'आप पुत्र-प्राप्तिके लिए कोई उपाय करें।'

ब्राह्मणने पत्नीको समझाया—'पुत्रसे लाभ ही होगा—यह निश्चित तो नहीं है। उसका कुपुत्र होना भी सम्भव है। अतः इस व्यर्थ मोहको त्याग दो।'

सुदेहा एक बार किसी दूसरेके घर गयी तो स्त्रियोंने वन्ध्या कहकर उसकी निन्दा की। उन्होंने आक्षेप किया 'इसका मंगलकार्योंमें उपस्थित होना ठीक नहीं है, प्रातः इसका मुख नहीं देखना चाहिए।' दुःखी होकर वह घर लौटी। पतिसे उसने कहा। ब्राह्मणने समझाया—'लोगोंको पर-निन्दामें सुख मिलता है। दूसरोंकी बातोंका ध्यान नहीं देना चाहिए।'

पत्नी बहुत दुःखी थी और बहुत आग्रह कर रहीं थी, इसलिए ब्राह्मणने दो पुष्प हाथमें लिए। भगवान शंकरका ध्यानकरके जप करने लगे। उन पुष्पोंको अग्निके समीप रख दिया। पत्नीसे बोले—'इसमें से एक पुष्प उठा लो।'

ब्राह्मणने मनमें संकल्प किया था, अमुक पुष्प उठानेसे पत्नीको संतान होगी, किन्तु सुदेहाने वह पुष्प उठाया जिसमें ब्राह्मणने सन्तान न होनेकी कल्पनाकी थी, अतः ब्राह्मणने कहा—'आशा त्याग दो। भाग्य अनुकूल नहीं है। इसे अन्यथा नहीं किया जा सकता।'

सुदेहा अपने हठपर स्थिर रही। अन्तमें अपनी छोटी बहिनको वहाँ लाकर बोली—'आप इससे विवाह कर लें। यह पुत्रवती हो गयी तो आपका वंश चलता रहेगा।'

सुधर्माने मना किया—'ऐसा मत करो। यदि यह पुत्रवती हो गयी तो तुम्हें ही इससे ईर्ष्या हो जायगी।'

सुदेहाने पतिके पैर पकड़े—'मैं इससे ईर्ष्या नहीं करूंगी। आप अवश्य इसका पाणिग्रहण करें।'

पत्नीके आग्रहसे विवश होकर सुधर्माने अपनी पत्नी सुदेहाकी छोटी बहिन घुष्मासे विधिपूर्वक विवाह किया। सुदेहाका सचमुच छोटी बहिनमें बड़ा प्रेम था। वह उसकी सब सेवा करती थी। उसीकी प्रेरणासे घुश्माने

पुत्र-प्राप्तिके लिए प्रतिदिन सौ पार्थिवलिंग ब ाकर उनका पूजन आरम्भ किया। पूजनके पश्चात् वह उन्हें ग्रामके समीप जो सरोवर था उसमें विसर्जित कर आती थी। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हुआ। जब घुश्माके पार्थिवलिंगोंकी संख्या पचास सहस्रसे भी अधिक हो गयी, आशुतोष महेश्वरकी कृपासे वह पुत्रवती हुई। उसे सुन्दर गुणवान पुत्र प्राप्त हुआ। इससे धर्मपरायण शिव-भक्त ब्राह्मण सुधर्माको भी बहुत प्रसन्नता हुई।

छोटी बहिन घुश्माको पुत्रवती देखकर सुदेहा उससे ईर्ष्या करने लगी। घुश्माका सन्तानसुख उसके लिए असह्य हो गया। वह उसके बालकको देखकर जलने लगी। जब यह बालक बड़ा हुआ, स्थानीय ब्राह्मणोंने सुधर्मासे आग्रह किया, वह पुत्रका विवाह कर दे। सुधर्माने विधिपूर्वक एक उत्तम ब्राह्मणकी सुन्दरी कन्यासे पुत्रका विवाह सम्पन्न किया। इस अवसरपर स्वाभाविक ही सुदेहाकी छोटी बहिन घुश्माका, पुत्र-वधूका और पुत्रका बहुत सत्कार हुआ। यह देखकर सुदेहा क्रोधसे लगभग मूर्छिता हो गयी।

विवाहके अन्तमें घुश्माके कहनेसे पुत्र और पुत्र-वधूने सुदेहाको प्रणाम किया। घुश्माने कहा—'यह बहू और बेटा तुम्हारे ही हैं।'

कोई भी विनम्रता द्वेष-दग्ध-चित्तको शान्त करनेमें समर्थ नहीं होती। सुदेहापर बहिनकी विनम्रताका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने कठोर निश्चय किया—'मेरे हृदयकी जलन घुश्माके अश्रुओंसे ही शीतल होगी।'

कोई भी कैसे अनुमान लगा सकता था कि सुदेहाने कितना क्रूर निश्चय किया है। रात्रिको जब सब सो रहे थे, उसने घुश्माके निद्रित पुत्रको मार दिया। छुरीसे उसके शवको टुकड़े-टुकड़े करके वस्त्रमें बाँधकर ग्रामके समीपके उस सरोवरमें डाल आयी जिसमें घुश्मा अपने पूजित पार्थिव लिंग विसर्जित करती थी।

प्रातःकाल घुश्माने स्नान किया। वह अपने पूजनमें लग गयी। ब्राह्मण सुधर्मा भी उठकर स्नान आदिमें लग गये। सुदेहा अधिक उत्साहसे घरके कार्योंमें लग गयी। इसी समय घुश्माकी वधू उठी। पतिकी शय्या रुधिरसे लथपथ थी। थोड़े माँस-खण्ड भी वहाँ पड़े थे। वह चीत्कार करके मूर्छिता हो गयी। सुदेहा वहाँ पहले दौड़कर आयी। उसने ऊपरसे दुःख प्रकट किया। वधूको आश्वासन देने लगी।

यह रुदन-क्रन्दन सुनकर घुश्मा पार्थिव पूजनमें लगी रही। वह विचलित नहीं हुई। ब्राह्मण सुधर्माने भी जब पूजन कर लिया, पुत्रकी शय्याके समीप आए। उसे देखकर बोले –'मंगलमय महेश्वरकी जो इच्छा हो। जिन्होंने यह सन्तान दी थी, वही उसके रक्षक थे। उसकी चिन्ता भी उन्हींको होनी चाहिए। मेरी चिन्तासे भी क्या लाभ होगा ?

पूजन समाप्त करके घुश्मा प्रतिदिनके समान पूजित पार्थिवलिंगको लेकर सरोवरमें विसर्जित करने गयी। जब उनको सरोवरके जलमें विसर्जित कर लौटने लगी, तब सरोवरके तटपर बैठा उसे अपना पुत्र दिखलाई पड़ा। उसने मातासे कहा 'माँ ! तुम्हारे पुण्य तथा सदाशिवकी कृपासे मैंने पुनर्जीवन प्राप्त किया है।'

तभी वहाँ ज्योति स्वरूप शूलपाणि प्रकट हो गये। घुश्मासे उन्होंने कहा—'दुष्टा सुदेहाने इस बच्चेका वध किया है। मैं अभी उसे अपने त्रिशूलसे मार दूँगा।'

घुश्माने आराध्यके चरणोंमें प्रणाम किया। स्तुति की। वरदान माँगा—'प्रभो ! मेरी बहिन सुदेहाकी रक्षा हो। आप उसे सद्बुद्धि प्रदान करें।

शिव—'तेरी इस क्षमासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वरदान माँगो।'

घुश्मा—आप मेरे नामसे ही यहाँ निवास करें।'

उसी समयसे वह सरोवर शिवालय नामसे प्रसिद्ध हो गया। उसके तटपर ज्योतिर्लिङ्ग रूपसे सदाशिव घुश्मेश्वर कहे जाते हैं।

समाचार पाकर ब्राह्मण सुधर्मा, उनकी पत्नी सुदेहा और पुत्र-बधू भी वहाँ आ गये। सबने भगवान शिवका दर्शन किया। उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की। सुदेहा लज्जित थी, दु:खी थी। उसने पति और छोटी बहिनसे क्षमा माँगी। शिव अन्तर्धान हो चुके थे। ब्राह्मणोंके द्वारा निर्दिष्ट प्रायश्चित्त सुदेहाने किया। (शिवपुराण)

यह घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग भारतकी प्रसिद्ध गुफा एलोरासे केवल एक मील दूर स्थित है।

—×—

शरभावतार

हिरण्यकशिपुको मारनेके लिए भगवान नृसिंहका प्राकट्य हुआ। ज्वालमालावृत अत्यन्त भयंकर वह स्वरूप केवल असुरोंके लिए ही नहीं, स्वयं लक्ष्मीके लिए भी आतंकदायी था। हिरण्यकशिपुको मार करके भी भगवान नृसिंह शान्त नहीं हो रहे थे। वे गर्जना कर रहे थे। उनके रोम-रोमसे ज्वाला निकल रही थी। दिशाएँ काँप रही थीं। उनकी जटासे लगकर नक्षत्र टूट रहे थे। देवता व्याकुल हो रहे थे—'अब क्या होगा ?'

'आशुतोष ! प्रभो ! अब आप ही नृसिंहको शान्त करें, अन्यथा ये अभी प्रलय कर देंगे। 'देवताओंने, सृष्टिकर्ताने कैलास जाकर भगवान शंकरकी स्तुति की और उनसे प्रार्थना की। शिवने देवताओंको आश्वासन दिया।

भगवान शंकरने भैरवका स्मरण किया। उनको नृसिंहको शान्त करनेके लिए भेजा। वे प्रलयानिलके समान त्रिनेत्र, तीक्ष्ण दंष्ट्रा, टूटे धनुष-सी भौहों वाले नीलमेघाञ्जन कृष्ण, त्रिशिख वीरभद्र भैरव अट्टहास करते हुए उपस्थित हुए।

'अकालमें ही देवताओंके लिए भय उपस्थित हो गया है।' शिवने आदेश दिया—'तुम जाकर नृसिंहको शान्त करो। उन्हें पहले शान्तिसे समझाओ। यदि इससे भी शान्त न हों तब अपना भैरव रूप उनको दिखलाओ। उनके सूक्ष्म तेजको सूक्ष्म तेजसे तथा स्थूल तेजको स्थूल तेजसे हरण करो। तुम्हें श्रेष्ठ रूपकी प्राप्ति हो।'

भैरवने वहीं शान्त स्वरूप धारण किया। इसी स्वरूपसे वे नृसिंहके समीप पहुँचे। पहले शान्तिसे उन्होंने नृसिंहसे कहा - 'माधव ! आपने संसारके मंगलके लिए, सुरों और सत्पुरुषोंमें कल्याणके लिए बार-बार अवतार धारण किया है। आपका यह नृसिंहावतार भी इसी उद्देश्यसे हुआ है, लेकिन इस अवतारका कार्य पूर्ण हो गया। दैत्य हिरणकशिपु मारा गया। अपने परम भक्त प्रह्लादकी आपने रक्षा कर ली। अब अपने इस घोर रूपका परित्याग कीजिये।'

नृसिंहने और भी उग्र गर्जना की। दाँत कटकटाकर बोले—'मुझे उपदेश मत करो। जहाँसे आये हो, वहाँ लौट जाओ। यह मेरा परम तेज है। मेरे इस रूपकी शरण लेकर भक्त सभी भयोंसे मुक्त होंगे।'

'आपकी बात ठीक है।' भैरवने फिर शान्त स्वरमें ही कहा—'किन्तु अब इस रूपका प्रयोजन नहीं है। भगवान रुद्रने मुझे भेजा है। वे प्रलयंकर सबके स्वामी हैं। वे ही सबके शासक हैं। आपको उनकी शक्तिका भली प्रकार बोध है। उनके आदेशको मानकर आप अब शान्त हो जावें।

नृसिंह अत्यन्त उग्र हो गये। वे वीरभद्रको पकड़ने झपटे। तभी ऐसा लगा जैसे आकाश फट गया हो, धराके टुकड़े हो गये हों। इस प्रकारका भयंकर शब्द हुआ। वीरभद्र एक क्षणको अदृश्य हो गये। गगनमें सहस्र-सहस्र सूर्योंके समान भयानक तेज प्रकट हुआ। उस तेजसे दिशाएँ और नृसिंहका तेज भी म्लान हो गया। उस तेजके मध्य जटाधर, चन्द्रभाल भयंकर देह, चोंच और पंखसे युक्त तीक्ष्णदंष्ट्रा, वज्रनख, नीलकण्ठ, दीर्घभुज, चार चरण शरभ प्रकट हुआ। उस त्रिनेत्रके दृष्टिपात मात्रसे नृसिंह हततेज हो गये। उसने अपने पंख घुमाकर नृसिंहकी नाभि तथा चरणोंके नखसे विदीर्ण कर दिया। अपनी पूँछसे नृसिंहके पैरोंको और भुजाओंसे उनकी भुजाओंको बाँध कर अपनी भुजाओंसे नृसिंहके हृदयका वेधन करते हुए उनको लेकर वह आकाशमें उड़ गया। वहाँसे उसने नीचे गिरा दिया। नीचे गिरकर नृसिंह भागे और वृषभके नीचे छिप गये।

शरभने जब वृषभके नीचे छिपे नृसिंहका पीछा किया, तब देवता-मुनिगण भी शिवकी स्तुति करने लगे। नृसिंह भी रुद्रका स्तवन कर रहे थे। तभी शरभ रूपधारी वीरभद्रने नृसिंहको पकड़ा। ब्रह्मादि देवता स्तवन कर ही रहे थे, किन्तु नृसिंहको लेकर शरभ अन्तर्धान हो गया। उसने नृसिंहके उस शरीरको पर्वतपर ले जाकरके विदीर्ण कर दिया। भगवान विष्णुने अपना वह नृसिंह शरीर छोड़ दिया। वीरभद्रने नृसिंहके उस शरीरका चर्म शिवको ले जाकर समर्पित किया। भगवान शंकर तबसे उस नृसिंहके चर्मको पहनने लगे। उनके मुण्डसे उन्होंने अपनी मुण्ड-मालाका सुमेरु बनाया।

(शिवपुराण)

—: × :—

शिवके विशिष्ट अवतार

(१) वेश्यानाथ

अयोध्याके समीप प्रसिद्ध नन्दीग्राममें महानन्दा नामकी सुन्दरी वेश्या निवास करती थी। वह धनाढ्य थी, गान-विद्यामें निपुणा थी। वेश्या होनेपर भी पूर्व जन्मके संस्कारानुसार शिव-भक्ता थी। अपने व्यवसायके अतिरिक्त समयमें भस्म और रुद्राक्षका धारण करती थी, शिव नामका जप किया करती थी, उमा-महेश्वरका पूजन करती थी।

उस वेश्याने एक बन्दर और एक मुर्गा पाल रखा था। उन्हें भी रुद्राक्षोंसे सजा रखती थी। इनको नचाकर प्रसन्न होती थी। स्वयं इनके साथ शिवका नाम गाकर या यशोगान करते नृत्य करती थी।

महेश्वर लीलामय हैं। उन्हें अपने भक्तोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करनेमें आनन्द आता है। एक बार स्वयं सदाशिव वैश्यका वेश बनाकर उस वेश्याके घर पहुँचे। भस्म-त्रिपुण्ड धारी, रुद्राक्षाभरण, जटाधारी उस वैश्यको देखकर गणिकाने आदरपूर्वक उसका सत्कार किया। अतिथिके करोंमें मनोहर कङ्कण देखकर बोली—'यह रत्नजटित कङ्कण मेरे मनको लुब्ध करता है।'

वेश्याके लिए यह अर्थलोलुप व्यवहार उपयुक्त ही था। अतिथि वैश्यने कहा—'तब तुम्हीं इसे धारण करो, किन्तु इसका मूल्य क्या दोगी?'

वेश्या—'मैं तो व्यभिचारिणी वेश्या हूँ। यदि आप यह कङ्कण मुझे प्रदान करते हैं तो मैं तीन दिन-रात आपकी रहूँगी।'

वैश्यने वेश्यासे तीन बार वचन लिया, सूर्य और चन्द्रकी साक्षी दिलायी। वह रत्नजटित कङ्कण और अपना आराध्य शिवलिंग देते हुए बोले—'यह मुझे प्राणसे भी प्यारा है, इसकी रक्षा करना, यत्नसे इसे छिपाकर रखना।'

वेश्याने यह बात स्वीकार कर ली। रात्रिके प्रारम्भमें जैसे ही वे उस वेश्याके साथ शयनके लिए पहुँचे, भवनके अन्दरसे कोलाहल हो लगा—'नृत्य मण्डपमें अग्नि लगी है।'

———

वेश्याने उठकर बन्दरको बन्धन मुक्त किया। मुर्गेको दूर भगा दिया। लेकिन वैश्यका दिया हुआ वह रत्नलिंग जलकर खण्ड-खण्ड हो गया। इससे वेश्या बहुत दुःखी हुई। वैश्यने तो देह-त्यागकी ही इच्छा की। उसने कहा—'आराध्य लिंग नष्ट होनेपर मैं जीवित नहीं रहना चाहता, अपने सेवकोंसे कहकर शीघ्र चिता बनवाओ। ब्रह्माके रोकनेपर भी मैं देहधारण स्वीकार नहीं करूँगा।'

दुःखिता वेश्याने मकानसे बाहर सेवकोंको चिता बनानेका आदेश दिया। उस वैश्यने चितामें प्रवेश किया। यह देखकर वेश्याने सबसे कहा—'सूर्य-चन्द्रकी साक्षीमें इनसे कंकण लेकर तीन दिनके लिए मैं इनकी पत्नी बनी थी। इसी अवधिमें मेरे दोषसे इनको मरना पड़ रहा है, अतः मैं भी इनके साथ अग्नि-प्रवेश करूँगी।'

सेवकोंने, दूसरोंने भी वेश्याको निषेध किया—'चितारोहण सती नारीका कार्य है, तुम्हारे लिए यह आवश्यक नहीं है।'

वेश्याने इस प्रकार किसीका निषेध स्वीकार नहीं किया। उसने ब्राह्मणोंको अपनी सब सम्पत्ति दान कर दी। चिताकी तीन परिक्रमा करके शिवका स्मरण करती हुई जब अग्निमें कूदनेको उद्यत हुई, चिताग्निसे प्रकट होकर शिवने उसे रोका—'यह तो मैंने तेरी परीक्षा ली है। तेरी भक्ति और निष्ठा प्रशंसनीय है। वरदान मांग।'

वेश्याने प्रार्थनाकी—'अपने चरणकमलोंकी भक्ति मुझे प्रदान करें। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। जो मेरे भृत्य, दास, दासी और बान्धव हैं, यदि मुझपर आप प्रसन्न हैं, इन सबको जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त करें।'

वेश्याको अभीष्ट वरदान देकर महेश्वर अन्तर्धान हो गये।

(२) द्विजेश्वर

महाराज चन्द्रांगदकी कन्या कीर्तिमालिनी राजा भद्रायुकी पत्नी थी। यह अत्यन्त धर्मपरायण, शिवभक्त जोड़ा घने वनमें वसन्त-विहार कर रहा था, जब वहाँ उनकी धर्मकी परीक्षा करने ब्राह्मणके रूपमें शिव और पार्वती पहुँचे। दोनों अत्यन्त भयाकुल थे। इनके पीछे मायासे बना हुआ एक सिंह लगा हुआ था। ये रोते, चिल्लाते, दौड़ते आये थे। पुकार रहे

थे—'धर्मवित्तं नरेश ! हम दोनोंकी रक्षा करो। यह सिंह हमें भक्षण करना चाहता है।'

भद्रायुने धनुष उठाया, किन्तु जब तक वे प्रत्यश्चा चढ़ावें, सिंहने उछलकर ब्राह्मणकी स्त्रीको उठा लिया। वह 'हा शम्भो ! हे नाथ !' कहकर रोती चिल्लाती रही। राजा अपने तीक्ष्ण वाणोंसे सिंहपर प्रहार करते रहे, किन्तु उसने वाणोंकी सर्वथा उपेक्षा कर दी। स्त्रीको लेकर घने वनमें चला गया।

वृद्ध ब्राह्मण बहुत दुःखी होकर बोला—'राजन् ! तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र क्या हुए ? तुम्हारा धनुष व्यर्थ है। सुना है, तुम्हारे भीतर बारह हजार हाथियोंका बल है,किन्तु व्यर्थ है तुम्हारा यह बल। तुम्हारे खड्गसे क्या लाभ ? गुरुने तुम्हें जो शिक्षा दी वह निष्फल हो गयी। तुम तो वनके हिंसक पशुओंका आक्रमण रोकनेमें भी असमर्थ हो। दुःखी, शरणागतकी रक्षा क्षत्रियका परम धर्म है। इस धर्मकी जो रक्षा न कर सके, उसके जीवनसे क्या लाभ ? अब तक जितने धर्मात्मा राजा हुए हैं वे उन्होंने शरणागतकी रक्षाके लिए अपना धन, सर्वस्व और प्राण भी दिया है। जो दुःखीकी रक्षा न कर सके, उस धनीसे भिक्षुक होना श्रेष्ठ है, उसके जीवनसे मरण श्रेष्ठ है।'

ब्राह्मणके विलापको, उसकी निन्दाको सुनकर राजाने शोकपूर्वक सोचा—'मेरा पुरुषार्थ, मेरी कीर्ति, मेरा धर्म–सब नष्ट हो गये। मुझे पातक लगा। अब राज्य, सम्पत्ति, आयु भी नष्ट होगी। अतः मैं इस ब्राह्मणको प्राण देकर भी सन्तुष्ट करूँगा।'

ब्राह्मणके चरणोंमें पड़कर भद्रायुने प्रार्थना की—'विप्रवर ! बलसे च्युत मुझ छत्रबन्धुपर आप कृपा करें। मैं आपको वाञ्छित वस्तु प्रदान करूँगा। मेरा शरीर, राज्य, परिवार सब आपके अधीन है। आप मेरा उद्धार करें।'

ब्राह्मण—'अन्धा दर्पणका क्या करे ? मूर्खके लिए पुस्तकका क्या उपयोग ? स्त्रीहीन पुरुषको धनसे क्या लाभ ? मेरी स्त्री मर गयी। यदि देना ही हो तो अपनी स्त्री मुझे दो।'

राजा—'ब्रह्मन् ! दानी पुरुष अन्न, वस्त्र, धन, राज्य, वाहन, भूमि तथा देहका भी दान कर सकते हैं, स्त्रीका दान सुना नहीं गया। आपके लिए भी परस्त्री सेवन तो महापाप होगा।'

ब्राह्मण—'मैं अपने तपसे ब्रह्म-हत्या जैसा पाप भी नष्ट कर दूँगा। यह परस्त्री-ग्रहण तो छोटा पाप है।'

राजाने सोचा—'मैंने अग्निकी साक्षीमें पत्नीको ग्रहण किया है, किन्तु अब इसको दिये बिना मेरे धर्मकी रक्षा नहीं होती।' कुछ निश्चय करके उन्होंने अग्निकी साक्षीमें पत्नीका दान कर दिया। ब्राह्मण जब रानीको लेकर चला गया, उन्होंने स्वयं स्नान किया, दान किया। वहाँ प्रज्वलित अग्निकी परिक्रमा की। लोगोंसे कहा—'पत्नी-दान करके मैंने जो अधर्म किया है, अग्निमें अपनेको समर्पित करके उसका प्रायश्चित्त करूँगा।'

राजा भद्रायु भगवान शंकरका स्मरण करते हुए अग्निमें कूदने ही जा रहे थे कि अनन्त ज्योतिर्मय पञ्चमुख त्रिनेत्र दशभुज पिनाकी चन्द्रमौलि प्रकट हो गये। कमलतन्तु श्वेत गजचर्म ओढ़े गंगाधर त्रिशूल-खड्ग-खट्वांग-परशु, मृगचर्म, अभयमुद्रायुक्त वृषभारूढ़ नीलकण्ठपर गगनसे पुष्प वर्षा हो रही थी। देव वाद्य बजा रहे थे। आकाशमें जयध्वनि हो रही थी। राजाने उनकी स्तुति की।

उमा-महेश्वर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'तुम्हारी भक्ति तथा तुम्हारे धर्मसे मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे भावकी परीक्षाके लिए मैं स्वयं ही आया था। वरदान माँगो।'

राजाने प्रार्थना की—'मेरे स्वामी! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे, मेरे पिता वज्रबाहुको, मेरी माताको तथा मेरे मित्र पद्माकर वैश्यको और उसके पुत्र सनयको भी अपनी भक्ति प्रदान करें, अपना सान्निध्य दें।'

भगवान शंकरने जब एवमस्तु कहा, रानी कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता तथा अपने लिए वही वरदान मांगा जो उनके पतिने मांगा था। उसे भी स्वीकार करके भगवान शंकर सबको लेकर अपने लोक पधारे।

(३) यतिनाथ

अर्बुदाचलके समीप एक भील दम्पति रहता था। पतिका नाम आहुक और पत्नीका आहुका था। आहुका अत्यन्त पतिव्रता थी। एक दिन भगवान शंकर संन्यासीका रूप बनाकर इनके घर पहुँचे। उस समय आहुक वनमें दूर आहारकी खोजमें निकल गया था। उसकी पत्नी आहुकाने

संन्यासीका सत्कार किया। इसी समय आहुक भी आ गया। संन्यासीने कहा—'समीप कोई दूसरी बस्ती नहीं है। मैं वृद्ध हूँ, आज मुझे अपने यहाँ निवास दो। प्रातःकाल चला जाऊँगा।'

भीलने कहा—'मेरी झोंपड़ी तो बहुत छोटी है। आप इसमें कैसे रह सकेंगे ?'

इस उत्तरको सुनकर संन्यासी जब जाने लगा, तब भीलनीने कहा–'स्वामी ! इन महात्माको स्थान दें। अतिथिको निराश मत करें। अतिथि निराश लौटता है तो गृहस्थके धर्मका क्षय हो जाता है। आप इनके साथ कुटीमें रहें। मैं आपके बड़े वाण लेकर बाहर रहूँगी।'

भीलने सोचा—'पत्नी बाहर रहे और मैं भीतर झोंपड़ीमें रहूँ, यह उचित नहीं है। अतिथि चला जाय, यह भी अधर्म है। अतः मुझे कुटियासे बाहर रहना चाहिए,'

भीलने संन्यासीको और पत्नीको भी झोंपड़ीमें रहने दिया। स्वयं अपना धनुष-वाण लेकर बाहर सावधान खड़ा हुआ। लेकिन रात्रिमें उसकी झोंपड़ीपर हिंसक पशुओंने आक्रमण कर दिया। भेड़िये झुण्ड बनाकर रहने वाले हिंसक प्राणी हैं। उनमें दस-पाँचके मरनेसे कोई हानि नहीं होती। भीलने शक्ति भर इस दलका सामना किया, किन्तु अन्ततः भेड़ियोंने उसे खा लिया।

प्रातःकाल भीलका कंकाल देखकर संन्यासी दुःखी हुए। भीलनी बोली—'यतिनाथ ! आप क्यों दुःखी होते हैं ? मेरा पति धन्य हुआ, कृत कृत्य हुआ, उसे ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई। अतिथिकी रक्षामें जीवन देकर वह तो पुण्यात्माओंके लोकमें चला गया। अब मैं इसकी अस्थियोंको लेकर चितारोहण करूँगी। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि चिता बनानेमें आप मेरी सहायता करें।'

संन्यासीने काष्ठ-संचय एवं चिता-निर्माणमें सहायता की। भील स्त्री जब पतिका कंकाल लेकर चितामें बैठ गयी, तब वह संन्यासी चतुर्भुज, त्रिनेत्र, शूलपाणि, चन्द्रमौलिके रूपमें प्रकट हो गया। शिवने कहा—'निष्पापे ! मैं तेरी अर्चनासे सन्तुष्ट हूँ।'

भीलनी तो भगवानके यह वचनसुनकर ही आनन्दविभोर हो गयी। शिवने फिर कहा—'जन्मान्तरमें तेरा पति नैषभराज वीरसेनका पुत्र नल

होगा। तू विदर्भ-नरेश भीमकी पुत्री दमयन्ती होकर नलको प्राप्त करेगी। उसके पश्चात् तुम दोनों मेरे धामको प्राप्त करोगे।'

वरदान देकर भगवान शिव अन्तर्हित हुए।।

(४) भिक्षुवर्य

विदर्भमें परम शैव सत्यवादी धर्मात्मा राजा सत्यरथ हुए। बहुतसे प्रबल शत्रुओंने विशाल सेना सजाकर उनपर आक्रमण किया। उनके नगर-को घेर लिया। युद्ध हुआ और उसमें राजा सत्यरथ मारे गये। शाल्व शत्रुओंसे युद्धमें राजाके मारे जानेपर शेष सेना मंत्रियों सहित भाग गयी। रात्रिके समय राजा सत्यरथकी गर्भवती रानी शत्रुओंसे घिरे नगरसे निकली। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवान शिवका स्मरण करती हुई धीरे-धीरे चलती हुई पूर्व दिशाकी ओर चली। बहुत दूर जाकर एक निर्मल सरोवर प्राप्त हुआ। वहाँपर एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहींपर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कोई सहायक नहीं था। बहुत प्यास लगी थी। इसी अवस्थामें किसी प्रकार रानीने जब जलपान किया, उनके शरीरसे निकलते रक्तसे आकृष्ट होकर एक मकर वहाँ आया और उसने उनको खा लिया।

सद्यः प्रसूत शिशु क्षुधातुर रो रहा था। उस ओर एक भिक्षुकी घूमती हुई निकली। वह विधवा थी। उसके साथमें एक वर्षका उसका पुत्र गोदमें था। वहाँ निर्जनमें उस एकाकी शिशुको देखा जिसका नाल भी नहीं कटा था। वह विधवा ब्राह्मणी चकित हो गयी। वहाँ कोई था ही नहीं, जिससे कुछ पूछे। उसे शिशुपर दया बहुत आयी, किन्तु बालक किस कुलका किस जातिका है, यह न जाननेके कारण वह उसके स्पर्शमें हिचक रही थी।

भक्तवत्सल प्रभु सहसा भिक्षुकके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने उस ब्राह्मणीसे कहा—'देवि! सन्देह मत करो। डरो मत। इस बालककी पुत्रके समान रक्षा करो। इसके द्वारा शीघ्र तुम परम कल्याणको प्राप्त करोगी। यह बड़ा तेजस्वी होगा।'

ब्राह्मणी—'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी, किन्तु कृपा करके यह बतलावें यह किसका पुत्र है। आप कौन हैं, कहाँसे पधारे हैं?

'मैं कहाँ नहीं हूँ, यह बतलाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।' शिवने कहा—'अपना आदि-अन्त मैं स्वयं ही नहीं जानता। किंतु इस शिशुका परिचय तुम्हें दे सकता हूँ।'

शिशुका परिचय मिलनेपर ब्राह्मणीने पूछा—'किस कर्मसे यह इस दशाको प्राप्त हुआ ? जन्मके साथ इसे इस प्रकार मातृ-पितृहीन अनाथ क्यों होना पड़ा ?'

भिक्षुक—इसका पिता पूर्व जन्ममें पाण्ड्य देशका नरेश था। वह धर्मात्मा था। निराहार रहकर प्रदोष व्रत किया था उसने। सन्ध्याके समय शिवलिंगका पूजन कर रहा था, तभी इसके नगरमें भयानक शब्द हुआ। पूजनका परित्याग करके शत्रुके आगमनकी शंकासे वह बाहर गया। उसके मन्त्रीगण भी शस्त्र लिए हुए सामन्तों सहित वहाँ आये। राजाने अन्धकारके कारण मंत्रियोंको शत्रु समझ लिया और उनका शिरच्छेद कर दिया। इन सब कार्योंमें पूजा समाप्त करना उसे भूल ही गया। रात्रिमें भोजन करके सो गया। निरपराध स्वामिभक्त मन्त्रीको मारनेके कारण तथा शिव-पूजन अपूर्ण त्यागनेके कारण भी विदर्भमें उसका जन्म हुआ और वह शत्रुके द्वारा मारा गया।

जो पहले जन्ममें इस पाड्य नरेशका पिता था, वही इस जन्ममें पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ। इसकी माताने पूर्व जन्ममें अपनी सपत्नीको छल-पूर्वक विष देकर मार दिया था, इसलिए वह मकर होकर इस जन्ममें इसको निगल गयी। ब्राह्मणी ! तुम्हारी गोदमें जो यह तुम्हारा पुत्र है, यह भी पूर्व जन्ममें ब्राह्मण था, किन्तु दान लेकर तप या भजन करनेके स्थान-पर सांसारिक भोगोंको भोगता था, अतः इसका जन्म दरिद्राके घरमें हुआ। अब तुम इन दोनों बालकोंका पालन करो। भगवान शिवका भजन करो। इनका यज्ञोपवीत होनेपर तुम्हारा कल्याण होगा।'

ब्राह्मणी दोनों बालकोंको लेकर अपने घर गयी। एकचक्रा नगरमें उसका निवास था। दोनों बालकोंका वह पालन करने लगी। महर्षि शाण्डिल्यने इन बालकोंका उपनयन संस्कार कराया। माताके उपदेशसे दोनों बचपनसे ही शिवार्चा और पञ्चाक्षर जप करते थे। प्रदोष व्रत करने लगे।

ये दोनों बालक एक बार नदी स्नान करने गये। दोनोंको वहाँ स्वर्णमणियोंसे भरा हुआ कलश प्राप्त हुआ। इससे इनकी निर्धनता दूर हो

गयी ।' एक बार जब दोनों वनमें गये थे, एक गन्धर्व-कन्याने दोनोंमें-से राजपुत्रका वरण कर लिया। उस कन्याके पिता गन्धर्वकी सहायतासे राजकुमारने अपने पिताका राज्य प्राप्त किया। राज्य प्राप्त करके भी उसने ब्राह्मणीको अपनी माता और उसके पुत्रको अपना भाई ही माना। इस राजकुमारका नाम धर्मगुप्त था। भगवान शिवकी कृपासे इसने राज्य पाकरके भी उनकी भक्तिका त्याग नहीं किया। अन्तमें शिवका दर्शन पाकर ये सब उनके लोकको गये।

(५) किरातावतार

जब पाण्डव द्यूतमें हारकर वनवासकर रहे थे, भगवान व्यासने युधिष्ठिरके पास आकर आदेश दिया—कौरवोंके साथ तुम्हारा युद्ध निश्चित है। अतः अर्जुनको पाशुपतास्त्र प्राप्त करनेके लिए तपस्या करके महेश्वरको सन्तुष्ट करना चाहिए।

अर्जुन इस आदेशके अनुसार भाइयोंकी सहमतिसे हिमालयपर गये। गंगातटपर इन्द्रकील पर्वतपर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की। देवराज इन्द्र प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'तुम शिवको सन्तुष्ट कर लो। फिर हम तुमको स्वर्गमें ले जाकर देवताओंके सब अस्त्र-शस्त्र दे देंगे।'

अर्जुन वहींपर शिवलिंग स्थापित करके भगवान शंकरका ध्यान करते पञ्चाक्षर जप और तप करने लगे। इसी समय दुर्योधनके द्वारा प्रेषित मूक नामका दैत्य वाराह बनकर उस वनमें अर्जुनको मारने आया। वह वृक्ष उखाड़ता हुआ, घुरघुराता बड़े वेगसे अर्जुनकी ओर चला। अर्जुनने धनुषपर वाण चढ़ाया और वाराहको मार दिया।

दूसरी ओर भगवान शिव देवी पार्वती सहित किरात वेशमें वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने भी उसी समय वाराहपर वाण चलाया। अर्जुनका वाण वाराहके मुखमें लगा था और शिवका वाण उसके मलद्वारमें प्रविष्ट हो चुका था। वाराह मर गया था।

जब अर्जुन अपना वाण लेने वहाँ पहुँचे, शिवने भी अपने सेवकको वहाँ भेजा था। उस सेवकके साथ अर्जुनका विवाद होने लगा। भील वेषधारी शिवगणने कहा—'ये दोनों वाण हमारे स्वामीके हैं।'

अर्जुन—'वाण तो मैंने छोड़ा था। इसके पिच्छपर मेरा नाम अंकित है।'

गण—'तू छल तापस है। तपस्वीके पास धनुष-वाणका क्या प्रयोजन ?'

अर्जुन—'तुझे वाण चाहिए तो मैं अनेक दे सकता हूँ। तेरा स्वामी यहाँ आकर माँगता क्यों नहीं ? मुझे यह वाराह भी नहीं चाहिए। तेरा स्वामी आकर अपना वाण और वाराह ले जाय।'

कच्छ बांधे धनुष चढ़ाये पीठपर तर्कश लटकाये भीलराजके वेशमें शिव वहाँ आये। किरातिनी वेषमें पार्वती कुछ दूर खड़ी रहीं। आते ही अर्जुनसे उन्होंने विवाद प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा—'अच्छा है वाण दे दो। वाराह मैंने पहले देखा था। मैंने पहले वाण मारा है, इसलिए तुम्हें इसपर वाण चलानेका अधिकार नहीं था। अतः दोनों वाण मेरे हुए। तुम माँगो तो तुम्हें यह आखेट मिल सकता है।'

अर्जुन—'वाराह तुम ले जाओ। यह मेरे लिए अनुपयोगी है, किन्तु वाण मेरा है, मैं इसे नहीं दूँगा।'

अब दोनोंने धनुषपर वाण चढ़ा लिया। युद्ध प्रारम्भ हो गया। अर्जुनके प्रहारसे शिवके साथ आए गण भाग खड़े हुए। किन्तु आश्चर्य, अर्जुनका अक्षय त्रोण वाणसे रिक्त हो गया। अब अर्जुनने धनुषसे ही शिव-पर प्रहार किया। शिवने भी उनपर धनुषसे आघात किया। इससे अर्जुन मूर्छित होकर गिर पड़े। मूर्छामें ही अर्जुनको कर्पूरगौर चन्द्रमौलि भस्म-भूषित शिवके दर्शन हुए। उसने सचेत होते ही शंकरके चरण पकड़ लिए। किन्तु तभी उसे लगा कि यह तो किरात है। वह उनके पैर पकड़कर घुमा-कर पटकना चाहता था, तभी शिव अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। अर्जुन उनके सम्मुख दन्डवत गिर पड़े। अपनेको धिक्कारने लगे—'नाथ ! आशु-तोष ! इस अज्ञके अपराधको क्षमा करें।

सुप्रसन्न सदाशिव बोले—'शोक त्याग करो। यह तो मेरी लीला थी। मैंने तुम्हारी परीक्षा ली। अब तुम अभीष्ट माँग लो।'

अर्जुन—'यदि आप प्रसन्न हैं तो श्रीचरणोंकी भक्ति दें और पाशु-पत प्रदान करें।'

शिव—'श्रीकृष्णके सखाके लिए कहीं कुछ अलभ्य नहीं है। पाशुपत तुम्हें समयपर प्राप्त हो जायगा।'

महाभारतके युद्धमें अभिमन्युके मरनेपर जब अर्जुनने जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली, निद्रित अर्जुनको श्रीकृष्णने सूक्ष्म शरीरसे कैलाश पहुँचाया था और उस दिन भगवान शिवने पाशुपत प्रदान किया था।*

(शिवपुराण)

———

* यह कथा विस्तारसे पार्थसारथिमें दी गयी है।

भैरवको शाप

भगवान शंकरने कैलासमें भैरवको अपने द्वारपालके रूपमें नियुक्त किया था। वे शिवके दूसरे स्वरूप हैं, रुद्रको बहुत प्रिय थे। स्वामीके इस प्रेमने उन्हें कुछ धृष्ट कर दिया था। एक बार भगवती पार्वती द्वारसे बाहर निकलीं। कैलासमें शिवके अपने गणोंके अतिरिक्त उस समय कोई नहीं था। अपने गण देवी उमाके लिए अपने शिशुओंके समान ही थे। वे बाहर निकलीं तो उनके केश बिखरे केश हुए थे, वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। भैरवने जगदम्बिकाको इस रूपमें देखा तो वे एकटक उनकी ओर देखने लगे। उन्होंने भुजा बढ़ाकर देवीको बाहर जानेसे रोकनेका प्रयत्न किया।

भवानीने रोषपूर्वक भैरवकी ओर देखा—'तुम भूलते हो कि तुम मेरे पुत्र हो। सामान्य स्त्रीकी दृष्टिसे तुम मेरी ओर देखते हो, इसलिए मनुष्य लोक प्राप्त करके वहाँ मनुष्य बनो।'

महाशक्तिके इस शापके कारण वहाँ सभी गण हाहाकार करने लगे। भैरव दुःखी होकर जगदम्बाके चरणोंमें गिर पड़े। गणोंने भी प्रार्थना की—'अम्ब! आप ही हम सबपर रोष करेंगी तो हमारे लिए और शरण कहाँ होगी? आप जानती हैं, आपके स्वामीके अनुचर हम भूत, प्रेत, पिशाचोंसे त्रिभुवनमें सभी घृणा करते हैं। सब हमको दूर हटाना चाहते हैं। अब आप भी यदि शाप देंगी तो हमें आश्वासन कौन देगा?'

भगवान शंकर भी द्वारसे बाहर आ गये। उन्होंने उमाको स्नेहपूर्वक समझाया—'तुम्हें अपने इन पुत्रोंपर क्रोध नहीं करना चाहिए। ये स्वभावसे जैसे हैं, तुम जानती हो, किन्तु इनके लिए भी हमी आश्रय हैं।'

सदाशिवने भैरवको आश्वासन दिया। देवीने भी प्रसन्न होकर कह दिया—'इसको एक एक मनुष्य जन्म पृथ्वीपर व्यतीत करना पड़ेगा और वहाँ भो यह सम्मानित होकर रहेगा। इसके द्वारा संसारको सहायता प्राप्त होगी।'

देवीके इस शापसे भैरव आदिविक्रमादित्यके यहाँ महामंत्री वैताल होकर उत्पन्न हुए। उनके स्नेहके कारण भगवान शिव भी उज्जयिनीमें साक्षात् विराजमान रहे। जब तक वैताल देह त्यागकर उनके पास नहीं गया, माता पार्वती भी शारदा होकर वहाँ बनी रहीं। (शिवपुराण)

—:o:—

विष-पान

दत्येन्द्र बलिने अपनी श्रद्धा, विनम्रता, सेवाके कारण शुक्राचार्यको प्रसन्न कर लिया था। आचार्य शुक्रकी कृपासे वे देवताओंके लिए अजेय-प्राय हो गये थे। दूसरी ओर इन्द्रने महर्षि दुर्वासाको असन्तुष्ट कर दिया था। दुर्वासाके शापसे देवता श्रीहीन हो गये थे। फलतः बलिने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। देवताओंको निर्वासित होना पड़ा। सुरोंने ब्रह्माको माध्यम बनाया, नारायणकी शरण ली। भगवान विष्णुकी सलाहसे समुद्र-मन्थनका निश्चय हुआ जिससे अमृतकी उपलब्धि हो सके। अमृतोपलब्धिके लिए देवता और दैत्योंने मिलकर संसारकी समस्त औषधियाँ क्षीरसागरमें डालीं, मन्दराचलको मथानी बनाया, नागराज वासुकि मन्थन-रज्जु बने। वर्तमान श्वेतवाराह कल्पके षष्ठम मन्वन्तर—चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवान नारायणका अवतार वैराजजीके यहाँ अजित नामसे हुआ था। इन अजितने ही मन्दराचलको गरुड़पर रखकर क्षीरोदधि तक पहुँचाया। इन्हींने कच्छपावतार लिया। यही धन्वन्तरि तथा मोहिनी रूपमें प्रकट हुए थे। इन्होंने ही समुद्रमन्थन किया था। स्वयं नारायणने कच्छपावतार धारण करके मन्दराचलको अपनी पीठपर लिया। समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हो गया।

श्रीमद्भागवत ८।५।९-१०

क्षीरोदधिका मन्थन अर्थात् सत्वगुणकी विशालता, अन्तरकी देवा-सुर सभी वृत्तियोंके द्वारा अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए शुद्ध सात्विक अन्तःकरण का मन्थन। किन्तु जब भी ऐसा मन्थन होगा, नियमतः पहले प्रादुर्भाव विषका ही होगा। विनाषकी भित्तिपर ही नवनिर्माण किया जा सकता है।

प्रत्येक वस्तुमें हानि और लाभ, विष और अमृत–ये सदा संश्लिष्ट रहते हैं। स्वभावतः विष स्थूल तत्व है, तमोगुणका परिणाम है और अमृतत्व सूक्ष्म तत्व है, सत्वगुणकी पराकाष्ठाका सार है। क्षीराब्धिमें जब समस्त तत्व डाले गये, जो सबसे स्थूल सार है, सबसे पहले उसीको प्रकट होना था। विश्वकी समस्त औषधियोंका स्थूल सार, उनका एकीभूत रूप हलाहल महाविष प्रकट हुआ। वह ऊपर-नीचे चारों ओर बिखरने लगा।

उसकी ज्वालासे सम्पूर्ण लोक दग्ध होने लगे। समुद्र मन्थनसे आलोड़ित वह विष क्षीरोदधिकी उत्ताल तरंगोंपर चारों ओर फैल रहा था।

वायुपुराणके अनुसार समुद्र मन्थन करने वाले भगवान अजित श्वेत-दीपाधिपति भगवानके समान शुक्ल वर्ण चतुर्भुज थे। देवता और दैत्य बहुत पहले ही मन्थनसे श्रान्त होकर विरमित हो चुके थे। इनके थक जानेपर अकेले नारायण वासुकिका मुख और पूँछ दोनों पकड़कर मन्दराचल जैसा विशाल रूप धारण करके मन्थनमें लगे थे। हलाहल प्रकट हुआ और उसके तापसे नारायणका चन्द्रगौर शरीर श्याम हो गया। उन परमपुरुषने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। वे अविरत मन्थनमें लगे हुए थे, किन्तु देवता इसे देखते ही भाग खड़े हुए। असुर भी दूर जा चुके थे क्योंकि विषकी लपटें सबको संत्रस्त कर रही थीं। वे चारों ओर दिशाओंमें जैसे स्वतः फैल रही थीं फुफकारती भयंकर नागके समान। देवता और दैत्य सबके सब मन्दराचल, नागराज वासुकि और नारायणको वहीं छोड़कर क्षीरसागरसे दूर भाग गये थे। नागराज वासुकि अमर हैं। अमर हैं। भगवान अजितपर विषका इतना ही प्रभाव था कि वे श्याम वर्ण हो चुके थे, किन्तु सृष्टिकर्ता चिन्तित हुए—'यह विष तो त्रिलोकीको भस्म कर देगा!' देवताओंके साथ वे कैलासपर भगवान शंकरके समीप पहुँचे। उन सबने गंगाधरको पुकारा—'अशरण शरण! आशुतोष! त्रिलोकी आपकी ही प्रजा है। दुःखमें पड़े भक्तोंके एक मात्र आप ही शरण्य हो। दीनजन, असमर्थ, आपद्ग्रस्तकी आर्त पुकार आपने सदा सुनी है। क्षीरोदधिसे उद्भूत इस महाविषसे हमारी-आपकी समस्त प्रजाकी आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं।'

'देवि! तुम देख रही हो, विश्वस्रष्टा भी संत्रस्त हैं। ब्रह्मा और सुर जिसका संताप नहीं सह सकते, त्रिभुवनमें कोई भी सामान्य प्राणी उसे कैसे सह सकता है?' भगवान् शंकरने शिवाकी ओर देखकर कहा—'शक्ति और सामर्थ्यका एक ही उपयोग है–आपत्तिग्रस्त आर्त प्राणियोंको परित्राण देना। इसलिए प्रजाकी रक्षाके लिए, सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्वस्त करनेके लिए मैं इस विषका पान करूँगा।'

'आप समर्थ हैं, सर्वेश्वर हैं।' उमाने अनुमोदन किया—'सृष्टिका कोई विष, कोई संहारिका शक्ति प्रलयंकरका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। मैं आश्वस्त हूँ।'

भगवान शंकर पार्वतीके साथ अपने वृषभपर आरूढ़ हुए। क्षीरोदधिके समीप आये। वृषभको उन्होंने दूर छोड़ दिया। गिरिराज नन्दिनीसे कहा—'तुम तनिक प्रतीक्षा करो।' समुद्रके समीप आकर शंशाकशेखर शान्त बैठ गये। उनके संकल्पने ही सम्पूर्ण क्षीरसागरमें बिखरे, अपनी ज्वालासे वायुमण्डलको संतप्त करते, लहरोंपर उछलते-कूदते विषके समस्त कणोंको एकत्र कर लिया जैसे कोई निपुण दधिमन्थनकार नवनीतको समेटता है, शिवने सम्पूर्ण विषको अपनी हथेलीपर समेट लिया। जैसे सामान्य संध्याके लिए कोई ब्राह्मण आचमन कर रहा हो, इस प्रकार उन्होंने उस विषको पी लिया, किन्तु उसे कण्ठसे नीचे नहीं जाने दिया। वह विष उनके कण्ठमें स्थित होकर सदाके लिए स्थिर हो गया।

हलाहलने शिवके कण्ठको नीला कर दिया—यह बात लिखी है, कही जाती है, किन्तु जिस हलाहलने श्वेतद्वीपाधिपति नारायणका सम्पूर्ण शरीर श्याम कर दिया था, शिवके समीप आकर भी उनको किसी तरह प्रभावित नहीं कर सका था। समस्त विष समेटकर हथेलीपर लिए जानेपर भी भगवान शंकरका करपल्लव सदाके समान परमारुण बना रहा और बना है। विष मुखमें उन्होंने लिया था, किन्तु धूर्जटिके मृदुल लाल अधर अपनी अरुणिमासे तनिक भी म्लान नहीं हुए। जो विष अपने साक्षात् स्पर्शसे अधरोंको प्रभावित नहीं कर सका, जिह्वाको प्रभावित नहीं कर सका, हथेलीको प्रभावित नहीं कर सका, वही अपने प्रभावसे कण्ठको नीला कर सकता है— यह बात किसी भी प्रकार संगत नहीं है। भगवान शंकर नित्य नीलकण्ठ हैं। लीलापूर्वक उस विषका सत्कार करनेके लिए उन्होंने कण्ठकी नीलिमा अभिव्यक्त कर दी। यह उन महेश्वरकी लीला—उनकी इच्छासे ही सम्भव हुई। इसमें विषकी शक्ति, विषकी कारणता सम्भव नहीं है।

———

चन्द्रमौली

समुद्र-मन्थनका केवल श्रम असुरोंको प्राप्त हुआ। जो नारायणके श्रीचरणोंसे विमुख है, अमरत्व उसका स्वत्व हो नहीं सकता। उसे विश्वमें भोग प्राप्त हो सकता है, सत्ता-पद-प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है, किन्तु अनन्त जीवन उसका भागधेय नहीं है। सुर और असुर दोनोंने ही समुद्र-मन्थनमें समान श्रम किया था। असुरोंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृत कलश छीन लिया था, किन्तु अमरत्व बलपूर्वक नहीं प्राप्त किया जा सकता। वह परमपुरुषकी कृपासे ही उपलब्ध हो सकता है। सुरोंके सहायक, शरश्ण्य श्रीहरि थे। उन्होंने मोहिनी रूप धारण किया। अमृत सुरोंको प्राप्त हुआ, असुरोंको केवल असफलता और निराशा मिली।

दैत्य स्वर्भानु छलपूर्वक देवताओंकी पंक्तिमें बैठ गया था। इस सिंहिका-पुत्रको अमृत मिला, किन्तु तत्काल ही नारायणने इसके सिरको अपने चक्रसे काट दिया। सूर्य और चन्द्रने अपने मध्यमें बैठे देवताके वेषमें स्वर्भानुको लक्षित कर लिया था। इन दोनोंने ही नारायणको संकेतसे सूचित कर दिया था कि यह सुर नहीं है। दैत्यने इन दोनोंका संकेत देख लिया था। मस्तक कट जानेपर कबन्ध केतु बन गया। ब्रह्माने उसे अन्तरिक्षमें दूर फेंक दिया। मस्तक राहु कहलाया। वह विकृत एवं विकराल मुख चन्द्रमाको पकड़नेके लिए दौड़ा, क्योंकि अमृतका बहुत भाग सुरक्षाके लिए भी चन्द्रमाको दिया गया था, इसीलिए वह सुधाकर है। राहु जब चन्द्रमाकी ओर दौड़ा, देवता चन्द्रमाको आगे करके अमरावती पहुँचनेके लिए पूरे वेगसे दौड़े, किन्तु जब वे स्वर्ग पहुँचे, राहु उनसे आगे आकर मार्ग रोककर खड़ा हो गया। उसने चन्द्रमाको पकड़कर निगल ही लिया, किन्तु चन्द्रमा उसके गलेसे बाहर आ गया। केवल मस्तक होनेके कारण वह चन्द्रमाको अपने भीतर रख नहीं सकता था।

'मैं तुझे चबा जाऊँगा।' राहुको अपनी भूलका पता लगा। वह किसी चीजको निगलकर रख नहीं सकता, इसलिए उसे चबा लेना चाहिए था—यह बात स्मरण हुई। चन्द्रमाको उसने फिर पकड़नेका प्रयत्न किया।

'आशुतोष ! मैं आपकी शरण हूँ ।' चन्द्रमाने अत्यन्त कातर होकर पुकारा—'देवदेव महेश्वर ! उमाकान्त ! मेरी रक्षा करो । इस असुरसे मुझे बचाओ ।'

'डरो मत !' भगवान शंकर प्रकट हुए । उन्होंने चन्द्रमाको उठाकर अपने मस्तकपर जटामें रख लिया । इस प्रकार वे चन्द्रमौलि हो गये ।

'भगवन् ! आप परम ब्रह्म परमात्मा हो । आप ही हम असुरोंके परम आराध्य हो । मैं आपके चरणोंमें शतशः प्रणाम करता हूँ ।' राहुने पहुँचकर शिवके चरणोंमें अपनेको गिराया । उठकर बोला—'आप सबके पालक हो । मेरा भक्ष्य यह शशि आपके समीप है । मैं क्षुधातुर हूँ । आप इसे मुझे प्रदान करो ।'

'मैं सबका ही आश्रय हूँ । देवता और असुर मुझे दोनों प्रिय हैं, दोनों ही मेरे शिशु है ।' भगवान शंकरने सहास्य राहुकी ओर देखा—'तुम बिना आहार ही तृप्त रह सकते हो, क्योंकि तुम्हारे उदर तो है नहीं, अमृत तुम प्राप्त कर चुके हो । शशि सुधांशु हो गया है, मेरे समीप आ गया है, मैंने इसे अभय दिया है ।'

राहु भी रुद्रको प्रणाम करके उनके मस्तकमें ही स्थित हो गया । उस समय उसके भयसे काँपते हुए चन्द्रमासे जो अमृतस्राव हुआ, उन अमृत-कणोंके स्पर्शसे राहु अनेक रूप हो गया । भगवान शंकरने उन शिरोंको लेकर मुण्ड माला बना ली । इस प्रकार राहुके शिरोंकी वह मुण्डमाला कपालीके कण्ठका आभूषण है ।

मोहिनीका सम्मोह

अनेक बार ऐसी क्रियाएँ समर्थ पुरुष और भगवान् भी प्रदर्शित करते है जो उनके स्वरूपसे किसी भी तरह संगत और सम्भव नहीं है। इन क्रियाओंका उद्‌देश्य सृष्टिके प्राणियोंको—विशेषत: मनुष्योंको कुछ सिखलाना होता है क्योंकि मनुष्य कर्मयोनिका प्राणी है, उसका निर्माण ही सृष्टिकर्ताने मोक्षके अधिकारीके रूपमें किया है। इस अधिकारके लिए बहुत संयम, बहुत सावधानी आवश्यक है जबकि अनन्त पशु-पक्षी आदि योनियोंसे वह अहंकार बहुत पुष्ट संस्कार लेकर आया है। यह अहं उसे अपनी दुर्बलता, त्रुटियोंकी ओर देखने नहीं देता। जब कोई सरलतासे समझनेकी स्थितिमें न हो, उसके सम्मुख बहुत कड़ा उदाहरण उपस्थित करना पड़ता है। सबसे बड़ी दुर्बलता, सबसे बड़ी बाधा अध्यात्मके पथमें, जो मनुष्यका मुख्य पथ है, काम और क्रोध हैं। ये कितने प्रबल हैं और इनसे कितनी सावधानी अपेक्षित है, इसे अत्यन्त स्पष्ट होना चाहिए। भगवान शंकरने इसीलिए इस लीलाका प्राकट्य किया।

समुद्र-मन्थन सम्पन्न हो गया। दैत्योंने अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट भगवान धन्वन्तरिके हाथसे छीन लिया देवता हताश हो गए क्योंकि वे पहलेसे ही दैत्योंसे हारे हुए थे। कृपापूर्वक ही दैत्योंने समुद्र-मन्थनमें देवताओंसे सहयोग किया था, किन्तु देवताओंके परमाश्रय नारायण उनके साथ थे। उन्होंने सुरोंको आश्वासन दिया।

असुरोंमें स्वार्थका ही ऐक्य होता है। असुर-वृत्ति निःस्वार्थ होनी सम्भव नहीं है। अमृत-कलश प्राप्त होते ही दैत्योंमें परस्पर ही विवाद उपस्थितहो गया। कोई किसीपर विश्वास करनेको प्रस्तुत नहीं था। सब समझते थे –'जिसे पहले अमृत-पानका अवसर मिलेगा, सम्भव है, वह बहुत पी डाले और मुझे भाग ही न मिले। इस अविश्वासने उनसे संघर्षकी स्थिति उत्पन्न कर दी। जो दुर्बल थे, स्वार्थके ऐक्यने उनको संगठित कर दिया। उनके उनके स्वार्थने ही उनको यह तर्क दे दिया—'सुरोंने भी समान श्रम किया है, इसलिए उनका भी अमृतमें स्वत्व है।' इस तर्कके मूलमें न्याय, त्याग, औदार्य कुछ नहीं था। यह न्यायाभास केवल इसलिए उठाया जा रहा था

कि दुर्बलोंको यह आशा हो गयी। 'यदि सुरोंको अमृत प्राप्त होगा तो उनसे पहले हमको अवश्य प्राप्त होगा।'

भगवान नारायणने असुरोंके इस विवादका लाभ उठाया। वे भुवन-सुन्दर मोहिनी रूपमें प्रकट हुए। जिसके पुरुष रूपका सौन्दर्य ही समस्त चराचरको सम्मोहित करता है, उसके नारी रूपके सौन्दर्यकी कल्पना ही बहुत कठिन है। असुर उस सौंदर्यको देखकर ही सम्मोहित हो गये। सबका आकर्षणकेन्द्र जब एक हो गया, सहज ही सबको यही सूझ गयी, 'हमारे विवादकी निर्णायिका इसे होना चाहिए।' इसके भी मूलमें एक छिपी कामना थी—जो इसे अमृत देगा, सम्भव है वह इसका अधिक प्रिय हो।' मोहिनीसे सम्भाषण और घनिष्ठता स्थापनकी सबकी तीव्र इच्छा थी, इस-लिए भी जिनके हाथोंसे अमृत कलश था उन्होंने भी मध्यस्थ बनानेके माध्यमको मोहिनीसे निकटता बनानेका अवसर माना। असुरोंने मोहिनीकी यह बात भी स्वीकार कर ली कि वह अमृत-विभाजनमें उचित-अनुचित कुछ भी करे, कोई उसपर आपत्ति नहीं करेगा।

सुरोंको अमृत प्राप्त हो गया। असुर उससे वंचित कर दिये गये और श्रीहरि अपने नारी रूपको त्यागकर पुरुष रूपमें प्रकट हो गये। यह संवाद कैलास पहुँचा। भगवान शंकरने इसमें दो तथ्य देखे—श्रीहरिका इस स्वरूपमें दर्शन होगा, दूसरे अनन्तकाल तक मनुष्यको नारीके सम्मो-हनसे सावधान किया जा सकेगा। पार्वती और गणोंके साथ वे क्षीर सागरके तटपर पहुँचे। भगवान नारायणने उनका स्वागत किया—'आपने पधारकर मुझे कृतार्थ किया। मैं आपकी कौनसी सेवा करूँ। आप निश्चित यहाँ किसी प्रयोजनसे पधारे हैं। आज्ञा देकर मुझे अनुगृहीत करें।'

'मैंने आपके सभी अवतारोंके दर्शन किये हैं। आप मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह रूपोंमें भी परम आकर्षण, अद्भुत और अचिन्त्य हो।' शिवने सहास्य कहा—'किन्तु आपको नारी रूपमें मैंने प्रत्यक्ष नहीं किया। यह अवतार आपने इस प्रकार अकस्मात् लिया कि मुझे उसके दर्शनका अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। मैं आपके इस स्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ।'

'मैं आपके इस कुतूहलको शान्त करूँगा—नारायणने कहा और अदृश्य हो गये। बात स्पष्ट थी कि शिवको केवल श्रीहरिका मोहिनी रूप ही

नहीं देखना था, उसके सम्मोहनका भी साक्षात्कार करना था। पार्वती और गणोंके साथ खड़े वे इधर-उधर देख रहे थे कि नारायण कहाँसे किस ओरसे स्त्री वेषमें प्रकट होते हैं। इसी समय वृक्षावलीके मध्यसे एक अचिन्त्य सुन्दरी नीलोत्पलदलश्यामा स्त्री प्रकट हुई। वह एक गेंद उछाल रही थी। अपने वाम करसे अपनी कबरीमें लगी मालती मालाको संभालती थी और दाहिने करसे कन्दुकको उछालती जाती थी। विश्वमें उसके सौंदर्यकी कल्पना नहीं की जा सकती। सम्पूर्ण सौंदर्य सृष्टिमें जिस सौंदर्य-सिन्धुके एक सीकर कणसे प्रकट होता है, वह जब स्वयं साक्षात् साकार हो जाय, उसका वर्णन सम्भव नहीं होता।

भगवान शंकरको उनके गण ही नहीं, देवी पार्वती भी एकाग्र दृष्टिसे उस अद्भुत सौंदर्यमयीको देख रहीं थीं। उन्हें भी आश्चर्य था—'यह इतनी निश्चिन्त सुप्रसन्न और अपने आपमें तन्मया है जैसे उसके अतिरिक्त यहाँ कोई हो ही नहीं। इसका व्यवहार तो ऐसा है कि मानों वह सर्वथा एकान्तमें हो। भगवान वृषभध्वजकी, मेरी और गणोंकी उपस्थितिसे सर्वथा अनभिज्ञ हो—ऐसा व्यवहार कर रही है।'

मोहिनी सचमुच अपनी कन्दुक क्रीड़ामें इस प्रकार लीन थी कि उसने और कहीं किसीकी ओर नहीं देखा। वह अपने आनन्दसे ही मुस्कराती थी, खिलखिलाती थीं, कन्दुकके पीछे दौड़ती थी। शिव इस मूर्तिमती सम्मोहन रूपराशिको देखकर भूल ही गये कि समीपमें उमा और उनके गण भी हैं। वे विमुग्ध अपलक उसे देख रहे थे और वह भी सस्मित कटाक्षसे कभी-कभी उनकी ओर देख लेती थी। उसकी कबरी खुल गयी मल्लिका माला च्युत हो चुकी थी, कन्दुक-क्रीड़ामें कंचुकी गिर चुकी थी। सहसा कन्दुक दूर चला गया था, उसे हाथपर लेने वह दौड़ी तो अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र वायुके कारण शरीरसे सर्वथा ही उड़ गया। वह नग्न होकर अत्यन्त सलज्ज भावसे वृक्षोंके पीछे छिपने भागी। महेश्वरका धैर्य समाप्त हो गया। वे मोहिनीको पकड़ने दौड़े। मोहिनी भी अपने अंगोंको छिपाती, उनकी ओर मध्यमें सहास्य देखती, वृक्षोंके पीछे छिपती भाग रही थी।

मायाके तीन भेद हैं— १. विमुखजन मोहिनी, इसे ही सामान्य भाषामें माया कहा जाता है जिसने सम्पूर्ण प्राणियोंको सम्मोहित कर रखा है। २. स्वजन मोहिनी, यह भगवानकी योगमाया अपने आश्रितों, भगवद्-भक्तोंको उनकी भक्तिमें परिपाकके लिए उनके ज्ञानको आवृत करके

भगवानके वैभव, ऐश्वर्य, सामर्थ्यको विस्मृत कर देती है और इससे सर्वेश्वर सर्वसमर्थका मानवीकरण होता है। इसीको सामान्य भाषामें भक्ति कहते हैं। इसके कारण सर्वलोकेश्वर अपने पुत्र, सखा, पति, पिता, स्वामी, सेवक तक हो जाते हैं और उनमें कुछ शक्ति सामर्थ्य भी है, यह बात भक्तको भूल जाती है। तीसरी स्वमोहिनी माया है। यह भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति उनको स्वयंको ही मुग्ध करती है। यह उनकी स्वरूपभूता, उनसे सर्वथा अभिन्न है। शिव और हरि आकारकी दृष्टिसे ही दो हैं, तथ्यतः एक ही परम तत्व इन दो रूपोंमें अभिव्यक्त है, इसलिए मोहिनी तो स्वयं हर थे। दूसरे शब्दोंमें शिवकी स्वमोहिनी माया थी, इसलिए यह शिवका सम्मोह काम-प्रेरित है, ऐसी भ्रान्ति किसीको होनी नहीं चाहिए। जिन्होंने मदनको भस्म कर दिया था, लीलामें दीखता यही है कि उसी शत्रुने उन्हें पराजित कर दिया है, लेकिन मदनारिका यह सम्मोह भी ध्यानमें आ गया तो व्यक्ति मदनजयी हो जाता है।

शिवका व्याघ्राम्बर भी उनकी कटिसे छूटकर गिर चुका था। वे दिगम्बर मोहिनीके पीछे दौड़ रहे थे। उन्होंने मोहिनीको दौड़कर पीछेसे उसका केशपाश पकड़ा और उसे अपनी भुजाओंमें लेकर आलिंगन किया, लेकिन मोहिनीने अपनेको क्षणार्धमें ही उनकी भुजाओंसे छुड़ा लिया। वह फिर भागी।

मोहिनी बार-बार लज्जा, भय और हास्यमिश्रित भावसे पीछे मुड़-कर शिवकी ओर देखती जाती थी, दौड़ती जाती थी और शंकर उसके पीछे दौड़ रहे थे। इस प्रकार मोहिनीने उनको अनेक ऋषियोंके आश्रमोंमें दौड़ाया। देवता, ऋषि, मुनि सब स्तब्ध चकित रहे थे। किसीकी भी समझमें नहीं आता था कि इस समय क्या किया जाना चाहिए। सहसा उत्तेजनाके आधिक्यसे शिवका रेतस्खलन हुआ। कहा जाता है, शिवका यह वीर्य ही पारद है जो पृथ्वीमें अनेक स्थानोंपर पाया जाता है।

तेजस्खलनके पश्चात् भगवान शंकर आवेशमुक्त होकर शान्त खड़े हो गये। कोई ग्लानि नहीं, कोई पश्चात्ताप नहीं, तनिक स्मितपूर्वक उन्होंने कहा—'नारायण ! सचमुच तुम्हारी माया अचिन्त्य शक्तिसम्पन्ना दुर्लंघ्य है।'

'आपके अतिरिक्त इस प्रकार संक्षुब्ध किये जानेपर भी शान्त, तटस्थ, स्वस्थ ही सके, ऐसा दूसरा प्राणी सृष्टिमें सम्भव नहीं है।' मोहिनी अपने

नारी स्वरूपको छोड़ चुकी थी। वहाँ भगवान नारायण प्रकट हो चुके थे। वे शिवसे कह रहे थे—'प्रभो। आप ही अचिन्त्य प्रभावशाली, योगियोंके परमगुरु प्राणियोंके परमादर्श हो।'

श्रीहरिने शंकरजीको अभिवादन किया। शिवने उन्हें आलिंगन दिया। वे पार्वतीके पास लौटे। हरिसे विदा होकर कैलास लौटते हुए उन्होंने उमासे कहा—'देवि! तुमने देख लिया, हरिकी माया कितनी प्रबल है। मैं सम्पूर्ण कलाओंका आदि उद्गम भी इस प्रकार उससे सम्मोहित हो गया, सामान्य प्राणी यदि अहंकार करे और साधनाच्युत हो जाय, उसे अपराधी नहिं माना जा सकता। महेश्वरि! तुम भी अनेक साधकोंकी आराध्या हो। इस स्थितिको ध्यानमें रखकर ही तुम्हें अपने शिशुओंक क्षमा करना चाहिए, उन्हें शक्ति देनी चाहिए, उनका संरक्षण करना चाहिए।' (श्रीमद्भागवत)

शास्ता—हरिहर-पुत्र

भगवान् शंकरने मोहिनीको अपने आलिंगनमें ले लिया था। वे सम्मोहित होकर उसके पीछे दौड़े थे। वे दिगम्बर थे, मोहिनी भी नग्न थी। परमपुरुषका संकल्प व्यर्थ नहीं जाता। इस आलिंगनसे एक कुमारकी अभिव्यक्ति हुई। यह कुमार आकृतिमें भी अद्भुत था। इसका दाहिना आधा अङ्ग शिवके समान जटाजूट युक्त, चन्द्रमौलि, अर्धभाललोचन, अर्धनीलकण्ठ, त्रिशूल-डमरू कर, रुद्राक्षालंकृत, भस्मविभूषित, श्वेतवर्ण अहिभूषण था। कटि में आधे दाएँ भागमें व्याघ्राम्बर और पदका निम्न भाग अनलंकृत था। कुमारका वामांग आपादमस्तक भगवान नारायणका था। मस्तकपर आधे भागमें रत्नमुकुट, सम्पूर्ण अर्धांग नीलोज्वल, रत्नाभरणभूषित, वामस्कन्ध पीताम्बरसे अलंकृत, कण्ठमें आधे भागमें आधा कौस्तुभ, वक्षपर श्रीवत्स और कटिमें पीत कौशेय वस्त्र, उरुसे नीचे तक लटकती वनमाला, चरणोंमें मंजु नूपुर।

दक्षिण भारतमें एक अद्भुत मुद्रा इन कुमारकी प्रचलित है। कहा जाता है, कुमार वाम करकी तर्जनी अपने अधरोंपर धरे सोच रहे हैं—

'भगवान शिव मेरे पिता हैं और नारायण मेरी माता हैं। शिवपत्नी होनेके कारण पार्वती मेरी माता हुईं, किन्तु लक्ष्मीसे मेरा क्या सम्बन्ध है ? उन्हें मैं क्या कहकर सम्बोधित करूँ ?'

(कूर्मपुराण)

इस हरिहर पुत्रकी उपासना उत्तर भारतमें कहीं देखनेमें नहीं आयी। दक्षिणमें ग्राम देवताके रूपमें भी इनकी पूजा होती है और इनका हरिहर नामसे ही प्रसिद्ध क्षेत्र है।

शिवके स्खलित रेतस्को विष्णुने पत्रपुटकमें ले लिया था, वायुने इसको केसरीकी पत्नी अञ्जनामें कर्णके द्वारा उदरमें पहुँचाया और इससे हनुमानजी उत्पन्न हुए। यह सम्पूर्ण कथा विस्तारसे आञ्जनेयकी आत्मकथामें दी गयी है।

महायक्ष

समुद्र-मन्थनके पश्चात् भगवान नारायणकी कृपासे देवताओंको अमृत प्राप्त हुआ। असुरोंने अमृत-वंचित होकर देवताओंपर आक्रमण किया, किन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। युद्धमें उनको पराजय प्राप्त हुई। विजयी देवता अमरावतीमें जब निश्चिन्त हो गये, उनमें अभिमान उत्पन्न हुआ। सभी प्रधान देव यह मानने लगे—'मेरे पराक्रमसे असुरोंका पराभव हुआ है।, अग्नि, वायु, इन्द्र प्रत्येक अपनी प्रशंसा करते थे, प्रत्येक कहते थे–'मैंने दैत्योंको पराजित किया है। मैं नहीं करता तो यह सफलता प्राप्त नहीं होती।'

सुर सात्विकताके अधिदेवता हैं। उनमें अहंकार अत्यन्त गर्हणीय एवं विश्वके लिए हानिकर है, इसलिए उनका अहंकार नष्ट करनेको वहाँ आकाशमें एक दिव्य अचिन्त्य यक्ष प्रकट हुआ। ज्योतिर्मय, अतर्क्यविशाल, प्रचण्डकाय, ऐसा यक्ष कि सुरोंको भी कल्पना नहीं थी। सुर केवल उपदेवता वर्गके कुबेरके अनुचर यक्षोंको ही जानते थे; किन्तु स्पष्ट था कि यह यक्ष सुरोंसे भी अधिक कान्तिमान, प्रभावसम्पन्न है।

'यह कौन है?'—सभी देवताओंके मनमें जिज्ञासा हुई। इन्द्रने वायुसे कहा—'आप जाकर पता लगाओ।'

'तुम कौन हो?'—वायुदेवने यक्षके समीप जाकर पूछा—'तुम्हारी क्या शक्ति है? यहाँ इस प्रकार सुरोंको देखकर भी तुमने उनका सम्मान नहीं किया है, उनको अभिवादन नहीं किया है। तुम हो कौन?'

'तुम कौन हो?'—यक्षने मन्दहास्यके साथ उपेक्षापूर्वक पूछा—'तुम्हारी क्या शक्ति है? क्यों तुम समझते हो कि दूसरोंको तुम्हारा सम्मान करना चाहिए?'

'तुम मुझे नहीं जानते? त्रिभुवनमें प्राणभूत समस्त प्राणियोंके जीवन मातरिश्वासे तुम अपरिचित हो?'—बड़े आश्चर्यसे वायुने कहा—'मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको तृणके समान उड़ा दे सकता हूँ, चाहे जहाँ गिरा दे सकता हूँ। मेरी शक्ति किसीके लिए भी चिन्त्य नहीं है।'

'सच? तब तुम इस तिनकेको उड़ाकर दिखाओ।' यक्षने अट्टहास किया और उस गर्वहारीने एक साधारण तृण वायुके सामने वहीं अन्तरिक्षमें रख दिया।

वायुको इसमें बहुत अधिक अपमान प्रतीत हुआ। वे क्रुद्ध हो गये। सोचा उन्होंने यह था कि अब मैं इस यक्षको ही यहाँसे उड़ाकर समुद्रके गर्भमें गिरा दूँ, किन्तु शीघ्र ही उन्हें पता लग गया कि वे कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनेपर भी वे उस तृणको तनिक भी हिला नहीं सके। देवताओंके शरीरमें विकार नहीं आता, इसलिए वायुको स्वेद तो नहीं हुआ, पर लज्जासे वे सिर झुकाकर शक्रके समीप आये। उन्होंने केवल इतना कहा—'मैं उसे नहीं जान सका।'

'आप सबको प्रकाशित करने वाले हैं, इसलिए ज्ञानस्वरूप हैं।'—इन्द्रने अग्निसे कहा—'आप इस यक्षका पता लगावें।'

अग्नि यक्षके समीप गये तब उनके स्वरमें वह तीक्ष्णता नहीं थी जो वायुके स्वरमें थी। गलित गर्व वायुको देखकर अग्निका अभिमान तो नहीं मिटा था, किन्तु उनमें शिष्टता आ गयी थी। उन्होंने यक्षसे पूछा—'आप कौन हैं? कहाँसे पधारे हैं? आपकी शक्ति क्या है?'

'तुम कौन हो?'—यक्षने अग्निकी शिष्टतापर भी कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उपेक्षापूर्वक पूछा—'तुम्हारी शक्ति क्या है? तुम इतना भी

नहीं जानते कि दूसरेका परिचय प्राप्त करना हो तो पहले उसे अपना परिचय दिया जाना चाहिए। मुझे तो तुम्हारे परिचयकी अपेक्षा थी नहीं।'

'मैं सम्पूर्ण भुवनका प्रकाशक अनल हूँ।'—अग्निने परिचय दिया—'ब्रह्माण्डमें ऐसा कोई भी नहीं है जिसे मैं भस्म न कर सकूँ। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शुष्क गोमय पिण्डके समान मेरे प्रज्वलित होनेपर भस्म हो जा सकता है।'

'ऐसा लगता तो नहीं है। तुम इस सम्मुख पड़े तृणको भस्म कर दो।' यक्षने उसी उपेक्षासे कहा—'इससे मुझे यह जाननेका अवकाश मिलेगा कि तुम सचमुच कुछ जला भी सकते हो।'

अग्नि चौंके। उन्हें आशंका हुई 'सम्भवतः इसी प्रकारकी किसी परीक्षामें असफल होकर वायुदेव लौट गये हैं।' सावधान होकर उन्होंने उस तृणको भस्म करनेका प्रयत्न किया। उनकी सम्पूर्ण शक्ति विफल हो गयी। तृणमें कोई ज्वाला नहीं उठी। अग्नि भी मस्तक झुकाकर लौट गये। उन्हें भी देवराजसे कहना—'पड़ा—'मैं उस यक्षको जाननेमें असमर्थ रहा।'

सर्वेश्वरकी शक्तिसे ही सब समर्थ हैं। वे अपनी शक्ति न दें—अन्य किसीमें—वे वायु, अग्नि कोई हों कुछ करनेकी अपनी शक्ति तो है ही नहीं।

इन्द्र स्वयं उस यक्षके समीप चले, तब वह यक्ष अदृश्य हो गया। इसी समय आकाशमें देवी उमा हैमवती प्रकट हुईं। उन्होंने देवताओंको बतलाया—'जो समस्त व्यक्त जगत्की परम शक्ति हैं, सबके प्रेरक हैं, सबके स्वामी हैं, समस्त कर्मोंके संचालक हैं, समस्त कर्मोंके करनेकी शक्ति जिनकी कृपासे प्राप्त होती है वे महेश्वर ही सुरोंपर कृपा करके यहाँ प्रकट हुए थे। उन्हींकी शक्तिसे समुद्र-मन्थन हुआ। उन्हींकी शक्तिसे अमृत प्रकट हुआ और उन्हींकी शक्तिसे असुरोंका शमन हुआ। इसमें सुरोंको गर्व करनेका कोई कारण नहीं है।' भगवतीने सुरोंको समझाया और अन्तर्हित हो गयीं।

(शिवपुराण)

चक्रकी पुनः प्राप्ति

समुद्र-मन्थनके समय क्षीरोदधिसे बहुत-सी अप्सराएँ उत्पन्न हुई थीं। जब देवता अमृत-पान कर चुके, दैत्योंसे उनका युद्ध हुआ। पराजित दैत्य पातालमें प्रवेश करने लगे तो वे अपने साथ उन सब अप्सराओंको भी लेते गये। भगवान विष्णुने चक्र लेकर असुरोंका पीछा किया और उनके पीछे वे भी पाताल पहुँचे। दैत्योंने देखा, हरिसे यहाँ भी परित्राण नहीं पाया जा सकता। उन्होंने अप्सराओंको नारायणकी सेवामें अर्पित कर दिया। सब अप्सराओंने एक साथ भगवान विष्णुसे प्रार्थना की—'हम अमृतोदधिसे उत्पन्न होनेके कारण रमाकी अनुजा होती हैं। आपने ही क्षीरोदधिका मन्थन किया। आपके ही श्रमसे जैसे रमाका प्रादुर्भाव हुआ, हमारी भी उत्पत्ति हुई है। अतः आप हम सबको स्वीकार करें।'

विष्णुने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे उन अप्सराओंके साथ पातालमें ही निवास करने लगे। उन अप्सराओंसे उनके चार पुत्र हुए। ये अत्यन्त पराक्रमी थे। भगवान विष्णु जहाँ निवास करेंगे, असुर तथा आसुर-भावके लिए भी वहाँ कोई स्थान नहीं है। जिस हृदयमें हरि आ जाते हैं, सम्पूर्ण आसुरभावका वहाँसे लोप हो जाता है। नारायण पातालमें निवास करने लगे तो असुर वहाँसे भूलोकमें आ गये। अब वे अवसर पाकर अमरावती भी पहुँच जाते थे और वहाँ उपद्रव करते थे। देवता अमृत-पान करके भी नारायणसे रहित होकर असुरोंको पराजित करनेमें समर्थ नहीं थे। सबने ब्रह्माजीकी शरण ली। उनको साथ लेकर ब्रह्माजी कैलास पहुँचे। वहां सदाशिवसे प्रार्थना की—'भगवान विष्णु क्षीरोदधिसे उत्पन्न अप्सराओं-के साथ पातालमें निवास करने लगे हैं। आप उन्हें वहाँसे वैकुण्ठ लावें। वे श्रीहरि जब तक सुरोंके सहायक नहीं हो जाते, असुरोंको मारनेकी विधि अशक्य है।'

शिवने महावृषभका रूप धारण किया। वे गर्जना करते हुए पाताल पहुंचे। विष्णुके अप्सराओंसे उत्पन्न चारों पुत्र धनुष लेकर युद्ध करने उस महावृषभके सम्मुख आये, किन्तु वृषभने अपने खुर और सींगोंसे उनपर प्रहार करना प्रारम्भ किया। वे चारों भाई घायल होकर प्राणहीन हो

गये । इसके अनन्तर स्वयं भगवान विष्णु युद्ध करने आये । उन्होंने उस वृषभपर दिव्यास्त्रोंका प्रहार किया । अद्भुत वृषभ था । आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र आदि जितने भी दिव्यास्त्र विष्णुने प्रयोग किए, उन्हें वह निगल लेता था । ब्रह्मास्त्र तकको उसने निगल लिया और अपने सींगसे विष्णुके वक्षपर आघात किया । उस आघातसे हरि मूर्छित होकर गिर पड़े । महावृषभ उनके समीप शान्त खड़ा रहा । मूर्छा दूर हुई । उन्होंने देखा, वृषभ स्नेहपूर्वक उनकी ओर देख रहा है । सहसा उनकी दृष्टि पड़ी और चौंके—'यह त्रिनयन ?'

'प्रभो ! महेश्वर !! आप यहाँ इस रूपमें ?' अञ्जलि बाँधकर नारायणने स्तवन प्रारम्भ किया ।

'आपका यहाँ रहना उचित नहीं है ।' भगवान शंकर अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये—'यहाँसे आप अपने धाम चलें ।'

'मैं अपना चक्र आवासमें ही छोड़ आया हूँ । उसे लेकर आपके साथ चलता हूँ ।' श्रीहरिने कहा ।

'उसे यहीं रहने दो ।' सदाशिवने अपने तेजसे वैसा ही दूसरा चक्र देते हुए हरिसे कहा—'पातालमें सभीके लिए प्रवेश सुगम नहीं है । असुर यहाँ निर्द्वन्द्व रहते हैं । उनके शासनके लिए उस चक्रको यहीं रहना चाहिए । वह यहाँ आपसे द्वेष करने वाले असुरोंको नष्ट करता हुआ घूमता रहेगा ।'

विष्णु भगवान अपने लोकमें आ गये । सुरोंका उनका संरक्षण प्राप्त हो गया । यह देखकर असुरोंने पातालमें अपना आवास बनाया । पातालमें ही स्वर्गकी अप्सराओंसे भी अधिक सुन्दरी अप्सराएँ हैं—यह समाचार पाकर देवता भी पाताल-प्रवेशकी इच्छा करने लगे । शिवने उन्हें झिड़का—'तुम सब कापुरुष और भोगी हो । अमरावतीके अमृत और अप्सराओंसे भी तुम्हें तुष्टि नहीं होती है । सचमुच कामकी क्षुधा नित्य अपूरणीय है, किन्तु असुर भी इस सृष्टिके ही अंग हैं । वे भी रक्षणीय हैं । वे भी सुरोंके समान ही मेरे आश्रित हैं ।' शिवने दैत्योंकी रक्षाके लिए शाप दिया—'दैत्य, दानव, असुर, नाग और इन हरि तथा हमारे अनुग्रह-पात्रोंके अतिरिक्त कोई भी देवता यदि पातालमें प्रवेश करेगा तो उसका अमृतपान व्यर्थ हो जायगा । उसका अमरत्व नष्ट हो जायगा, उसे मृत्यु प्राप्त होगी ।' तभीसे देवता स्वर्गको त्यागकर अधः लोकोंमें नहीं जाते हैं ।

———

रावणकी शिव-भक्ति

राक्षसेश्वर दशग्रीव कुबेरसे छीने हुए पुष्पक-विमानसे जब कैलासके ऊपरसे जाने लगा, विमानका वेग स्तम्भित हो गया। वह शिखरपर उतरा, इधर-उधर उसने देखा। उसे दीखा, एक कृशकाय वानरमुख वामन पुरुष त्रिशूल लिए खड़ा है। दशग्रीवने पूछा—'यहाँ कौन रहता है?'

नन्दीश्वर—'लोक-महेश्वर शिव।'

रावण—'शिव ऐसा क्या शक्तिशाली है जो मुझ त्रिलोकविजयी दशग्रीवके आनेपर निश्चिन्त बैठा है। मैं इसे स्थान-भ्रष्ट करूँगा, जिससे यह शिष्टाचार सीख सके।'

रावणने कैलासके मूलमें जाकर पर्वतको उखाड़ लिया। वह उसे अपने कंधोंपर उठाकर फेंक देना चाहता था। जब पर्वत उठा, तब देवीने चौंककर भगवान शंकरका आलिंगन कर लिया। इससे भगवती उमाकी ओर देखकर सस्मित सदाशिवने अपने पादांगुष्ठसे पर्वतको दबा दिया। दशग्रीवका कन्धा और सभी कर पर्वतके नीचे दब गये। वह उच्च स्वरसे रुदन करता रहा। दीर्घ काल तक रोते-रोते स्तुति करता रहा। अन्तत: जगदम्बाको उसपर दया आ गयी। उन्होंने स्वामीसे कहा—'यह भी आपका शिशु है, आप इसे छोड़ दें!'

शंकरजीने पादाँगुष्ठ पर्वतसे उठा लिया। रावण मुक्त हो पर्वतके नीचेसे निकला। धीरेसे उसने पर्वतको यथास्थान रखा। अब भी दीर्घ कालसे दबे उसके कर और कन्धा बहुत पीड़ा कर रहे थे। उसने कैलासके सम्मुख ताण्डव प्रारम्भ किया और स्तुति करता रहा। कहते हैं, उसके ताण्डव पदाघातसे वहाँ एक विशाल टेढ़ी-मेढ़ी झील बन गयी जिसे राक्षस-ताल कहा जाता है। इसके पश्चात् उसने वहाँ अग्नि प्रज्वलित की और अपने शिरोंको काटकर उसमें हवन करने लगा। जब वह अपना अन्तिम सिर काटनेको उद्यत हुआ, तब प्रकट होकरके भगवान शंकरने उसका हाथ पकड़ लिया। शिवके स्पर्शसे उसके सब शिर यथावत हो गये। वरदानमें रावणने भगवान शंकरसे वैदिक-ज्ञान, भौतिक विज्ञान, अजेयत्व तथा दश सिर मांग लिए।'

दशग्रीवसे शिवने कहा—'तुम पर्वतके नीचे दबे दीर्घकाल तक रोते रहे हो, इसलिए तुम्हारा नाम रावण होगा।' (शिवपुराण)

× × × ×

रावण एक बार कैलास पहुँचा। द्वारपर नन्दीश्वरको देखकर वह उनसे अपने पराक्रमी डींग मारने लगा। नन्दीश्वरने कहा—'भैया! तुम भी शिवलिंगके पूजक हो और मैं भी। अतः हम दोनों समान हैं। पराक्रम तो हमारे आराध्यका प्रसाद है। अभिमानपूर्वक डींग क्यों मारते हो?'

रावण—'तुम मेरे समान शिवके आराधक हो, तब तुम्हारा मुख वानरके समान क्यों है?'

नन्दीश्वर—'भगवान महेश्वर तो मुझे अपना सारूप्य प्रदान कर रहे थे, किन्तु सेवकका स्वामीके समकक्ष होना उचित नहीं है। यह सोचकर मैंने वानरका मुख मांगा। मेरे आशुतोष प्रभुने प्रसन्न होकर मेरी बात स्वीकार कर ली। इससे अपनेमें अभिमानशून्यता बनी रहती है। निरभिमान, दम्भरहित, निष्परिग्रह जन ही शिवको प्रिय हैं। अभिमानी, दम्भी, परिग्रही व्यक्ति हमारे सर्वेश्वरकी कृपासे वंचित रह जाते हैं।'

रावण—'तुम्हें वानरमुख क्या मिला, वानर बुद्धि हो गयी। मूर्ख हो तुम। बुद्धिमान तो मैं हूँ। मैंने शिवसे उनसे दुगुने मस्तक मांगे। इन दश मुखोंसे उनकी भली प्रकार स्तुति की जा सकती है।'

नन्दीश्वरने इस उपहाससे क्रुद्ध होकर शाप दिया—'तुम मेरे मुखका उपहास करते हो, अतः जब कोई महातापस पुरुषोत्तम वानरोंके साथ तुमपर आक्रमण करेंगे तब वे निश्चय ही तुम्हारा वध कर देंगे। तुम्हारे ये सब सिर भू-लुण्ठित होंगे।' नन्दीश्वरके शापसे खिन्न रावण लंका लौट आया। (स्कन्द पुराण)

श्रीराम-सभाके कथावाचक

श्रीराम नियमपूर्वक प्रतिदिन पार्थिव पूजन किया करते थे—यह बात बाल्मीकि रामायणमें और श्रीरामचरितमानसमें भी आयी है। उनके द्वारा श्रीरामेश्वरकी स्थापनाका वर्णन पहले किया जा चुका है। जब वे अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन हुए, एक बार पितरोंका श्राद्ध करके ब्राह्मण-भोजन करवा रहे थे। उस समय भगवान वृषभध्वज वहाँ पहुँच गये। स्वयं ही एक ओर बैठ गये और बोले—'मुझे भी भोजन करना है।'

श्रीलक्ष्मणने आसन दिया, उनके सम्मुख स्वर्णपात्र रखा। अब जो भी वे परसते थे, भगवान प्रलयंकर एक ही ग्रासमें समेटकर समाप्त कर देते थे। भरत और शत्रुघ्न भी परसनेमें लग गये, किन्तु जब साक्षात् शिव भोजन करें, पात्र रिक्त हुए बिना कैसे रह सकता था। श्रीरघुनाथ अब तक हँसते हुए यह दृश्य देख रहे थे। अब उन्होंने अन्नपूर्णाका स्मरण किया। भगवती पार्वती उपस्थित हुईं तो श्रीरामने प्रणाम करके कहा—'अपने स्वामीको आप ही भोजन करावें। इन्हें तृप्त करना दूसरे किसीके वशकी बात नहीं है।'

भगवती अन्नपूर्णा स्वयं पात्रके समीप खड़ी हो गयीं। अब उस पात्रका अन्न तो अक्षय हो गया। उसमें-से कितना भी निकाला जाय, क्या अन्तर पड़ना था। शंकरजीने उमाकी ओर देखा। हँसकर बोले—'तुम्हें आना पड़ा। अब तो मैं तृप्त हो गया।'

श्रीरामकी ओर देखकर बोले—'तुम लोगोंने मुझे बहुत अधिक भोजन करा दिया। अब मुझसे उठा नहीं जाता है। मुझे उठाओ।'

श्रीहनुमानजी उठाने लगे, किन्तु रुद्रसे महारुद्र शिव कैसे उठ सकते थे। अंशसे अंशी भारी होता ही है। जब पवन-पुत्र असमर्थ हो गये, श्रीरामने अनुजको संकेत किया। अनन्तके अवतारकी शक्ति भी अनन्त है। लक्ष्मणने उठाकर भोले बाबाको एक शय्यापर लिटा दिया।

जो ब्राह्मण भोजन करने बैठे थे, वे बहुत देरसे प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि पंक्तिमें जब तक सब भोजन न कर लें, किसीको उठना नहीं चाहिए। जब लक्ष्मणने शिवको उठा दिया, ब्राह्मण भी उठ गये। लेटे-लेटे ही आशुतोषने आज्ञा दी—'मेरा मुख-हाथ धो दो।'

श्रीजानकीजीने उनके हाथ धोये, किन्तु जब वे उनका मुख धोने लगीं, शिवने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। जगदम्बाने हाथ जोड़कर आह्लादपूर्ण स्वरमें कहा—'आपने बड़ी कृपा की। आपके उच्छिष्ट जलके पड़नेसे जानकीका शरीर पवित्र हो गया। मैं भाग्यशालिनी हूँ कि आपने मुझे इस कृपाका पात्र समझा।'

'रामको आकर मेरे चरण-संवाहन करना चाहिए।' आशुतोषने आज्ञा दी।

श्रीरघुनाथ लक्ष्मणके साथ आकर चरण दबाने लगे। भरत और शत्रुघ्न दूसरी ओर ब्राह्मणोंके सत्कारमें लग गये। श्रीविदेहनन्दिनीने व्यजन उठाया और वायु करने लगीं। अब भोले बाबा प्रसन्न हुए। हँसते हुए उठकर बैठ गये। बोले—'मैंने क्रोध करनेके अनेक अवसर दिये, किन्तु तुम मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा धन्य है। मैं प्रसन्न हूँ। तुम कुछ मांग लो।'

श्रीरघुनाथ भी हँसे—

अशनं गरलं फणी कलापो
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो
तव पादाम्बुज भक्तिमेव देहि॥

'महाराज! आप विषका भोजन करते हैं, आभूषणके नामपर आपके पास सर्प हैं, गजचर्मको वस्त्र आपने बनाया है, आपका वाहन है बूढ़ा बैल। भूत, प्रेत, पिशाच आपके सेवक हैं। इनमें-से किसीका हमारे लिए कोई उपयोग नहीं है। हम उन सबसे दूर ही रहना चाहते हैं। इसलिए आप अपने चरणकमलोंकी भक्ति ही हमको प्रदान करें।'

सबने जब हास्य ध्वनिकी, शंकरजीने हँसते-हँसते कहा—'अच्छी बात है, पर कुछ और मांगो।'

श्रीराघवेन्द्रने कहा—'तब आप मेरी सभामें कथा सुनाया करें।'

तबसे बहुत समय तक भगवान महेश्वर राम-सभाके कथावाचक हो गये। वे पूर्व-पूर्व कल्पोंकी कथाएँ वहाँ सुनाया करते थे।

(महेश्वर उपपुराण)

—०—

श्रीकृष्णकी शिवाराधना

देवी रुक्मिणीके पुत्र हो चुके थे। जाम्बवतीने प्रार्थना की—'आप जैसे पतिको प्राप्तकर मैं अब तक सन्तानहीना हूँ। विशिष्ट गुणयुक्त उत्तम पुत्र प्रदान करें।'

श्रीकृष्णने तपस्याका निश्चय किया। गरुड़ारूढ़ होकर वे चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी गंगाके उद्गमपर (गोमुखमें) स्थित महर्षि उपमन्युके आश्रम पहुँचे। वहाँ शतशः ऋषि आश्रम बनाकर रहते थे। वह भूर्जपत्र-वन यज्ञ-धूम-धूसर हो रहा था। वेद-पाठकी ध्वनि गूंज रही थी। वहाँ मृग, सिंह आदि एक साथ निवास करते थे। जलसे पूर्ण निर्मल सरोवर था। सबके सब वहाँके आश्रमवासी भस्मोद्धूलितांग, रुद्राक्षमालाधारी मुण्डित मस्तक अथवा जटाधारी थे। सब शिव-भक्त थे।

तपस्वियोंने श्रीकृष्णकी पूजा की, स्तुति की। श्रीकृष्णने गंगामें स्नान किया। हाथमें पुष्प लेकर उपमन्युकी कुटीमें प्रवेश किया। महर्षि उपमन्यु चीर वस्त्र धारण किये भस्मभूषित आसीन थे। श्रीद्वारिकेशने प्रणिपात किया।

उपमन्युने उठकर उनका सत्कार किया। हाथ पकड़कर आसनपर बैठाया। बोले—'मैं जानता हूँ, आप वेदमूल हैं। परमपदस्वरूप होनेपर भी आप यहाँ शिष्य-भावसे आये हैं। आपका स्वागत है। मेरा तप सफल हुआ। दीर्घकालीन तपस्या करके भी मुनिगण आपके दर्शन नहीं कर पाते हैं, आप स्वयं मेरे यहाँ पधारे ! निःसंकोच अपना प्रयोजन सूचित करें।'

पुनः प्रणिपात करके श्रीकृष्णचन्द्रने निवेदन किया—'भगवान कृत्तिवासका दर्शन करना चाहता हूँ। इसके लिए आपका आश्रय ग्रहण किया है। वे योगेश्वर जिस प्रकार दर्शन दें, उस साधनका निर्देश करें और मैं कहाँ साधन करूँ, यह भी सूचित करें।'

उपमन्युने पञ्चाक्षर मन्त्र देकर कहा—'भक्तिपूर्वक यहीं जप करें। शिवका दर्शन यहीं प्राप्त होगा। यहाँ अनादि कालसे शिव-भक्त तपस्या करते आये हैं, अतः यह पावन शिवक्षेत्र है। देवी सहित वृषभध्वज यहाँ दर्शन देंगे। यह उनकी क्रीड़ा-भूमि है। यहाँ स्वयं रुद्रने, वशिष्ठने, कृष्ण-

द्वैपायन व्यासने, वैशम्पायनने, याज्ञवल्क्यने, भृगुने तपस्या करके कपर्दीसे पुत्र प्राप्त किया है। यहीं देवी उमाने तपस्या करके महेश्वरको पति रूपमें प्राप्त किया।'

उपमन्युने विधिका निर्देश किया—'भस्मोद्धूलितांग, वल्कलवसन, रुद्राक्ष-धारण, निरन्तर जप—यह विधिका मुख्य अंश है।'

कुछ दिनोंके अनन्तर साम्बशिव आकाशमें प्रकट हुए। उन किरीट-मालीने विचित्र माला धारण कर रखी थी। पिनाकी, त्रिशूली, शार्दूल चर्माम्बर, परशुधारी, भस्मभूषित वे प्रणवका उच्चारण कर रहे थे। उन सहस्रसूर्यसंकाश महादेवकी ब्रह्मादि देवता स्तुति कर रहे थे, गणेश उनके सम्मुख स्थित थे। मरीचि, अत्रि आदि महर्षि उनके समीप थे। श्रीकृष्णने अञ्जलि बाँधकर स्तवन किया। पुनः प्रणिपातके लिए दण्डवत् करने लगे तब महेश्वरने नीचे आकर उनको उठा लिया। गम्भीर वाणीमें बोले—'पुण्डरीकाक्ष। आप तपस्या क्यों कर रहे हैं? आप स्वयं सबकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने वाले हैं।'

हँसकर श्रीकृष्णने कहा—'आपको तो सब ज्ञात है। मैं अपने समान आपका भक्त पुत्र चाहता हूँ।'

'तथास्तु।' कहकर महादेवने भगवती उमाकी ओर देखा और श्रीकृष्णका आलिंगन किया।

देवीने कहा—'मैं जानती हूँ कि आपमें और हरमें अन्तर नहीं है। मेरे स्वामीमें आपकी अनन्य भक्ति है और स्वामी आपके अनन्य भक्त हैं। आप इनकी ही दूसरी मूर्ति हैं। अतः मेरा भी वरदान ग्रहण करें। आप सर्वज्ञ, सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न, ज्ञानस्वरूप रहें। शिवमें आपकी अविचल भक्ति हो।'

श्रीकृष्णने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया। भगवान शंकरने हाथ पकड़कर उनको देवीके साथ ही वृषभपर बैठा लिया। सब लोग वहाँसे कैलास गये। वहाँ बहुत अधिक सत्कार किया गया। देवता, नाग, गन्धर्व कन्याएँ वहाँ एकत्र हुईं। शिवने उनको श्रीकृष्णकी सेवामें नियुक्त कर दिया। शिव और कृष्ण परस्पर प्रीति-विनोदमें, क्रीड़ामें लग गये। बहुत काल व्यतीत हो गया।

द्वारिकामें प्रतीक्षा चल रही थी। देवर्षि नारद आये और उन्होंने बतलाया, तब गरुड़ कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान महेश्वरकी तुति की। शिवसे विदा लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका पधारे। साक्षात् कुमार कार्तिकेय ही इस प्रकार जाम्बवतीसे साम्बके रूपमें उत्पन्न हुए।

(कूर्म पुराण)

द्वितीय कथा—

देवी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रसे जब पुत्र-प्राप्तिकी प्रार्थना की, श्रीकृष्ण कैलास गये। तप करके शिवसे वरदान स्वरूप उन्होंने पुत्र प्राप्त किया। इस वरदानसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। शिवने ही कह दिया—'कामको मैंने अनंग बना दिया था, वह आपका पुत्रत्व प्राप्त करे।'

दूसरी बार पुत्र-प्राप्तिकी प्रार्थना जाम्बवतीने की और इस बार श्रीकृष्ण दक्षिण गोकर्ण क्षेत्रमें तपस्या करने गये। वहाँ उन्हें भगवान शंकरसे वरदानके रूपमें न केवल जाम्बवतीसे पुत्र प्राप्त हुआ, आशुतोषने कह दिया—'तुम्हारी सब पत्नियोंसे दस-दस पुत्र हों।'[1]

—×—

गोपेश्वर

भगवान शंकर भी बहुत विनोदी हैं। एक बार वे कैलाशसे अकेले ही वृन्दावन पधारे। शारदीय पूर्णिमाका महारास चल रहा था। शिवने गोपीका वेश बनाया और उसमें सम्मिलित हो गये। श्रीराधाने तत्काल श्यामसुन्दरके श्रवणके समीप मुख ले जाकर सकेतसे सूचित करते हुए दिखलाया—'यह श्यामांग गोपिका मेरे परिकरकी नहीं है।'

श्रीकृष्ण हँसे। उन्होंने जाकर सीधे उस गोपीको प्रणाम किया—'गोपेश्वर! आप पधारे हैं तो अपने रूपमें ही विराजें और हम सबको अर्चाका अवसर दें।'

भगवान शंकरकी वहीं पूजा हुई और तबसे वे वृन्दावनसे गोपेश्वर लिंगके रूपमें विद्यमान हैं। (ब्रह्मवैवर्त पुराण)

—×—

१ इन दोनों तपस्याओंकी चर्चा विस्तारसे 'श्रीद्वारिकाधीश' में की गयी है।

शिव और विष्णुका सौहार्द

नारायण बैकुण्ठमें कह रहे थे—'मुझे शंकरजीसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है। मैं उनका उपासक हूँ। वे मेरे परमाराध्य हैं।'

भगवती लक्ष्मीको बड़ा खेद हुआ—'मेरे स्वामी शंकरजीकी आराधना करते हैं और मुझसे यह भी नहीं होता।' वे पश्चात्तापसे रुदन करने लगीं।

श्रीहरिने उन्हें समझाया–'शिव-पूजामें तुम्हें प्रवृत्त करनेके लिए ही मैं यह परम गोप्य प्रसंग प्रकट किया। पश्चात्ताप मत करो। शंकरकी पूजा करनेसे तुम भी मुझे उन महादेवके समान ही प्रिय हो जाओगी।'

लक्ष्मीजीने उसी दिनसे स्वामीजीकी आज्ञा स्वीकार करके शिव-पूजन प्रारम्भ कर दिया। (ब्रह्मपुराण)

एक बार वाणासुर अपने कुलगुरु शुक्राचार्य, प्रपितामह प्रह्लाद, बलि, वृषपर्वाके साथ महर्षि गौतमका अतिथि हुआ। यह समूह कुछ अधिक काल तक ही महर्षिके आश्रमपर रहा। वृषपर्वा नित्य शिव-पूजन किया करते थे। महर्षि गौतमके शिष्य शंकरात्मा अवधूत वहाँपर उन्मत्तप्राय घूमते रहते थे। अकस्मात् एक दिन जब वृषपर्वा पूजन कर रहे थे, वे अवधूत बृषपर्वा और उनकी आराध्य मूर्तिके मध्य आकर खड़े हो गये। वृषपर्वाने उनको हटाना चाहा। जब वे नहीं हटे तो तलवारसे उनका सिर काट दिया।

महर्षि गौतमको शंकरात्मा प्राणसे भी प्रिय थे। उनकी मृत्यु सुनकर गौतमने योगबलसे देहत्याग कर दिया। यह देखकर शुक्राचार्यने भी देहोत्सर्ग किया। प्रह्लाद तथा अन्य दैत्योंने ही नहीं, वृषपर्वाने भी देहोत्सर्ग कर दिया। शिव-भक्तोंके शवोंका वहाँ ढेर लग गया।

महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्या आर्तनाद करने लगीं। उनकी कातर पुकारसे भगवान भूतनाथकी समाधि भंग हुई। वे प्रकट हो गये। उनके साथ ही ब्रह्मा और विष्णु भी प्रकट हुए। शिवके दृष्टिपातसे जो भी मरे थे, सब जीवित हो गये। सबने त्रिदेवोंकी स्तुति की। भगवान शंकर महर्षि

गौतमसे बोले—'हम तुम्हारे साहस एवं आदर्शसे बहुत संतुष्ट हैं। तुमने अतिथिको एक शब्द भी अवज्ञापूर्ण नहीं कहा। अतः वरदान मांगो।'

गौतम–'आपके दर्शनसे मैं कृतकृत्य हुआ। अब यदि आप प्रसन्न हैं तो आप तीनों यहीं विराजें और मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

प्रार्थना स्वीकृत हो गयी। एक ही शय्यापर विष्णु और शिव-आश्रममें लेटे। उनमें देर तक वार्ता होती रही। फिर दोनों स्नानार्थ सरोवरमें उतरे। परस्पर अंजलि लेकर एक दूसरेपर जल उछालने लगे। भगवान हर हरिके कन्धोंपर चढ़कर उन्हें दबाने लगे। विष्णुने पद पकड़कर उन्हें जलमें डुबा दिया और उनके ऊपर स्वयं बैठ गये। इस प्रकार यह क्रीड़ा चलती रही। देवता स्तवन कर रहे थे। देवर्षि नारदने आकर वीणा वादन प्रारम्भ किया। बहुत देरके पश्चात् दोनों जलसे निकले। गीले वस्त्रोंमें ही नटराज शिव शान्तिके साथ गायन करने लगे। विष्णुने मृदंग बजाना प्रारम्भ किया। इसी समय हनुमानजी आ गये और उन्होंने संगीत प्रारम्भ किया। उनका संगीत सुनकर सब चराचर मौन हो गए। सब एकाग्र होकर तल्लीन श्रवण करने लगे।

विलम्ब होता देखकर महर्षि गौतमने आकर प्रार्थना की। बड़ी प्रार्थना करनेपर हरि और हर भोजन करने बैठे। भोजनके पश्चात् फिर हनुमानजीने गायन प्रारम्भ किया। प्रसन्न होकर सदाशिवने अपना एक चरण हनुमानजीकी अंजलिमें रख दिया, दूसरे चरणको उनके कन्धे, मुख, कण्ठ, वक्ष, हृदय, उदर, नाभिसे स्पर्श कराते हुए लेट गये।

विष्णु भगवान बोले—'आज हनुमानके समान सुकृती विश्वमें नहीं है। जो चरण देव-मुनि दुर्लभ हैं, योगिजनोंके ध्यानमें कठिनाईसे आते हैं, वे सहज ही पवनकुमारको प्राप्त हो गये। मैं लोकमें शिवका प्रीति-भाजन प्रसिद्ध हूँ, पर आज हनुमानसे मुझे भी स्पर्धा हो रही है।' (स्कन्दपुराण)

एक बार कैलाशपर भगवान शंकरने पार्वतीसे कहा—मुझे श्रीहरि सबसे अधिक प्रिय हैं। उनसे अधिक प्रिय यह मेरा अपना शरीर भी मुझे नहीं है।'

पार्वतीजीको विश्वास था, स्वामी सर्वाधिक मुझे ही प्यार करते हैं। हरके आजके वचनसे कुछ रुष्ट होकर वे प्रणय-कोपमें बोलीं—'कपालधारी, अहि-भूषण, चर्माम्बर, विरूपाक्ष, विषभोजी, दिगम्बर, भूत-पिशाच-सह-

चर, श्मशानी, भिक्षुक भला किसीसे क्या प्रेम करेगा ? उन्मत्तोंके स्वामीके प्रेममें स्थिरता ही कितनी होगी ?'

इसी समय आकर श्रीहरिने उमासे कहा—'भगवान शंकरकी पत्नी होनेके कारण आप जगन्माता हैं, मेरी पूज्या हैं, किन्तु आप देवदेव सर्वेशकी निन्दा कर रही हैं। इसे मैं सुन नहीं सकता। कोई दूसरा यह निन्दा करता तो उसे दण्ड प्राप्त होता, किंतु आपपर मेरा कोई वश नहीं है, इसलिए शिव-निन्दा श्रवण करने वाले इस शरीरको अब मैं धारण नहीं करूँगा।'

भगवान विष्णु अपना मस्तक काटनेको उद्यत हो गए। ज्यों ही उन्होंने चक्र उठाया, त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया। शिवने उनका हाथ पकड़कर इस दारुण दुस्साहससे उनको रोका। पार्वतीको अपने इन वचनोंपर बड़ी लज्जा आयी। उन्होंने श्रीपतिसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी। जब श्रीहरि वैकुण्ठ चले गये, पार्वतीने महादेवसे पूछा—'हरिके समान ही मैं भी आपको प्रिय होउँ, इसका कोई उपाय है ?'

शिव—'जिस प्रकार मैं उनका नित्य अर्चन करता हूँ, तुम भी करने लगो तो तुम भी उनके समान मुझे प्रिय होजाओगी।'

भगवती पार्वती उसी समयसे विष्णु भगवानकी नित्य आराधना करने लगीं। (ब्रह्मपुराण)

एक समय वैकुण्ठमें भगवान विष्णुने स्वप्नमें शंकरजीको देखा। निद्रा-भंग होते ही गरुड़पर आसीन होकर वे कैलासकी ओर चल पड़े। लगभग ऐसा ही स्वप्न शिवने भी देखा। वे भी वृषभारूढ़ होकर उमाके साथ वैकुण्ठकी ओर चल पड़े। मार्गमें ही हरि और हरका साक्षात् हुआ। बड़े हर्षसे दोनों परस्पर मिले। अब भगवान शंकर विष्णु भगवानसे कैलास चलनेका आग्रह करने लगे और विष्णुका था, शंकरजी वैकुण्ठ पधारें। बहुत देर तक यह प्रेमानुरोध चलता रहा।

देवर्षि नारद दोनोंके इस प्रेमका दर्शन करने वहाँ पधारे, तब पार्वतीने देवर्षिसे कहा—'अब इस अवस्थामें क्या किया जाना चाहिए ?'

देवर्षि—'आप अपना निर्णय दीजिए।'

पार्वती क्या कहतीं। वे भी मौन रह गयीं। कुछ कालके पश्चात् देवर्षि हाथ जोड़कर बोले—'मैं वैसे ही माया मोहित जीव हूँ। आप दोनों क्यों मुझे भ्रममें डाल रहे हैं ? आप दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो हरि

हैं वही हर हैं और जो हर हैं वही हरि हैं। कैलास ही वैकुण्ठ है और वैकुण्ठ ही कैलास है। आप दोनोंमें परस्पर भेद होता तो मैं बता भी पाता। जब दोनों दो नहीं हैं, तो कोई भी कैसे निर्णय करेगा ?'

सिन्धुजाने हँसकर कहा—'देवर्षि ! आप टालिये मत। निर्णायकको स्पष्ट निर्णय देना चाहिए।'

देवर्षिने विनम्रतापूर्वक कहा—'मैं जगज्जननीकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ। मुझे ही कुछ कहना है तो मेरे विचारसे आप और पार्वती भी अभिन्न ही हैं, अतः श्रीहरिके साथ यह समझकर आप वैकुण्ठ लौटें कि हरि और शंकरभी वैकुण्ठ पधार रहे हैं। इसी प्रकार शंकरजी भगवती उमाके साथ इस भावनासे कैलास लौटें कि शेषशायी श्रीके साथ कैलास चल रहे हैं।'

देवर्षिके वचनोंको स्वीकार करके दोनों अपने-अपने धामोंको लौटे। देवर्षि भी अनुमति लेकर ब्रह्मलोक गये। (वाराह पुराण)

—××—

वाणासुरपर वात्सल्य

दैत्यराज बलिका पुत्र वाणासुर बलिके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा था। केवल अवस्थामें ही नहीं, बलमें, गुणमें, ओजस्वितामें भी। इसके एक सहस्र भुजाएँ थीं। प्रतिदिन कैलास जाकर अपने हाथोंमें अनेक वाद्य लेकर उन्हें एक साथ बजाता हुआ ताण्डव करके उमा-महेश्वरको प्रसन्न करता था। वाणासुर स्वयंमें ही एक विशाल वाद्यमण्डल था। इसके प्रतिदिनके ताण्डव तथा वाद्यसे प्रसन्न होकर जब महेश्वरने उससे वरदान मांगनेको कहा, उसने कहा—'आपके अनुग्रहसे सम्पत्ति और ऐश्वर्य मेरे पास परिपूर्ण है। मेरे मनमें किसी दुर्बलको उत्पीड़ित करने अथवा सुरोंको पराजित करनेकी महत्वाकांक्षा नहीं है। यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मेरे नगररक्षक बन जायँ। इससे आपका सान्निध्य मुझे सहज प्राप्त रहेगा।'

भक्तवत्सल आशुतोषने इसे भी स्वीकार कर लिया। उन परिपूर्णको किसीका नगरपाल होनेमें भी कोई अपमान प्रतीत नहीं हुआ। अब उमा-महेश्वर वाणके पार्श्वमें पुरपाल होकर शोणितपुरमें बस गये। बाणकी पुत्री

उषा भगवतीसे संगीतकी शिक्षा प्राप्त करने लगी। एक दिन उसने उमा-महेश्वरका एकान्त-विनोद देखा तो उसके मनमें वासना जागृत हुई। वह पति-प्राप्तिकी इच्छा करने लगी। जगदम्बाने अपनी शिष्याका भाव समझकर उसे आशीर्वाद दिया—'बेटी! तू थोड़े दिन धैर्य रख। स्वप्नमें जो पुरुष तुझे प्राप्त होगा, वही तेरा पाणिग्रहण करेगा।'

बहुत समीपतासे विशिष्ट व्यक्तिके प्रति भी अवज्ञाका भाव उदय होने लगता है। परमाराध्य शिवमें वाणासुरकी श्रद्धा थी, किन्तु जब शंकरजी पुरपालक होकर रहने लगे, समीपता बढ़ती गयी। अन्तमें एक दिन वाणासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'आपने अनुग्रह करके जो सहस्र भुजाएं मुझे दी हैं, वे मेरे लिए भारस्वरूप हो गयी हैं। युद्धके लिए कोई प्रति भेट न मिलनेसे इनमें खुजली होती है। किसी अल्पप्राणसे युद्ध करके तो श्रान्ति ही होती है। मैं युद्ध करना चाहता हूँ और आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं दीखता जो मुझे संग्राममें सन्तुष्ट कर सके।'

इस प्रार्थनाका अर्थ ही युद्धका आह्वान करना था, लेकिन जिसे स्वयं आश्रय दिया, उसे अपने हाथों नष्ट करना भगवानको अभीष्ट नहीं था। कुछ क्रोधपूर्वक शंकरजीने कहा—'तुझसे युद्ध करनेके लिए मेरे समान योद्धा धरापर आ गया है। वह तेरी भारस्वरूप भुजाएँ काटकर ठीक कर देगा। इस ध्वजाको लेकर जा, अपने भवनके द्वारपर लगा दे। जब यह स्वत: गिर जाय तो समझ लेना कि तेरा प्रतिभेट तुझे प्राप्त होने वाला है।'

विनाशके समय बुद्धि विपरीत हो जाती है। भगवान शिवकी इस बातसे भी वाणासुर प्रसन्न हुआ। वह ध्वजाको ले जाकर भवन-द्वारपर लगाकर प्रतीक्षा करने लगा कि वह कब गिरती है।

स्वप्नमें एक दिन उषाने प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको देखा। उन्होंने स्वप्नमें ही उषाको स्वीकार किया। जागनेपर वह व्याकुल हो गयी। उसकी व्याकुलता देखकर उसकी सखी, जो वाणासुरके मंत्री कुम्भाण्डकी पुत्री थी—चित्रलेखा, उसने त्रिभुवनके सम्भाव्य पुरुषोंका चित्र बनाना प्रारम्भ किया। अन्तमें उन चित्रोंके सहारे उषाने अनिरुद्धको पहचाना। चित्रलेखाने उनका स्थान एवं वंश ज्ञात कर लिया। वह योगिनी आकाशमार्गसे सोते हुए अनिरुद्धको द्वारिकासे उठा लायी।

अनिरुद्ध उषाके अन्त:पुरमें आ गये। उषाने ही उनका अपहरण कराया था, अत: वह तो उनपर आसक्त थी ही, अनिरुद्धने भी उसे स्वीकार

कर लिया। पर्याप्त समय तक जब वे वहीं रहे, कन्यान्त:पुरके रक्षकोंको उषामें ऐसे लक्षण प्रतीत हुए कि उन्होंने वाणासुरसे प्रार्थना की—'आपकी पुत्रीके कुमारी होनेमें हमको सन्देह प्रतीत होता है, किन्तु अन्त:पुरका अन्तराल हमारे लिए अगम्य है।'

वाणासुर स्वयं सैनिकोंके साथ अपनी पुत्रीका अन्त:पुर देखने पहुँचा। अनिरुद्धको देखकर विस्मित हुआ। अनिरुद्धने संघर्ष किया, किन्तु वाणासुर उन्हें बन्दी बनानेमें सफल हो गया।

देवर्षि नारदके द्वारा जब यह समाचार द्वारिका पहुँचा, श्रीकृष्ण सेना सज्जित करके शोणितपुर आ गये। वाणासुरके साथ उनका भयंकर संग्राम हुआ। भगवान शंकर भी शोणितपुरके पुरपालक होनेके कारण अपने गणों एवं पुत्रोंके साथ युद्ध-भूमिमें उतरे; किन्तु श्रीकृष्णके सारंगसे छूटे शरोंने शिवगणोंको भागनेपर विवश किया। गणेश और कार्तिकेय भी आहत हो कर कैलास वापस लौट गये। श्रीकृष्णने कड़े संघर्षके पश्चात् जृम्भणास्त्रसे शिवको उनके रथपर ही निद्रित कर दिया।

अब सम्पूर्ण यादव सेना वाणासुरके अनुयायियोंसे युद्ध करनेके लिए खाली हो गयी। श्रीकृष्णने वाणासुरके रथको नष्ट कर दिया और अन्तमें अपने चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे। इसी समय सदाशिव जागे। वे भक्तवत्सल शीघ्र श्रीकृष्णके सम्मुख आकर बोले—'आपका चक्र अमोघ है, किन्तु मैंने इसे अभय दिया है। मैं इसका रक्षक हूँ, आप इसे मारें नहीं।'

श्रीकृष्ण—'जिसे आपने अभय दिया है, जो आपका प्रिय है वह मुझसे भी अभीत है। मुझे भी प्रिय है। वैसे भी मैंने अपने नृसिंह रूपसे प्रह्लादको वरदान दिया है—मैं उनके वंशधरका वध नहीं करूँगा, लेकिन इसने आपकी अवज्ञा की, अत: इसे दण्ड मिलना चाहिए। जिन सहस्र भुजाओंके दर्पमें यह आपका अपमान करनेको उद्यत हुआ, उनमें-से मैंने अधिकांश काट दी हैं। अब यह मेरे समान चतुर्भुज होकर रहे और आपकी सेवा करे।'

वाणासुरने उषा और अनिरुद्धको बड़े दहेजके साथ श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया। उसी समय वह शोणितपुर त्यागकर भगवान शंकरके साथ कैलास चला गया।[1] (श्रीमद्भागवत)

—×—

१. यह कथा विस्तारके साथ 'श्रीद्वारिकाधीश' में दी गयी है।

कपाली

भगवान शंकरने स्वयं एक बार कपाल व्रत धारण किया। वे कपाल-पात्र (खप्पर) में भोजन करते थे, एक कपाल खण्ड गलेमें धारण कर रखा था। हाथमें सदा कपाल लिए रहते थे। इस प्रकार रहने वाला केवल भिक्षान्न खाये, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहे, श्मशानमें निवास करे, सब प्राणियोंसे प्रसन्न रहे, प्रिय-अप्रिय समस्त स्थितियोंमें सन्तुष्ट रहे, सब अंगोंमें विभूति लगाये रहे, जितेन्द्रिय आसक्तिहीन रहे, मिट्टी, भस्म और जलके अतिरिक्त कुछ संग्रह न करे, सदा जपमें लगा रहे, एकाग्र चित्त हो, आसन-जयी हो, पवित्र तीर्थोंके श्मशानमें ही रहे, कभी लेटे नहीं, बैठे-बैठे ही निद्रा ले ले। इस व्रतको महापाशुपत व्रत अथवा कपाल व्रत कहते हैं। यह व्रत मोक्षदाता एवं त्रिपुरारिको प्रिय है। स्वयं शिवने यह व्रत धारण किया और भ्रमण करते हुए उज्जयिनी पहुँचे। अवन्तिकापुरीके उपवनके वृक्षोंने उनपर पुष्प वर्षा की। महेश्वरने संतुष्ट होकर कहा—'तुम्हारा मंगल हो। तुम लोग वरदान मांगो।'

वृक्ष—'आप इसी वनमें सदा निवास करें।'

वृक्षोंकी प्रार्थना स्वीकार करके शिव एक वर्ष वहाँ रहे। इसके बाद उन्होंने अपने हाथका कपाल बड़े जोरसे दूर पृथ्वीपर फेंक दिया।

इसी समय ब्रह्मादि देवता भगवान शंकरके दर्शनार्थ वहाँ आये। शिव उस समय उस वनके सीमान्त तक पहुँच चुके थे। देवताओंको जब उनके दर्शन नहीं हुए, तब ब्रह्माने देवताओंसे कहा—'योगी महादेव नित्य निष्कल और सकल दोनों रूपोंमें रहते हैं। उनका तपस्वी रूप केवल कलायुक्त है और ज्ञानस्वरूप निष्कल है। ज्ञानस्वरूप होनेके कारण मन्दश्रद्ध उनके दर्शन नहीं पाते। उनके दर्शनके तीन ही उपाय हैं—श्रद्धासमन्वित ज्ञान, तपस्या और योग। पराभक्तियुक्त योगी उन परमात्माका साक्षात्कार कर सकते हैं। अतः हम सब यहाँ उनकी आराधना करते हुए तपस्यामें संलग्न हों।'

देवताओंने सामग्री एकत्र की। शिवकी प्रसन्नतार्थ यज्ञ किया। वे व्रत और आराधना करने लगे। उन तपोदग्धकलमष देवताओंको शिवने

दर्शन दिया। देवताओंने जब स्तवन कर लिया, भगवान शंकरने कहा—'सुरोंके हितके लिए ही मैं यहाँ आया था। आप सबके हितके लिए ही मैंने कपाल यहाँ फेंका है।'

देवता—'आपके कपाल फेंकनेसे हमारा क्या हित हुआ, हम समझ नहीं पाते हैं। यदि हम सुननेके अधिकारी हों तो कृपा कर बतलावें।'

शिव—'तुम सब अत्यन्त बलवान मायावी दानव मयको जानते ही हो।'

देवता नाम सुनकर ही काँप उठे। शिवने कहा—'वह तो रसातलका अधिपति बनकर वहीं रहता है, किन्तु उसके सेवक तुम लोगोंको तपमें लगा जानकर तुम्हारे वधार्थ यहाँ आये थे।'

देवता चौंके। सचमुच वे उस समय निरायुध थे, असावधान थे। भगवान शंकरने बतलाया—'उन दैत्योंने मायासे अपनेको अन्तर्हित कर रखा था। मेरे द्वारा कपाल फेंके जानेसे जो आघात उनको लगा और जो भूकम्प हुआ उससे वे मारे गये।'

दैत्योंका यह उद्योग सुरोंको मारकर सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करने वाला था; क्योंकि सब स्थान, सब पदार्थ और क्रियामात्रके अधिदेवता नष्ट हो जाते तो सब संसार नष्ट हो जाता। ऐश्वर्य-मदोन्मत्त उन असुरोंका वध महेश्वरने किया था। उन्होंने तपःशुद्ध द्वेषहीन देवताओंको वरदान मांगनेको कहा तो शिवसे उन्होंने मांगा—'आपका हमपर अनुग्रह है तो उन मरे राक्षसोंको भी आप अक्षयधाम प्रदान करें।'

'मेरे भक्तोंका और मेरे द्वारा मारे गये लोगोंका अधःपतन नहीं होता। वे राक्षस तो अब मेरे गणोंमें सम्मिलित हो चुके हैं। यह वन महाकालवन कहा जायगा। इसका नाम गुह्यवन और श्मशानवन होगा।' यह कह करके कपाली शिव तिरोहित हो गये। (स्कन्द पुराण)

—:×:—

हालाहल-वध

ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे दैत्य हालाहल सुरोंसे अजेय हो गया था। एक समय वह भैंसेका रूप धारण करके क्रोधसे फुंकार करता महाकालवन पहुँचा। उस देवशत्रुको देखकर महाकाल शिवने गणोंको आदेश दिया—'यह त्रिलोकीका कण्टक है, सब मिलकर इस मायावी दैत्यको मार दो।'

शिवगणोंने वाण, त्रिशूल, खट्वांग आदिसे उसपर प्रहार किया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

शिव—'यह मूढ़गर्वान्ध हो चुका था। इसकी मृत्यु, इसके लिए भी कल्याणकारी है।'

महाकालके द्वारा पहले फेंके गये कपालसे इसी समय बड़ी भयानक ध्वनि हुई। उस कपालसे प्रज्वलित मुख प्रचण्ड मातृकाएँ प्रकट हुईं। वे भयानक अस्त्र-शस्त्र लिए हुए थीं। दौड़ी हुई आयीं—'हम क्षुधातुरा हैं।'

शिव—'इस मृत असुर महिषको खा लो।'

उन्होंने उसे काट-काटकर खा लिया। वे कपालमातृका नामसे इस क्षेत्रमें विख्यात हुईं।

उस कपालको भेदकर एक कुण्ड प्रकट हुआ, वह पापहारी तीर्थ रुद्रसरोवर कहा जाता है।

(स्कन्द पुराण)

———

महिम्नस्तोत्र

गन्धर्वश्रेष्ठ पुष्पदन्तको प्रतिदिन कैलासपर जाकर उत्तम पुष्पोंसे भगवान शिवकी पूजा करनेका व्यसन था। प्रायः अर्धरात्रिमें वे तन्त्रकी विधिसे पूजन किया करते थे। मार्गमें एक बहुत सुन्दर उद्यान था। उतर करके वे उससे पुष्पचयन कर लेते थे।

वह पुष्पोद्यान जिस राजाका था, वह भी शिव-भक्त था। उन्हें भी भगवान शंकरकी अर्चाके लिए उत्तम पुष्प चाहिए। सायंकाल पुष्पोद्यानका सेवक माली जिन कलियोंके दूसरे प्रातः खिलनेकी आशा करता था, रात्रिमें ही कोई उन्हें चुरा ले जाता था। उसने राजाको सूचना दी। उद्यानपर सैनिक नियुक्त किये गये; किन्तु उन्हें भी पता नहीं लगा। पुष्पोंकी चोरी रुकी नहीं।

राजाने ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा। उनमें-से ज्योतिर्विज्ञोंने गणित करके बतलाया—'हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कोई मनुष्येतर पुरुष आकाशसे उतरकर पुष्प ले जाता है। यदि कोई मनुष्य है तो अवश्य वह सिद्ध पुरुष होगा। इसका एक उपाय है। भगवान शंकर पर चढ़ा बिल्व-पत्र उपवनके चारों ओर इस तरह बिछा दें कि उनमें थोड़ा भी अन्तर नहीं रहे। शिव-निर्माल्यका उल्लंघन करने वालेकी सिद्धि नष्ट हो जायगी। वह आकाशमें उड़ नहीं सकेगा। तब बन्दी किया जा सकेगा।'

पुष्पदन्तको पृथ्वीपपर घटित हुए इस काण्डका कोई पता नहीं था जैसे ही आकाशमें उन्होंने शिव-निर्माल्यका उल्लंघन किया, पृथ्वीपर आ गये। अब वे आकाशमें उड़नेकी शक्ति खो चुके थे। बहुत व्याकुल हुए। पता नहीं, पृथ्वीके किन पुरुषोंने उनकी शक्ति नष्ट की है। वे अब उनका क्या करने वाले हैं। व्याकुल होकर उन्होंने अपने आराध्यकी स्तुति प्रारम्भ की। गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी इस स्तुतिका नाम ही महिम्नस्तोत्र है।

भगवान शंकर प्रकट हुए। उन्होंने आदेश दिया—'मार्गमें पड़े निर्माल्यको हटाकर जा सकते हो, किन्तु पुनः इस उपवनमें मत आना आराध्यकी अर्चा अपने श्रमसे प्राप्त पदार्थोंसे होनी चाहिए, चोरीके पुष्पोंसे गयी मेरी अर्चा मुझे प्रसन्न नहीं करती है।'

भगवान शंकरने यह भी वरदान दिया—'तुम्हारे द्वारा की गयी यह स्तुति सिद्ध स्तुति हो गयी। इससे जो मेरा स्तवन करेगा, वह मेरा प्रिय होगा।'

कणप्प भील

दक्षिण भारतमें वनमें भीलराजका पराक्रमी पुत्र था भीम। एक दिन वह धनुष-वाण लेकर वनमें आखेट करने गया। घूमते हुए वह एक पहाड़ीपर पहुँचा, जहाँ नीचे श्रीकालहस्तीश्वर वायुतत्व लिंग है। पहाड़ीके ऊपर एक मन्दिरमें ऐसा शिवलिंग था जिसके अग्रभागपर मुखाकृति बनी थी। भीमने अपने साथके सेवकसे पूछा—'यह किसकी मूर्ति है? इसपर यहाँ फूल-पत्ते किसने डाल रखे हैं?'

सेवक—'यह शिवकी मूर्ति है। बहुत वर्षोंसे एक ब्राह्मण प्रतिदिन आकर यहाँ पूजा करता है।'

भीम—'पूजा कैसे करता है?'

सरल भीलने उत्तर दिया—'वह ब्राह्मण पहले मूर्तिपर पानी डालता है, फिर पत्ते रखता है, फिर फूल रखता है। फिर कुछ खानेको रखकर हाथ जोड़कर आँख बन्द कर लेता है। सम्भवतः मूर्तिको भोजन करनेको कहता होगा।'

भीलकुमार भीममें पूर्वजन्मसे शिव-भक्तिके संस्कार थे। वे इस समय जागृत हो गये। वह दौड़कर उस मूर्तिसे लिपट गया। रोने लगा—'मेरे स्वामी! तुम इस भयानक वनमें रातको अकेले रहते हो? यहाँ शेर, रीछ आदि आते होंगे। तुम्हें डर लगता होगा। पशु आकरके कष्ट देते होंगे। अब मैं यहाँ उनको नहीं आने दूँगा। यहाँसे मैं अब कहीं नहीं जाऊँगा।'

जब भीम रोते-रोते यह कह रहा था, उसका सेवक समझता था कि यह पागल हो गया। उसने बहुत चेष्टा की, पर भीम घर जानेको उद्यत नहीं हुआ। सेवकने उसके पिताको समाचार दिया, किन्तु वन्यजातियोंमें मोह वैसा नहीं होता जैसा नागरिकोंमें देखा जाता है। भीलराजने सब सुनकर उपेक्षा कर दी। बोले—'वह एक-दो दिनमें स्वतः ही आ जावेगा,

अकेले पर्वतपर रहा तो उसका साहस ही बढ़ेगा। वहाँ बस भी जाय तो कोई हानि नहीं है। हम भील तो अपनी पल्ली प्रायः पृथक् बनाते ही हैं।'

भीम उस मूर्तिसे लिपटा रो रहा था। रोते-रोते अन्धेरा हो गया। अब धनुष-वाण लेकर वह मन्दिरके बाहर आकर रखवाली करने लगा। रात्रि उसने जागते हुए व्यतीत की। प्रातःकाल हुआ तो उसे देवताकी पूजा की चिन्ता हुई। इसलिए वनमें गया।

भीम भीलपुत्र था। उसने पूजा देखी और सुनी नहीं थी। देवताके लिए कुछ भोजन चाहिए, यह सोचकर उसने एक शशक मारा। उसके मांसके टुकड़ोंको लकड़ी एकत्र करके चकमककी अग्निसे प्रज्वलित किया और उसमें भूना। वाणमें मांसका एक-एक टुकड़ा पिरोकर उनको भली प्रकार भूनकर वनसे लाये हुए शहदके छत्तेसे शहद निकालकर उसमें उनको डुबाया। उसकी दृष्टिमें अब यह बहुत उत्तम आहार हो गया था। थोड़ेसे फूल और पत्ते भी उसने एकत्र किये। यह सब करनेमें उसे दोपहर हो गया। वह चिन्तित था कि देवता अभी तक भूखे होंगे। जहाँ तक हो सका, वह शीघ्रता कर रहा था।

पर्वतके नीचे जो सरिता है उसमें-से उसे जल लाना था, किन्तु उसके पास कोई जलपात्र नहीं था। उसके एक हाथमें धनुष था, कंधेपर तरकश बंधा था। दूसरे हाथमें वाण पिरोए हुए भुने मांसके टुकड़े थे। उसने जो पत्ते और फूल इकट्ठा किये थे, उन्हें अपने बालोंमें लगा लिया। मुखमें ही नदीका जल भर लिया। जितनी शीघ्रतासे हो सकता था, चढ़कर मन्दिरमें आया।

जो ब्राह्मण प्रतिदिन पूजा करता था, पूजा करके जा चुका था। भीमके हाथ खाली तो थे नहीं, उसने पैरसे ही मूर्तिपर चढ़ाये हुए फूल-पत्ते हटाये। जल चढ़ानेके लिए मूर्तिपर कुल्ला किया। धनुष एक ओर रखकर बालोंमें लगे फूल-पत्ते उतारकर मूर्तिको सजा दिया। अन्तमें मांसको एक पत्तेपर रखकर हाथ जोड़कर नेत्र बन्द करके प्रार्थना करने लगा—'देवता! यह शशकका बहुत कोमल मांस है। मैंने इसे भली प्रकार भूना है। इसमें पर्याप्त मधु डाला है। यह बहुत स्वादिष्ट होगा और शरीरको भी पुष्ट करेगा। आप इसे अवश्य भोजन करें।'

भीम बहुत देर तक प्रार्थना करता रहा। नेत्र खोलनेपर देखा, देवताने मांस नहीं खाया है। उसने सोचा, सम्भव है, अभी इनको भूख न

लगी हो। भूख लगनेपर खा लगे। यह भी हो सकता है कि मेरे सामने खानेमें संकोच करते हों। वह वहीं माँस छोड़कर धनुष-वाण लेकर बाहर बैठ गया।

भीमका अन्तःकरण निर्मल था। वह सरल था। निष्कपट था। सहज ही देवाकार हो गया। उसे अपने भोजन, जलपान या विश्रामका ध्यान ही नहीं रहा। उसे एक ही दुःख था कि देवताओंने उसका लाया हुआ माँस खाया नहीं था। रात्रि भर वह द्वारपर पहरा देता रहा और जागता रहा। दूसरे प्रभातमें वह फिर पहले दिनके समान देवताकी पूजा और आहारके लिए फूल-पत्ते तथा मांस लाने वनमें चला गया।

प्रतिदिन पूजा करने वाले ब्राह्मण मन्दिरमें आये। उन्हें मन्दिरमें मांस देखकर बड़ा दुःख हुआ। लगा, किसी दुष्टने मन्दिरको भ्रष्ट किया है। पूजन-सामग्री बाहर रखकर उन्होंने मांस फेंका। नीचेसे जल लाकर मन्दिरको धोया। पुनः स्नान किया। तब पूजा करके घर गये।

भीम वनसे लौटा। उसने अपनी पद्धतिके अनुसार इस दिन भी पूजा की। ब्राह्मणको दूसरे दिन सबेरे भी मांस मिला। तीसरे दिन उन्हें बहुत ग्लानि हुई। मन्दिर धोकर पूजा करते समय वे फूट-फूटकर रोने लगे—'पता नहीं, कौन दुष्ट रोज मन्दिरको भ्रष्ट कर जाता है।'

ब्राह्मण भी सचमुच भक्त थे। उन्हें अत्यधिक वेदना हो रही थी मन्दिर भ्रष्ट होनेसे। उनके दुःखको देखकर मन्दिरमें शब्द हुआ—विप्रवर! आप व्यर्थ शोक कर रहे हैं। यह माँस लाने वाला दुष्ट नहीं है, मेरा परम भक्त है। अत्यन्त सरल है। मुझे बाहरी पदार्थ प्रसन्न नहीं करते, निर्मल प्रेम-पूर्ण हृदय मुझे प्रसन्न करता है। इस भोले भील-भक्तके पैरोंका स्पर्श मुझे पार्वतीके स्पर्शसे भी अधिक प्रिय है। उसका कुल्ला किया हुआ जल गंगा जलसे भी मुझे पवित्र लगता है। उसके केशोंसे निकले पत्र-पुष्प कल्पवृक्षके पुष्पोंसे भी मुझे मनोहारी प्रतीत होते हैं और उसका माँसका अर्पित नैवेद्य मुझे अब तक प्राप्त तपस्वियोंके नैवेद्यसे भी अधिक प्रिय है। आपको उसका प्रेम देखना है तो यहीं छिपे रहिये।'

ब्राह्मण वहीं छिप गया। भील मन्दिरमें आया तो आज उसने देखा—देवताके वांयें नेत्रसे रक्त प्रवाह चल रहा है। उसे बहुत क्रोध आया। उसने हाथमें लाया हुआ माँस एक ओर रखा और धनुषपर वाण चढ़ाकर इधर-

उधर ढूढ़ने लगा कि किसने देवताको मारा है, लेकिन कोई पशु भी आस-पास नहीं मिला। लौटकर उसने अपना धनुष उठाया और वनमें चला गया। थोड़ी देरमें बहुत-सी जड़ें, पत्ते, फूल लिए हुए लौटा। उसे घावपर लगानेकी जितनी जड़ियाँ ज्ञात थीं, सब ले आया था। एक-एकको अपने थूकसे ही रगड़कर, पीसकर देवताके नेत्रोंपर रखने लगा, किन्तु किसीसे कोई लाभ नहीं हुआ। रक्तको बन्द नहीं होना था, बन्द नहीं हुआ।

भीम व्याकुल हो गया। देवताके नेत्रसे रक्त जा रहा है। अब वह क्या करे। सहसा उसे किसी बूढ़े भीलकी बतलायी हुई बात स्मरण आयी। उस बूढ़े ने कहा था—'शरीरमें जहाँ घाव हो, दूसरा अपने शरीरके उसी स्थानका माँस वहाँ लगा दे तो घाव ठीक हो जाता है।'

उस वृद्धकी बात ठीक है या नहीं, भीमने इसपर विचार नहीं किया। उसने अपने वाणकी नोंक अपने बायें नेत्रमें घुसा ली और वह नेत्र निकालकर देवताके नेत्रपर रखकर लगाया। यह देखकर वह हर्षसे खिल उठा कि इससे देवताके नेत्रकी रक्तधारा बन्द हो गयी। अपने नेत्रकी पीड़ाका उसे ध्यान ही नहीं था।

अचानक देवताके दाहिने नेत्रसे रक्त आने लगा। यह देखकर भीम दो क्षण स्तब्ध रह गया। फिर उसे स्मरण आया। एक नेत्रमें हुआ रोग दूसरे नेत्रमें भी प्रायः हो जाता है। लेकिन अब भीमको कुछ सोचना नहीं था। दवा उसे ज्ञात हो गयी थी। उसने अपने दाहिने पैरका अंगूठा देवताकी दाहिनी आँखपर रखा, क्योंकि जब वह अपना नेत्र निकाल लेगा, देख नहीं सकेगा। दूसरी आँख भी निकालनेके लिए उसने वाण उठाया और उसे दाहिने नेनेमें चुभाने जा रहा था, तभी मन्दिर एक दिव्य ज्योतिसे चमकने लगा। भगवान शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया—'पुत्र! परीक्षा हो गयी। मैं प्रसन्न हूँ। आजसे तुम कैलासमें मेरे समीप मेरे वाम भागमें रहोगे।'

भीमका वाम नेत्र प्रभुके स्पर्शसे स्वस्थ हो गया था। उसे लेकर भगवान शंकर कैलास चले गये। भीलोंकी भाषामें नेत्र चढ़ाने वाले इस इस शब्दका पर्याय कणप्प होनेसे भीमका नाम कणप्प पड़ गया।

(स्थलपुराण)

इन्द्रेश्वर

जूनागढ़से कुछ दूर वनमें इन्द्रेश्वर शिव-मन्दिर है। इसके सम्बन्धकी यह कथा केवल इसलिए दी जा रही है कि देशमें जो सहस्रशः शिव-मन्दिर हैं और उनके सम्बन्धकी कथाएं हैं। उनमें-से कम-से-कम एकसे पाठक परिचित हो सकें।

आशुतोष भक्तवत्सल भगवान शंकर आराधकका अभीष्ट पूर्ण करनेके लिए बार-बार प्रकट होते रहते हैं। देशमें ऐसे दिव्य लिंगोंकी बहुत बड़ी संख्या है। उन दिव्य तीर्थोंके सम्बन्धमें कोई-न-कोई कथा है और उस कथामें शिव-भक्तिका सन्देश है, किन्तु इन सब कथाओंका संग्रह कर पाना शक्य नहीं है। सबसे अधिक शिव-तीर्थ दक्षिण भारतमें हैं जहाँ उत्तर भारतीयके लिए भाषाकी कठिनाई बहुत बाधा देती है। इस भाषाकी कठिनाईके कारण ही वहाँके जिन शिव-तीर्थोंका माहात्म्य छपा भी है, वह अगम्य है। इस एक माहात्म्यसे आप औरोंका भी अनुमान कर सकते हैं।

श्रीनरसी भगतका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। बचपनमें यह भगवद्-भजन करने वाला युवक सांसारिक उद्योगोंसे उदासीन था। इसलिए जब इसने एक दिन भोजनके समय भाभीसे कुछ मांगा तो व्यंग सुनना पड़ा।

अनेक बार सामान्य व्यंग भी व्यक्तिके हृदयको बिद्ध कर देता है। नरसी भ्रातृ-पत्नीके व्यंगसे व्यथित होकर घरसे निकल पड़े। उन दिनों जूनागढ़ बहुत छोटा गाँव था। आज भी इन्द्रेश्वरका स्थान वनमें है और गिरनारके आश्रयमें रहने वाला शेरोंके आतंकसे मुक्त नहीं है। समझा जा सकता है कि नरसी जब उस समय इन्द्रेश्वरके मन्दिरपर पहुँचे होंगे, वहाँ कितना सघन वन होगा। वे मन्दिरमें शिव-लिंगके समीप बैठ गये। मूर्तिका उन्होंने दोनों हाथोंसे आलिंगन किया और पुकारने लगे—'विश्वनाथ! तुम्हारे इस विश्वमें मैं अनाथ हो गया हूँ। मेरा कोई आश्रय नहीं है, मुझे आश्रय दो। तुमको छोड़कर मैं अब और किसीके सामने नहीं जाऊँगा।'

दिन बीता, रात्रि बीति। इस प्रकार दिन-रात्रियाँ नरसीकी निर्जल, निराहार, निद्राहीन व्यतीत होने लगीं। अन्ततः भगवान शंकर उस लिंग-

मूर्तिसे प्रकट हुए। अब भी मन्दिरमें वह शिवलिंग द्विधाविदीर्ण देखा जा सकता है। आशुतोषने कहा—'बालक! क्या चाहता है? मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो पाना हो, मांगो।'

नरसीने कहा—'प्रभो! मैं अज्ञानी हूँ। मुझे पता नहीं है, क्या पानेमें मेरा परम कल्याण है। अतः जो आपको परम प्रिय हो, प्रदान करें!'

भगवान महेश्वर गम्भीर हो गये—'मेरा परम प्रिय—अच्छा चल!'

शिवने जब नरसीका हाथ पकड़ा, उनके नेत्र बन्द हो गये। उन्हें पता नहीं, उनका क्या हुआ। जब उन्होंने नेत्र खोले, अपनेको गोलोकमें पाया। वहाँ श्रीव्रजराजनन्दन रासके लिए उठ गये थे। शिवने चुपचाप एक मशाल नरसीको पकड़ा दी—'इसे लिए खड़े रहो! मुझे जो परमप्रिय हैं उन्हें देखो। उनकी प्राप्ति तो उनके अनुग्रहसे ही होगी।'

श्रीगोपेश्वरको रासमें श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीराधाका पूजन ही प्राप्त हो सकता था। श्रीव्रजराजकुमारने जब पूछा—'आप कैसे पधारे?' महेश्वरने हंसकर कह दिया—'आपका अनुग्रह प्राप्त करने।'

पुरारि तो पूजन प्राप्त करके विदा हो गये, किन्तु रासके मध्य ही महाभाव रूपा श्रीकीर्तिकुमारीने रसराज रासेश्वरसे कहा—'यहाँ किसी मर्त्यकी उपस्थिति ज्ञात होती है।'

श्रीकृष्णचन्द्र हँसे—'सदाशिव जिन्हें यहाँ पहुँचा गये हैं, उन्हें स्वीकार तो करना ही पड़ेगा।'

नरसी मशाल लिए खड़े थे, किन्तु जो अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य सीमा उनके सम्मुख थी, उसके कारण उन्हें अपने शरीरकी, मनकी किसीकी सुधि नहीं थी। मशालके साथ उनका हाथ जल रहा है, इसका भी उन्हें पता नहीं था। श्रीनन्दनन्दनने ही उन्हें सावधान किया। वे गोलोकसे श्यामसुन्दरको अपना बनाकर लौटे। उनकी भक्ति और उनपर उनके सांवल साहका अनुग्रह विख्यात है।

परिशिष्ट

क—शिव-तत्व

समष्टिमें तीन तत्व हैं—अजड़ जीव, जड़ प्रकृति और इन दोनोंका नियन्ता। क्रमसे इनको पशु, पाश और पशुपति कहते हैं। क्षर प्रकृति पाश, अक्षर जीव पशु और क्षराक्षरसे परे पुरुषोत्तम पशुपतिके इन्हीं तीनों तत्वों-को जानना तत्वज्ञान है।

तत्वज्ञानसे पाशस्वरूप प्रकृतिका क्षरण हो जाता है, इसलिए पाशको क्षर कहते हैं। पाशके क्षरण हो जानेपर जो अक्षर पशु जीव है वह पशुत्वसे विमुक्त होकर क्षराक्षरसे परे पुरुषोत्तम पशुपतिको प्राप्त कर लेता है। क्षर प्रकृति और अक्षर पुरुष—जो दोनोंको प्रेरणा देता है, दोनोंका संचालन करता है वह इन दोनोंसे परे पुरुषोत्तम परम परमेश्वर शिव हैं।

प्रकृतिको ही माया कहते हैं और इस मायासे आवृत पाशसे आबद्ध जीव पशु है।

क्षर और अक्षरका सम्बन्ध अनादि है। यह सम्बन्ध अज्ञानमूलक कर्मजन्य है। माया शिवकी शक्ति है। उन पशुपतिकी प्रकृति है। चिद् रूप जीव उससे आच्छादित है। चित् स्वरूपका आच्छादक यह तम स्वयं कल्पित है। तमसे रहित शुद्ध स्वरूप स्वयं शिव हैं।

कला, विद्या, राग, काल और नियति—ये कलाएँ हैं। इनका भोक्ता पुरुष है। कर्म पुण्यात्मक और पापात्मक हैं। पुण्यका फल सुख और पाप-का फल दुःख होता है। अविद्याके कारण जीवमें उत्पन्न यह कर्मका मल अनादि है। भोगके अन्त तक यह मल अज्ञानसे आत्माका आश्रय करता है। भोग कर्मनाशके लिए है। प्रकृति जीवभोग्या है। बाह्य इन्द्रियां और अन्तः करण तथा देह भोगके साधन हैं। भक्ति पूर्वक शिवका प्रसाद प्राप्त होनेपर पापका क्षय हो जाता है। क्षीण-मल-पुरुष शिवके समान हो जाताहै।

पुरुषको ज्ञान देनेवाली शक्ति विद्या कही जाती है और क्रिया-भिव्यंजक शक्तिका नाम कला है। काल क्रीड़ाका अवच्छेदक भी है और नियन्ता भी है। क्रिया और काल दोनों ही अव्यक्त कारणरूपा मायाके स्वरूप हैं और यह माया त्रिगुणात्मिका है।

अव्यक्त कारणात्मिका प्रकृति अर्थात् शिवकी शक्तिसे अनभिव्यक्त स्वरूपका व्यक्त रूप होता है। सुख, दु.ख और मोह—इन तीनो प्रकारोंसे त्रिगुणात्मक अव्यक्तको जीव भोगता है। प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम। ये तीनों तिलमें तेलके समान प्रकृतिमें सूक्ष्म रूपसे व्याप्त रहते हैं। इनमें-से सुख सत्वगुणसे, दुःख रजोगुणसे और मोह तमोगुणसे होता है। इन गुणोंसे छुटकारा पानेके लिए जीवको सदाशिवकी शरण लेनी चाहिए।

पंचवक्त्र, दशभुज, पंचदश नयन, चन्द्रमौलि भगवान शिवका व्यक्त सगुणसाकार स्वरूप है। इस रूपसे परे बिन्दु है। बिन्दुसे परे अर्धबिन्दु है। उससे परे नाद अर्थात् अर्धचन्द्र है। अर्धचन्द्रसे परे सुषुम्नेश ज्योति स्वरूप शिव हैं। उससे परे ब्रह्मरन्ध्रेश्वर हैं। उससे भी परे शक्ति हैं और उस शक्तिसे भी परे शिव-तत्व है।

शिव-तत्व भी केवल अनुभवैकगम्य बुद्धिसे परे है। मन और इन्द्रिय किसीकी भी वहां गति नहीं है। इससे परे परमकारण और स्वयंमें निष्कारण जो अद्वय, निरंजन, निर्विकार सदाशिव हैं वे मन-वाणी-बुद्धि किसीमें आते नहीं। वे अद्वितीय अचिन्त्य हैं। उनमें व्यक्त-अव्यक्तकी कल्पना ही नहीं है। (शिवपुराण)

———

ख–शिवकी विभिन्न मूर्तियाँ

भगवान शङ्करकी पंचमूर्तियाँ एवं उनके पंचमुख शास्त्र-प्रसिद्ध हैं—

१. **ईशान**—क्षेत्रज्ञ, पराब्रह्मात्मक, भोक्ता, श्रोत्र-वाक् इन्द्रियात्मक हैं। यह शब्दाधिष्ठाता हैं।

२. **तत्पुरुष**—प्रकृतिरूपा अधिकरणात्मक त्वक एवं पाणि क्रियात्मक हैं। यह स्पर्शका अधिष्ठाता हैं।

३. **अघोर**—यह बुद्धि, महत्तत्वस्वरूप, चक्षु-पादात्मक हिरण्यगर्भ रूप तन्मात्राका अधिष्ठाता हैं।

४. **वामदेव**—अहङ्कारात्मक जिह्वा उपस्थ इन्द्रियात्मक रस तन्मात्राका अधिष्ठाता हैं।

५. **सद्योजात**—पंचतत्वात्मक विराट घ्राणेन्द्रिय और पायु तथा गन्ध तन्मात्राका अधिष्ठाता हैं।

श्वेतलोहित कल्पमें, जोकि सृष्टिका दसवां कल्प था, महेश्वरका प्रथमावतार सद्योजात हुआ। ब्रह्माके ध्यान करनेपर उनसे शिखायुक्त श्वेतलोहित कुमारके रूपमें रुद्र प्रकट हुए। इन रुद्रके ध्यान करनेसे सुनन्दन, विश्वनन्दन आदि कुमार उत्पन्न हुए। ये कुमार सद्योजातके शिष्य हो गये। सद्योजातने ब्रह्माको सृष्टि उत्पन्न करनेका ज्ञान दिया।

बीसवां कल्प रक्तलोहित कल्प कहलाया। इसमें ब्रह्मा अरुण वर्ण थे। रक्त वस्त्र, रक्त नेत्र, रक्ताभरण भूषित, रक्त मालाम्बर धर रुद्र वामदेव नामसे ब्रह्मासे प्रकट हुए। इनके भी चार कुमार प्रकट हुए-विरज, विशोक, विवाद, विश्वभान। ये चारों वामदेवके शिष्य हो गये। वामदेवने ही ब्रह्माको सृष्टिका ज्ञान दिया।

इक्कीसवां कल्प पीतवासा कल्प था। ब्रह्मा इस कल्पमें पीतवर्ण, पीताम्बरधर थे। उनके ध्यानसे पीताम्बरधारी प्रौढ़ावस्थाका दीर्घभुजा जो पुरुष उत्पन्न हुआ वह तत्पुरुष रुद्र थे। इन तत्पुरुषके पार्श्वसे पीतवस्त्रधारी अनेक कुमार उत्पन्न हुए। ये सब योगमार्गके प्रवर्तक हैं।

बाईसवां कल्प शिवकल्प कहा जाता है। इस कल्पमें ब्रह्मा भी कृष्ण वर्ण थे। उनसे उन्हींके वर्णका वैसा ही वस्त्र, माला, उष्णीष, यज्ञोपवीत, मुकुट आदि धारण किये हुए जो तेजस्वी कुमार प्रकट हुआ उसे अघोर कहा जाता है। अघोरसे कृष्णवर्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्ण कण्ठ चार महात्मा प्रकट हुए। ये चारों ही योगी हुए और इन्होंने योगमार्गका प्रवर्तन किया। ब्रह्मासे प्रकट कृष्ण वर्ण कुमार अघोर कहा गया।

तेईसवां कल्प विश्वरूप कल्प था। इसमें ब्रह्मासे ईशान प्रकट हुए और विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई। ईशानसे भी चार कुमार प्रकट हुए। ये चारों जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्डी कहे गये। ये योगमार्गके उपासक हुए। भगवान शिवके ये पंच अवतार प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान श्वेत वाराह कल्पमें भगवान शिवके जो युगावतार हुए उनकी संक्षिप्त-सूची इस प्रकार है—

वाराह कल्पके प्रथम मन्वन्तरमें तो नीललोहित रुद्र ब्रह्मासे प्रकट हुए—यह बात पहले आ चुकी है। दूसरे मन्वन्तरमें शिवका श्वेत मुनिके रूपमें प्राकट्य हुआ। तीसरे मन्वन्तरमें द्वापरमें दमन नामसे शिव अवतरित हुए। इस मन्वन्तरमें भार्गव नामके व्यास थे। दमन नामी रुद्रने उनकी सहायता की।

प्रत्येक मन्वन्तरमें ही व्यासोंके नाम अलग-अलग हैं और रुद्रने अवतार धारण करके उनकी सहायता की है—

चतुर्थ मन्वन्तरके द्वापरमें अंगरा व्यास थे और सुहोत्र नामसे शिवावतार हुआ।

पंचम	,,	,,	सविता	,,	,,	कंक तापस	,,	,,	।
छठे	,,	,,	मृत्यु	,,	,,	लोकाक्षि	,,	,,	।
सातवें	,,	,,	शतक्रतु इन्द्र	,,	,,	जैगीषव्य	,,	,,	।
आठवें	,,	,,	वशिष्ठ	,,	,,	दधिवाहन	,,	,,	।
नौवें	,,	,,	सारस्वत	,,	,,	ऋषभ	,,	,,	।
दसवें	,,	,,	त्रिधाम	,,	,,	भृगुतुंग	,,	,,	।
ग्यारहवें	,,	,,	त्रिवृत	,,	,,	तप	,,	,,	।

यह अवतार हरिद्वारमें हुआ था।

बारहवें मन्वन्तरके द्वापरमें शततेजा व्यास थे और अत्रि नामसे शिवावतार हुआ

तेरहवें	,,	धर्मनारायण	,,	बलि महामुनि	,,	।
चौदहवें	,,	रक्ष	,,	आंगिरस गौतम	,,	।

पन्द्रहवें मन्वन्तरके द्वापरमें त्र्ययारुणि व्यास थे और वेदशिरा नासे शिवावतार हुआ।

सोलहवें	,,	देवमुनि	,,	गोकर्ण	,,	।
सत्रहवें	,,	कृतंजय	,,	गुहावासी	,,	।
अठारहवें	,,	ऋतंजय	,,	शिखण्डी	,,	।
उन्नीसवें	,,	भरद्वाज	,,	जटीमाली	,,	।
बीसवें	,,	गौतम	,,	अट्टहास	,,	।
इक्कीसवें	,,	वाचःश्रवा	,,	दारुक	,,	।
बाईसवें	,,	शुष्मायण	,,	महामुनि	,,	।

(वाराणसीमें अवतरित)

तेईसवें ,, तृणविन्दुमुनि ,, श्वेत नामसे शिवावतार हुआ।

(कालिंजरमें अवतरित)

चौबीसवें ,, यक्ष ,, शूली नामसे शिवावतार हुआ।

(नैमिषारण्यमें)

पच्चीसवें	,,	शक्ति	,,	दण्डीमुण्डीश्वर	,,	।
छब्बीसवें	,,	योगी पराशर	,,	सहिष्णु	,,	।

(भद्रवटपुरमें अवतरित)

सत्ताईसवें ,, जातुकर्ण ,, सोमशर्मा नामसे शिवावतार हुआ।

(प्रभासमें अवतरित)

वर्तमान अट्ठाईसवें मन्वन्तरके द्वापरमें कृष्णद्वैपायन नामके व्यास हुए हैं और योगात्मा ब्रह्मचारी इस मन्वन्तरके रुद्रका नाम है।

इनमें-से प्रत्येक समय रुद्रसे चार-चार कुमार प्रकट हुए हैं। सबमें रुद्रने व्यासकी सहायता की है, योगमार्गका प्रचार और रक्षण किया है। इन सर्व मन्वन्तरोंमें रुद्रसे जो उनके कुमार प्रकट हुए उन्होंने रुद्रका ही शिष्यत्व ग्रहण किया है और सब पाशुपत व्रतधारी थे। भस्म, रुद्राक्ष, त्रिपुण्ड धारण करके शिवलिंगार्चन करते थे।

पहले जो पाँच अवतार कहे गये हैं ये शिवके पाँच स्वरूप हैं। इनमें-से ईशान सूर्यके अधिष्ठाता देवता है। तत्पुरुष त्रिगुणोंके, अघोर बुद्धिके, वामदेव अहंकारके और सद्योजात प्रकृतिके अधिष्ठाता हैं।

भगवान शिवकी आराधनाके लिए अष्ट मूर्तियाँ मानी गयी हैं। इनके नाम हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये

मूर्तियाँ भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ सूर्य और चन्द्रकी अधिष्ठाता हैं।

भगवान शंकरके भी दस अवतार माने जाते हैं। शक्तिकी आराधनामें जो दस महाविद्याएं मानी जाती हैं उनके साथ शिवके ये दस पुरुष स्वरूप उपास्य होते हैं। इनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

(१) **महाकाल**–इनकी शक्ति महाकाली हैं। ये भुक्ति-मुक्तिदायिनी हैं।
(२) **तारक**–इनकी शक्ति तारा हैं। ये भी आराधकको भुक्ति-मुक्ति प्रदान करती हैं।
(३) **भुवनेश**–इनकी शक्ति भुवनेश्वरी हैं।
(४) **विद्येश**–इनकी शक्ति विद्याषोडशी हैं।
(५) **भैरव**–इनकी शक्ति भैरवी हैं।
(६) **छिन्नमस्त**–इनकी शक्ति छिन्नमस्ता हैं।
(७) **धूमवान**–इनकी शक्ति धूमवती हैं।
(८) **बगलामुख**–इनकी शक्ति बगलामुखी हैं।
(९) **मातंग**–इनकी शक्ति मातङ्गी हैं।
(१०) **कमलेश**–इनकी शक्ति कमला हैं।

(शिवपुराण)

१. **स्थाणु**—भगवान् शिवने सतीका ध्यान करके अनेक नीललोहित रुद्र उत्पन्न किये। वे सब त्रिनेत्र, दीर्घह्रस्व, प्रलम्ब या वामन, हिरण्यकेश, नित्य बुद्ध, निर्मल, वीतराग थे। ब्रह्माने इन सबकी स्तुति की।

सृष्टिकर्ताने शिवसे कहा—'आपको मेरा प्रणाम। आप प्रजा-सृजन योग्य नही हैं। आपने इन रुद्रोंका ऐसा सृजन किया है जिनकी कभी मृत्यु नहीं होगी। अतः मेरी प्रार्थना है कि यदि सृजन ही करना है तो ऐसा सृजन कीजिये जिनकी मृत्यु भी होती हो।'

शिर्व—'मैं ऐसा नहीं कर सकता। ऐसी प्रजा तुम्हीं बनाओ।' ऐसा कहकर वे सृजन-निवृत्त हो गये। इसीसे निष्क्रिय स्थित शिवका नाम स्थाणु पड़ा। सृष्टि-विमुख होनेके कारण उन्हें वामदेव कहा जाता है।

२. **तत्पुरुष**—इकतीसवें कल्पका नाम पीतवासा कल्प था। पुत्रकी कामनासे तप करते हुए ब्रह्मासे एक पीतवस्त्रधारी तेजस्वी कुमार प्रादुर्भूत हुआ। उसने पीले पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी। उसकी पगड़ी भी पीली ही थी। सोनेका यज्ञोपवीत उसने धारण कर रखा था। ब्रह्माने उस

महेश्वरकी स्तुति की। उसी समय महेश्वरके मुखसे च्युत माहेश्वरी गौको देखा। इस गौके चार पैर, चार मुख, चार हाथ, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींग, चार दाढ़ें थीं। यह बत्तीस गुणोंसे युक्त सर्वतोमुखी ईश्वरी ब्रह्मा आदि देवताओंसे स्तुत हुई। इसी कारण महेश्वरके इस स्वरूपको तत्पुरुष कहते हैं।

३. **अघोर**—असित कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्माण्ड एकावर्णमें निमग्न हो गया था। इस कल्पमें ब्रह्माजीका रंग काला था। तपस्या करते-करते वे कृष्ण वर्ण हो गये थे। उनसे जो महातेजा कुमार प्रकट हुआ वह काला उष्णीश, काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए, काला अंगराग लगाये कृष्ण-वर्ण था। ब्रह्माने जब उनकी स्तुति की तो वे रुद्र बोले—'मैं इसी रूपसे सबका संहार करता हूँ और आराधकके सभी पापोंका नाश करता हूँ।' शिवके इस स्वरूपको अघोर कहा जाता है क्योंकि समस्त सृष्टि उन्हींक स्वरूप है, सृष्टिमें उनके लिए कुछ भी घोर नहीं है।

४. **ईशान**—विश्वरूप कल्पमें पुत्रार्थ तपस्या करते हुए ब्रह्माके ध्यानसे महानादा विश्वरूपा सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ। इनके साथ ही शुद्ध स्फटिकके समान सर्वाभरण-भूषित त्रिनेत्र ईशान प्रकट हुए। ब्रह्माने इनकी स्तुति की। पूर्ववर्णिता गौके समान थे सरस्वती भी चतुष्पादा, चतुर्मुखा, चतुःश्रृंगा, चतुःनेत्रा थीं। ब्रह्माने ईशानसे कहा—'माण्डव्य ग वाले! तुम मेरे तपसे उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे पुत्र हो।' शिवने ब्रह्माको बतलाया—'यह विश्वरूपा महेश्वरी आपके लिए प्रकट हुई हैं। ये आपकी शक्ति हैं। (लिंगपुराण)

५. **सद्योजात**—ये वर्तमान कल्पके स्वयं नीललोहित रुद्र हैं।

—※—

ग-प्रलयंकर-शिव-आशुतोष

सदा ही नव-निर्माण विनाशकी अपेक्षा करता है। बिना जीर्ण-जर्जरको विनष्ट किए नव-निर्माणकी नींव नहीं डाली जा सकती।

जगतकी सृष्टि, स्थिति, प्रलयके लिए परम तत्व ही तीन रूपोंमें प्रकट होता है। इसमें तमोगुणको अधिकृत करके जो रूप प्रकट हुआ, उसीको रु कहते हैं। यह रूप बराबर सृष्टिमें व्यवस्था बनानेके लिए विनाशका अधिष्ठाता है।

प्रलय चार प्रकारकी कही जाती है—नित्य, नैमित्तिक, महा और आत्यन्तिक।

नित्य प्रलय—यह प्रलय न हो तो कोई प्राणी-पदार्थ जीवित नहीं रहेगा। हमारे-आपके शरीरमें और संसारमें भी एक-एक अंग प्रति क्षण नष्ट हो रहा है और नवीन बन रहा है। पहले पुरानेको नष्ट होना पड़ता है, तब नवीनके लिए स्थान प्राप्त होता है। यदि निर्माणके आगे यह विनाशका देवता न चले, शिशुका शरीर भी बढ़ेगा? इसलिए रुद्रका नित्य संहार सृष्टिके लिए आवश्यक है—यह आप समझ सकते हैं।

नैमित्तिक प्रलय—जब किसी भी निमित्तसे बहुत बड़ा संहार होता है, उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। यह संहार भूकम्पभसे, ज्वालामुखीसे, बाढ़से, या किसी भी कारणसे पृथ्वीके एक प्रदेशमें हो सकता है, पृथ्वीके केन्द्र-च्युतिसे सम्पूर्ण पृथ्वीमें हो सकता है, किन्हीं ग्रहोंके परस्पर टकरानेसे दो, चार, दश ग्रहों-उपग्रहोंके विनाशमें भी हो सकता है। नैमित्तिक प्रलय निमित्तके अनुसार छोटी या बड़ी होगी। यह भी अन्ततः निर्माणके लिए ही भूमि प्रस्तुत करती है। आज विज्ञानने स्वीकार कर लिया है कि आदिमें समस्त ब्रह्माण्ड एक ही पिण्ड था, किसी बिस्फोटसे ही उसके टुकड़े बिखरे और इसीसे काल पाकर पृथ्वीमें प्राणियोंकी सृष्टि हुई। इस प्रकार प्रलयंकरका यह रूप भी सृष्टिके लिए भूमि ही प्रस्तुत करता है।

महाप्रलय—यह हमारे आपके लिए अत्यन्त अकल्पनीय है। विज्ञानके लिए इसका गणित कर पाना कठिन है क्योंकि अभी तो आकाशमें दीखने वाले अनन्त नीहारिका मण्डलोंका भी पता नहीं लगा है। अपने दीखने वाले देवयानी नीहारिका भमण्डल (जो रातमें आकाशमें आकाश-गंगाके

रूपमें दीखता है) के ही कई तारक ऐसे हैं जिनका प्रकाश सृष्टिके लगभग पौने दो अरब वर्ष बीत जानेपर भी अब तक पृथ्वीपर नहीं पहुँचा है। ऐसी अवस्थामें इन अनन्त तारकोंका आदि-अन्त गणित कर लेना सम्भव नहीं है और महाप्रलय इन सबकी समाप्तिपर होती है।

महाप्रलयका अर्थ है समस्त ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, तारकोंमें जो पृथ्वी पड़ती है, उसका रस तत्वमें लीन होकर, रसका अग्निमें, अग्निका सूक्ष्मतम गति तत्वमें, गतिका शब्दकी तन्मात्रामें और उसका अचिन्त्य प्रकृतिमें लीन हो जाना। यह अवस्था एक बार ब्रह्माण्डकी आती है। इसकी काल-गणना हिन्दू शास्त्रोंमें हैं। ४,३२,००,००,००० वर्षकी एक चतुर्युगी होती है। इस प्रकारकी एक हजार चतुर्युगी ब्रह्माका एक दिन है। ऐसे तीस दिनोंका एक मास और बारह मासका वर्ष। अपने वर्षसे ब्रह्माकी आयु सौ वर्षकी है। ब्रह्माके मरनेपर यह महाप्रलय होती है। ब्रह्माके एक दिनके अन्तमें केवल नैमित्तिक प्रलय होती है।

महाप्रलय भी गतिखिन्न, श्रमश्रान्त, जर्जर, बूढ़े ब्रह्माण्डको विराम देकर नवीन बनानेके लिए है। प्रलयंकरका प्रचण्ड ताण्डव इसे उपस्थित करता है और इसलिए उपस्थित करता है पुनः नूतन ब्रह्माण्डका सृजन हो सके।

इस महाप्रलयके कर्ताको ही हिन्दू-शास्त्र प्रलयंकर कहते हैं। यह प्रलयंकर सृष्टिके लिए शान्त साम्यावस्था प्रदान करने वाले परम शिव हैं।

आत्यन्तिक प्रलय—यह केवल वैयक्तिक रूपमें होती है। इसमें समूह साथी नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि जीवका आवागमनसे, जन्म-मरणसे सदाके लिए मुक्ति। ऐसी प्रलय जिसमें पुनः सृष्टि सम्भव नहीं है। इस मुक्तिका अधिदेवता इस मुक्तिके प्रदाता महेश्वर मंगलमय हैं, इसमें किसीको सन्देहके लिए स्वतः स्थान नहीं है।

आशुतोष—प्रलयके यह देवता शिव हैं और शिव ही नहीं हैं, आशु-तोष हैं अर्थात् इन्हें बहुत सरलतासे शीघ्र सन्तुष्ट किया जा सकता है यदि आपमें श्रद्धा है। आर्तका आह्वान आशुतोष सदा ही स्वीकार करते हैं।

केवल एक कठिनाई है। भगवान शिव नित्य अन्तर्मुख रहते हैं। उन्हें बाह्य प्रपन्च प्रिय नहीं हैं। जैसे आत्माराम, आप्तकाम, महात्मा भी दृश्य जगतमें कोई रुचि नहीं लेते, योगियोंके परम गुरुकी भी यही स्थिति है। अतः कोई कैसे प्रार्थना करता है, इसे शिव देखते नहीं हैं। प्रार्थना करने

वालेको अपने हित-अहितका पूरा दायित्व समझना चाहिए, शिवका स्वभाव 'एवमस्तु' कह देना है, क्योंकि उन प्रलयंकरके लिए मृत्युका भी कोई महत्व नहीं है, सृष्टिको वे स्वयं ही समाप्त करते हैं, अतः प्राणियोंके शरीरके मरने-जीनेमें उन्हें कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता ।

भगवान शंकर विभूति धारण करते है। समस्त सृष्टिकी प्रलय करके भस्मीभूत ब्रह्माण्डकी विभूति अथवा यदि आप अपने अहंकारको भस्म करके ही विभूति उन्हें अर्पित कर सकें। यह बिभूति अर्पण करने वाला धन्य हो जाता है और यही समझ सकता है, प्रलयंकर ही शिव हैं।

घ—पंचमुख

भगवान महेश्वरका परात्परं रूप वैसे पंचमुख ही है, किन्तु कल्प-कल्पमें ब्रह्माण्डमें भी वे किन्हीं निमित्तोंसे अपने इस रूपको पृथ्वीपर प्रकट करते हैं । इस प्रकारकी कथा प्राप्त होती है ।

एक दिन ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजी और कैलाससे भगवान शंकर संयोग-वश एक साथ ही बैकुण्ठ पहुँचे । लीलामय श्रीपतिने उस दिन कौतूहलवश अपनी किशोरावस्था प्रकट की। उन सौन्दर्य-सिन्धुकी यह अवस्था देखकर ब्रह्मा और हर भी मोहित हो गये । एकटक उसे देखने लगे । एक तो सौंदर्य-घन स्वयं श्रीहरि, दूसरे उनकी किशोरावस्था। अब न ब्रह्माजीको उस सौन्दर्य राशिको देखनेसे तृप्ति होती थी, न शिवको। अचानक शंकरजीने सोचा, मुझसे तो अच्छे ये ब्रह्माजी हैं, चतुर्मुख होनेके कारण आठ नेत्रोंसे यह शोभा देख रहे हैं । मेरे पास तीन ही नेत्र हैं, किंतु मैं इन्हींपर सन्तोष क्यों करूँ ? ब्रह्मासे एक अधिक मुख मैं क्यों न हो जाऊँ। संकल्प करते ही उनके पंचमुख हो गये । अब पन्द्रह नेत्रोंसे वह शोभाको देख रहे थे ।

श्रीपतिने देखा, जब तक मैं किशोर रूपमें रहूँगा, ये ऐसे ही मुग्ध खड़े रहेंगे। इनका सत्कार किया जाना चाहिए। इसलिए हरिने अपना नित्य तरुण रूप धारण कर लिया। इससे दोनों चौंके। विष्णु भगवानने हँसते हुए कहा—'अब श्रीकैलासेश्वरका यह पंचमुख वेश भक्तोंके लिए कल्याणप्रद होगा ।'

भगवान शिवने भक्तोंकी आराधनाके लिए श्रीहरिका वचन सत्य करनेके लिए अपना पंचमुख वेश नित्य कर दिया।

ङ—गुरु-तत्व—दक्षिणामूर्ति

गुरु शब्दका अर्थ है अन्धकारका नाशक अर्थात् अविद्यान्धकारको दूर करनेवाला।

प्रारम्भमें ही कह देना है कि जैसे अनेक मन्दिरोंमें अनेक शिव-लिंग हैं छोटे-बड़े, श्वेत-कृष्ण, पतले-मोटे कई प्रकारके, किन्तु इनसे शिव अनेक नहीं हैं, एक ही हैं, इसी प्रकार सृष्टिके आदिसे अब तक और आगे भी जो प्राणियोंके विभिन्न मानव गुरु हैं, हुए हैं और होंगे, वस्तुतः वे जो विश्वैक गुरु हैं उन परम गुरुकी मूर्ति मात्र हैं।

जीव अर्थात् व्यष्टि शरीरसे परिच्छिन्न जीव किसीका गुरु हो नहीं सकता, क्योंकि जो स्वयं अविद्याके अन्धकारमें भटक रहा है, दूसरेको इस अन्धकारसे पार करनेका पथ प्रदर्शित नहीं कर सकता। देहाभिमानके सर्वथा गलित होने, देहासक्तिका समूलोन्मूलन होनेपर ही अविद्याकी निवृत्ति मानी जाती है और जब देहकी आसक्ति नहीं रही, देहगत चेतना अवरुद्ध किसे करेगी ? तब देहकी प्रतीति भले होती हो, उसके माध्यमसे जो परम तत्व है, वही प्रकाशित होता है और इसी रूपमें कोई शरीर किसी पथ-भ्रान्तका पथदर्शक बन सकता है। इस प्रकार जितने भी गुरु हैं, वे यदि सचमुच गुरु हैं, गुरुत्वकी योग्यता उनमें है तो वे व्यक्ति नहीं हैं, वे व्यापक ज्ञानस्वरूप, शिवतत्वके सचल स्वरूप हैं, उससे एकत्व प्राप्त कर चुके हैं। उनके माध्यमसे जिज्ञासुके अधिकारानुरूप शिवका ही सन्देश प्रकट होता है।

परम गुरुके स्वरूपमें शिवकी साकार मूर्ति दक्षिणामूर्ति हैं। दक्षिण भारतके अधिकांश मन्दिरोंमें मन्दिरकी भीतरी गर्भगृह-परिक्रमामें प्रायः मन्दिरकी दक्षिणी दीवारमें यह मूर्ति मिलती है। प्रायः सर्वत्र एक ही स्वरूप है—वटवृक्षके नीचे सिद्धासनसे भगवान शंकर ज्ञान-मुद्रा प्रदर्शित करते हुए मौन आसीन हैं। उनके आसनवेदिकाके नीचे अज्ञान पुरुष दबा हुआ है। वेदिकाके नीचे सनकादि कुमार ऋषियोंके साथ मौन बैठे महेश्वर-की ओर अपलक देख रहे हैं। यहां महेश्वर अपने मौनसे ही अवाङ

मनसगोचर तत्वके उपदेष्टा हैं। सुयोग्य शिष्यके अन्तःकरण संशयरहित हो गये हैं।

ये परम गुरु दक्षिणामूर्ति हमारे हृदयमें ही विराजमान हैं। उनके मौन उपदेश अविराम प्रवाहित हैं। अपनी इन्द्रियों और मनके चाञ्चल्यके कारण हम उन्हें श्रवण नहीं कर पाते। यदि सचमुच आपको संसारमें कोई गुरु प्राप्त नहीं होता, अपनी इन्द्रियोंको और मनको शान्त होने दीजिये। अन्तःकरणमें स्थित महेश्वर दक्षिणामूर्तिका उपदेश आपको अवश्य पथ-प्रदर्शित करेगा।

च--आद्याचार्य

कलाओंके, विद्याओंके और पराविद्या आत्मज्ञानके भी परमाचार्य भगवान महेश्वर ही हैं। उन्हींसे समस्त कलाएं और विद्याएं प्रारम्भ हुई हैं।

संस्कृतका सामान्य विद्यार्थी भी जानता है कि समस्त मातृकाओंका अर्थात् अक्षरोंका उद्भव भगवान शंकरके ताण्डव नृत्य करते समय उनके डमरूसे हुआ। उनके हाथमें बजते हुए डमरूसे प्रणव ध्वनि हुई। प्रणवसे मातृकाएँ प्रकट हुईं। उनसे गायत्री मूर्तिमान हुई और वेदमाता गायत्रीसे वेद प्रकट हुए। डमरू-ध्वनिसे उद्भूत सूत्र ही व्याकरणके मूल सूत्र हैं।

योगका उपदेश और समस्त तन्त्रोंका उपदेश भगवान शिवने पूछनेपर दक्षकन्या सतीको अथवा पार्वतीको किया था। इसी परम्परासे ये विद्याएँ मनुष्य तक पहुँची।

भगवान परशुराम, महर्षि विश्वामित्र और पाण्डव अर्जुन शिवके धनुर्वेदके साक्षात् शिष्य हैं। देवर्षि नारदने तथा गर्गाचार्यने भी महादेवसे ही ज्योतिर्विद्याका ज्ञान प्राप्त किया था।

दक्षके यज्ञमें शिवगणोंने देवताओंका अङ्ग-भङ्ग कर दिया था। तब उनके अङ्गोंका पुनः सन्धान करते हुए महेश्वरने आयुर्वेदको प्रकट किया। रसराज पारद तो शिवका वीर्य ही है। पार्वती शरीरोद्भव गन्धकसे मिल-

कर वह अनेक औषधियोंके निर्माणका आधार बनता है। इस प्रकार समस्त विद्याओंके आदिगुरु भगवान शंकर ही हैं।

तत्वज्ञानकी अमृत परम्परा प्रारम्भ होनेकी अद्भुत कथा है। शुकदेवजी कैलासपर निवास करने वाले सचमुच ही शुक थे। गोलोकमें श्रीराधिकाके लीला-शुक होनेका आपको सौभाग्य प्राप्त था। प्रणय-रोषमें श्रीराधाने ही एक दिन इन्हें मर्त्य लोकमें जानेका शाप दे दिया, अपने पिंजरेसे निकाल दिया क्योंकि इन्होंने प्रणय-रोषमें रूठी बैठी श्रीराधाके सम्मुख श्रीश्यामसुन्दरकी प्रशंसा की थी। जब शुकने प्रार्थना की, दयामयीने आदेश दिया—'कैलासपर चले जाओ। वहाँ भगवान भूतनाथसे अमर-कथा श्रवण करनेके पश्चात् कृष्ण द्वैपायनकी पत्नीसे तुम्हारा प्राकट्य होगा। तुम्हें यहाँकी अखण्ड स्मृति रहेगी। माया तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी।'

इस प्रकार गोलोकसे श्रीराधाके लीला-शुक कैलासपर आकर भगवान शंकरके वटवृक्षपर निवास करने लगे। भगवान शंकर पार्वतीके आग्रहसे उन्हें जीवको अमरत्व प्रदान करने वाली परा विद्याका उपदेश करने लगे। जब तक वे भक्ति-तत्वका निरूपण करते रहे, श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रूपिणी प्रेमाभक्तिका वर्णन करते रहे, पार्वती ध्यानपूर्वक सुनती रहीं, लेकिन जब कैवल्य प्रदायिनी पराविद्याका अर्थात् निर्गुण तत्वका प्रतिपादन करने लगे, उमाको निद्रा आ गयी क्योंकि निर्गुण तत्वमें रुचि-उत्पादनकी स्वतः शक्ति नहीं है। पहिलेसे जिसका विवेक जाग्रत हो, जिसमें अत्यन्त तीव्र वैराग्य हो, आत्मज्ञानका वही अधिकारी होता है। भगवती उमा स्वयं श्रद्धास्वरूपा, प्रेमप्रदात्री हैं, उन्हें निर्गुण तत्वके प्रतिपादनमें उदासीनता हो गयी—आश्चर्यकी बात नहीं है।

कथा श्रवणके समय पर्वताधिराजतनया ध्यानसे सुन रही हैं–यह सूचित करनेके लिए मध्यमें हुंकारी देती थीं। जब वे सो गयीं, वटवृक्षके ऊपर बैठे शुकने समझा, अब भगवान शंकर कथा बन्द कर देंगे। अतः उसने पार्वतीके स्वरमें ही हुंकृति देनी प्रारम्भ कर दी। भगवान शिव तन्मय बोल रहे थे। उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि हुंकृति कोई दूसरा दे रहा है। कथा समाप्त होनेपर शिवने पार्वतीसे पूछा—'तुमने सावधान होकर

सुना ?' किन्तु गिरिराजतनया तो सो रही थीं। अब शंकर चौंके—'यह हुंकृति कौन दे रहा था ?'

शिवने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। वटवृक्षपर बैठा तोता दृष्टिमें आ गया। प्रश्न उठा—यह पक्षी कथा-श्रवण कर चुका, अपने स्वभावके अनुसार उसे जहाँ-तहाँ बोलता फिरेगा। अनधिकारी तो आत्मज्ञानका श्रवण करके पथभ्रष्ट हो जायगा। इस प्रकार यह विद्या, जो अमृततत्वदायिनी है, संसारमें अनर्थकी सृष्टि करेगी।'

भगवान शंकरको पक्षीको मार देना उचित जान पड़ा। उन्होंने पिनाक उठाना चाहा, किन्तु शुक उड़कर भाग चला। इसलिए त्रिशूल लेकर त्रिलोचन उसके पीछे दौड़े। शुक उड़ता हुआ कैलाससे सरस्वती-अलकनन्दा संगमपर स्थित शम्याप्राश वनमें महर्षि वेदव्यासके आश्रममें पहुँचा। उसी समय व्यास-पत्नीने जम्हाई ली। अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर शुक उनके मुख-मार्गसे उदरमें प्रविष्ट हो गया। आशुतोषने यह देखा। सन्तुष्ट होकर बोले—'अब तू इस तिर्यक् रूपमें नहीं, महर्षिका पुत्र होकर मानव रूपमें ही जन्म लेगा। मेरे द्वारा उपदिष्ट ज्ञान तेरे मुखसे अब अनधिकारी नहीं पा सकेगा।'

शुकदेवजी माताके गर्भमें बारह वर्ष रहे। बड़ी कठिनाईसे जब भगवान श्रीकृष्णको व्यासजी ले आये, उन्होंने आश्वासन दिया कि भूमिष्ठ होनेपर भी शुकको मायाका स्पर्श नहीं होगा, तब माताके उदरसे ये बाहर आये और नालोच्छेदसे पूर्व ही विरक्त होकर वनमें चले गये।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

———

रुद्राक्षकी उत्पत्ति और उसके भेद

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मासे प्रकट होनेके पश्चात् भगवान शिव दिव्य सहस्र वर्ष तक एकाग्रमनसे तपस्या करते रहे। इसके अनन्तर लोकके मंगलके लिए उन्होंने लीलापूर्वक अपने नेत्र बन्द किये। इस प्रकार नेत्र बन्द करनेसे उनके नेत्रोंसे जो जल-विन्दु गिरे, उनसे रुद्राक्ष और भद्राक्ष (शुभाक्ष) इन दोनोंकी उत्पत्ति हुई। ये श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इस भेदसे चार प्रकारके होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णोंको अपने क्रमसे अपने वर्णके अनुरूप रुद्राक्ष अधिक प्रभावशाली होता है।

आंवलेके समान फल वाला रुद्राक्ष उत्तम माना जाता है। बेरके समान फलका मध्यम माना जाता है। छोटे फलोंका रुद्राक्ष सम्पूर्ण अर्थोंका साधक है, किन्तु कृमिभक्षित, छिन्न-भिन्न, कण्टकहीन, व्रणयुक्त, गोलाईसे रहित रुद्राक्ष त्याज्य है।

जिस रुद्राक्षमें स्वतः नैसर्गिक रूपसे छिद्र हो वह सर्वोत्तम है। जिसमें पुरुषके द्वारा छिद्र किया जाय, वह मध्यम कहा जाता है।

शरीरमें ११०० रुद्राक्षोंका धारण श्रेष्ठतम है। इनके धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—

५५० दानोंका मुकुट सिरपर धारण करना चाहिए।

३६० दाने यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये जाने चाहिए।

शिखामें तीन, कानोंमें छः-छः और कण्ठमें १०१ दाने धारण करने चाहिए।

भुजाओंमें ११-११, कुहनी तथा कलाइयोंमें ११।

यज्ञोपवीतमें तीन और कटिमें पाँच रुद्राक्ष धारण करने चाहिए।

उत्तम प्रकारका रुद्राक्ष धारण करना सम्भव न हो तो माध्यम प्रकारकी विधि है—शिखामें १, सिरपर ३०, गलेमें ५०, भुजाओंमें १६, मणिबन्धमें १२, कन्धेमें ५००, यज्ञोपवीतके रूपमें १०८।

एक तीसरा प्रकार है—शिखामें १, सिरपर ४०, कण्ठमें ३२, हृदयपर १०८, कानमें ६-६, भुजाओंमें १६-१६ और हाथसे १२-१२ रुद्राक्षोंका धारण करे।

रुद्राक्ष एकमुखीसे लेकर चौदह मुखी तकके होनेका वर्णन मिलता है। इन सबका प्रभाव अलग-अलग है। इनके धारणके स्थान और मन्त्र अलग-अलग हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

एक मुख—शिवस्वरूप होता है, भुक्ति-मुक्तिदायी होता है। इसके धारणका मन्त्र है–ॐ ह्रीं नमः। यह सर्वोपद्रव नाशकर्ता है। जहाँ रहता है वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती हैं।

दो मुख—देवदेवेशका स्वरूप है। सर्वकामप्रद है। गोहत्याके पापका भी निवारक है। इसका मन्त्र है—ॐ नमः।

तीन मुख—यह विद्यादाता है। इसके धारण का मन्त्र है–क्लीं नमः।

चार मुख—ब्रह्माका स्वरूप है। अर्थ, धम, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका दाता है। मनुष्य-हत्याके पापका भी निवारक है। इसका मन्त्र है–सः।

पाँच मुख—यह प्रायः बहुत अधिक पाया जाता है। यह रुद्र रूप है। कालाग्नि-स्वरूप है। सब कामनाओंका दाता है। मोक्षदायी है। सर्व पापहारी है। इसका मन्त्र है–ॐ ह्रीं नमः।

षट् मुख—स्वामी कार्तिकका स्वरूप है। यह दाहिनी भुजामें धारण किया जाता है। ब्रह्महत्या आदि पापोंका निवारक है। इसके धारणका मन्त्र है–ॐ हूं नमः।

सप्तमुख—यह अनंगस्वरूप है। इसका धारण करने वाला दरिद्र भी धनी हो जाता है। यह भी दाहिनी भुजामें ही धारण किया जाता है। इसके धारणका मन्त्र है–ॐ ह्रीं हूं नमः।

अष्टमुख—यह भैरवस्वरूप अथवा वसुस्वरूप है। सब विघ्नोंको दूर करके पूर्णायु देता है। अल्पायु पुरुष भी इसको धारण करके अरिष्टसे मुक्त हो जाता है। इसे वाम भुजामें धारण किया जाता है। इसके धारणका मन्त्र सप्तमुख रुद्राक्षके समान ही है।

नवमुख—यह रुद्राक्ष दुर्गाका स्वरूप है। सर्वेश्वरत्व देता है। यह कण्ठमें और सिरपर धारण किया जाता है। इसके धारणका मन्त्र भी वही है जो सप्तमुख और अष्टमुखका है।

दशमुख—यह जनार्दनंका स्वरूप है। समस्त कामनाओंका दाता है। यह मस्तकपर धारण किया जाता है। इसके धारणका मन्त्र है–ॐ ह्रीं नमः।

एकादशमुख—यह रुद्रस्वरूप है। सर्वत्र विजय देने वाला है। शिखामें धारण किया जाता है। इसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं हूं नमः।

द्वादशमुख—आदित्यस्वरूप है। केशोंमें धारण किया जाता है। यह नेत्रके समस्त रोगोंका निवारक है। बुद्धि और स्वास्थ्य देता है। इसका मन्त्र है—ॐ क्रों क्षों रों नमः।

त्रयोदशमुख—विश्वेदेवाका स्वरूप है। सौभाग्य और मंगलदायी है। इसका मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमो नमः।

चतुर्दशमुख—यह रुद्राक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। यह परम शिवका स्वरूप है। मस्तकपर धारण किया जाता है। सर्वपापहारी, परमपददायी है। इसका मन्त्र है—ॐ नमः।

उपर्युक्त विवरणमें जिन रुद्राक्षोंके धारणका स्थान नहीं दिया गया है उनके शरीरपर धारणका क्रम पहले दिये गये विवरणके अनुसार है।

(शिव पुराण)

ज-उपलिंग

देशमें स्वयंभू लिंग बहुत हैं। स्वयंभू लिंगका अर्थ है, वह शिवलिंग जिसकी किसीने स्थापना नहीं की है। जो किसी आराधककी उत्कृष्टतम तपस्या एवं श्रद्धासे स्वयं प्रकट हुआ है। ऐसे शिवलिंगोंकी संख्या करना सम्भव नहीं है। जगत ही लिंगमय है। स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीपर भी ये दिव्य लिंग बहुत हैं, लेकिन पृथ्वीपर ज्योतिर्लिंग केवल बारह हैं। उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। इन द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके आठ उपलिंग माने जाते हैं। इसका वर्णन नीचे है। कहा जाता है कि ये ज्योतिर्लिंगोंसे ही प्रकट हुए हैं।

(१) मल्लिकार्जुनसे प्रकट रुद्रेश्वर जो भृगुकच्छ (भड़ौच) में हैं।
(२) महाकालसे प्रकट दुग्धेश्वर जो नर्मदा-तटपर हैं।
(३) ओंकारेश्वरसे प्रकट कर्दमेश जो बिन्दुसरपर सिद्धपुरमें हैं।
(४) केदारेश्वरसे प्रकट भूतेश्वर जो यमुना-तटपर मथुरामें हैं।

(५) भीमशंकरसे प्रकट भीमेश्वर सह्यगिरिपर।

(६) नागेश्वरसे प्रकट भूतेश्वर मल्लिकासरस्वतीके तटपर।

(७) रामेश्वरसे प्रकट गुप्तेश्वर। इनके ठीक स्थानका निश्चय करना कठिन है, क्योंकि इस नामके कई लिंग देशमें हैं।

(८) घुश्मेश्वरसे प्रकट व्याघ्रेश्वर। इनकी स्थितिके सम्बन्धमें भी गुप्तेश्वर जैसी ही अवस्था है।

झ—नर्मदेश्वर लिंग

ओंकारेश्वर रोडसे २० मील अथवा मध्य रेलवेकी बम्बई-दिल्ली लाइनपर खण्डवासे २१ मीलपर वीर स्टेशन है, वहाँ से १५ मील दूर पुनासा गाँव तक पक्की सड़क है, आगे पांच मील पैदल चलना पड़ता है। इस स्थानपर नर्मदाका सबसे बड़ा प्रपात है। लगभग ५० फीटकी ऊँचाईसे जल गिरता है। आसपास सघन वन है। प्रपातके नीचे जो कुण्ड है उसके आगे धावड़ी कुण्ड है। नर्मदेश्वर लिंग यहींसे निकाले जाते हैं। इसको वाण-लिंग भी कहते हैं। यद्यपि नर्मदासे प्राप्त कहींका भी लिंग नर्मदेश्वर है, परन्तु परम्परा इस कुण्डसे ही प्राप्त करनेकी प्रचलित है। इस वाणलिंगको लाकर पत्थर, सोने, चांदी, तांबे आदि किसी धातुकी पीठिका (अर्घा) बना-कर उसमें स्थापित करना चाहिए।

नर्मदेश्वर लिंग पूज्य है या नहीं, इसको जाननेकी एक पद्धति है। बहुत अच्छा कांटा होना चाहिए। शिवलिंगको चावलोंसे तौल लीजिए। थोड़ी देर बाद उन्हीं चावलोंसे फिर उसी लिंगको तौलिये। यदि कुछ चावल लिंगके वजनसे बढ़ जाते हैं तो यह लिंग गृहस्थको ऐश्वर्य देनेवाला है, उसके लिए पूज्य है। यदि कुछ चावल घटते हैं तो यह सांसारिक विप-त्तियोंसे पृथक् करके वैराग्य देनेवाला लिंग है, इसका पूजन विरक्तको करना चाहिए। किन्तु यदि शिवलिंग चावलके समान ही रहता है तो थोड़ी देर बाद फिर तौलना चाहिए। यदि तीसरी बार भी वह समान ही रहता है तो वह लिंग पूजनीय नहीं है। अतः उसे जलमें विसर्जित करके दूसरे लिंगका ग्रहण करना चाहिए।

खुरदरा, चिपटा, केवल एक ओर गोल, दूसरी ओर चिपटा, जिसका सिर खुरदरा हो, जिसमें कहीं छेद हो, जिसका सिर बहुत नुकीला हो या टेढ़ा हो, ऐसा लिंग पूजाके लिए नहीं लिया जाना चाहिए।

बहुत बड़ा, बहुत पतला, बहुत छोटा, जिसपर धारियाँ पड़ी हों, ऐसा लिंग भी पूजाके उपयुक्त नहीं होता।

अत्यन्त काला भौंरेके समान शिवलिंग ही पूजाके लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। बादलके समान श्याम रंगका, शहदके समान वर्णका अथवा श्वेत रंगका भी पूजाके उपयुक्त है। कमलगट्टेके बराबर शिवलिंग अथवा मुर्गीके अंडेके बराबर या जामुनके फलके बराबर गृहस्थके घरमें रहकर पूजाके लिए श्रेष्ठ माना गया है। पीले रंगका, श्वेत, नीले, संतरेके समान रंग वाला—यह भी श्रेष्ठ ही माना जाता है, किन्तु जिसमें अनेक रंग हों, उसे नहीं लिया जाना चाहिए।

—×—

ञ -पार्थिव-पूजन

पार्थिव लिंगका अर्थ है मिट्टीसे बनाया गया शिवलिंग। मनुष्य सब कहीं आराध्य मूर्तिको लिए नहीं फिर सकता। जिनको प्रतिदिन पूजा करनी है, वे प्रायः कहीं भी पार्थिव लिंग बनाकर पूजन करते हैं। वैसे भी पार्थिव पूजन शिव-पूजामें बहुत महत्वका माना जाता है। अनेक महापुरुषोंके जीवनमें प्रतिदिन पार्थिव पूजनका वर्णन मिलता है। पार्थिव पूजन भोग और मोक्ष दोनोंका ही दाता है। यहाँ तक कि जहाँ स्थापित शिवलिंग हैं, वहाँ भी पार्थिव लिंग बनाकर पूजन किया जाता है और यह परम्परा ओंकारेश्वरके अमलेश्वर मन्दिरमें बड़े विस्तारसे देखी जा सकती है।

किसी शुद्ध स्थानसे पार्थिव लिंग निर्माणके लिए मिट्टी ली जाती है। इस मिट्टीमें कोई दूषित पदार्थ, कीड़ा, भस्म आदि नहीं होनी चाहिए। कंकड़ियां हों तो उन्हें निकाल देना चाहिये। साफ चिकनी मिट्टी पार्थिव लिंगके लिए उत्तम होती है। वैसे नियम है कि ब्राह्मणके लिए श्वेत, क्षत्रियके लिए लाल, वैश्यके लिए पीली और शूद्रके लिए काली मिट्टी शिव-

लिंग-निर्माणमें सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु जहाँपर जैसी मिट्टी प्राप्त हो, सभी उसका ग्रहण कर सकते हैं। पृथ्वीकी ऊपरी तह थोड़ा हटाकर नीचेसे मिट्टी ली जानी चाहिए।

जलमें भिगाकर भली प्रकार सानकर-किसी एक ही हाथसे सानकर पार्थिव लिंग बनाया जाता है। यह लिंगमूर्ति अपने दाहिने हाथके अंगूठेके ऊपरी पोरसे चौड़ी और चार अंगुलसे बड़ी नहीं होनी चाहिए। मिट्टीसे ही अर्घा भी बनाया जाता है, जो नापमें शिवलिंगसे दुगुना होना चाहिए। इसके नीचेका हिस्सा ऐसा हो कि वह पृथ्वीपर स्थिर रह सके। अर्घेके बीचमें शिवलिंगकी स्थापनाके लिए थोड़ा गड्ढा करके उसमें लिंगकी स्थापना की जाती है। एक छोटी सी मिट्टीकी गोली बनाकर इस शिवलिंगके ऊपर रख देते हैं। इसे वज्र कहते हैं।

शिवलिंग चार अंगुल ऊँचा, चिकना, वेदीयुक्त उत्तम माना गया है। उससे आधा मध्यम और उससे आधा भी तृतीय श्रेणीका माना गया है। जो लोग यज्ञोपवीत धारी हैं उन्हें इस लिंगका पूजन वेद-मन्त्रोंसे करना चाहिए और दूसरोंको षडक्षर मन्त्रसे।

यदि कहीं चिकनी मिट्टी न मिलसकती हो तो बालू मिली मिट्टी या बालूसे भी पार्थिव-लिंगका निर्माण और पीठ बनाकरके पूजन किया जा सकता है।

मिट्टीको सानते समय पंचाक्षर मन्त्र, हराय नमः अथवा महेश्वराय नमः—इस मन्त्रको प्रणवके साथ बोलना चाहिए। जो लोग एक ही हाथसे लिंग नहीं बना सकते वे दोनों हाथोंसे इसका निर्माण कर सकते हैं।

लिंग मूर्ति बनाकर इसे जलसे स्नान नहीं कराया जाता। स्नान, अर्घ्य, पाद्यका जल समीपमें अलग डाला जाता है। दुग्ध और पंचामृतसे स्नान करा सकते हैं। अपनी श्रद्धा और शक्तिके अनुसार पंचोपचार, षोडशोपचार अथवा महाराजोपचारसे अर्चक जैसे सब देव-मूर्तियोंका पूजन करते हैं, पार्थिव पूजन भी होता है। सुविधाके लिए यहाँ पंचोपचार और षोडशोपचारकी सूची दी जा रही है।

पंचोपचार—(१) आवाहन, (२) आसन, (जोकि पुष्पसे ही दिया जाता है) (३) भक्तिपूर्वक जो कुछ भी प्राप्त हो उसका निवेदन, (४) स्तुति, और (५) प्रणाम।

षोडशोपचार—(१) आवाहन, (२) आसन, (३) अर्घ्य, (४) पाद्य, (५) स्नान (पंचामृत स्नान भी), (६) वस्त्र (उपवस्त्र एवं यज्ञोपवीत भी), (७) चन्दन (अक्षत भी), (८) पुष्प (माल्य), (९) अंगराग या सुगन्धित द्रव्य, (१०) धूप, (११) दीपक, (१२) नैवेद्य, (१३) आभरण, (१४) ताम्बूल, (१५) नीराजन (आरती), और (१६) प्रणाम (इस प्रणाममें पुष्पाञ्जलि परिक्रमा आदि भी सम्मिलित हैं।)

पूजनके उपरान्त इन पार्थिव लिंगोंको किसी भी सरोवर या सरिताके जलमें विसर्जित किया जाता है। प्रतिदिन पूजनके लिए नवीन पार्थिव लिंगका निर्माण होता है।

सकाम व्यक्तिके लिए विभिन्न कामनाओंके अनुसार पार्थिव लिंगोंकी पूजाकी संख्या पृथक्-पृथक् है। इनकी एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है—

धनार्थी ५००, पुत्रार्थी १,५००, वस्त्रार्थी ५००, मोक्षार्थी १,००,००,०००, भूकामी १,०००, दयार्थी ३००, तीर्थ-प्राप्त्यर्थी २,०००, वशीकरणके लिए ८००, मारणके लिए ७००, मोहनके लिए ८००, उच्चाटन एवं स्तम्भनके लिए १,०००, द्वेष-शमनके लिए ५००, बन्धनसे छुटकाराके लिए १,५००, राज-भयसे छुटकाराके लिए ५००, चोर-भयसे छुटकाराके लिए २००, भूत-भयसे छुटकाराके लिए ५००, दरिद्रता दूर करनेके लिए ५,०००। समस्त कामनाओंकी पूर्ति १०,००० पार्थिव लिंगोंसे हो जाती हैं।

लिंग पापहारी होता है। इसका अर्थ सिद्धिको देने वाला है। यह सर्वकामप्रद होता है। दस सहस्रके पूजनसे प्रबलतम राजभय दूर हो जाता है। इतनेका पूजन कारागारसे छुड़ा देता है। डाकिनी, शाकिनी, शिवगण आदि दिव्य प्रेतोंके भयसे ७,००० पार्थिव पूजन मुक्त कर देता है। बहुत प्रबल प्रारब्ध बाधा न देता हो तो ५५ सहस्र पार्थिव लिंगोंका पूजन अवश्य पुत्र देता है। दस सहस्रके पूजनसे कन्या संतान होती है। एक कोटि लिंगोंका पूजन करके पुरुष शिवस्वरूप हो जाता है।

—×—

ट—विभिन्न पदार्थोंके बने शिवलिंग

कस्तूरी और चन्दनसे बना शिवलिंग शिव-सायुज्य देता है।

फूलोंसे बनाया गया शिवलिंग भू-सम्पत्ति देता है।

जौ, गेहूँ, चावल—तीनोंका आटा समान भाग मिलाकर जो शिवलिंग बनाया जाता है, उसकी पूजा स्वास्थ्य, श्री और सन्तान देती है।

मिश्रीसे बनाये हुए शिवलिंगकी पूजा रोगसे छुटकारा देती है।

सोंठ, मिर्च, पीपलके चूर्णमें नमक मिलाकर जो शिवलिंग बनाया जाता है, उसका प्रयोग वशीकरण आदि अभिचारमें किया जाता है।

भीगे तिलको पीसकर बनाया गया शिवलिंग अभिलाषा पूर्ति करता है।

यज्ञकुण्डसे ली गयी भस्मसे जो शिवलिंग बनता है उसका पूजन अभीष्ट देने वाला होता है।

किसीकी प्रीति बढ़ानेके लिए गुडकी डलीसे बनाकर शिवलिंगका पूजन करना चाहिए।

सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिए चीनीकी चाशनीसे बने शिवलिंगका पूजन होता है।

बांसके अंकुरको शिवलिंगके समान काटकर पूजा करनेसे वंश-वृद्धि होती है।

दहीको कपड़ेमें बांधकर निचोड़ देनेके पश्चात् उससे जो शिवलिंग बनता है उसका पूजन लक्ष्मी और सुख देने वाला होता है।

गुड़में अन्न चिपकाकर शिवलिंग बनाकर पूजा करनेसे कृषि-उत्पादन अधिक होता है।

किसी भी फलको शिवलिंगके समान रखकर उसकी पूजा करनेसे फलवाटिकामें अधिक फल आता है।

आंवलेको पीसकर बनाया गया शिवलिंग मुक्ति-प्रदाता होता है।

नवनीतको अथवा वृक्षोंके पत्तोंको पीसकर बनाया गया शिवलिंग स्त्रीके लिए सौभाग्यदाता होता है।

दूर्वाको शिवलिंगाकार गूंथकर उसकी पूजा करनेसे अकाल-मृत्युका भय दूर होता है।

कपूरसे बने शिवलिंगका पूजन भक्ति और मुक्ति देता है।
लोहेसे बने शिवलिंगका पूजन सिद्धि देता है।
मोतीके शिवलिंगका पूजन स्त्रीकी भाग्य-वृद्धि करता है।
स्वर्णनिर्मित शिवलिंग समृद्धिका वर्धन करता है।
चांदीका शिवलिंग धन-धान्य बढ़ाता है।
पीतलका शिवलिंग दरिद्रताका निवारण करता है।

लहसनियाका शिवलिंग शत्रुओंका नाशक होता है, विजयदाता होता है।

इसी प्रकार स्फटिक तथा अन्य रत्नोंका शिवलिंग मनुष्योंको अभीष्ट कामनाएँ प्रदान करता है।

पारदसे बने शिवलिंगकी शास्त्रोंमें बहुत प्रशंसा है। इसे ज्योतिर्लिंगसे भी श्रेष्ठ माना गया है। इसका पूजन सर्वकामप्रद, मोक्षप्रद, शिवस्वरूप बनाने वाला है। यह समस्त पापोंका नाश करके जीवोंको संसारके सम्पूर्ण सुख एवं मोक्ष देता है।

ठ—शिवपूजाकी मुख्य बातें

किसी भी देव-पूजनमें मनुष्यको स्नान आदिसे शुद्ध तो होना ही पड़ता है, यदि सम्भव हो और कठिनाई न हो तो पूजा करनेवालेको सिले हुए वस्त्र पहने हुए नहीं होना चाहिए। आसन शुद्ध होना चाहिए। पूजाके समय पूर्व या उत्तर मुख बैठ जाना चाहिए। संकल्प किया जाना चाहिए। शिव-पूजनके लिए निम्न बातोंपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए—

(१) भस्म, त्रिपुण्ड और रुद्राक्ष माला—ये शिव-पूजनके लिए विशेष सामग्री हैं जो पूजकके शरीरपर होनी चाहिए।

(२) भगवान शंकरकी पूजामें तिलका प्रयोग नहीं होता और किसी भी चम्पाका पुष्प नहीं चढ़ाया जाता।

(३) शिवकी पूजामें भी दूर्वा, तुलसी-दल चढ़ाया जाता है—इसमें सन्देह नहीं किया जाना चाहिए। अवश्य ही तुलसीकी मंजरियोंसे पूजा अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है।

(४) शंकरजीके लिए विशेष पुष्प और पत्रमें बिल्व-पत्र प्रधान है, किन्तु बिल्व-पत्रमें चक्र और वज्र नहीं होना चाहिए। बिल्व-पत्रमें कीड़ोंके द्वारा बनाया हुआ जो सफेद चिह्न होता है उसे चक्र कहते हैं और बिल्व-पत्रके डण्ठलकी ओर जो थोड़ासा मोटा भाग होता है वह वज्र कहा जाता है। वह भाग तोड़ देना चाहिए। कीड़ोंसे खाया हुआ, कटा-फटा बिल्व-पत्र भी शिव-पूजाके योग्य नहीं होता। आकका फूल, धतूरेका फल भी शिव-पूजाकी विशेष सामग्री है, किन्तु सर्वश्रेष्ठ पुष्प है नीलकमलका। उसके अभावमें कोई भी कमलका पुष्प भगवान शंकरको बहुत प्रिय है। कुमुदिनी-पुष्प अथवा कमलिनी-पुष्पका प्रयोग भी शिव-पूजामें होता है। बिल्व-पत्र चढ़ाते समय बिल्व-पत्रका चिकना भाग मूर्तिकी ओर रहे—इस प्रकार चढ़ाया जाना चाहिए।

(५) विल्ब-पत्रोंमें तीनसे लेकर ग्यारह दलों तकके बिल्व-पत्र प्राप्त होते हैं। ये जितने अधिक पत्रोंके हों, उतना ही उत्तम माना जाता है, किन्तु यदि तीनमें-से कोई दल टूट गया हो तो वह बिल्व-पत्र चढ़ाने योग्य नहीं है।

(६) तुलसी और बिल्व-पत्र सर्वदा शुद्ध माने जाते हैं। ये बासो नहीं होते। कुन्द, तमाल, आंवला, कमल-पुष्प, अगस्त्य-पुष्प,—ये भी पहले दिन तोड़कर लाये हुए दूसरे दिन उपयोगमें आते हैं। एक दिनमें इनको बासी नहीं माना जाता।

(७) भगवान शंकरके पूजनके समय करताल नहीं बजाया जाता।

(८) शिवकी परिक्रमामें सम्पूर्ण परिक्रमा नहीं की जाती। जिधरसे चढ़ा हुआ जल निकलता है उस नालीका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। वहाँसे प्रदक्षिणा उल्टी की जाती है।

———

ड—भस्म-त्रिपुण्ड

किसी यज्ञकुण्डसे ली गयी भस्मका त्रिपुण्ड उत्तम माना जाता है। अग्निहोत्रसे ली गयी भस्म भी श्रेष्ठ है। किसी भी साधुकी धूनीसे ली भस्म उपयोगमें आ सकती है। यदि इनमें-से कोई भी भस्म न मिल सके तो बिना व्यायी गायके सूखे हुए गोबरको जलाकर उसके भस्मको काममें लेना चाहिए।

पीपलकी छालको जलाकर उसके भस्मको गायके दूधमें सानकर पिण्डाकार बनानेके पश्चात् पुनः जलाया जाता है। फिर यह क्रिया कुछ अधिक बार दुहराई जाती है। इस प्रकार यह भस्म बहुत कोमल हो जाती है। नाथ-सम्प्रदायमें इस भस्मको शरीरमें लगानेकी बहुत प्रथा है।

★

ढ--पंचाक्षर जप महात्म्य

'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र प्रणवसहित षडक्षर मन्त्र कहा जाता है और जब प्रणव नहीं गिना जाता, पंचाक्षर कहा जाता है। इस मन्त्रके अधिकारी सभी हैं। शूद्र, स्त्री, अन्त्यज और यवन भी इसका जप कर सकते हैं। इसमें दीक्षा, हवन, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि आवश्यक नहीं हैं। यह मन्त्र सदा पवित्र है।

स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः।
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्म० ब्रह्मो० १, २०, २१)

मथुरामें यादवनरेश दशार्ह विद्वान्, सद्गुणी थे। काशिराजकी पुत्री कलावतीसे इनका विवाह हुआ था, पर यह रानी पतिकी शय्यापर आना स्वीकार नहीं करती थी। एक दिन राजाने उसे बलपूर्वक आलिंगन करनेका प्रयत्न किया तो उसने कहा—'मेरा स्पर्श मत करिए।'

'तुम मेरी पत्नी हो।' यह कहकर राजाने जैसे ही रानीका स्पर्श किया, वे उसे छोड़कर हट गये। उसका शरीर तप्त लोहेके समान संतप्त था। उससे राजाका अंग जलने लगा। उन्होंने रानीसे पूछा—'तुम्हारी देह अग्निके समान कैसे हो गयी ?'

रानी—'बचपनमें मुनि दुर्वासाने कृपा करके मुझे पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश किया है। उसके निरन्तर जपसे मैं सर्वथा निष्पाप हो गयी हूँ। किंचित् भी पापयुक्त पुरुष मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। विवाह तो मैंने पिताकी इच्छानुसार किया, किन्तु अपनी युवावस्थाके आरम्भमें आपने कुछ थोड़ेसे अपकर्म किये हैं। अतः उस दोषसे रहित हुए बिना आपको मेरा स्पर्श असह्य रहेगा। आप पंचाक्षर जप तथा शिवकी आराधनासे शुद्ध हो जायं।'

'देवि ! तुम मुझे पंचाक्षर तथा शिवार्चनका उपदेश करो।' राजाने कहा।

'आप मेरे पति हैं, मेरे पूज्य हैं, मैं आपको उपदेश नहीं कर सकती। आप अपने कुलगुरु गर्गाचार्यजीसे उपदेश ग्रहण करें। वे भगवान शिवके साक्षात् शिष्य हैं।' रानीने बतलाया।

राजा दशार्हने गर्गसे दीक्षा ली। यमुना तटपर लिंग स्थापित करके अर्चनामें लग गये। इन्हीं दशार्हके वंशमें उत्पन्न होनेके कारण भगवान वासुदेवको दाशार्ह कहा जाता है। (स्कन्दपुराण)

ण—पञ्चाक्षरजप

ॐ नमः शिवाय—इस मन्त्रको प्रणवके साथ जब गिनते हैं, तब इसीको षडक्षर कहते हैं और बिना प्रणवके गिननेपर इसीको पञ्चाक्षर कहते हैं। इसका जप सभी वर्णोंके लोग सब समय कर सकते हैं। इसका पुरश्चरण ६० करोड़ जपका उत्तम, ३३ करोड़का मध्यम और ६ करोड़का सामान्य होता है। सभी पुरश्चरणोंमें जितना जप किया जाता है, उससे दशांश जपके साथ आहुति दी जाती है। आहुतिका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनकी दशांश संख्याके ब्राह्मणोंको भोजन कराना पड़ता है। जो बहुत ही असमर्थ है अथवा गृहस्थ नहीं है, उनको इन सब हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदिके स्थानपर उतना ही जप कर कर लेना चाहिए।

शिव-पूजनमें यदि आवाहन, आचमन, स्नान, भस्म-समर्पण आदिके मन्त्र न आते हों तो सब क्रियाएँ इस पञ्चाक्षर मन्त्रके जपसे ही की जा सकती हैं।

× × ×

त-महामृत्युन्जय

ॐ हौ जूं सः
त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिबर्धनम्।
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मांक्षीयमामृतात्।
ॐ हौ जूं सः।

—यह सम्पूर्ण महामृत्युञ्जय मन्त्र है। इसमें-से केवल 'हौ जूं सः'—इस बीज मन्त्रको लघु मृत्युन्जय कहा जाता है।

लघु मृत्युञ्जयका जप सभी कर सकते हैं और संकल्पपूर्वक करनेपर यह भी बहुतसे कष्टोंका निवारण कर देता है। शिव-मन्दिरमें भगवान शिवके समीप बैठकर इसका नियमपूर्वक जप किया जाय तो तीन लाख जप कठिन बीमारीसे भी बचाता देखा गया है।

सम्पूर्ण महामृत्युञ्जयका सविधि जप निश्चित मृत्युको भी टालता है। यह बात प्रसिद्ध है और अनुभूत है, किन्तु महामृत्युञ्जयका जप केवल यज्ञोपवीतधारी वे द्विजाति कर सकते हैं जिनको शुद्ध उच्चारणका अभ्याम है। स्त्री इसके जपकी अधिकारिणी नहीं है।

स्वयं न किया जा सकता हो तो इसका अनुष्ठान ब्राह्मणके द्वारा भी कराया जा सकता है। यदि ब्राह्मण नियमनिष्ठ हो, नित्य सन्ध्या करता हो, तम्बाकू न खाता हो और ईमानदारीसे पूरा जप करे तो ब्राह्मणके द्वारा अनुष्ठानसे भी असाध्यतम रोग अच्छे हो जाते हैं—इसमें सन्देहका कारण नहीं है। महामृत्युञ्जय जपका पुरश्चरण ११ लाखका होता है। सुनिश्चित परिणामकी प्राप्तिके लिए एक पुरश्चरण पर्याप्त है। पुरश्चरणके अन्तमें दशांशका हवन उसके दशांशका तर्पण, उसके दशांशका मार्जन और उसकी दशांश संख्यामें ब्राह्मण-भोजन कराना अनुष्ठानका अङ्ग ही है।

महामृत्युञ्जय जपके अनेक चमत्कार देशमें प्रसिद्ध हैं। कठिनाई यह है कि अब ठीक और पूरा अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणोंका मिलना कठिन हो गया है। फिर भी संकटग्रस्त लोग इसका सहारा लेते हैं और कुछ लाभ प्राप्त करते ही हैं।

×—×

थ-सोमवार और प्रदोष व्रत

भगवान शंकरकी सन्तुष्टिके लिए सोमवार तथा प्रदोषका व्रत किया जाता है।

सोमवार व्रत वार-व्रत है, इसलिए सभी वार-व्रतोंके इसमें भी दिनमें केवल एक बार एक अन्नका भोजन किया जाता है। नमकका प्रयोग नहीं होना चाहिए। गोरस अर्थात् दूध, दही घी और मीठा उसके साथ ले सकते हैं, किन्तु दूसरी बार कुछ लिया नहीं जाता।

पहले दिन व्रतका संकल्प किया जाना चाहिए। रात्रिमें ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना चाहिए। सबेरे स्नान करके विधिपूर्वक 'शिवकी सन्तुष्टिके लिए मैं व्रत कर रहा हूँ।' यह संकल्प अवश्य करना चाहिए। भगवान शंकरके मन्दिरमें अथवा घरपर शिव-पूजन, पंचाक्षर जप, भगवच्चर्चा, सम्भव हो तो भगवान शंकरके चरित्रोंका पाठ इस दिनका मुख्य काम है।

किसी भी व्रतमें आवश्यक होता है कि व्यक्ति बन सके तो मौन रहे। यह सम्भव न हो तो भी यह ध्यान रखना चाहिए कि व्रतस्थको रजस्वला स्त्रीसे, अन्त्यसे, म्लेच्छसे, नास्तिकसे और अपने आराध्यकी निन्दा करने वाले व्रतके दिन बात करना वर्जित है।

व्रतस्थको अपना समय जहाँ तक हो सके, व्यावहारिक बातोंमें कम लगाना चाहिए। क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, पर-निन्दा—इनसे बचना चाहिए। तब व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।

प्रदोष-व्रत पंचांगोंमें प्रायः लिखा होता है। यह कभी त्रयोदशीको और कभी द्वादशीको भी पड़ा करता है। जब भी सूर्यास्तके समय त्रयोदशी हो, वह दिन प्रदोष-व्रतका होता है, इसलिए व्रत करने वालेको पहलेसे जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

प्रदोष-व्रतमें दिन भर उपवास करके भगवान शंकरका पूजन किया जाता है। सायंकालीन पूजनके पश्चात् ही एकान्न अथवा फलाहार भोजन लिया जाता है। इस व्रतके भी शेष नियम सोमवार व्रतके समान ही हैं।

***

८—शिव-तीर्थ

भगवान शिवकी अष्ट तत्व मूर्ति हैं—१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. यजमान (आत्मा), ४. पृथ्वी, ५. जल, ६. वायु, ७. अग्नि और ८. आकाश। इनमें-से सबकी मूर्तियां विभिन्न शिव-क्षेत्रोंमें हैं।

१. सूर्य तत्व मूर्ति दक्षिण भारतमें तिरुवडमरुदूर स्टेशनसे २ मील दूर सूर्यनार-कोइलमें है। यहाँके मन्दिरमें प्रधान मूर्ति सूर्यकी है।

२. प्रभास क्षेत्रका सोमनाथ मन्दिर चन्द्र रूप शिव मूर्ति है।

३. यजमान (आत्मा) मूर्ति अर्थात् आत्मतत्व लिंग चार रूपोंमें चार स्थानोंपर माने जाते हैं क्योंकि अन्तःकरणके चार भेद होते हैं—(क) पशुपतिनाथमें श्रीपशुपति मूर्ति—यह नेपालमें काठमाण्डूसे लगभग ६ मील दूर बागमती नदीके किनारे है। यह मूर्ति अष्टमुख लिंग विग्रह है जिसके ऊपर स्वर्णनिर्मित पंचमुख लिंग लगा रहता है। (ख) दक्षिणसे कर्नाटक प्रदेशमें समुद्र तीरपर गोकर्ण क्षेत्र प्रसिद्ध है। यह गोकर्ण आत्मतत्व लिंग माना जाता है। (ग) उत्तर प्रदेशमें गोला गोकर्णनाथमें आत्मतत्व लिंगकी दूसरी मूर्ति है। (घ) शृंगेश्वरनाथ, बिहारमें चतुर्थ मूर्ति आत्मतत्व लिंगकी है।

४. एकाम्रेश्वर—शिवकांचीका प्रसिद्ध मन्दिर क्षिति तत्व लिंग है।

५. श्रीरंगम्में रेलवे स्टेशनके पास जम्बुकेश्वर मन्दिरमें जल तत्व लिंग है।

६. तिरुवन्नमलाई (अरुणाचल)—यह तेजो लिंग अथवा अग्नि तत्व लिंग माना जाता है।

७. श्रीकालहस्तीश्वर—यह तमिलनाडुमें स्थित तीर्थ वायुतत्वलिंगका है।

८. चिदम्बरम्—यह श्रीनटराजके पार्श्वमें स्वर्णमालासे परिवेष्टित आकाश तत्व लिंग माना जाता है।

कवेल्यशैलपर भगवान् शिव श्रीकण्ठ नामसे विराजमान हैं। वे हिमालय पर्वतपर केदारनामसे तथा काशीपुरीमें विश्वनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीशैल पर्वतपर मल्लिकार्जुन, प्रयागमें नीलकण्ठेश, गयामें रुद्र, कालन्जरमें नीलकण्ठेश्वर, द्राक्षाराममें भीमेश्वर तथा मायूरम् (मायावरम्) में वे अम्बिकेश्वर कहलाते हैं। वे ब्रह्मावर्तमें देवलिंगके रूपमें प्रभासमें शशिभूषण, श्वेतहास्तिपुरमें वृषध्वज, गोकर्णमें गोकर्णेश्वर, सोमनाथमें सोमेश्वर, श्रीरूपमें त्यागराज तथा पाक्षतीर्थमें वेदपुरीश्वरके नामसे विख्यात हैं। भगवान् शिव भीमाराममें भीमेश्वर, मन्थनमें कालिकेश्वर, मथुरामें चोक्कानाथ, मानसमें माधवेश्वर, श्रीवान्छकमें चम्पकेश्वर, पञ्चवटीमें वटेश्वर, गजारण्यमें वैद्यनाथ तथा तीर्थाश्चलमें तीर्थकेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं। वे कुम्भकोणम् में कुम्भेश, लेपाक्षीमें पापनाशन, कण्वपुरीमें कण्वेश तथा मध्यमें मध्यार्जुनेश्वर नामसे प्रतिष्ठित हैं। हरिहर पुरमें शंकरनारायणेश्वर, विरन्चिपुरीमें मार्गेश, पन्चनदमें गिरीश्वर, पम्पापुरीमें विरूपाक्ष, सोमगिरिपर मल्लिकार्जुन, त्रिमकूटमें अगस्त्येश्वर तथा सुब्रह्मण्यमें अहिपेश्वर नामसे समाहृत होते हैं। महाबल पर्वतपर महाबलेश्वर नामसे दक्षिणावर्तमें साक्षात् सूर्यके द्वारा पूजित अर्केश्वर, वेदारण्येश्वर, सोमपुरीमें सोमेश्वर, उज्जैनमें रामलिंगेश्वर, कश्मीरमें विजयेश्वर, महानन्दिपुरमें महानन्दिपुरेश्वर, कोटितीर्थमें कोटीश्वर, वृद्ध क्षेत्रमें वृद्धाचलेश्वर तथा अति पवित्र ककुद् पर्वतपर वे गंगाधरेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं। भगवान शिव चामराजनगरमें चामराजेश्वर, नन्दि पर्वतपर नन्दीश्वर, वधिराचलमें चण्डेश्वर, गरपुरमें अधिपेश्वर, घनानन्द पर्वतपर सोमेश्वर, नल्लूरमें निर्मलेश्वर, नीडानाथपुरमें नीडानाथेश्वर, एकान्तमें रामलिंगेश्वर तथा श्रीनागमें कुण्डलीश्वर रूपमें विराजते हैं। वे श्रीकन्यामें त्रिभंगीश्वर, उत्संगमें राधवेश्वर, मत्स्य-तीर्थमें तीर्थेश्वर, त्रिकूट पर्वतपर ताण्डवेश्वर, प्रसन्नपुरीमें मार्गसहायेश्वर, गंडकीमें शिवनाम, श्रीपतिमें श्रीपतीश्वर, धर्मपुरीमें धर्मलिंग, कान्यकुब्जमें कलाधर, वाणिग्राममें विरंचीश्वर, तथा नेपालमें नकुलेश्वर कहे जाते हैं। जगन्नाथपुरीमें मार्कण्डेश्वर, नर्मदा तटपर स्वयम्भू, धर्मस्थलमें मन्जुनाथ, त्रिरूपकमें व्यासेश्वर, स्वर्णावतीमें कलिंगेश्वर, निर्मलेमें पन्नगेश्वर, पुण्डरीकमें जैमनीश्वर, अयोध्यामें मधुरेश्वर, सिद्धवटीमें सिद्धेश्वर, श्रीकूर्माचलपर त्रिपुरान्तक, मणिकुण्डल तीर्थमें मणि मुक्तानन्दीश्वर, वाटाटवीमें वृत्तिवासेश्वर, त्रिवेणी तटपर संगमेश्वर, स्तनिता तीर्थमें मल्लेश्वर तथा इन्द्रकील पर्वतपर अर्जुनेश्वर रूपमें विरा-

जमान हैं। वे शेषाचलपर कपिलेश्वर, पुण्यगिरिपर पुण्यगिरीश्वर, चित्रकूटमें भुवनेश्वर, उज्जैनमें कालिकेश्वर (महाकाल), ज्वालामुखीमें शूलटंक, मंगलीमें संगमेश्वर, तज्जापुरी (तंजोर) में बृहती (दी)श्वर, पुष्करमें रामेश्वर, लंकामें मत्स्येश्वर, गन्धमादनपर कूर्मेश्वर, विन्ध्य पर्वतपर वराहेश्वर और अहोबलिमें नृसिंह रूपसे प्रकट हैं। प्रभ विश्वनाथ कुरुक्षेत्रमें वामनेश्वर रूपमें, कपिला तीर्थमें परशुरामेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर, साकेतमें बलरामेश्वर, वारणावतमें बौद्धेश्वर, तत्वक्षेत्रमें कल्कीश्वर तथा महेन्द्राचलपर कृष्णेश्वर—रूपमें व्यक्त हैं।*

(ललितागम, ज्ञानपाद शिव-लिंगप्रादुर्भाव-पटल)

———

ध-शिव निर्माल्य

भगवान शंकरपर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण किया जाय या नहीं—इस सम्बन्धमें बहुत मति-भ्रम है। शिवके प्रसादमें चण्डका भाग होता है। भगवान महेश्वरके मुख-तेजसे प्रकट चण्डेश्वर उनके प्रेतगणोंमें प्रधान हैं, इसलिए उनका प्रसाद ग्राह्य नहीं होता–यह बात ठीक है। किन्तु कौन-सा प्रसाद चण्डका भाग है और कौन-सा उनका भाग नहीं है––यह बात विचार कर लेनी चाहिए; क्योंकि प्रसादके त्यागमें भी बहुत बड़ा दोष शास्त्रोंमें वर्णित है।

(१) जहाँ कहीं भगवान शंकरकी साकार मूर्ति (हाथ-पैर वाली) बनी हो, उसका प्रसाद ग्रहण किया ही जाना चाहिए। दूसरे देवताओंके प्रसादके समान ही वह पवित्र है।

(२) किसी भी धातुसे बने हुए शिव-लिंगके ऊपर चढ़ा हुआ प्रसाद सर्वथा पवित्र है, वह ग्रहण करने योग्य है। यदि किसी दूसरी वस्तुसे बना शिव-लिंग हो और उसके ऊपर धातुका कलेवर चढ़ा हो, जैसा कि अनेक स्थानोंमें है, तो उसपर चढ़ा हुआ प्रसाद भी पवित्र होता है।

* इन सब लिंगोंका स्मरण पुण्यप्रद है। इनमें अधिकांशमें ठीक स्थानका निर्देश करना अशक्यप्राय है। बहुतसे अब लुप्त हो चुके हैं।

(३) जो प्रसाद शिव-लिंगके ऊपर नहीं चढ़ा है, सामने रखकर भोग लगाया गया है, वह प्रसाद पवित्र है, उसे ग्रहण किया जाना चाहिए। [१]

(४) द्वादश ज्योतिर्लिंग, अष्ट उपलिंग, अष्ट तत्वलिंग, स्वयंभू लिंग (जो स्वयं प्रकट हुए हैं), किसी साधु महापुरुषके द्वारा स्थापित लिंग और नर्मदाके जलमें-से प्राप्त हुआ बाणलिंग (नर्मदेश्वर)—इनके ऊपर चढ़ा हुआ प्रसाद भी पवित्र होता है इसमें चण्डका कोई भाग नहीं होता, इसलिए इसके त्यागमें ही दोष है।

(५) अब ऊपरके सब प्रकारके शिवलिंगोंको छोड़ दें तो साधारण पत्थरसे गढ़े हुए लिंग, नर्मदाके अतिरिक्त किसी दूसरी नदीमें-से प्राप्त लिंग या मूर्ति अथवा केशरके अतिरिक्त दूसरे पदार्थोंसे बने मिट्टी, चीनी आदिके शिवलिंगोंपर जो प्रसाद चढ़ाया गया हो, उसे किसीको भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसे मनसे चण्डको अर्पित करके किसी जलाशयमें डाल दिया जाना चाहिए।

(६) केशर-चन्दन मिला करके जो लिंगमूर्ति बनती है, उसपर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

(७) यदि शिवलिंग गण्डकी नदीमें पाया गया हो अथवा शिवलिंगके समीप शालिग्राम भी विराजते हों तो शिवलिंगपर चढ़ा हुआ प्रसाद ग्रहण करने योग्य है।

(८) किसी भी शिवलिंगपर चढ़ा हुआ प्रसाद यदि शालिग्रामजीको स्पर्श करा दिया जाता है तो वह ग्रहण करने योग्य है। [२]

****

१. जो पदार्थ उन शिवलिंगोंके ठीक ऊपर रख दिया गया है जिनका प्रसाद ग्रहण करना यहाँ वर्जित बतलाया गया है, केवल प्रसादका उतना ही अंश त्याज्य है। किसी पत्तेपर अथवा बर्तनमें मूर्तिसे थोड़ा दूर रखकर जो भोग लगाया जाता है वह किसी भी शिव-लिंगको लगाया हुआ प्रसाद ग्रहण करने योग्य है।

२. भगवान शंकरकी लिंग-मूर्तिपर चढ़ा हुआ प्रसाद, चाहे वह किसी भी लिंगपर चढ़ाया हो, शालिग्रामजीको अर्पित किया जा सकता है; क्योंकि भगवान विष्णु परम शैव हैं और वैसे ही शिवका प्रसाद ग्रहण करते हैं जैसे हनुमानजी श्रीरघुनाथजीका प्रसाद ग्रहण करते हैं। अतएव शिव-लिंगपर चढ़ा हुआ प्रसाद शालिग्रामजीको अर्पित करके ग्रहण करने योग्य हो जाता है क्योंकि फिर वह भगवान विष्णुका प्रसाद होता है।

न—काशी-मरणसे मुक्ति

सात पुरियाँ मोक्षदायिनी कही जाती हैं—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारिका। इनमें-से काशीके अतिरिक्त दूसरी पुरियोंमें मरनेसे अथवा दीर्घकालीन वास करनेसे परम्परा रूपमें मोक्ष प्राप्ति होती है। इसका अर्थ है कि दूसरा जन्म उसी पुरीमें ही होता है और वहाँ साधन करना पड़ता है अथवा पुनः काशीमें जन्म होता है और तब वहाँ मरकर मोक्ष-प्राप्ति होती है।

काशी वरुणा और गंगाके संगमसे लेकर असी (यह लगभग शुष्कप्राय) नाला है, इसके गंगामें मिलनेके स्थान तक) पूर्व और पश्चिम ढाई योजन लम्बा, उत्तर-दक्षिण आधा योजन चौड़ा अर्थात् लगभग १० मील लम्बा तथा चार मील चौड़ा क्षेत्र है। इसके उत्तरमें तिमिचण्डेश्वर, दक्षिणमें शंकुकर्ण एवं ओंकारेश्वर स्थान हैं। इस पुरीको काशी, वाराणसी, अविमुक्त क्षेत्र, आनन्दकानन, महाश्मशान, रुद्रावास, काशिका, तपस्थली, मुक्त-भूमि, शिव-पुरी, त्रिपुरारिराजनगरी, —इन बारह नामोंसे पुकारा जाता है।

काशते ब्रह्म यस्याम्—जहाँ मरते हुए प्राणियोंपर ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हो जाता है, उस स्थानका नाम काशी है।

भारतके प्रायः सब तीर्थ काशीमें हैं। तीर्थ स्थानोंके मुख्य मन्दिरका जो नाम है, उन मन्दिरोंका, जो पुराणोंमें वर्णित हैं, वे उन्हीं नामोंसे काशी-में भी अवश्य हैं। यह बात दूसरी है कि अब उनमें-से बहुतसे नष्ट या लुप्त हो गये हैं। इस प्रकार काशी सम्पूर्ण तीर्थोंका पुंजीभाव है।

काशी सम्पूर्ण भारतका प्रतीक है, यह बात केवल तीर्थोंके कारण नहीं है। भारतके सभी प्रान्तोंके निवासी वहाँ पृथक्-पृथक् समुदायोंमें बसे मिल जाते हैं, जहाँ वे अपनी भाषा, अपने वेश और अपने प्रान्तीय रहन-सहनमें रहते हैं। इसलिए यदि पूरी काशीको अच्छी तरह देख लिया जाय तो भारतके सभी प्रान्तोंके आहार, आचार और भाषाका परिचय प्राप्त हो जाता है।

काशीमें मरने वाले मनुष्यको भगवान शंकर तारक मन्त्रका उपदेश करके मुक्त कर देते हैं—यह बात पुराणोंमें बहुत प्रसिद्ध है और इसपर महात्माओंने कभी सन्देह नहीं किया है।

यदि प्राणी संयमी है, साधक है, विरक्त है तो भगवान शंकरके उपदेशके बाद वह अविलम्ब मुक्त हो जाता है।

यदि प्राणी पापी है, मलिन हृदय है तो मरते समय शंकरजीके तारक उपदेशके अनन्तर उसे भैरव ले आते हैं। वे मलिन हृदय जीवोंको भयंकर दण्ड देकर शीघ्र मुक्त कर देते हैं। किसीके द्वारा किये गये पाप तारक उपदेशके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं और किसीके किये हुए पाप इस घोरतम भैरवी यातनासे भोग लिए जाते हैं। पापोंका फल इस प्रकार भोग लिए जानेके पश्चात् शिवगण उस प्राणीको शिवलोकमें ले जाते है जहाँ वह रुद्रगण होकर अपने पुण्योंका फल थोड़े समयमें भोग लेता है। तब पाप-पुण्य दोनों सम होनेपर मरते समय जो भगवान शिवका ध्यान करता है, वही आत्म ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है।

जिस जीवने जान-बूझकर पाप किया है, उसे रुद्रपिशाच होना पड़ता है। इस योनिकी अन्तिम आयु तीस हजार वर्ष है। पापोंके अनुसार रुद्र-पिशाच कम या अधिक आयुका भोग करते हैं। इस आयुमें उसे भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। उसे निरन्तर पीटा जाता है, अन्न, जल कुछ नहीं मिलता, वह अग्निमें जलाया जाता है, जलमें डूबे रहनेको उसे विवश किया जाता है, धूपमें तपता है, कीचड़में फेंका जाता है, गर्म तेलमें डाला जाता है, शस्त्रोंसे काटा जाता है। यह सब होते हुए भी उसे मूर्छा नहीं आती। विवश होकर सब कष्ट सहना पड़ता है। ये कष्ट पापोंके अनुसार कम समयके भी हो सकते हैं, तीस हजार वर्षके भी हो सकते हैं। जब यह अवस्था समाप्त हो जाती है, वह शिवलोक जाकर अपने पुण्योंका फल भोग करता है। पाप और पुण्य दोनों फल-भोग समाप्त होनेपर उसका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और निर्मल अन्तःकरणमें पहलेका किया हुआ उपदेश जागृत हो जाता है।

मरते प्राणीको भगवान शंकर तारक मंत्रका उपदेश करते हैं, यह बात साधारण व्यक्ति नहीं देख सकता, किन्तु परमहंस रामकृष्णजी काशी पधारे तो उन्होंने इसे प्रत्यक्ष देखा था। उनके जीवन-चरितमें वर्णन है। एक

दिन वे दशाश्वमेध घाटसे नावपर बैठकर गंगाजीमें मणिकर्णिका घाटकी ओर जा रहे थे। मणिकर्णिकाके समीप नाव पहुँचते ही परमहंसजी नावमें किनारे आकर ध्यानमग्न हो गये। मल्लाहोंने समझा कि ये गंगामें कूदने वाले हैं। दौड़कर समीप आये। किन्तु उन्होंने देखा, परमहंसजीका मुख तेजसे प्रकाशित हो रहा है। वे जलती चिताकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखकर मुस्करा रहे हैं।

ध्यान टूटनेपर उन्होंने बतलाया—'मैंने देखा कि एक गौरवर्ण पीली जटा वाला त्रिनेत्र पुरुष, सम्भवतः भगवान शंकर, प्रत्येक शवके समीप आकर जीवात्माको थोड़ा-सा उठाते हैं, उसके सूक्ष्म शरीरके दक्षिण कर्णमें मुख लगाकर कुछ कहते हैं। अवश्य ही वे तारक मन्त्रका उपदेश देते होंगे। इसके पश्चात् स्वयं महाकाली आकर अपने हाथोंसे जीवके सूक्ष्म एवं कारणस्वरूप बन्धनोंको खोल देती हैं। जैसे ही शव चितापर चढ़ाया जाता है, दोनों वहाँसे पृथक् हो जाते हैं।

क्योंकि काशीका मणिकर्णिका घाटका श्मशान महाश्मशान है, किसीको स्मरण नहीं कि वहाँ चिताकी अग्नि कभी बुझती हो। इसलिए भगवान शंकरका यह तारक उपदेश अविराम वहाँ चलता रहता है।

× × ×

शिव-स्तवन

जय जय हे शिव दर्पकदाहक दैत्यविघातक भूतपते ।
दशमुखनायक शायकदायक कालभयानक भक्तगते ।।
त्रिभुवनकारक धारकमारक संसृतिकारक धीरमते ।
हरिगुणगायक ताण्डवनायक मोक्षविधायक योगरते ।।

उभटसागर(पूर्णचन्द्रकृत)

मानसमणि वर्ष २० फाल्गुन मास मानस सम्वत ३८७ फरवरी १६६१ई. अलोक २ से

卐

शंकर-स्तुति

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ।।

—मानस

यः शङ्करोऽपि प्रणयं करोति स्थाणुस्तथा यः परपूरुषोऽपि ।
उमागृहीतोऽप्यनुमा गृहीतः पायादपायात्स हि नः स्वयम्भूः ।।

—श्री जयनारायण तर्क पञ्चानन

मानसमणि वर्ष २० श्रावणमास मानस संम्वत ३८८ अगस्त १६६१ ई० आलोक ८ से ।

❀

॥ श्रीराम ॥

लंकेश्वर-कृत-शिव-स्तुति

(एक प्राचीन हस्तलिखित प्रतिके आधारपर)

ॐ गौरीश्वराय भुवनत्रय कारणाय,
भक्ति-प्रियाय भव-भीति-भेदे भवाय ।
शर्वाय दुःख-शमनाय वृषध्वजाय,
रुद्राय काल-दहनाय नमः शिवाय ॥१॥

ओङ्कार स्वरूप, गौरीपति, तीनों भुवनोंके आदि कारण, भक्ति-प्रिय, संसारके आवागमन स्वरूप भयके नाशक भय, शर्व दुःखहारी, वृषभध्वज रुद्र एवं कालके भी संहारक भगवान शिवको नमस्कार ॥१॥

तस्मै नमः परमकारण-कारणाय,
दीप्तोज्वलोज्वलित पिंगल लोचनाय ।
नागेन्द्रहारकृत-कुण्डल-भूषाणाय,
ब्रह्मेन्द्र-विष्णु-नमिताय नमः शिवाय ॥२॥

उस परम कारणके भी कारणको भी नमस्कार जिसके प्रदीप्त उज्वल एवं प्रकाशमय पिंगलवर्ण (तीन) नेत्र हैं । नागेन्द्रोंसे हार, कुण्डल प्रभृति आभूषण बनाये, ब्रह्मा इन्द्र तथा विष्णु द्वारा अभिवंदित भगवान शिवको नमस्कार ॥२॥

सर्वेश्वरत्वेसति भस्म-शायिने,
उमापतित्वेसति चोर्ध्व-रेतसे ।
वित्तेश-भृत्येसति चर्मवाससे,
निवृत्तरागाय नमः तपस्विने ॥३॥

सर्वेश्वर होनेपर भी जो भस्ममें सोता है, उमापति (अर्धनारीश्वर) होनेपर भी जो ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचारी) हैं, कुबेर जैसा भृत्य (सेवक) रखकर भी जो (गज) चर्म पहिनता है, उस रागसे विनिवृत्त तपस्वीको नमस्कार ॥३॥

ॐ कारेण विहीनस्य, नित्यमुद्विग्न चेतसः ।
तापत्रयाग्नि-तप्तस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ॥४॥

हे महेश्वर, मुझ ओंकार-विहीन, नित्य उद्विग्न चित्त तथा त्रय तापकी अग्निसे तपाये हुएका परित्राण करो ॥४॥

मदनोरग-दष्टस्य, क्रोधाग्नि-ज्वलितस्य च ।
लोभ-मोहादि-सक्तस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ॥५॥

हे महेश्वर ? मुझ कामरूपी सर्पसे काटे हुएको क्रोधाग्निमें जलते हुए, तथा लोभ-मोहादिमें आसक्तका परित्राण करो ॥५॥

भटैर्नानाविधैर्घोरैर्यमस्याज्ञा - विधायकैः ।
तां दशां नीयमानस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ॥६॥

हे महेश्वर ? यमराजके आज्ञाकारी अनेक प्रकारकी भयंकराकृति दूतोंके द्वारा उस (नारकीय) दशामें जाए जाते हुए मेरा परित्राण करो ॥६॥

काय पोषण सक्तस्य, रोग-शोकाकुलस्य च ।
भवार्णव-निमग्नस्य, त्राणंकुरु महेश्वर ॥७॥

हे महेश्वर ? मुझ शरीरके पोषणमें आसक्त रोग एवं शोकसे आकुल तथा संसार-सागरमें निमग्नका परित्राण करो ॥७॥

तृष्णा-शृंखलयानाथ, बद्धस्य भयपंजरे ।
कृपार्द्र दीनचित्तस्य, त्राणं कुरु महेश्वर ॥८॥

हे नाथ ? हे महेश्वर ? मुझ तृष्णाकी जंजीरमें बंधकर भयके पिंजड़ेमें पड़े हुए दीनचित्तका कृपार्द्र होकर परित्राण करो ॥८॥

दुष्टस्य नष्ट-चित्तस्य, शिवमार्गोज्झितस्य च ।
अनाथस्य जगन्नाथ, त्राणंकुरु महेश्वर ॥९॥

हे जगन्नाथ ? हे महेश्वर ? मुझ दुष्ट, नष्ट चित्त (भ्रष्टचित्त) शिवा (कल्याण) मार्गको छोड़े हुए अनाथका परित्राण करो ॥९॥

संसार-पाश-दृढ़बंधन-पीडितस्य,
मोहान्धकार-विषयेषु निपातितस्य ।
कामार्दितस्य भयराग-खलीकृतस्य,
दीनस्य मे कुरुदयां परलोकनाथ ॥१०॥

हे परलोकके स्वामी ? मुझ संसारके बन्धनमें कठोरतासे बंधे हुए पीड़ित, मोहके अन्धकार द्वारा विषयों (के गर्त) में गिराए हुए, कामके द्वारा मर्दित तथा भय एवं रागके द्वारा दुष्ट बनाये दीनपर दया करो ॥१०॥

दीनोऽस्मि मंदधिषणोऽस्मि निराश्रयोऽस्मि,
दासोऽस्मि साधुजनता-परिवर्जितोऽस्मि ।
दुष्टोऽस्मि दुर्भंग-रतोऽस्मि गतत्रयोऽस्मि,
धर्मोज्झितोऽस्मि विकलोऽस्मि कलंकितोऽस्मि ।।११।।

मैं दीन हूं, मंद बुद्धि हूं, निराश्रय हूं, दासवृत्ति करता हूं, साधु संगसे रहित हूँ, दुष्ट हूं, कदाचारी हूं, निर्लज्ज हूं, धर्मभ्रष्ट हूं, व्याकुल हूं, और कलंकित हूं ।।११।।

भीतोऽस्मि भंगुरतरोऽस्मि भयानकोऽस्मि,
शंकाशत-व्यतिकराकुल चेतनोऽस्मि ।
रागादि दोष-निचयैर्मुखरी कृतोऽस्मि,
सत्यादि शौच नियमैः परिवर्जितोऽस्मि ।।१२।।

मैं भयभीत हूं (क्योंकि) अत्यन्त क्षणभंगुर हूं (फिर भी दूसरोंके लिए) भयानक (हो गया) है । सैकड़ों शंकाओंकी उलझनसे मेरी बुद्धि आकुल हो गई है । रागादि द्वेषोंके समूहोंने मुझे वहिर्मुख बना दिया है और सत्यादि यम तथा शौचाश्र नियमोंसे मैं रहित हूं ।।१२।।

जन्माटवी-भ्रमण-खेदित-मारुतोऽस्मि,
नित्यामयोऽस्माशरणोऽस्म्य समं जसोऽस्मि ।
आशा-निरंकुश-पिशाचिक-पाचितोऽस्मि,
दासोऽस्मि हा पशुपते शरणागतोऽस्मि ।।१३।।

जन्म मरणरूप बायुके द्वारा संसार काननमें भ्रमण करते-करते अत्यन्त कष्ट दिया गया हूं, नित्य रोगोंसे आक्रान्त रहता हूं, अशरण हूं, दुविधेमें पड़ा हूं । निरंकुश आशा पिशाचिनी मुझे पका रही है । हे पशुपति, मैं हा, हा, करता हूं ? (आपका) दास हूं ? (आपकी) शरण हूं ! (रक्षा करो) ।।१३।।

हा हतोऽस्मि विनष्टोऽस्मि, दष्टोऽस्मि चपलेन्द्रियैः ।
भवार्णव-निमग्नोऽस्मि, किं त्रातु माम महंसि ।।१४।।

— हाय, मारा गया हूं ? नष्ट होगया हूं ? चंचल इन्द्रियों द्वारा (खूब) काटाद गया हूं । संसार सागरमें डूब ही गया हूं । क्या आपको मेरी रक्षा नहीं करनी ? ।।१४।।

यदि नास्मि महापापी, यदि नास्मि भयान्वितः ।
यदिनेन्द्रिय-संसक्तस्तत्कोर्थं, शरणं मम ।।१५।।

यदि मैं महापापी न होता, तो यदि मैं भयभीत न होता, यदि मैं इन्द्रियासक्त न होता, तो आप मुझे शरणमें लेते ? [क्या बड़ी बात करते ? और तब मुझे ही शरण की क्या आवश्यकता होती ? ॥१५॥

आर्तो मत्सदृशोनान्यस्त्वत्तो नान्यः कृपापरः ।
तुल्यएवावयोर्योगः कथं नाथ न पाहि माम् ॥१६॥

मेरे समान कोई (विश्वमें) आर्त नहीं है और आपके समान कोई कृपालु भी नहीं है। हम दोनोका बराबर संयोग मिला है। हे नाथ फिर भी आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ? ॥१६॥

आकर्णयाशु कृपणस्य वचांसि सम्यक,
लुब्धोऽस्मि नाथ बहुभिर्ननु जन्मबन्धैः ।
अद्य प्रभो यदि दया कुरुषे न में त्वं,
त्वत्तः परं कथय कं शरणं ब्रजामि ॥१७॥

शीघ्र ही मुझ कृपणकी प्रार्थनाको भली प्रकार आप सुनें ? क्योंकि हे नाथ, अनेक जन्मोंसे मैं आपकी कृपापर मुग्ध हूँ। हे प्रभो, यदि आज भी आप मुझपर दया नहीं करते हैं तो कहिये भला आपको छोड़कर मैं और किसकी शरणमें जाऊँ ॥१७॥

द्वेष्योहं सर्वजन्तूनां बंधूनां च विशेषतः ।
सुहृद्वर्गस्य सर्वस्य किमन्यत्कथयामिते ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंका, विशेषतः बन्धुओंका तथा सभी सुहृदयोंका मैं द्वेषी हूँ। [अतः कहीं शरण मिलनेकी आशा नहीं] आपसे और क्या कहूँ ॥१८॥

मातापितृ विहीनस्य, दुःखशोकातुरस्य च ।
आशा-पाश-निवद्धस्य, रागद्वेषायुतस्य च ॥ १६ ॥

माता-पिता रहित, दुःख एवं शोकसे आतुर आशाकी फाँसीसे बंधे और राग-द्वेष संयुक्त [मैं अधम हूँ] ॥१६॥

देव देव महादेव शरणागत वत्सल ।
नान्यस्त्रातास्ति में कश्चित्त्वदृते परमेश्वर ॥ २० ॥

हे शरणागत वत्सल देव देव महादेव ! परमेश्वर ! आपको छोड़कर मेरा परित्राण करनेवाला और कोई है नहीं ॥२०॥

भीतोऽस्मि कालवशगोऽस्मि निराश्रयोऽमि,
खिन्नोऽस्मि दुःख-जलधौ पतितोऽस्मिशंभो ।
आर्तोऽस्मि मोह-पटलेन समावृतोऽस्मि,
त्वां चन्द्रचूड़ शरणं समुपागतोऽस्मि ॥ २१ ॥

हे शंभु मैं डरा हुआ हूँ, कालके वशमें गया हुआ हूँ । निराश्रय हूँ, खिन्न हूँ तथा दुःखके समुद्रमें गिर पड़ा हूँ ! मैं आर्त हूं और मोहकी यवनिकासे ढक गया हूं । अतएव हे शशांक-शेखर, आपकी शरण आया हूँ ॥२१॥

आशिरवान्त निमग्नोऽस्मि, दुस्तरे भवकर्दमे ।
प्रसीद कृपया शंभो, पादाग्रेणोद्धरस्व माम् ॥ २२ ॥

मैं इस अपार संसार-कीचमें चोटी तक डूब चुका हूं । हे आशुतोष आप प्रसन्न हों । कृपा करके अपने चरणाग्रसे मेरा उद्धार करें ॥२२॥

श्रुत्वा मे भवभीतस्य, भगवान् करुणागिरः ।
तथा कुरु यथा भूयो, न वान्धते भवापदः ॥ २३ ॥

भगवन ! मुझ भवभीतकी करुण वाणी सुनकर आप वैसा ही करें जैसा करनेसे संसार रूप आपत्ति फिर बाधा नहीं देती ॥२३॥

समय-शत-विलुप्तं, भक्तिहीनं कुचैलं,
मलिन-वसन-गात्रं निर्धनं पापशीलम् ।
रविज-भृकुटि-भीतं रोगिणं प्राप्त-दुःखं,
खलजन-परिभूतं रक्षमां सर्व शक्ते ॥ २४ ॥

सैकड़ों युगोंसे नष्ट प्राय, भक्तिहीन, अपवित्र आवरण धारी, शरीरपर मैले वस्त्र पहिने, निर्धन, पापिष्ठ, यमराजकी कठोर भृकुटिके डरे हुए, रोगी, दुःखी एवं दुष्टोंसे आक्रान्त मेरी हे सर्व शक्तिमान आप रक्षा करें ॥२४॥

आपन्नोऽस्मि शरण्योस्मि, सर्वावस्थोऽस्मि सर्वदा ।
भगवंस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि, रक्ष मां शरणागतम् ॥ २५ ॥

मैं [आर्त होकर] आ गया हूं, शरण देने योग्य वा शरणेच्छु हूं, सभी अवस्थाओंमें और सर्वदा आपकी शरण हूं, अतः मुझ शरणागतकी रक्षा करें ॥२५॥

जातस्य जायमानस्य, गर्भस्थस्यापि देहिनः ।
मा भूत्तत्र कुले जन्म, यत्र शंभुर्न दैवतम् ॥ २६ ॥

पैदा हो चुके, उत्पन्न हो रहे एवं गर्भस्थ किसी भी देहधारीका जन्म ऐसे कुलमें न हो, जिसमें भगवान शंकरकी आराधना न होती हो ॥२६॥

शंकरस्य च ये भक्ताः, शांतास्तद्गत-मानसाः ।
तेषां दासस्य भूयासं दासो जन्मनि जन्मनि ॥ २७ ॥

जो शान्त तथा तद्गत चित्त [नित्य तन्मय] भगवान शंकरके भक्त हैं, जन्म जन्ममें हम उनके दासोंके दास होवें ॥२७॥

नमस्कारादि संयुक्तं, शिवमित्यक्षर द्वयम् ।
जिह्वाग्रे वसते यस्य, सफलं तस्य जीवनम् ॥ २८ ॥

जीवन उसीका सफल हुआ, जिसकी जीभके अग्र भागपर नमस्कारादि संयुक्त 'शिव' ये दो अक्षर निवास करते हैं ॥२८॥

यत्कृतं यत्करिष्यामि, तत्सर्वं न मया कृतम् ।
त्वया कृतं त्वं फल भुक्त्वमेव परमेश्वर ॥ २९ ॥

मैंने जो कुछ भी किया है या करूँगा, वह मैंने नहीं किया है। हे परमेश्वर, वह आपने किया है। आप ही उसके फल भोक्ता हैं। अतः आप ही भोगें ॥२९॥

मदादेवं भवं रुद्रं, शिवं त्रिनयनं हरम् ।
बृषाकपिं त्र्यंबकं च, धूर्जटिं नीललोहितम् ॥ ३० ॥
स्थाणुं पशुपतिं भीमं शंकरं बृषभध्वजम् ।
एतानि गुह्यनामानि, पंचादश समाहितः ॥ ३१ ॥
नित्यं स्मरति यस्तस्य, सिध्यन्ते सर्व सिद्धयः ।
शिवलोके ब्रजेत्सोपि, ईश्वरस्य प्रसादतः ॥ ३२ ॥

महादेव, भव, रुद्र, शिव, त्रिनयन, हर, बृषाकपि, त्र्यवक, धूर्जटि, नीललोहित ॥३०॥ स्थाणु, पशुपति, भीम, शंकर और बृषभध्वज इन पन्द्रह गुप्त नामोंको जो एकाग्र होकर ॥३१॥ नित्य स्मरण करता है, उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त [सिद्ध] हो जाती हैं और श्री महेश्वरके प्रसादसे शरीर त्यागान्तर वह शिवलोकको प्राप्त होता है ॥३२॥

शिवमादौ शिवमध्ये शिवमन्ते च सर्वदा ।
सर्वेषां शिव भक्तानां नराणामस्तु वै शिवं ॥ ३३ ॥

इस सृष्टिके आदि कारण भगवान शंकर हैं, मध्यमें भगवान शिव ही [सृष्टिरूपसे] हैं और अन्तमें भी सर्वदा वही प्रलयंकर शेष रह जाते हैं। अतः समस्त शिव-भक्तों-सभी मनुष्योंका कल्याण [उन्हीं भगवान शिबकी कृपासे] हो !! ३३॥

यदक्षरे परिभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद्गतम् ।
मयि दासेन विज्ञप्तिः क्षम्यतां परमेश्वर ॥ ३४ ॥

मुझ दास द्वारा की गई इस प्रार्थनामें जो अक्षर अनुच्चारित रह गये हों अथवा मात्राहीन उच्चारित हो गये हों हे परमेश्वर, उन सभी भूलोंको आप क्षमा करें ॥३४॥

❋

श्रीगनेशजीकी प्रेरणासे इस वर्ष श्रीमहामृत्युञ्जयके अनुष्ठानकी विस्तृत विधि भली-भाँति समझाकर छापी जा रही है ताकि विद्वानोंके अलावा सर्वसाधारण भी इसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकें।

अनुष्ठानका प्रयोजन—श्रीमहामृत्युञ्जयका अनुष्ठान नीचे लिखे विभिन्न कार्योंके लिए होता है। (१) यदि जन्म, मास, गोचराष्टक-वर्ग और दशान्त-र्दशामें ग्रहजन्य पीड़ाका योग हो। (२) बन्धु-बान्धवका वियोग हो रहा हो। (३) नगर, ग्राम या किसी क्षेत्रमें महामारी आदि रोगोंसे लोगोंकी मृत्यु हो रही हो। (४) (राज्य) सत्ता, पदाधिकार जा रहा हो। (५) धन-हानि हो रही हो अथवा दारिद्र्य-शोक हो। (६) किसीने शीघ्र मृत्यु होनेको कह दिया हो। (७) कुण्डली-मेलापकमें नाड़ी-दोष आता हो। (८) राज-भय या अभियोग उपस्थित होनेपर। (९) मनोधर्मका विपर्यय हो जानेपर। (१०) राष्ट्र-भंग हो रहा हो। (११) परस्पर घोर क्लेश हो रहा हो। (१२) और त्रिदोषजन्य दुर्निवार्य रोग हो, तो इन परिस्थितियोंमें यथाविधि महामृत्युञ्जयका जप करना-करवाना चाहिए।

कार्यके अनुसार मंत्र-जप संख्या—कामनाके अनुसार महामृत्युञ्जय मंत्र-जपकी संख्या निम्नोक्त है—

(१) यदि किसी प्रकारकी महामारी या अन्य प्रकारसे देशमें महा-उपद्रव या अशान्ति हो रही हो तो उनकी रोक-थामके लिए एक करोड़ जप। (२) यदि किसी प्रकारका सामान्य रोग हो, अशुभ स्वप्न हुआ हो या अन्य कुछ भय हो तो सवा लाख जप। (३) यदि अपमृत्युका भय हो अथवा कुछ संदिग्ध दुर्वार्ता सुनी हो तो दस हजार जप। (४) यदि यात्रामें भय हो तो एक हजार जप। (५) और अभीष्ट-सिद्धि, पुत्र-प्राप्ति, (राज्य) उच्च पद-प्राप्तिके लिए अथवा यथेच्छ मान-सम्मान, धन-लाभादिके लिए सवा लक्षका पुरश्चरण आवश्यक है।

अनुष्ठानकी विधि—(१) कोई भी अनुष्ठान किसी कार्य-सिद्धिके लिए किया जाय, उसे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार यथासमय करना चाहिए। आपत्तिसे ग्रसित हो जानेपर मनमाने ढंगसे कर्म करना अच्छा नहीं। (२) किसी कार्य-विशेषके कारण विवश होकर अचानक सहसा प्रयोग अनि-वार्य हो तो शुभबेलामें इसका तात्कालिक प्रयोग भी किया जा सकता है। (३) यदि सब प्रकारकी सानुकूलता हो और किसी महत्प्रयोजनकी सिद्धिके लिए प्रयोग किया जाय तो मुहूर्त्तज्ञ ज्योतिषीसे चन्द्र-तारादि-बल संयुक्त

अच्छे मुहूर्त का दिन निश्चय करावें तथा शिवालय, सौम्य देवालय अथवा अपने गृहमें ही किसी पवित्र स्थानको झाड़-बुहार-धो-लीप-पोत कर, आसन भूमिका कूर्म.शोधन और दीप-स्थानको शुद्ध करें। (४) मुहूर्त के प्रथम दिन गायत्री जपादिसे प्रायश्चित्त करें तथा मुहूर्त के दिन प्रातःकाल स्नान, सन्ध्या-देवपूजा आदि नित्य कृत्यको पूरा कर प्रयोगके स्थानमें अपने आसन-पर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन, प्राणायाम, शान्तिपाठ और देव-प्रणामादि करनेके पश्चात् स्वस्थ-चित्त और एकाग्र मनसे जप करें। (५) कदाचित् पार्थिव-पूजापूर्वक जप करना हो तो मेरी बड़ी बहनजी **श्रीमती सुशीला देवी गुप्ता** द्वारा संपादित '**श्रीभगवत्पूजन-विधि**'' नामक पुस्तिकामें लिखित विधिके अनुसार मृत्तिका (मिट्टी) का शिव-लिंग बनाकर उसकी पूजा करें एवं उस पार्थिव शिवलिङ्गके सान्निध्यमें संकल्प पूर्वक जप करें और यदि मूर्ति मौजूद हो तो उसीके पूजनोपरान्त जप करें। (६) जप करनेवाला ब्राह्मण शुद्धचेता. प्रयोग-विधिका ज्ञाता, निर्वैर, निर्लोभी, उदार दयालु, परोपकारी, अनुष्ठानी, देवताराधक और नियम-संयमसे पूर्ण होना चाहिए। कदाचित् ब्राह्मणोंकी संख्या एकसे अधिक हो तो वे भी उपरोक्त गुण-संयुक्त विषम संख्यामें (जैसे १, ३, ५, ७, ९ या ११ ब्राह्मण) होने चाहिए। (७) प्रयोग यदि स्वयं करें तो कहना ही क्या, और यदि यजमानकी ओरसे दूसरोंके द्वारा हो तो यजमानका चित्त भी शुद्ध, शान्त, सरल, असंशयी और कार्पण्य-रहित होना चाहिए। (८) प्रयोगकी दैनिक जप-संख्या, स्थान आसन, अशन और समय जप-पूर्णाहुति-काल तक निश्चित एवं समान रहने चाहिए। विषमतासे विक्षेप सम्भव है। प्रयोग यदि पुरश्चरणात्मक हो तो समाप्तिके समय जप-संख्याका दशांश हवन, हवन-संख्याका दशांश तर्पण, तर्पण-संख्याका दशांश मार्जन और मार्जन-संख्याका दशांश (या कार्यानुसार न्यूनाधिक) ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। (१०) यदि प्रयोग एक ही दिनका हो और हवनादि न हो सके तो उस परिमाणके जप अधिक कर देना चाहिए; किन्तु ब्राह्मण-भोजन अथवा भोजनके निमित्त सिद्धान्न या निष्क्रय द्रव्य देना अनिवार्य है। ऐसा करनेसे ही कार्य-सिद्धि होती है। वर्तमान समयमें विधर्मियोंके संसर्ग और प्रभावसे लोगोंके विचार बहुत बदल गये हैं। धर्म-कर्मानुष्ठानोंमें लोगोंकी श्रद्धा घट रही है और निरर्थक कामोंमें व्यर्थ अर्थ-व्यय करनेकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है; फिर भी जिनकी अपने धर्म एवं शास्त्रोंमें कुछ श्रद्धा अवशिष्ट हो, उन्हें अपने सर्वविधि कल्याणके लिए इस महामृत्युञ्जय-प्रयोगका आश्रय लेना चाहिए।

हवन-विधि—(१) जप पूरा हो जानेके पश्चात् हवन-सामग्रीके अनुसार शास्त्रोक्त प्रमाणसे वेदी बनावें (अथवा विशेष परिस्थितिमें ताँबे या मिट्टीका बना हुआ हवन-कुण्ड स्थापित करें), कुश-कण्डिका-विधिके अनुसार अग्नि-स्थापनकर शास्त्रोक्त विधिसे यथापरिमित यथोचित द्रव्यका हवन करें। सामान्यतः हवन-सामग्रीमें तिल जितनी मात्रामें हो, उसकी आधी मात्रामें यव, यवका आधा चावल, चावलका आधा शक्कर और शक्कर (खाँड़) का आधा घी रखनेसे उचित प्रमाणानुसार शाकल्य तैयार हो जाता है। इस शाकल्यमें पञ्चमेवा, भोजपत्र और चन्दनका भूरा भी छोड़ना चाहिए; लेकिन कामना विशेषके लिए हवन भी कई द्रव्योंका करना पड़ता है। (२) यदि सवा लक्षका पुरश्चरण किया हो तो उसमें बिल्वफल, तिल, खीर, सरसों, दूध, दही, दूर्वा, बट, पलास और खैरकी समिधा, इनको मधुराप्लावित कर (शहदमें डुबोकर) यथाक्रम हवन करना चाहिए। (३) रोग-व्याधिके निवारण या शत्रुपर विजय-प्राप्तिके लिए धन, सम्पत्ति, दीर्घायु-लाभकी कामना हो तो सुधावल्ली (गिलोय) की बेलके चार-चार अंगुलके टुकड़ोंका हवन करें। (४) लक्ष्मी-प्राप्तिके लिए बिल्व-फलका हवन करें। (५) ब्रह्मत्व-सिद्धिके लिए पलाशकी समिधाका हवन करें। (६) धन-प्राप्तिके लिए बटकी। (७) कान्ति-वृद्धिके लिए खैरी (खदिर) की। (८) अधर्म (पाप) नाशार्थ तिलोंकी। (९) शत्रु-नाशार्थ सरसोंकी। (१०) यश एवं श्री-लाभार्थ खीरकी। (११) कृत्या व अपमृत्यु-निवारणार्थ दहीकी। (१२) रोग-क्षयके लिए तीन-तीन दूर्वाओंकी। (१३) प्रबल ज्वर-नाशके लिए अपामार्ग (औंधाकोरा) की, अग्निसे पकाई खीरकी। (१४) वशीकरणके लिए गायके दूध व घाससे मिली हुई दूर्वाङ्कुरोंकी और (१५) सर्व प्रकारके रोगोंसे मुक्तिके लिए काश्मीरीकी तीन-तीन समिधा तथा दूध और अन्नकी आहुतियोंसे हवन करें। हवनकी प्रत्येक आहुतिमें 'स्वाहा' शब्द कहें और हवनके पीछे एक पात्रमें जल व दूध मिलाकर, उसमें-से अञ्जली या अर्घेमें जल लेकर "महामृत्युञ्जयं तर्पयामि" अथवा "अमुकं तर्पयामि" यह उच्चारण करता हुआ तर्पण करें और दूर्वांकुरोंसे जल ले-लेकर स्वयं प्रयोग किया हो तो अपने शरीरपर और यजमानकी ओरसे किया हो तो यजमानके शरीरपर दशांश संख्यामित मार्जन करें।

संकल्प-विधि—विद्वानोंके लिए तो कोई विधि-निर्देश सर्वथा अनावश्यक है; किन्तु सर्व-साधारणके लिए लिखना पड़ता है कि सब कामोंकी

संकल्पसे ही सिद्धि होती है और साधारण लोग बहुधा संकल्पमें विकल्प कर देते हैं। अतः स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी कामनाके लिए यजमानकी ओरसे अनुष्ठान करना हो तो कार्यारम्भके पहले कामनाका सम्बोधन करके यजमानके हाथसे संकल्प करायें, फिर अनुष्ठानकर्त्ताको प्रति बार स्वयं संकल्प करना चाहिए। अपने लिए अनुष्ठान करानेवालेको प्रति-दिन स्वयं संकल्प करना चाहिए। (२) संकल्पकी कल्पनामें यह ध्यान रखना चाहिए कि किसकी ओरसे क्या काम, किसके द्वारा, कितना किया जाता है; इन बातोंका व्याकरणके अनुसार शुद्ध सम्बोधनकर संकल्प करना-कराना चाहिए। उदाहरणार्थ यहाँ दो-चार संकल्प दिये जा रहे हैं। (३) ॐ तत्सदद्येत्यादि० अमुक गोत्रोऽमुकशर्मा ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणतन्त्रो-क्तफलावाप्तये मम जन्म-वर्ष-मास-दिन-गोचराष्टक-वर्ग-दशान्तर्दशादिषु अनिष्ट फलकारका ग्रहास्तेषां सानुकूलार्थं सकलाधिव्याधि झटिति प्रशमन-पूर्वक दीर्घायुष्य बलपुष्टिनैरुज्यादि सकलाभीष्ट सिध्यर्थे श्रीमहामृत्युञ्जय प्रीत्यर्थे अमुक (शत सहस्रायुत लक्षादि) संख्यया श्रीमहामृत्युञ्जय जपमहं करिष्ये (वा विप्र द्वारा कारयिष्ये)। (४) अथवा 'विषूचिकादि जनमारो-पसर्गशान्त्यर्थे' वा। (५) "वृष्टिकामार्थे" वा (६) "अमुकाभियोग निवृत्त्यर्थे" वा (७) "अमुक दुःस्वप्ननिरसनार्थं" वा (८) "अमुक दिग्यात्रा निर्विघ्नता पूर्वक सिद्ध्यर्थं वा (९) "प्रतिसन्मुख शुक्र दोष दूरीकरणार्थं" वा (१०) "काक मैथुन दर्शनादि सूचिय सर्वारिष्ट निवृत्यर्थं" वा (११) पल्लीपतन सरटारोहेण-मुकदुष्टाङ्ग स्फुरणजनिताऽशुभफलविनाशार्थं" वा (१२) "दीर्घायुष्यपुत्रप्रा-प्त्यर्थं" वा (१३) "यथेच्छ धनलाभार्थं" वा (१४) "अमुकोच्चपद प्राप्त्यर्थं" अथवा (१५) "अमुक कामना सिध्यर्थं" अमुक संख्या परिमित श्रीमहामृत्यु-ञ्जय मन्त्र-जप-महं करिष्ये (वा ब्राह्मण द्वारा कारयिष्ये) इस प्रकार जैसा आवश्यक हो वही संकल्प करना चाहिए।

श्रीमहामृत्युञ्जय-जप-विधि—कृतनित्यक्रियो जपकर्त्ता स्वासने प्राङ्-मुखो दङ्मुखो वा उपविश्य धृतरुद्राक्षा भस्मत्रिपुण्ड्रः। आचम्य, प्राणानायम्य शान्तिपाठं पठित्वा सुमुखश्चेत्यादिना गणेशस्मरणं कृत्वा, देशकालौ सङ्कीर्त्य मम (वा यजमानस्य) अमुक कामना सिद्ध्यर्थं श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्रस्य अमुक संख्या परिमित जपमहं करिष्ये, इति प्रत्याहिकं संकल्पः। ॐ गुरवे नमः॥ ॐ गणपतये नमः॥ ॐ इष्टदेवतायै नमः॥ इति नत्वा यथोक्त विधिना भूत-शुद्धि-प्राणप्रतिष्ठां च कुर्यात्। [भावार्थ यह है कि जप करने वाला नित्य क्रियाके बाद कृष्णाजिन व्याघ्रचर्म, कुशा, दर्भ अथवा उनमें-से

किसी यथोचित आसनपर पूर्व या उत्तर मुख बैठकर प्रथम आचमन, प्राणायाम, शरीर-शुद्धि, आसन शुद्ध करें, तत्पश्चात् शान्तिपाठ ध्यानपूर्वक करके गुरु, गणेश एवं इष्टदेवका ध्यान करें तथा पूर्वोक्त 'संकल्पविधि' में कहे हुए प्रकारसे प्रतिज्ञा-संकल्प करें और तब भूत शुद्धि करें।]

भूतशुद्धि—ॐ तत्सदद्येत्यादि मम अमुक प्रयोग सिध्यर्थे भूतशुद्धि प्राण प्रतिष्ठां च करिष्ये। ॐ आधार शक्ति कमलासनाय नमः, इत्यासनं सम्पूज्य। पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मोदेवता सुतलं छन्दः विनियोगः। "पृथिवीत्वयाधृतालोका देवित्वं विष्णुनाधृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।" गन्धपुष्पादिना पृथ्वीं सम्पूज्य कमलासनाय भूतशुद्धि कुर्यात्। अन्यत्र कामना भेदेन अन्यासनयापि कुर्यात्, तत्रायं क्रमः। पदादि जानु पर्यन्तं पृथ्वी स्थानं तच्चतुरस्रं पीतवर्णं ब्रह्मदैवतं वमिति बीजयुक्तं ध्यायेत्। जान्वादिनाभि पर्यन्तं आपस्थानं तच्चार्द्धचन्द्राकारं शुक्लवर्णं पद्मलाञ्छितं विष्णु दैवतंलमितिबीजयुक्तं ध्यायेत्। नाभ्यादिकंठपर्यन्तं अग्निस्थानं त्रिकोणकारं रक्तवर्णं स्वस्तिकलाञ्छितं रुद्रदैवतं रमिति बीजयुक्तं ध्यायेत्। कण्ठाधिभ्रू पर्यन्तं वायुस्थानं षट्कोणाकारं षड्बिन्दु लाञ्छितं कृष्णवर्णं ईश्वर दैवतं यमितिबीजयुक्तं ध्यायेत्। भ्रू मध्यादिब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं आकाशस्थानं वृत्ताकरो ध्वजलाञ्छितं सदाशिव दैवतं हमिति बीजयुक्तं ध्यायेत्। एवं स्वशरीरे पञ्चमहाभूतानि ध्यात्वा प्रविलापनं कुर्यात्। तद्यथा पृथ्वीमप्सौ, अपोऽग्नौ, अग्निंवायौ, वायुमाकाशे। आकाशं तन्मात्राऽहंकारमहदात्मिकायां मातृका संज्ञकशब्द ब्रह्मस्वरूपायां हृल्लेखार्धभूतायां प्रकृतिमायायां प्रविलापयामि तथा त्रिविधां मायां च नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त स्वभावे स्वात्म प्रकाशरूप सत्य ज्ञानानन्तानन्द लक्षणे परकारणे परमार्थ भूते परब्रह्मणि प्रविलापियामि। तच्च नित्यव शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावं सच्चिदानन्द स्वरूपं परिपूर्णं ब्रह्मैवापमस्मीति भावयेत्। एवं ध्यात्वा—यथोक्त स्वरूपात्प्रणवात्मकात् परब्रह्मणः सकाशात् हृल्लेखार्द्धभूता। सर्वमन्त्रमयी मातृका संज्ञका शब्द ब्रह्मात्मिकामहदहंकारादिपं चेतन्मात्रादि समस्त प्रपञ्चकारणभूता प्रकृतिरूपा यायारज्जुसर्पवत् विवर्तरूपेण प्रादुर्भूता इति ध्यात्वा। तस्या मायायाः सकाशात् यथोक्तमाकाशमुत्पन्नं आकाशाद्वारुत्पन्नः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी समजायत, इति ध्यात्वा। तेभ्यः पञ्चमहाभूतेभ्यः सकाशात स्व शरीरं तेजः पुञ्जात्मकं पुरुषार्थ साधनदेवयाग्यमुत्पन्नमिति ध्यात्वा। तस्मिन् शरीरे सर्वात्मकं सर्वज्ञं सर्वशक्ति संयुक्तं समस्त-देवतामयं सच्चिदानन्द स्वरूपं

ब्रह्मात्मरूपेणानुप्रविष्टमिति भावयेत्, इति भूतशुद्धिः। [श्रीमहामृत्युञ्जयादि अनुष्ठानोंमें उनकी साधनाके कोई-कोई अङ्ग बड़े क्लिष्ट होते हैं। उनको यथोक्त विधिसे करना आजकलके लोगोंके लिए महा कठिन है। यहाँ इस 'भूतशुद्धि' को ही देखिए। इसे यथावत्सम्पन्न करना सबके लिए अशक्य नहीं तो कठिन अवश्य है। जिनको प्राणायाम (स्वाँसके चढ़ाने, उतारने और रोकने) का अच्छा अभ्यास हो और वे उसके द्वारा अपने शरीरके किसी भी अङ्गकी जीवात्म-शक्तिको वहाँसे हटाकर दूसरे स्थानमें रोक रखनेकी सामर्थ्य रखते हों, वे ही वह भूत-शुद्धि कर सकते हैं अन्यथा ध्यान-मात्र कर लेना उचित है। हमारा शरीर अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश इन पञ्चमहाभूतोंसे वना हुआ है। शरीरके जिस-जिस अङ्गमें इन भूतोंका आधिपत्य एवं संचार है और जहाँ-जहाँ यह निज स्वभावके अनुसार कार्य करते हैं, उन स्थानोंके स्वरूपका ध्यान कर वहाँके पृथ्वी आदि तत्त्वोंको उत्तरोत्तर एक दूसरेमें मिलाने, स्थिर रखने और फिर सबको यथास्थान स्थित करनेसे भूतशुद्धि अर्थात् प्राणवायुकी शुद्धि होती है। ऐसा करनेसे वह मनुष्य दैवी-शक्ति सम्पन्न ऋषि तुल्य हो जाता है और उसके किए हुए प्रयोग प्रायः सफल ही होते हैं। शरीरमें पाँवोंसे जंघा-पर्यन्त पृथ्वी तत्वका स्थान है। वह चौकोर, पीतवर्ण, ब्रह्मदैवत, वज्रचिह्न और वं बीजसे युक्त हैं। जंघासे नाभि पर्यन्त जल-तत्त्वका स्थान है वह अर्द्ध-चन्द्राकार श्वेतवर्ण, कमल-चिन्हसे युक्त, विष्णुदैवत और लं बीजसे युक्त है। नाभिसे कण्ठ तक अग्नि-तत्वका स्थान है। वह त्रिकोण, रक्तवर्ण स्वस्तिकसे चिन्हित, रुद्रदैवत और रं बीजसे युक्त है। कण्ठसे भ्रू पर्यन्त वायु-तत्वका स्थान है जो षट्कोणाकार, कृष्णवर्ण, ६ विन्दुसे चिन्हित, ईश्वर दैवत एवं आकाश-तत्वका स्थान गोलाकार, ध्वजलांछित, धूम्रवर्ण, सदाशिव दैवत और हं बीजसे युक्त है। उपरोक्त विषय उत्कृष्ठ योगाभ्यासियों और तन्त्रके तत्वज्ञ विद्वानोंके कामका है। इसलिए इसका आशय संक्षेपसे लिखना अनुपयोगी समझकर इसे छोड़ दिया गया है।

विनियोग-मन्त्र (हाथमें जल लेकर यह मन्त्र पढ़ें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः ह्रौं ॐ। अस्य श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्रस्य वामदेव कहोलवशिष्ठा ऋषयः पंक्तिगार्यत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि सदाशिव महामृत्युञ्जय रुद्रो देवता ह्रीं शक्तिः श्रीं बीजं महा-

मृत्युञ्जय प्रीतये ममाभीष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः (पश्चात् हाथका जल भूमिपर छोड़ दें)।

ऋष्यादि-न्यास—वामदेवकहोलवशिष्ठा ऋषयः मूर्घ्नि (यह मन्त्र बोलकर शिर-स्पर्श करे)। पंक्तिर्गायित्री अनुष्टुप्छन्दान्सि वक्त्रे (मुख-स्पर्श करें)। ह्रीं शक्तये नमो लिङ्गे (लिङ्ग-स्पर्श करें। श्रीं बीजाय नमः पादयोः (चरण-स्पर्श करें)।

कर-न्यास—ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा अंगुष्ठाभ्याँ नमः (अंगूठाका स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवन तर्जनीभ्याँ नमः (तर्जनीका स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धि पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा मध्य-माभ्याँ नमः (मध्यमा अंगुलीका स्पर्श करें) ॐ ह्रौ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुक्मिव बन्धनान् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरात्मकाय ह्रां ह्रीं अना-मिकाभ्यां नमः (अनामिका अंगुलीका स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साममन्त्र-त्रयाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठा अंगुलीका स्पर्श करें) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयायज्वलज्वालाय माँ रक्ष रक्ष अघोराय अस्त्राय करतल करपृष्ठाभ्याँ नमः (यह मन्त्रोच्चारण करते हुए पूरे करतलका स्पर्श करें)।

अङ्ग-न्यास—उपर्युक्त करन्यासके मन्त्रों द्वारा ही अङ्ग-न्यास किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि प्रथम मंत्रमें 'अंगुष्ठाभ्याँ नमः' के स्थानपर 'हृदयाय नमः' कह कर हृदयका स्पर्श करना चाहिए। इसी भाँति अग्रिम मंत्रोंमें 'तर्जनीभ्याँ नमः' के स्थानपर 'शिरसे स्वाहा', मध्यमाभ्याँ नमः' के स्थानपर 'शिषायेंवौषट्', अनामिकाभ्यां नमः' के स्थानपर 'कवचाय हुम्', 'कनिष्ठिकाभ्याँ नमः' के स्थानपर 'नेत्रत्रयायवौषट्' और करतलकरपृष्ठाभ्याँ नमः' के स्थानपर 'अस्त्राय फट्' कह कर क्रमशः शिर, शिखा, भुजा, नेत्र एवं सम्पूर्ण बाह्य शरीरका स्पर्श करें।

पद-न्यास—त्र्यम्बकं शिरसि (शिरका स्पर्श करें)। यजामहे भ्रुवोः (दोनों भौंह स्पर्श करें)। सुगन्धिं नेत्रयोः (नेत्र स्पर्श करें)। पुष्टिवर्धनं मुखे (मुख स्पर्श करें)। उर्वारुकं गण्डयोः (गलेका स्पर्श करें)। इव हृदये (हृदय स्पर्श करें)। बन्धनात् जठरे (कमर स्पर्श करें। मृत्योर्लिङ्गे (लिङ्ग स्पर्श

करें)। मुक्षीय उर्वोः (घुटना स्पर्श करें)। मा जान्वोः (जंघा स्पर्श करें)। अमृतात् पादयोः (पैर स्पर्श करें)। मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानं कुर्यात् (तत्पश्चात् एकाग्रचित्त होकर इस मंत्रसे ध्यान करें।

ध्यान-मन्त्र—हस्ताम्भोज युगस्थ कुम्भ युगलादुद्धृत्यतोयं शिरः। सिञ्चेतं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ॥ अक्षस्रङ् मृगहस्तमम्बुज-गतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्रवत्पीयूषार्द्र तनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयं ॥१॥ चन्द्रोद्भासितमूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वहद्हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यसमलं हास्यास्य पङ्केरुहम् ॥ सूर्येन्द्वग्नि विलोचनं करतले पाशाक्षसूत्रांकुशाम्भोजं विभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे ॥२॥ (ध्यानका स्वरूप—भगवान मृत्युञ्जयके आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपरके दोनों कर-कमलोंसे दो घड़ोंको उठाकर उसके नीचेके दो हाथोंसे जलको अपने सिरपर उँड़ेल रहे हैं। सबसे नीचेके दो हाथोंमें भी दो घड़े लेकर अपनी गोदमें रख लिया है। शेष दो हाथोंमें वे रुद्राक्ष तथा मृग धारण किए हुए हैं। वे कमलके आसनपर बैठे हैं और उनके शीर्षस्थ चन्द्रसे निरन्तर अमृत-वृष्टिके कारण उनका शरीर भींगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथा उन्होंने मृत्युको सर्वथा जीत लिया है। उनके वामाङ्ग-भागमें गिरिराज-नन्दिनी भगवती उमा विराज-मान हैं।)

मानसोपचार-पूजन—भगवानके उपर्युक्त स्वरूपका चिन्तन करते हुए आगे लिखे प्रत्येक मंत्रके उच्चारणके साथ क्रमशः मनःकल्पित गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः मंत्र-पुष्प ध्यान द्वारा भगवानको अर्पित करें; इसे मानसोपचार-पूजन कहते हैं—ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। ॐ हं आकाशात्मकं समर्पयामि। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि। ॐ रं तैजसात्मकं दीपं समर्पयामि। ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि। ॐ सं सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं समर्पयामि ॥

जप-मन्त्र—श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्र-जपके लिए जप-माला शुद्ध रुद्राक्षकी होनी चाहिए। इसके अभावमें उगलियोंपर ही जप करना चाहिए। मूल मन्त्र यह है—"ॐ हौं ॐ जूं सः, भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजा-महे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ॥" यह स्पष्ट युक्त मंत्र है। इसका प्रायः सवा लाख जप सर्वार्थ-साधक माना गया है। जप-संख्या पूरा कर लेनेके पश्चात्

पूर्वोक्त रीतिसे पुनः कर-न्यास एवं अङ्ग-न्यास करें; तत्पश्चात् प्रार्थना-अर्पण करें।

प्रार्थना-अर्पण—फूल लेकर हाथ जोड़ें और इस मंत्रसे प्रार्थना करें "गुह्यातिगुह्य गोप्तात्वं गृहाणास्मद् कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वरः । मृत्युञ्चय महारुद्र त्राहि माँ शरणागतम् । जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः" (फूल भूमिपर छोड़ दें; फिर हाथमें जल लेकर इस मन्त्रको बोलते हुए अर्पण करें) "अनेन महामृत्युञ्जय जपाख्येन कर्मणा श्रीमहामृत्युञ्जयः प्रीयतां मम् ।।" (हाथका जल भूमिपर छोड़ दें ।)

हवन—इस शताक्षरा गायत्री मन्त्रसे करें—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ जातवेदसेसुनबामसोमम-रातीयतोनी दहाति वेदः स नः हर्ष दति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुदुरिता-त्यग्निः । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा । इस प्रकार आरम्भसे समाप्ति पर्यन्त इस प्रयोगको सविधि करने-करानेसे अवश्य ही यथेष्ट फल मिलता है।

इति शिवम् ।

श्रीकाशी विश्वनाथ पञ्चांगमें

अथारिष्टशान्त्यर्थं महामृत्युञ्जयजपविधिः

आचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठं पठित्वा सुमुखश्चेत्यादिना गणेशस्मरणं च कृत्वा। संकल्पः— अमुकमासीयाऽमुकपक्षीयामुकतिथौ— वासरे स्वस्य (यजमानस्य वा) शरीरे-उत्पन्नोत्पत्स्यमानाऽखिलारिष्टनिवृत्तये श्रीमृत्युञ्जयप्रसादाद्दीर्घायुष्यसततारोग्यावाप्तये मृत्युञ्जयमन्त्रजपमहं करिष्ये ॥ ऋष्यादिन्यासः ॥ वामदेवकहोलवशिष्ठाऋषयः मूर्ध्नि ॥ पंक्तिर्गायत्री अनुष्टुप्छंदांसि वक्त्रे ॥ सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रदेवतायै नमः हृदि ॥ ह्रींशक्तये नमो लिंगे। श्रीबीजाय नमः पादयोः ॥ इति ऋष्यादिन्यासः ॥ ॐ हौं ॐजूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ॥ अस्यश्रीमहामृत्युञ्जयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवशिष्ठाऋषयः पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छदांसि सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रोदेवता ह्रींशक्तिः श्रीं बीजं महामृत्युञ्जय प्रीतयेममाभीष्टसिद्ध्यर्थेजपेविनियोगः। ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवतेरुद्राय शूलपाणयेस्वाहा हृदयायनमः ॥ ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमोभगवतेरुद्राय अमृतमूर्त्तयेमांजीवय शिरसिस्वाहा ॥ ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिपुष्टिवर्धनं ॐ नमोभगवतेरुद्राय चन्द्रशिरसेजटिन स्वाहा शिखायै वौषट् ॥ ॐ हौं ॐ जूं स भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमोभगवतेरुद्राय त्रिपुरान्तकायह्रौं कवचायहुँ ॥ ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमोभगवतेरुद्रायत्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममंत्रत्रयायवौषट् ॥ ॐ हौं ॐ जूंसःभूर्भुवः स्वःमामृतात् ॐ नमोभगवतेरुद्राय ॐ अग्नित्रयाय उज्वलज्वालाय मां रक्ष रक्ष अघोराय अस्त्रायफट् ॥ इति षडङ्गन्यासः।

त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रुवोः। सुगन्धि नेत्रयोः। पुष्टिवर्द्धनं मुखे। उर्वारुकं गण्डयोः। इव हृदये। बंधनात् जठरे। मृत्युर्लिगे। मुक्षीय उर्वोः। मां जान्वोः। अमृतात् पादयोः ॥ इति पदन्यासः ॥ मूलेनव्यापकंकृत्वा ध्यानं कुर्यात। **अथध्यानं** ॥ हस्तांभोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्यतोयंशिरः सिञ्चतं करयोर्युगेनदधतंस्वांकेसकुम्भौकरौ ॥ अक्षस्रग्मृगहस्त

मंबुजगतंमूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्पीयूषोत्रतनु भजेत्सगिरिजं मृत्युञ्जयंत्र्यम्बकम् ।। १।। चंद्रोद्भासितमूर्धजंसुरपतिंपीयूषपात्रंवहद्धस्ताब्जेनदधत् सुदिव्यममलं हास्यास्यपंकेरुहम् । सूर्येन्द्वग्निविलोचनं करतले पाशाक्षसूत्रांकुशाम्भोजंबिभ्रतमक्षयं पशुपतिंमृत्युञ्जयंसंस्मरे ।। २ ।। इति ध्यात्वा । मानसोपचारैःसंपूज्य ।। ॐहंआकाशात्मकं पुष्पंसमर्पयामि ।। ॐ यंवाय्वात्मकंधूपं समर्पयामि ।। ॐ रं तैजसात्मकंदीपंसमर्पयामि ।। ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ।। ॐ सं सर्वात्मकं मंत्रपुष्पंसमर्पयामि ।। मंत्रं जपेत् ।। ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनं उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।। ततो जपानन्तरं देवदक्षिणकरे जपं समर्पयेत् ।। गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।। सिद्धिर्भवतुमेदेवत्वत्प्रसादान्महेश्वर ।। मृत्युञ्जयमहारुद्रत्राहिमांशरणागतम् ।। जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ।। अर्पणं—अनेनमहामृत्युञ्जयजपाख्येनकर्मणा श्रीमहामृत्युञ्जयः प्रीयतां मम ।। इति विज्ञाप्य देवेशंजपेन्मन्त्रं तु त्र्याम्बकं ।। जप निवेदनम् जपसांगतासिध्यर्थंयथाकामनाद्रव्येण तद्दशांशदुग्धाज्यसंसिक्तापामार्गसमिद्भिर्होमः तद्दशांशतर्पणम् तद्दशांशमार्जनं तद्दशांशब्राह्मणभोजनंकारयेत् । इति ।। अथहोमार्थशताक्षरागायत्रीमन्त्रः ।। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ।। ॐ जातवेदसेसुनवामसोममरातीयतोनीदहातिवेदः । स नः पर्षदतिदुर्गाणिविश्वानावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः ।। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिपुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् स्वाहा ।।

☆

धर्मसङ्घ पंचांग में

अथारिशाष्टन्तयेमहामृत्युञ्जयवैंदिकमन्त्र जपविधिः ।

आचम्य प्राणानायम्य, शान्तिपाठं, सुमुखश्चेत्यादि गणेशस्मरणं च कृत्वा ।। संकल्पः- अमुकमासीयामु कपक्षीयाऽमुकतिथावमुकवासरे स्वस्य (यजमानस्य) शरीरे उत्पन्नोत्स्समानाऽखिलारिष्टनिवृत्तये श्रीमृत्युंजय प्रसादाद्दीर्घायुष्यसततारोग्यतावाप्तये महामृत्युंजयमन्त्रजपमहं करिष्ये ।। ऋष्यादिन्यासः ।। वामदेवकहोलवशिष्ठाऋषयः मूर्घ्नि ।। पंक्तिर्गायत्री अनुष्टुप्छन्दांसि वक्त्रे ।। सदाशिवमहामृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः हृदि ।। ह्रीं शक्तये नमः लिङ्गे ।। श्री वीजाय नमः पादयोः ।। ऋष्यादिन्यासः ।। ॐ ह्रीं ॐजूं सः भूर्भुवः स्व त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम् ।। ऊर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्, भूर्भुवः स्वरों सः जूं ह्रौं ॐ ।। ॐ अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवशिष्ठाऋषयः पंक्तिर्गायत्र्युष्णिगनुष्ठ-ष्छन्दांसि सदाशिवमहामृत्युंजय रुद्रो देवता ह्रीं शक्तिः, श्री बीजं महामृत्युंजयप्रीतये ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।। ॐह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं, ॐ नमोभगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः ।। ॐ ह्रौं ॐजूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे, ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवय शिरसि स्वाहा ।। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगंधि पुष्टिवर्द्धनं ॐ नमोभगवते रुद्राय चन्द्रशिरसि जटिने स्वाहा शिखायैं वौषट ।। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्व्वारुकमिव बन्धनान्. ॐ नमोभगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां ह्रौं कचवाय हुँ ।। ॐ ह्रौं जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मक्षाय, ॐ नमोभगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साममन्त्राय नेत्रत्रयाय वौषट् ।। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय उज्जलज्वालाय मां रक्ष रक्ष अघोराय अस्त्राय फट् ।। इति षडङ्गन्यासः ।।

त्र्यम्बकं शिरसि ।। यजामहे भ्रुवोः ।। सुगंधि नेत्रयोः ।। पुष्टिवर्द्धन मुखे ।। उर्व्वारुकं गण्डयोः ।। इव हृदये ।। बन्धनात् जठरे ।। मृत्योः लिङ्गं ।। मुक्षीय ऊर्वोः ।। मा जान्वोः, अमृतात् पादयोः इति पदन्यासः ।। मूलेनव्यापकंकृत्वाध्यानंकुर्यात् । अथध्यानम् ।। हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः । सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ।। अक्षस्रग्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्पीयूषोत्रतनुं भजे सगिरिजं मृत्युंजयं त्र्यम्बकम् ।।१।। चन्द्रोद्भासितमूर्द्धजंसुरपतिंपीयूषपात्रंवहद्धस्ताब्जेनदधत्सुदि-

त्र्यममलंहास्यस्यपंकेरुहम्।। सूर्येन्द्वग्निविलोचनं करतलः पाशाक्षसूत्राकुशाम्भोजं विश्वतमक्षयं पशुपतिं मृत्युंजयं संस्मरेत् ।।२।। इति ध्यात्वा ।। मानसोपचारैः संपूज्य, ॐ पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि ।। ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ।। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि ।। ॐ रं तैजसात्मकं दीपं समर्पयामि ।। ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ।। ॐ सं सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं समर्पयामि ।। मन्त्रं जपेत् ।। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः ह्रौं ॐ ।। ततो जपानन्तरं देवदक्षिणकरे जपं समर्पयेत् । गुह्यातिगुह्यगोप्तात्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादन्महेश्वर ।।१।। मृत्युंजयमहारुद्र त्राहि मां शरणागतम् । जन्ममृत्युंजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ।। २ ।। अर्पणम् ।। अनेन महामृत्युजयजपाख्येन कर्मणा श्रीमहामृत्युंजयः प्रीयतां न मम ।। इति विज्ञाप्य देवेशं जपेमन्त्रं तु त्र्यम्बकम् ।। जपसांगतासिद्धयर्थंयथाकामनाद्रव्येणतद्दशांशदुग्धाज्यससितापामार्गसमिद्भिर्होमः ।। तद्दशांशमार्जनं, तद्दशांशतर्पणम् ।। तद्दशांशब्राह्मणभोजनं कारयेत् ।। इति ।।

अथ त्र्यक्षरमृत्युञ्जयजपविधिः ।

तत्रादौ आचम्य प्राणानायम्य शांतिपाठं सुमुखश्चेत्यादि गणेशस्मरणं च कुर्यात् । ततः संकल्पः । अद्येत्यादि पूर्वोच्चारित्त गुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तये यजमानस्य शरीरेऽमुकपीडानिरासनद्वारासर्व आरोग्यप्राप्तये श्री मृत्युञ्जयदेवताप्रीत्यर्थं श्रीमृत्युञ्जयमन्त्रस्य जपमहं करिष्ये । ॐ जूं सः मन्त्रः । अस्य श्रीत्र्यक्षरमृत्युञ्जय महामन्त्रस्य कहोलकऋषिर्देवी गायत्री छन्दः मृत्युञ्जयो महादेवो देवता ॐ बीजं राः शक्तिः ममापमृत्युञ्जयसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । अथ ऋष्यादिन्यासः । कहोलऋषयेनमः शिरसि । देवी गायत्रीछन्दसे नमः मुखे । मृत्युञ्जय महादेवताये नमः हृदि । ओं बीजायनमः गुह्ये । षट्शक्तये नमः पादे । अथ करन्यासः सांअंगुष्ठाभ्यां नमः । सीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । सूं मध्यमाभ्यां वंषट् । सैं अनामिकाभ्या हुं सौ कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । सः करतल करपृष्ठाभ्यां नमः । अथांगन्यासः सांहृदयाय नमः । सींशिरसे स्वाहा । सूं शिखायैं वषट् । सैं कवचायहुं । सौं नेत्रत्रयायवौषट् । सः अस्त्रायफट् अथ ध्यानम् । चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्त स्थितं मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम् । कोटीन्दुरेगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्जवलत्कान्त्याविश्वमोहन शशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये ।। १ ।। इति ।।